प्रश्न और उत्तर

(१९५५)

श्रीमातृवाणी

प्रश्न और उत्तर

(१९५५)

श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी

प्रकाशकका वक्तव्य

इस खंडमें १९५५ की "बुधवारकी कक्षाओं" की आश्रमके विद्यार्थियों, शिक्षकों को दी गयी माताजीकी वार्ताएं हैं। प्रायः कक्षा माताजीकी किसी लिखित वस्तु या उनके द्वारा किये गये श्रीअरविंदके लेखोंके फ्रेंच अनुवादसे शुरू हुआ करती थी। फिर वे इन पाठोंपर या दूसरे विषयों-पर किये प्रश्नोंका उत्तर देतीं या टिप्पणी करतीं थीं।

५ जनवरीसे ११ मई तककी वार्ताएं श्रीअरविंदके 'योगके आधार' पर, १८ मईकी वार्ता माताजीके एक लेख "नारीकी समस्या" पर, २५ मई और १ जूनकी श्रीअरविंदके 'मानव चक्र' के चौदहवें अध्याय "अतिमान-सिक सौन्दर्य" पर, १४ सितंबरसे २० अक्तूबरतक माताजीद्वारा व्यवस्थित और अंशतः उनके लिखे हुए नाटक "महान् रहस्य" पर, और १९ अक्तू-बरसे २८ दिसंबरतक श्रीअरविंदके 'योग-समन्वय' के दो अध्यायों "चार सहायताएं और आत्म-निवेदन" पर आधारित हैं।

फ्रेंचमें दी हुई ये वार्ताएं उसी समय ध्वन्यांकित कर ली गयी थीं। मूल पाठ और इन वार्ताओंके अंशतः अनुवाद 'श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्रकी त्रैमासिक पत्रिका' और 'पुरोधा' व 'अग्निशिखा' में पहले प्रकाशित हो चुके हैं। पूरी वार्ताएं यहां पहली बार प्रकाशित हो रही हैं।

यह माताजीके लेखोंके संकलनका सातवां खण्ड है।

आर्षवाणीका अनुवाद करना असंभव काम है। फिर भी मूल भाषा न जाननेवालोंके लिये 'श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र' के हिन्दी विभाग-ने इसके अनुवादका प्रयास किया है।

श्रीमाताजी

जन्म

२१ फरवरी, १८७८

भारतमें आगमन

२९ मार्च, १९१४

महासमाधि

१७ नवम्बर, १९७३

शताब्दी

२१ फरवरी, १९७८

५ जनवरी, १९५५

यह वार्ता श्रीअरविंदकी पुस्तक 'योगके आधार', अध्याय तीन: "कठिनाईमें" पर आधारित है।

मधुर मां, "'भागवत शक्ति' और 'ज्योति' की क्रियाके साथ प्रकृतिका सामंजस्य" कैसे स्थापित किया जा सकता है?

कैसे किया जा सकता है? कोशिश करो।

पहले तुम्हें यह मालूम होना चाहिये कि तुम किस प्रकारका सामंजस्य प्राप्त करना चाहते हो। तुम्हें यह देखना चाहिये कि किन-किन बातोंमें यह सामंजस्य नहीं है; तुम्हें इसका अनुभव करना चाहिये और आंतरिक चेतना और कुछ बाहरी गतियोंके बीच विरोधको समझना चाहिये। पहले तुम्हें इसके बारेमें सचेतन होना चाहिये, और एक बार सचेतन हो जाओ तो बाहरी कार्यको, बाहरी गतिविधिको आंतरिक आदर्शके अनुसार बनानेका काम हाथमें ले लो। लेकिन पहले विसंगतिका पता लगाना चाहिये। एक बार उसके बारेमें सचेतन हो जानेपर तुम्हें अपनी बाह्य क्रिया और बाह्य गतिविधिको आंतरिक आदर्शके अनुसार बनानेमें लग जाना चाहिये। लेकिन सबसे पहले विसंगतिका पता करना चाहिये। क्योंकि ऐसे बहुत-से लोग हैं जो सोचते हैं कि सब कुछ ठीक चल रहा है; और अगर तुम उनसे कहो: "नहीं, तुम्हारी बाह्य प्रकृति तुम्हारी आंतरिक अभीप्साके विपरीत है", तो वे विरोध करेंगे। उन्हें पता ही नहीं होता। अतः, पहला पग है जानना, ऐसी चीजोंके बारेमें सचेतन होना जो मेल नहीं खातीं।

पहले तो अधिकतर लोग कहेंगे: "यह आंतरिक चेतना है क्या, जिसके बारेमें आप बात कर रहे हैं? इसका हमें पता ही नहीं है!" अतः, स्पष्ट है कि अगर वे किसी ऐसी आंतरिक चीजके बारेमें सचेतन ही नहीं हैं जो उनकी साधारण चेतनासे श्रेष्ठ है तो वे कोई मेल नहीं बिठा सकते। इस सामंजस्यके लिये तैयार होनेसे पहले बहुत-सी प्रारंभिक चीजें करनी जरूरी हैं, प्रारंभिक चेतना प्राप्त करना जरूरी है।

सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि सत्ताका, अभीप्साका, उतरनेवाली शक्तिका और उसे ग्रहण करनेवाली चीजका आंतरिक लक्ष्य क्या

है — सभीको सचेतन होना चाहिये। और फिर, बादमें, इस आंतरिक चेतनाके प्रकाशमें बाह्य गतिविधिका निरीक्षण करना चाहिये कि कौन-सी चीजें मेल खाती हैं और कौन-सी मेल नहीं खातीं। और फिर, जब तुम यह देख लो कि कौन-सी चीज मेल नहीं खाती, तो उसे बदलनेके लिये अपनी इच्छा और अभीप्साको इकट्ठा करो और सबसे सरल छोरसे शुरू करो। सबसे कठिन चीजके साथ शुरू न करना चाहिये, सबसे अधिक सरल चीजके साथ शुरू करना चाहिये, जिसे तुम अच्छी तरहसे, आसानीसे समझ सकते हो, ऐसी विसंगतिसे शुरू करो जो स्पष्ट दिखायी देती हो। फिर, वहांसे, धीरे-धीरे, ज्यादा कठिन और ज्यादा केंद्रीय चीजोंकी ओर जा सकते हो . . .। पांवमें मोच क्यों आती है ? . . .

(मौन)

माताजी, पिछली बार आपने कहा था कि इस वर्ष विरोधी शक्तियां अंतिम प्रहार करेंगी। अगर धरती विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ हो . . .

धरती ? मैंने धरती कहा था ?

जी, धरती, भारत और व्यक्ति।

हां, हो सकता है, यह कहनेका एक तरीका है। हां, तो फिर, अगर हम विजय पानेमें असमर्थ हों तो . . . ?

तो क्या इसका यह मतलब होगा कि रूपांतरकी संभावनामें देर लग जायगी ?

शायद कई सदियोंकी देर लग जाय। विरोधी शक्तियां ठीक यही तो करना चाहती हैं, और उन्हें अभीतक हमेशा इसमें — चीजको धकेल देनेमें — सफलता मिली है। हमेशा उन्हें सफलता मिली है। "यह फिर कभी होगा," और फिर कभी . . . शायद सैकड़ों या हजारों बरसके बाद। और वे फिरसे यही करनेकी कोशिशमें हैं। शायद यह सब कहींपर निश्चित हो चुका है। यह संभव है। लेकिन यह भी संभव है कि यद्यपि सब

कुछ निश्चित हो चुका है, फिर भी जो कुछ निश्चित हुआ है उसे प्रकट करना ठीक नहीं है, ताकि चीजें उस तरह हो सकें जैसे कि उन्हें होना चाहिये। ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, क्योंकि लोग न तो इतने सचेतन हैं और न इतने शुद्ध हैं कि उन्हें जो करना चाहिये वही करें, ठीक उसी तरह करें जैसे करना चाहिये, और परिणामकी पूरी अभिज्ञताके साथ करें; क्योंकि, सौमेंसे निन्यानवे बार, परिणाम वही नहीं होता जो वे चाहते हैं —या अगर वह हो भी जो वे चाहते हैं तो परिणाम कुछ बदल-सा जाता है, कुछ मिला-जुला होता है, कुछ फीका होता है, उसमें कुछ अन्तर होता है, इतना पर्याप्त अन्तर कि वे पूरी तरह संतुष्ट नहीं हो सकते। तो, अगर आदमीको पहलेसे पता हो कि ठीक क्या होनेवाला है, तो वह चुप-चाप बैठा रहेगा, और कुछ भी न करेगा। वह कहेगा: "अच्छा है, अगर यह होना ही है, तो ठीक है, मुझे और कुछ नहीं करना-धरना।" इसी-लिये आदमी नहीं जानता। लेकिन वह व्यक्ति जान सकता है जो सभी परिस्थितियोंमें, कारणके भरपूर ज्ञानके साथ, अपने कर्मके परिणाम-को जानते हुए, और साथ ही कभी-कभी परिणामसे विपरीत कार्य कर सकता है, केवल वही जान सकता है। लेकिन मुझे नहीं लगता कि ऐसे बहुत हैं। सामान्य जीवनमें लोग कहते हैं कि अगर कोई कुछ प्राप्त करना चाहता है, तो उसे अपनी नजर उस लक्ष्यसे बहुत आगे रखनी चाहिये जिसे वह उपलब्ध करना चाहता है; कि जिन लोगोंने जीवनमें कुछ प्राप्त किया है, सभी बड़े लोग जिन्होंने कुछ सृजन किया है, कोई चीज प्राप्त की है, उनका लक्ष्य, उनकी महत्त्वाकांक्षाएं, उनकी योजना जितना वे कर पाये उससे बहुत ज्यादा बड़ी, ज्यादा विशाल, ज्यादा पूर्ण, ज्यादा समग्र रही है। वे हमेशा अपनी प्रत्याशा और आशासे नीचे ही रहे हैं। यह एक कमजोरी है, लेकिन यह मैंने जो कहा उसे प्रमाणित करती है कि जब-तक तुम्हारे आगे एक बहुत बड़ा आदर्श न हो, और उसे पानेकी आशा न हो, तबतक तुम अपनी सत्ताकी सारी ऊर्जाको गतिमें नहीं लाते। अतः तुम उतना नहीं करते जितना अगले लक्ष्यको पानेके लिये जरूरी है। जैसा कि मैंने कहा, इसमें अपवाद हैं वे जो स्पष्ट दृष्टिके साथ परिणाम और निष्कर्षके बारेमें जरा भी चिंता किये बिना "कर्तव्य कर्म" किये चले जाते हैं; लेकिन यह है कठिन।

मधुर मां, "कूएके आशावाद" का क्या मतलब है ?

ओ! कूए। तुम्हें कूएकी कहानी नहीं मालूम? कूए एक डाक्टर था।

वह मनोवैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धतिसे, आत्म-सुझावके द्वारा इलाज करता था, और उसका कहना था कि यह कल्पनाका सच्चा कार्य है; और जिसे वह कल्पना कहता था वह श्रद्धा थी। अतः अपने सभी बीमारोंका इसी तरह इलाज करता था : बीमारोंको ऐसी कल्पनाशील रचना बनानी पड़ती थी जिसमें उन्हें अपने-आपको रोग-मुक्त या कम-से-कम रोग-मुक्तिके पथ-पर मानना पड़ता था, और रोग-मुक्त करनेवाले विचारसे निर्मित इस रचनाको प्रभावशाली होनेके लिये काफी अध्यवसायके साथ दोहराया जाता था। इसके परिणाम बहुत विलक्षण होते थे। उसने बहुत-से लोगोंको ठीक किया था; हां, उसे असफलता भी मिली, और शायद ये चिरस्थायी रोग-मुक्तिके उपचार न थे, मुझे पता नहीं। लेकिन बहरहाल, उसने बहुत-से लोगोंको एक ऐसी चीजके बारेमें सोचनेके लिये बाधित किया जो बिलकुल सच है, और जिसका बहुत महत्त्व है; वह यह कि मन एक रचना करनेवाला यंत्र है और अगर हम उचित रूपमें उपयोग करना जानें, तो उससे अच्छा परिणाम आता है। उसने अवलोकन किया — और मेरा ख्याल है कि यह सच है, मेरा अवलोकन इससे सहमत है — कि लोग गलत तरीकेसे सोचनेमें अपना समय बिताते हैं। उनका मानसिक क्रिया-कलाप प्रायः हमेशा ही, आधा निराशाजनक, और आधा विनाशक भी, होता है। वे सारे समय उन बुरी चीजोंके बारेमें सोचते और पूर्व-दर्शन करते रहते हैं जो हो सकती हैं, यानी, अपनी करनीके कष्टकर परि-णाम, और वे उमड़ती हुई कल्पनाद्वारा सब प्रकारके संकटोंका निर्माण कर लेते हैं। अगर इसी कल्पनाका और तरहसे उपयोग किया जाता तो इससे उल्टे और अधिक संतोषजनक परिणाम आते।

अगर तुम अपना अवलोकन करो, अगर तुम . . . कैसे कहूं ? . . . अगर तुम अपने-आपको सोचते हुए पकड़ लो — हां, तुम अगर अचानक पकड़ो, तुम अगर अपने-आपको सोचते हुए अचानक ही देखो, सहज रूपसे, बिना किसी तैयारीके देखो, तो तुम देखोगे कि दसमेंसे नौ बार तुम कोई हानि-कर चीज सोचनेमें लगे हो। यह बहुत ही विरल होता है कि तुम सामं-जस्यपूर्ण, सुन्दर, रचनात्मक, अनुकूल, आशा, प्रकाश और आनन्द-भरी चीजें सोचनेमें लगे हो; तुम देख लो, परीक्षण कर देखो। अचानक रुक जाओ और अपने-आपको सोचते हुए देखो, इसी तरह, यूं : अपने विचारके सामने एक परदा रखो और तुम अपने-आपको, बिना किसी तैयारीके सोचते हुए देखो, दसमेंसे नौ बार तो तुम ऐसा ही पाओगे, और शायद ज्यादा भी। (यह बहुत ही विरल है, बहुत ही विरल कि दिन-भरमें तुम्हें अचानक, क्या होनेवाला है या अपनी वर्तमान अवस्थाके बारे-

में या तुम जो करना चाहते हो उसके बारेमें, या अपने जीवन-पथके बारे-में या संसारकी स्थितिके बारेमें — यह तुम्हारी तन्मयतापर निर्भर है — कोई चौंधियानेवाला, चकित करनेवाला विचार आये।) हां, तो तुम देखोगे, प्रायः हमेशा ही, यह छोटे या बड़े, कम या अधिक विस्तृत अनर्थ-का पूर्वदर्शन होता है।

तुम्हारे अंदर कोई छोटी-सी चीज है जो बिलकुल ठीक-ठीक नहीं चल रही; अगर तुम अपने शरीरके बारेमें सोचते हो, तो हमेशा यही कि उसमें कोई अप्रिय चीज होनेवाली है — क्योंकि जब सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा हो तो तुम उसके बारेमें सोचते ही नहीं! तुमने यह देखा होगा कि तुम शरीरके बारेमें जरा भी सोचे बिना, क्रिया करते रहते हो, तुम्हें जो कुछ करना हो, करते रहते हो, और जब अचानक तुम पूछ बैठते हो कि कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं हो रही, कहीं कोई बीमारी तो नहीं है, कोई कठिनाई तो नहीं है, कोई भी चीज है क्या, तो तुम अपने शरीरके बारेमें सोचने लगते हो और सोचते भी हो चिंताके साथ और तुम अशुभ रचना बनाना शुरू कर देते हो।

जब कि कूए कहता है...। अपने रोगियोंको वह इसी तरह ठीक किया करता था; वह डाक्टर था, वह उनसे कहता था: "तुम यह दोह-राते जाओ: 'मैं अच्छा होने लगा हूं, थोड़ा-थोड़ा करके मैं स्वस्थ हो रहा हूं', और फिर, है न, 'मैं मजबूत भी हूं, मैं काफी स्वस्थ हूं, मैं यह कर सकता हूं, मैं वह कर सकता हूं।"

मैं एक स्त्रीको जानती थी, उसके मुट्ठी-भर बाल बहुत बुरी तरह झड़ रहे थे। उसपर यह परीक्षण किया गया। उसे कंघी करते समय यह विचार करना पड़ता था: "मेरे बाल नहीं झड़ेंगे।" पहली और दूसरी बार कोई परिणाम नहीं आया, लेकिन वह लगी रही और कंघी करनेसे पहले हर बार वह आग्रहके साथ कहती थी: "मैं कंघी करने-वाली हूं, परंतु मेरे बाल नहीं झड़ेंगे।" और एक महीनेमें बालोंका झड़ना बंद हो गया। उसके बाद उसने यह सोचना शुरू किया: "अब मेरे बाल उगेंगे।" और वह इतनी सफल हो गयी कि मैंने उस स्त्रीको सुंदर बड़े-बड़े बालोंके साथ देखा है, और उसीने मुझे यह बताया था कि गंजे होनेकी स्थितितक पहुंचनेके बाद उसने इस तरह किया था। यह बहुत, बहुत लाभदायक है। केवल, यह न होना चाहिये कि जब तुम यह रचना करते हो, उस समय तुम्हारे मनका कोई और भाग कहे: "ओह, मैं एक रचना बना तो रहा हूं, पर यह सफल न होगी", क्योंकि इससे तुम अपने ही कामको निष्फल कर देते हो।

कूए — मेरा ख्याल है कि कूए इस शताब्दीके आरंभमें हुआ था . . . (माताजी पवित्रकी ओर मुड़ती हैं)।

(पवित्र :) **मैंने उन्हें १९१७ या १९१८ में पैरिसमें देखा था।**

हां, ठीक है, शताब्दीके आरंभमें, शताब्दीके पहले चरणमें। तुम उन्हें जानते थे ?

(पवित्र :) **जी हां, पैरिसमें।**

आहा, तो हमें सुनाओ।

(पवित्र :) **मैंने उनके दो-एक भाषण सुने थे। वे रोगियोंको जो उपाय बताते थे वह यह था कि पहले, रोज सवेरेके समय और दिनमें कई बार यह दोहराओ: "मैं अच्छा, और अधिक अच्छा हो रहा हूं, हर रोज मैं अच्छा, और अधिक अच्छा हो रहा हूं, हर रोज मैं ज्यादा स्वस्थ हो रहा हूं", हर रोज, सवेरे, शाम, और दिनमें कई बार, विश्वासके साथ अपने हाथोंको यूं दबाते हुए कहो . . .**

आहा ! और अगर किसीको गुस्सा आता है तो: "मैं ज्यादा-ज्यादा अच्छा होता जा रहा हूं, मैं अब और गुस्सा नहीं करता।" (हंसी)

(पवित्र :) **हर रोज मैं ज्यादा-ज्यादा बुद्धिमान हो रहा हूं।**

यह सचमुच अच्छा है। और अगर तुम किसी बच्चेके सामने यह दोहराओ, उससे दोहरानेके लिये कहो: "मैं दिन-पर-दिन ज्यादा-ज्यादा अच्छा बन रहा हूं।"

"मैं ज्यादा-ज्यादा अच्छा बन रहा हूं, मैं ज्यादा-ज्यादा आज्ञाकारी हूं।" ओह, यह तो बहुत अच्छा है। (एक शिष्यसे) तुमने उस दिन पूछा था कि जिन बच्चोंको संभालना मुश्किल हो उनके साथ क्या किया जाय ? लो, यह परीक्षण कर सकते हो। "मैं विद्यालयमें अधिकाधिक नियमित हूं।"

और फिर, "मैं अब झूठ नहीं बोलता, मैं अब कभी झूठ न बोलूंगा।"

(पवित्र :) **पहले बात भविष्यमें कही जाती है, फिर भविष्य-को नजदीक लाते हैं और वर्तमानके साथ अंत करते हैं।**

ओह, वर्तमानके साथ अंत करते हैं। और इसमें कितना समय लगता है?

(पवित्र :) **यह व्यक्तिपर निर्भर है।**

यह व्यक्तिपर निर्भर है। "मै झूठ नहीं बोलूंगा, यह मेरा आखिरी झूठ है।" (हंसी)

अच्छा, अब खतम।

१२ जनवरी, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय तीन :
"कठिनाईमें" पर आधारित है।

"सत्ताके किसी भागमें प्रश्न करने, प्रतिरोध करनेसे अव्यवस्था और कठिनाइयां बढ़ती हैं।"

उदाहरणके लिये, जब गुरु तुमसे कुछ करनेके लिये कहें और अगर तुम यह पूछना शुरू करो : "यह क्यों करना चाहिये? यह करनेकी क्या जरूरत है? मुझे समझाइये कि मुझे क्या करना चाहिये। मुझे यह क्यों करना चाहिये?" इसे कहते हैं प्रश्न करना।

विरोध करनेका मतलब है, आज्ञासे बच निकलनेका प्रयास करना और उसे पूरा न करना। तो स्वभावतः, इससे कठिनाइयां बहुत बढ़ जाती हैं। व्याख्या बादमें है। श्रीअरविंद कहते हैं कि इसीलिये बिना बहसके पूर्ण समर्पणकी मांग की जाती थी; उस जमानेमें किसी ननुनचकी अनुमति न थी। कहा जाता था : "यह करो;" वह करना होता था। कहा जाता था : "यह मत करो;" वह न किया जा सकता था, और किसीको भी "क्यों" पूछनेका अधिकार न था। अगर समझमें न आये तो न सही।"

यहां ऐसा नहीं है। तुम जो भी पूछना चाहो, तुम्हें पूछनेका अधिकार है। लेकिन, यह सच है कि ऐसे समय होते हैं जब इससे सहायता नहीं मिलती। अगर तुम अपने मनमें बहस करना शुरू करो: "हमें ऐसा करनेके लिये क्यों कहा जाता है? हमें यह करनेसे क्यों रोका जाता है?" और इसी तरहकी और बातें, तो उनसे सहायता नहीं मिलती। इससे कठिनाइयां बहुत बढ़ जाती हैं 'इससे चेतना कठोर हो जाती है, इससे उसपर कछुएकी ढाल-सी बन जाती है जो ग्रहणशीलतामें बाधक होती है। यह ऐसा है जैसे तुम किसी चीजपर वार्निश लगा दो ताकि उसका किसीसे कोई संपर्क न होने पाये।

क्या मन अभीप्सा करता है?

क्या मतलब? जब मन अभीप्सा करता है, तो अभीप्सा करता है।

"मानसिक इच्छा और चैत्य अभीप्सा ही तुम्हारा सहारा हों।"

हां, लेकिन मन भी अभीप्सा कर सकता है। लेकिन चैत्य अभीप्सा मानसिक अभीप्साकी अपेक्षा अधिक समर्थ होती है। मनके अन्दर स्वयं अपनी इच्छा होनी चाहिये। अगर यहां मानसिक इच्छा और चैत्य अभीप्साकी बात कही गयी है तो इसका मतलब यह नहीं है कि मनमें अभीप्सा या चैत्यमें इच्छा नहीं होती। कहनेका मतलब यह है कि हर चीजमें कौन-सी चीज ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि उसमें इसके सिवाय कुछ है ही नहीं। उसके अन्दर अन्य सभी गतिविधियां हो सकती हैं।

कभी-कभी जब मैं कुछ जानना चाहता हूं, तो मुझे ऐसा लगता है कि मेरे हृदयमें एक दरवाजा बन्द है। और फिर, वह खुलता है और सब कुछ स्पष्ट हो जाता है।

हां, यह बिलकुल सत्य है।

यह क्या है?

यह क्या है? यह इसलिये है क्योंकि जब दरवाजा बन्द होता है, तो

तुम्हारा अपने चैत्य पुरुषके साथ संबन्ध नहीं रहता। और अगर दर-वाजा खुल जाय, तो स्वभावतः, तुम्हें समस्त चैत्य चेतनाका लाभ मिलता है और तुम जो कुछ जानना चाहो जान सकते हो।

मधुर मां, यहां श्रीअरविंद कहते हैं: "जब तुम उचित भावना-के साथ कठिनाईका सामना करते हो और उसे जीत लेते हो तो देखते हो कि बाधा गायब हो गयी।" उचित भाव क्या है?

आह, मैं इस प्रश्नकी प्रतीक्षा कर रही थी। उचित भाव वह है जिसकी उन्होंने अगले वाक्यमें व्याख्या की है: विश्वास बनाये रखना, शांत रहना — मेरा ख्याल है कि यह इसीमें जरा आगे चलकर है — आक्रमणके बीत जानेके लिये धीरजके साथ प्रतीक्षा करना, विश्वास बनाये रखना। इसमें नहीं है? तो फिर कहीं और है। बहरहाल, उचित भावका मतलब है: हिम्मत न हारना, श्रद्धा न खोना, अधीर न होना, उदास न होना; तुम जितनी अभीप्सा कर सको उसके साथ शांत और स्थिर बने रहना, और जो हो रहा है उससे परेशान न होना। यह निश्चय रखना कि यह बीत जायगा, और सब कुछ ठीक होगा। यही सबसे अच्छा है।

उदास न होनेका मतलब?

उदास न होना बहुत अधिक आवश्यक है। उदासी एक प्रकारकी कम-जोरीका लक्षण है, कहींपर एक दुर्भावनाका लक्षण है। इस अर्थमें दुर्भावना कि वह दिव्य सहायता लेनेसे इंकार करता है, एक प्रकारकी कमजोरी जो कमजोर होनेमें ही संतुष्ट होती है। हम इसे चलने देते हैं। एक स्पष्ट दुर्भावना होती है, तुम्हारी सत्ताका एक भाग उस समय तुमसे कहता है: "उदासी बुरी चीज है।" तुम जानते हो कि उदास न होना चाहिये। ठीक है। लेकिन जो भाग उदास होता है उसका उत्तर होता है: "चुप रहो, मैं अपनी उदासीमें खुश हूं।" कोशिश कर देखो, तुम यही पाओगे। तुम कोशिश कर देखो। हमेशा ऐसा ही होता है। क्यों? ठीक नहीं है? और फिर बादमें, आदमी कहता है: "बादमें, बाद-में देखेंगे . . . अभी तो मुझे पसन्द है, और फिर, मेरे अपने कारण हैं।" तो यह एक प्रकारका विद्रोह है, यह एक कमजोर-सा विद्रोह है, सत्ताके अन्दर किसी कमजोर चीजका विद्रोह।

यहां उन्होंने कहा है: "...इस उदासीका परिवर्तन एक कदम है...?"

हां, जब तुम उदासी और दुर्भावनामेंसे निकल आओ तो तुम देखोगे कि यह एक आक्रमण था, तुम्हें कुछ प्रगति करनी थी, और सब चीजोंके होते हुए तुमने अपने अंदर कुछ प्रगति की है, तुमने आगे कदम बढ़ाया है। साधारणतः, किसी चीजको, भले वह बहुत कम सचेतन रूपमें हो, प्रगतिकी जरूरत है, परंतु वह करना नहीं चाहती, तब यह तरीका अपनाती है; एक बच्चेकी तरह जो रूठ जाता है, उदास होता है, दुःखी, विपण्ण होता है, उसे गलत समझा जाता है, वह परित्यक्त रहता है, सहायता नहीं मिलती तो सहयोग देनेसे इंकार करता हुआ वह, जैसा कि मैंने अभी कहा, यह दिखानेके लिये कि वह खुश नहीं है, वह उदासीमें संतोप मान लेता है। विशेष रूपसे यह दिखानेके लिये कि खुश नहीं है, वह उदास होता है। तुम यह चीज 'प्रकृति' को दिखा सकते हो, तुम यह (यह व्यक्ति-पर निर्भर है), तुम यह भगवान्‌को दिखा सकते हो, अपने चारों ओरके लोगोंको दिखा सकते हो। यह हमेशा अपना असंतोप प्रकट करनेका एक तरीका होता है। "तुम जो चाहते हो उससे मैं संतुष्ट नहीं हूं," इसका मतलब है: "मैं संतुष्ट नहीं हूं और मैं तुम्हें दिखा भी दूंगा कि मैं संतुष्ट नहीं हूं।" समझे?

लेकिन इसके बीत जानेपर, जब किसी कारणवश तुम इससे बाहर निकलनेका आवश्यक प्रयास करते हो और उसमेंसे निकल आते हो, तो साधारणतः, देखते हो कि सत्तामें कोई चीज बदल गयी है, क्योंकि, समस्त दुर्भावनाओंके बावजूद, प्रगति हुई तो है, लेकिन बहुत तेजीसे नहीं, बहुत तड़क-भड़कके साथ नहीं, निश्चय ही तुम्हारी महान् महिमाके लिये नहीं, फिर भी, प्रगति हुई है। कुछ चीज बदली है। बस?

माताजी, यहां श्रीअरविंद "वैयक्तिक अहंके निर्माण" की बात कहते हैं। वैयक्तिक अहंका मतलब क्या है?

वैयक्तिक अहं भी होते हैं, और सामुदायिक अहं भी। उदाहरणके लिये, राष्ट्रीय अहं सामुदायिक अहं है। किसी दलका सामुदायिक अहं हो सकता है। मानवजातिका एक सामुदायिक अहं होता है। वह कम या ज्यादा बड़ा होता है। वैयक्तिक अहं किसी निश्चित व्यक्तिका अहं होता है, वह अहंका सबसे छोटा प्रकार है। ओह, एक प्राणिक अहं, एक

मानसिक अहं और एक शारीरिक अहं भी होता है, लेकिन ये सब छोटे वैयक्तिक अहं होते हैं। इसका मतलब है किसी निश्चित व्यक्तिका अहं।

हमारे अंदर बहुत सारे अहं होते हैं। उनका पता हमें तब लगता है, जब हम उन्हें नष्ट करना शुरू करते हैं। जब तुम एक अहंको नष्ट कर देते हो, ऐसेको जो बहुत कष्टदायक था, तो वह एक तरहका आंतरिक बवंडर पैदा करता है। जब तुम इस तूफानमेंसे निकल आते हो, लगता है: "आह, हो गया, सब कुछ हो गया, मैंने अपने अंदरके बैरीको मार दिया, बिलकुल खत्म कर दिया।" लेकिन कुछ समयके बाद, एक और अहं दिखायी देता है, फिर एक और, उसके बाद और भी एक, तथ्य तो यह है कि आदमी बहुत सारे छोटे-मोटे अहंकारमेंसे मिलकर बना है, वे परेशान करनेवाले होते हैं, और उन्हें एकके बाद एक करके जीतना होता है।

अहंकारका मतलब क्या है?

मेरा ख्याल है कि अहंकार ही हर एकको हर संभव तरीकेसे अलग-अलग सत्ता बनाता है। अहंकार ही औरोंसे अलग व्यक्ति होनेका भाव देता है। निश्चय ही अहंकार ही तुम्हें "मैं", "मैं हूं", "मैं चाहता हूं", "मैं करता हूं", "मेरा अस्तित्व है," और वह प्रसिद्ध सूत्र: "मैं सोचता हूं इसलिये मैं हूं" का भाव देता है। जो...। मुझे खेद है, लेकिन मेरा ख्याल है कि यह सूत्र एक मूर्खता है — यद्यपि है एक प्रख्यात मूर्खता — हां, तो यह भी अहंकार है। जो तुम्हारे अन्दर यह भाव पैदा करता है कि तुम "मनोज"[1] हो, वह अहंकार है; जो बताता है कि तुम इससे, उससे बिलकुल अलग हो; जो तुम्हारे शरीरको यूं गल जानेसे रोकता है, जो भौतिक स्पंदनोंकी राशिमें घुलने नहीं देता, वह अहंकार है; जो तुम्हें एक निश्चित आकार देता है, एक निश्चित चरित्र देता है, पृथक् चेतना देता है, जो यह भाव देता है कि तुम अपने-आपमें कुछ हो, औरोंसे बिलकुल स्वतंत्र हो, मूलतः, कुछ ऐसी चीज हो; अगर तुम सोच-विचार न करो, तो सहज रूपसे यह भाव आता है कि चाहे सारा संसार लुप्त हो जाय, तुम बने रहोगे और ऐसे ही बने रहोगे जैसे कि अब हो। यह है परम अहंकार।

निश्चय ही, यदि कोई समयसे पहले अपने अहंको खो बैठे, तो मानसिक और प्राणिक दृष्टिसे वह फिरसे अव्यवस्थित राशि बन जायगा। अहं-

---

[1] एक व्यक्तिका नाम

कार निश्चय ही विशिष्ट व्यक्तित्वके गठनका यंत्र है, यानी, जबतक तुम अपने अंदर निर्मित व्यक्तिगत सत्ता रहो, तबतक अहंकार एक आवश्यक तत्त्व है। अगर तुम्हारे अन्दर समयसे पहले अहंकारको समाप्त कर देने-की शक्ति है, तो तुम अपना व्यक्तित्व खो बैठोगे। लेकिन एक बार व्यक्तित्व बन जाय तो न सिर्फ यह कि अहंकार बेकार हो जाता है, बल्कि हानिकारक भी हो जाता है। तो केवल तभी अहंकारके उन्मूलनका ठीक समय होता है। लेकिन स्वभावतः, चूंकि उसने तुम्हारा निर्माण करनेके लिये बहुत कष्ट झेले हैं, इसलिये वह अपना काम आसानीसे नहीं छोड़ता और पारिश्रमिक चाहता है, यानी, वह तुम्हारे व्यक्तित्वके साथ आमोद करना चाहता है।

क्या शारीरिक रचना भी अहंकार है?

हां, मैं कहती हूं: "अगर अहंकारके कारण नहीं तो यह और किस कारण हो सकता है?"

अभी तो तुमने पूछा था कि वैयक्तिक अहं क्यों होता है..

एक कुटुम्बका अहं होता है और यह बहुत मजेदार होता है। पारिवारिक अहंकार ही किसी परिवारके सभी सदस्योंको किसी-न-किसी तरह एक-दूसरेसे मिलता-जुलता बनाता है; वे बिलकुल एक-से नहीं होते, पर मिलते-जुलते हैं। यह जाना जा सकता है कि ये एक ही परिवारके हैं। और अगर हम पूर्वजोंमें दूरतक जायें तो देखेंगे कि यह सादृश्य सारे वंशमें काफी दूरतक जाता है। तो, यह पारिवारिक अहंकार, वैयक्तिक अहंसे अधिक स्थायी होता है। ऐसे ही राष्ट्रीय अहं होता है। जिन परिवारोंमें बहुत ज्यादा मिश्रण नहीं है जो अधिक संकरणसे बचे हुए हैं, जैसे रईसी जमानेमें रईस लोग, जिनमें रक्तका मिश्रण ज्यादा नहीं होता था, उनमें प्रायः एक ही परंपरा चला करती थी। अहं-कारके लक्षण बहुत स्पष्ट होते हैं; उदाहरणके लिये, फ्रांसका बूरबों परि-वार ऐसा था.... वहां लोग ऊपरसे नीचेतक, देखनेमें बहुत ज्यादा मिलते-जुलते थे। स्वभावतः, कुनबे, जाति और राष्ट्रके मिश्रणसे अहंकारका भी मिश्रण होता है। इससे उनका क्षितिज भी विस्तृत होने लगता है। यह ऐसा ही है जैसे विभिन्न चीजें समझकर, बहुत-सी भाषाएं सीखकर, बहुत-से देशों और कालोंका ज्ञान प्राप्त करके तुम अपने अहंको विस्तृत करते और अपने मनकी संकीर्णताको कम करना शुरू करते हो। स्वभावतः, योगके द्वारा तुम सचेतन रूपसे इसपर विजय पा सकते हो।

क्या सामुदायिक अहं समुदायके बनानेवाले व्यक्तियोंके वैयक्तिक अहंपर निर्भर है ?

हां, साधारणतः, सामुदायिक अहं वैयक्तिक अहंसे नीचे दरजेका होता है। यह वैयक्तिक अहंके गुणन फल या योग फल होनेकी जगह, उनका ह्रास होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे, यह जानी-मानी बात है। तुम व्यक्तियों-को अलग-अलग लो, उनमें काफी समझदारी होती है, उन सबको इकट्ठा कर दो तो मानव मूर्खताकी राशि बन जायगी।

बस ?

अनुभूतिको शुद्ध कैसे किया जा सकता है ?

श्रीअरविंदने शुरूमें ही ऐसी अनुभूतियोंके बारेमें कहा है जो महत्त्वाकांक्षा या मिथ्या अभिमान आदिके कारण अशुद्ध बन गयी हैं . . . इसकी उन्हों-ने व्याख्या की है। तो, अनुभूतिकी शुद्धिका मतलब होगा अनुभूतिको सच्चा, निष्कपट और अहैतुकी बनाना। महत्त्वाकांक्षा और मिथ्या अभि-मान, कामना, शक्ति आदिके सभी हेतुओंको दूर करना। इसे अनुभूति-की शुद्धि कहते हैं, उसे सच्चा, सहज, कामना और महत्त्वाकांक्षाके मिश्रण-से रहित बनाना। आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षाएं भी होती हैं, उन्होंने इन-के बारेमें कहा है, और वह सबसे अधिक भयानक होती हैं।

तो बस। अब ?

माताजी, कई लोग पूछते हैं कि आपने 'क्ष' से १९५७ के जिस संकटके बारेमें कहा था, क्या वह इस वर्ष वाला संकट ही है या कोई और है ?

क्या ?

आपने १९५७ के जिस संकटके बारेमें 'क्ष' से कहा था।

मैंने १९५७ के किसी संकटकी बात नहीं कही थी। वह संकट नहीं, उपलब्धि है। संकट पहले है और यह है परिणाम। यह संकट नहीं, विजय है। मुझे पता नहीं उसने क्या लिखा है। मुझे अब याद नहीं। लेकिन मैंने निश्चय ही उससे संकटकी बात नहीं कही।

"भारतको लेकर अमरीका और रूसमें युद्धकी संभावना है . . ."

(ऐसा लगता है कि माताजीको आश्चर्य हुआ)

१९५७ में ?

जी हां, माताजी।

बिलकुल नहीं . . . मैंने ऐसा हरगिज नहीं कहा। और यह बात उसमें नहीं थी जो उसने लिखा था, अन्यथा मैं उसे कभी अनुमति न देती। युद्धकी संभावना तो है, पर मैंने १९५७ नहीं कहा। (मौन) युद्धकी संभावना है। हां, मैंने पिछली बार जिन कठिनाइयोंकी बात की थी शायद यह भी उनका भाग है। लेकिन मैंने उसके लिये १९५७ बिलकुल नहीं कहा।

(लंबा मौन)

तो बस? खतम।

१९ जनवरी, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय तीन:
'कठिनाईमें' पर आधारित है।

मधुर मां, उच्चतर मनका क्या काम है?

काम? वास्तवमें तुम क्या जानना चाहते हो? उसे क्या करना चाहिये? या वह क्या करता है . . .?

उसकी भूमिका।

उच्चतर मनकी भूमिका? उसे ऊपरसे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये और

फिर, उसे विचारोंका रूप देकर भौतिक मनतक पहुंचाना चाहिये, ताकि वह चीजोंको कार्यान्वित करे और रचनाएं बनाये। वह उच्चतर शक्ति और सक्रिय मनके बीच माध्यम होता है। उच्चतर मन विचारोंकी रचना-का मन है और साथ ही . . . (माताजीकी आवाज हवामें खो जाती है)।

तो यह है उसका लक्ष्य। वह सामान्य मनसे नीचेकी चीजोंको भी समझाने, उनकी व्याख्या करने, सामान्य विचारों और उनसे परेके तत्त्वों-को स्पष्ट करनेकी कोशिश कर सकता है।

मधुर मां, अगर विरोधी शक्तियां न होतीं तो क्या हम प्रगति न कर पाते?

अगर संसार न होता तो संसार न होता। "अगर"! जिस क्षण तुम "अगर" लगाते हो तुम्हारे प्रश्नका कोई अर्थ नहीं रहता। चीजें जैसी हैं, वैसी हैं, क्योंकि वे जैसी हैं वैसी ही हैं। वे ऐसी हैं क्योंकि उन्हें ऐसा होना चाहिये; अन्यथा वे ऐसी न होतीं। इसलिये, तुम यह नहीं कह सकते : "अगर यह ऐसा न होता, तो कैसा होता?" यह एक निरर्थक प्रश्न है। यह ऐसा है, यह ऐसा ही है।

अगर तुम दुनियामें किसी भी चीजको बदल दो, तो उससे एक और ही दुनिया बन जाती है। अगर तुम कहो : "मैं दुनियासे इस चीजको उठाये देता हूं", लेकिन अगर वह चीज न रहे तो वह एक और ही दुनिया होगी, वह ठीक यही दुनिया न होगी जो कि अब है। ये फालतू और व्यर्थ अनुमान हैं। चीजें ऐसी हैं। जो है हमें उसीसे आरंभ करना चाहिये और अन्यत्र जाना चाहिये। लेकिन तुम यह नहीं कह सकते : "अभी जो है . . . वह अगर और तरहका होता . . .।" इससे लाभ ही क्या? यह ऐसा है।

तुम बस यही कह सकते हो कि : "चूंकि विरोधी शक्तियां मौजूद हैं, तो उनका उपयोग करनेका सबसे अच्छा तरीका क्या है? उनकी उपस्थिति-का लाभ उठानेका क्या तरीका है?" यह ऐसा प्रश्न है जिसका कुछ अर्थ होता है। लेकिन अगर तुम मुझसे कहो : "अगर ये न होतीं?" लेकिन होनेको तो वे हैं ही! इसका तो कोई प्रश्न ही नहीं, वे तो हैं **ही**। हमें वे जैसी हैं वैसी स्वीकार करनी होगी। अतः, तुम बस इतना कर सकते हो कि यह कहो : "मैं चाहता हूं कि ये न रहें।" यह सर्वथा उचित है। लेकिन उन्हें बेकार कर देनेके लिये काम तो करना होगा।

तब वे न रहेंगी। जब वे बेकार हो जायंगी तो संसारसे लुप्त भी हो जायंगी।

हमें चीजोंको उस रूपमें लेना चाहिये जैसी कि वे इस क्षण हैं। और किसी अन्य चीजकी ओर बढ़ना चाहिये जो, हम आशा करते हैं, कि वह जो है उससे अच्छी होगी। तुम बस यही कर सकते हो।

मधुर मां, यहां वे कहते हैं: "'भगवान्‌की अभिव्यक्ति' स्थिर शांति और सामंजस्य द्वारा होती है, अनर्थकारी उत्पातके द्वारा नहीं।"

हां तो फिर? तुम्हें यह नहीं मालूम? तुम्हें यह मालूम होना चाहिये।

ऐसे लोग होते हैं जो हमेशा यह कल्पना करते हैं कि संकट भागवत 'इच्छाका' परिणाम होते हैं। ऐसे लोग भी हैं जिनमें जैसे ही कोई शक्ति आती है, वे भयंकर रूपसे अस्तव्यस्त होकर तुमसे कहते हैं: "आह, जब भगवान् कार्य करते हैं, तो वे सब कुछ उलट-पुलट कर देते हैं।" यह बिलकुल गलत है। भगवान् उलट-पुलट नहीं करते, तुम्हारी अपनी अपूर्णता उलट-पुलट करती है। या फिर यह, जिन शक्तियोंकी वे बात कर रहे हैं, उन विरोधी शक्तियोंमेंसे किसीका आक्रमण हो सकता है। लेकिन अगर तुम्हारे अंदर अपूर्णता नहीं है तो तुम्हारे अंदर उथल-पुथल नहीं हो सकती। निश्चित रूपसे, भगवान् उथल-पुथल नहीं करते। जैसा कि उन्होंने आगे चलकर कहा है: "माताजी तुम्हें कसौटीपर नहीं कसतीं, बाहरी परिस्थितियां तुम्हें कसौटीपर कसती हैं।" इस तरह बहुत सुविधाजनक नहीं है न? (माताजी हंसती हैं) तुम्हारे चेहरेसे लगता है कि तुम्हें इस बातका खेद है कि उथल-पुथलका कारण भगवान् नहीं हैं!

उथल-पुथल हमेशा किसी प्रतिरोधके कारण होती है। अगर कोई प्रतिरोध न हो तो उथल-पुथल भी न होगी। हो सकता है कि विभीषिकाओं, भूकंपों, बवंडरों और समुद्री तूफानों, महाद्वीपोंके विलोपन, ज्वालामुखियोंके फटने आदिके पीछे कोई प्रतिरोध हो।

माताजी, क्या विरोधी शक्तियां उन्हें सौंपे गये इस कामके बारेमें सचेतन होती हैं? यानी...

नहीं, इस किताबमें कहा गया है कि स्वयं उन्होंने यह काम अपने-आपको सौंपा है। उनके अपने शब्द हैं: "विरोधी शक्तियोंका एक अपना चुना

हुआ काम है," "यानी, स्वयं उन्होंने यह काम करनेका निश्चय किया है। लेकिन तुम पूछना क्या चाहते थे? उन्हें यह काम क्यों दिया गया है?

जी नहीं, मैंने पूछा था कि क्या विरोधी शक्तियां उन्हें सौंपे गये कामके बारेमें सचेतन हैं। क्योंकि इसका मतलब होगा कि विरोधी शक्तियां आध्यात्मिक उपलब्धिमें सहायता करती हैं।

ऐसी कोई चीज नहीं है जो अंततः सहायता न करती हो। अगर वे जान-बूझकर ऐसा करें तो वे विरोधी शक्तियां न रहेंगी, यह तो सहयोग होगा। एक चीजके बारेमें बहुत सावधानी बरतनी चाहिये, जो शक्तियां हमारे विरुद्ध हों उनके बारेमें सोचते समय उन्हें "विरोधी शक्तियां" न कहना चाहिये। विरोधी शक्तियां वह नहीं हैं जो मनुष्योंका, उनके अमन-चैनका, उनकी सुख-शांतिका विरोध करती हैं, विरोधी शक्तियां वह हैं जो भगवान्‌के 'काम' का विरोध करें।

सामान्यतः, बहुत-से लोगोंको मैंने कहते सुना है: "विरोधी शक्तियां" —उदाहरणके लिये, "बीमारीकी विरोधी शक्तियां जो मेरे ऊपर आक्रमण करती हैं"। यह बहुत ज्यादा व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। हो सकता है कि यह विरोधी शक्तियोंके कारण न भी हो; तुम उन्हें विरोधी इसलिये कहते हो, क्योंकि वे तुम्हारे ऊपर आक्रमण करती हैं। लेकिन मूलतः, जब तुम विरोधी शक्तिकी बात करो तो उसका मतलब होता है भगवान्‌के 'काम' या भगवान्‌की 'इच्छा'का विरोध करनेवाली शक्तियां। हां तो, अगर वे इस 'काम' में सहयोग दें तो वे विरोधी नहीं रहेंगी, है न? यह तो ऐसी बात है जिसे काटा ही नहीं जा सकता।

अतः, तुम यह नहीं कह सकते कि यह काम मानवजाति या विश्वकी प्रगतिके लिये है। लेकिन ऐसी कोई भी चीज नहीं है, भले वह अधिक-से-अधिक विरोधी क्यों न हों, जिसका उपयोग भगवान्‌के 'काम' के लिये नहीं हो सकता। यह इसपर निर्भर है कि तुम उसे कैसे ग्रहण करते हो। लेकिन यह कहना पड़ेगा कि मनुष्योंके साथ अपने संबन्धमें ये शक्तियां मनुष्योंको परीक्षामें डालनेमें बहुत अशुभ और विषैला मजा लेती हैं। उदाहरणके लिये, अगर तुम बहुत ज्यादा मजबूत और निष्कपट नहीं हो, और बहुत-सी चीजोंमेंसे, उदाहरणके लिये, अगर तुम यह कह दो: "मुझे अपनी श्रद्धाके बारेमें विश्वास है", तो वे तुरंत कोई ऐसी चीज पैदा कर

देंगी जो तुम्हारी श्रद्धाको पूरी तरह डिगा देगी। यह एक है . . . मेरा ख्याल है कि यह उनका मनोरंजन है, दिल-बहलाव है।

कितनी बार, जब कोई शेखी बघारता है . . . चाहे वह कितने ही बचकाने ढंगसे क्यों न हो . . . जब कभी कोई किसी चीजके बारेमें शेखी बघारता है: "ओह, इसके बारेमें मुझे विश्वास है, मैं यह भूल कभी न करूंगा," तो मैं तुरंत किसी विरोधी शक्तिको उधरसे यूं गुजरते देखती हूं और वह शेखीके द्वारा बने हुए छोटे-से छेदमेंसे अंदर घुस जाती है। वह अंदर, यूं घुसती है, फिर, फैल जाती है, और तुमसे ठीक वही चीज करवानेकी कोशिश करती है जो तुम नहीं करना चाहते। लेकिन यह उसका मनोरंजन होता है, यह निश्चय ही तुम्हारी प्रगतिमें सहायता करनेके लिये नहीं होता। (माताजी हंसती हैं) लेकिन अगर तुम इसे ठीक तरहसे लेना जानो, तो यह चीज तुम्हारी प्रगतिमें सहायक हो सकती है। तुम कहते हो: "अच्छा, अब मैं फिरसे शेखी न बघारूंगा।"

चूंकि ये शक्तियां मानसिक और प्राणिक स्तरपर बहुत सचेतन होती हैं, अतः इनके लिये कोई वाक्य बोलनेतककी जरूरत नहीं होती। अगर विचार . . . उदाहरणके लिये, अगर तुमने किसी चीजको, किसी बुरी आदतको, किसी भौतिक कमजोरीको ठीक करनेके लिये बहुत काम किया है, तुमने काफी काम किया है और काफी काम करनेके कारण तुम्हें किसी हदतक सफलता मिली है; अब अगर तुम सिर्फ मानसिक तौरपर यह घोषणा करो कि तुम सफल हो गये हो, तो अगले ही क्षण वह फिरसे शुरू हो जायगी। तो बात ऐसी है . . . । कहनेका तो सवाल ही नहीं, तुम्हें सोचनातक न चाहिये, सिर्फ इतना सोचनेका सवाल है: "पहले चीज ऐसी थी, और अब ऐसी है। सब ठीक है।" बस, खतम। अगले ही क्षण चीज फिरसे शुरू!

और यह स्पष्ट है, क्योंकि तुम्हारे चारों ओर आंखें लगी हुई हैं, ये कुख्यात दुर्भावनाएं हैं और इन्हें इसमें बहुत मजा आता है। मैंने उन्हें कभी-कभी हंसते हुए भी सुना है, जब कोई बड़े सरल भावसे कुछ कह देता है तो मैं एक हल्की-सी — छोटी-सी — हंसी सुनती हूं। इसमें उन्हें बड़ा मजा आता है। उसके अगले ही क्षण या अगले दिन तड़ाक! सब किया-कराया खतम हो जाता है।

इन आंखोंसे कैसे पिंड छुड़ाया जाय?

व्यावहारिक दृष्टिकोणसे, तुम्हें आंतरिक नीरवतामें रहना चाहिये, साथ ही

एक ऐसा मानसिक क्रिया-कलाप होना चाहिये जो पूरी तरहसे उन चीजोंमें लगा हो जो तुम करना चाहते हो। वह उस प्रगतिमें लगा हो जो तुम साधना चाहते हो, यानी, उस मानसिक रचनामें लगा हो जिसकी तुम्हें अपने कामके लिये जरूरत है। और यह कहीं अधिक अच्छा है, बल्कि मैं कहूंगी कि एकदम अनिवार्य है, कि तुम अपने अवलोकनके गुणका उपयोग कार्य-क्षेत्रमें, तुम अपने काममें जिस पद्धतिका उपयोग करते हो उसमें, अपने अनुभवसे तुम जो निष्कर्ष निकाल सकते हो उसमें, तुम जो ज्ञान प्राप्त कर सकते हो उसमें, यानी, इन सब चीजोंमें उसका उपयोग कर सकते हो . . . लेकिन उसे स्वयं अपनी ओर मोड़कर, काम करते हुए, अपने-आपका अवलोकन न करो। अपने-आपको अवलोकनकी वस्तु बनानेकी गति भयंकर है। यह हमेशा असंगति पैदा करती है, जो कभी-कभी गंभीर होती है। तो, मनुष्योंका बहुत बड़ा भाग अपने-आपको करते हुए देखनेमें, अपने-आपको जीते हुए देखनेमें अपना समय बिताता है। और इससे ये बहुत ज्यादा . . . जिसे अंगरेजीमें "सेल्फ-कांशस" (आत्म-चेतन) कहते हैं, वैसे बन जाते हैं। यानी, निष्कपट-भावसे पूरी तरह उस चीजमें लगे रहनेकी जगह जो वह कर रहे हैं, ऐकांतिक रूपसे उसमें लगे रहनेकी जगह, वे अपने-आपको करते हुए निहारते हैं और अपने स्वभावके अनुसार अपनी सराहना या निंदा करते हैं। ऐसे लोग हैं जो बड़ी भद्रता और बहुत ही संतोषके साथ अपने-आपको काम करते हुए देखते हैं, और अपने-आपको सचमुच बहुत ही विलक्षण मानते हैं। इसके विपरीत, ऐसे लोग हैं जिनमें समालोचनाकी भावना होती है, और वे अपना सारा समय अपनी आलोचना करनेमें ही बिता देते हैं। इनमें कोई किसीसे अच्छा नहीं है। ये समान रूपसे खराब हैं। सबसे अच्छा तो यह है कि स्वयं अपने-आपमें व्यस्त न रहो। अगर तुम्हें कोई काम करना है तो सबसे अच्छा यह है कि उस काममें और स्वभावतः, उसे अच्छे-से-अच्छे ढंगसे करनेमें व्यस्त रहो। यह हमेशा अच्छा होता है, लेकिन यह नहीं . . . तुम अच्छा करो या बुरा, कि तुम करते हुए अपने-आपको देखो और अपनी सराहना करो; यह एक बेकार-सी चीज है।

यह बहुत उपयोगी है कि यह पता लगाया जाय कि काम कैसे किया जाय और उसे करनेका अच्छे-से-अच्छा तरीका क्या है। लेकिन अपने-आपको करते देखना और अपनी सराहना या निंदा करना न सिर्फ बेकार है, बल्कि अशुभ और अनर्थकारी है।

माताजी, भली-भांति विकसित चैत्य पुरुषका ठीक-ठीक अर्थ क्या है ?

ओ, "भली-भांति विकसित चैत्य पुरुष" का अर्थ क्या है ? लेकिन मैं तुम्हें यह विस्तारसे समझा चुकी हूं। यह पिछले या उससे पिछले सप्ताहकी बात नहीं है ? मैंने तुम्हें बतलाया था कि चैत्य पुरुष किस तरह धीरे-धीरे पहली दिव्य चिंगारीसे बढ़ता हुआ, पूरी तरह निर्मित सत्ता, पूर्णतया सचेतन और स्वतंत्र सत्तामें विकसित होता है। जब हम सुविकसित सत्ता, सुविकसित चैत्यकी बात करते हैं तो ऐसे चैत्यसे मतलब होता है जो अपने अधिक-से-अधिक निर्माणतक पहुंच चुका हो।

जी, तो फिर विकसित हो जानेके बाद भी अपूर्णताएं कैसे रह सकती हैं ?

कौन-सी अपूर्णताएं ?

उस दिन आपने कहा था न, कि कोई कठिनाईमें हो तो इसका मतलब है कि वह सामान्य सत्ता है।

क्षमा करना, चैत्य सत्ता और बाहरी सत्तामें घपला मत करो। चैत्य सत्ता पूर्ण हो सकती है और बाहरी सत्ता बिलकुल मूढ़। इन दोनोंमें घपला न करो। इनका कोई संबन्ध नहीं होता, दुर्भाग्यवश, अधिकतर समय इनका एक-दूसरेके साथ कोई संबन्ध नहीं होता ! क्योंकि बाहरी सत्ता चैत्य पुरुषके बारेमें जरा भी सचेतन नहीं होती; लेकिन वह जितनी मात्रामें सचेतन हो उतनी मात्रामें वह चैत्य सत्ताकी पूर्णताको प्रतिबिंबित करती है।

अगर तुम स्वभावकी नहीं, परिस्थितियोंकी बात करो, तो संसारमें चैत्य पुरुषके आगे कठिनाइयां क्यों नहीं होंगी ? अगर संसार पूरी तरह चैत्य होता तो बात समझमें आती। लेकिन ऐसा नहीं है। बात बिलकुल उल्टी है, और मेरा ख्याल है कि तुम जितने अधिक चैत्य हो, साधारणत: उतनी ही अधिक कठिनाइयां आती हैं। हां, तब तुम कठिनाइयोंका सामना करनेके लिये लैस होते हो। लेकिन तुम जितने अधिक चैत्य होगे उतने ही वास्तविक संसारके विपरीत होगे। जब तुम किसी चीजके विपरीत हो तो परिणामस्वरूप कठिनाइयां आयेंगी। मैंने बहुत बार देखा है कि जिनपर बहुत ज्यादा कठिनाइयां आती हैं उनका अपनी चैत्य सत्ताके साथ कम या ज्यादा घनिष्ठ संपर्क होता है। अगर तुम बाहरी परिस्थितियोंकी बात करो... करना चाहो... मैं चरित्रकी बात नहीं कर रही, वह कुछ और ही चीज है, मैं बाहरी परिस्थितियोंकी बात

कह रही हूं . . . । जिन लोगोंको अधिक संघर्ष करना पड़ता है, जिनके कष्ट सहनेके लिये बहुत कारण होते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जिनकी चैत्य सत्ता बहुत विकसित होती है।

पहले, चैत्य सत्ताके विकासका दोहरा परिणाम होता है, और ये दोनों एक साथ चलते हैं। मतलब यह कि चैत्य सत्ताके विकासके साथ-ही-साथ सत्ताकी संवेदनशीलता विकसित होती है, और संवेदनशीलताके विकासके साथ सहन-शक्ति भी बढ़ती है; लेकिन एक दूसरा पक्ष भी है। वह यह कि अपने चैत्यके साथ तुम्हारा जिस मात्रामें संपर्क होगा, तुम जीवनकी परिस्थितियोंका उसी मात्रामें, एक बिलकुल ही अलग ढंगसे, एक तरहकी आंतरिक स्वतंत्रताके साथ सामना कर सकोगे। यह तुम्हें उन परिस्थितियोंसे दूर हटनेकी क्षमता देगी और तुम चीजको मामूली तरीकेसे, आघातके साथ अनुभव न करोगे। तुम कठिनाइयों या बाहरी चीजोंका सामना स्थिरता, शांति और ऐसे पर्याप्त आंतरिक ज्ञानके साथ कर सकोगे ताकि तुम्हें कष्ट न हो। एक भागमें तुम ज्यादा संवेदनशील होते हो, तो दूसरे भागमें इतने मजबूत कि इस संवेदनशीलताका सामना कर सको।

और कोई "अत्यावश्यक" प्रश्न तो नहीं है ?

अत्यावश्यक प्रश्न किसे कहते हैं ? मुझे कौन बतायेगा ?

ऐसा प्रश्न जिसका उत्तर अत्यावश्यक हो।

मैं, मैं तो कहूंगी यह एक ऐसा प्रश्न है . . . जिसे अगर आज ही न पूछा जाय, तो तुम्हें आज रात नींद नहीं आयेगी ! (हंसी)

वही एकमात्र प्रश्न सचमुच अत्यावश्यक होगा। तो ऐसा प्रश्न नहीं है न ? तुम सब आरामसे सो सकते हो ! (हंसी)

यह एक ऐसा प्रश्न हो सकता है . . . जो अगर न पूछा जाय तो आज प्रगति नहीं हो सकती।

हां, यह सच है। लेकिन क्या तुम ऐसे प्रश्नके बारेमें सचेतन हो जो तुमसे प्रगति करवायेगा ? अगर तुम उसके बारेमें सचेतन हो चुके हो, तो यह अपने-आपमें एक चीज है। यह अपने-आपमें आधी प्रगति हो गयी। ऐसे प्रश्न हैं ? कोई प्रगतिके लिये तैयार है ? अच्छा, तो फिर यह अगली बारके लिये रहेगा।

२६ जनवरी, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय तीन :
'कठिनाईमें' पर आधारित है।

मधुर मां, यह "शक्तियोंका स्वामी" कौन है "...जो वर्तमान तंत्र (मशीनरी) के दोषोंको देखता है" ?

भागवत 'उपस्थिति' अंदरसे देखती है कि वर्तमान सत्ताके कार्यमें कौन-सी चीज अपूर्ण और अधूरी है। दिव्य 'चेतना' चैत्य पुरुषमें विद्यमान रहती है, और वह देखती है कि कौन-सी चीज अपूर्ण है, साथ ही वह आक्रमणों-को भी देखती है और यह जानती है कि उन्हें कैसे खदेड़ा जाय। लेकिन इसके लिये तुम्हें अपनी चैत्य सत्ताके बारेमें सचेतन होना चाहिये। हमेशा वही बात होती है। हम घूम-फिरकर हमेशा वहीं आ जाते हैं।

आत्म-हत्या करनेपर आदमीको कष्ट क्यों होता है ?

आदमी आत्म-हत्या क्यों करता है ? क्योंकि वह कायर होता है...। जब आदमी कायर होता है तो हमेशा तकलीफ पाता है।

और अगले जीवनमें फिरसे कष्ट पाता है ?

चैत्य पुरुष किसी निश्चित लक्ष्यसे, खास प्रकारके अनुभवोंमेंसे गुजरनेके लिये, सीखने और अनुभव करने और प्रगति करनेके लिये आता है। अगर तुम उसका काम पूरा होनेसे पहले शरीर छोड़ दो, तो उसे फिरसे वही काम और भी ज्यादा कठिन परिस्थितियोंमें पूरा करनेके लिये वापिस आना पड़ेगा। तो एक जीवनमें तुमने जिन-जिन चीजोंसे बचनेकी कोशिश की है, उन सबको अगले जीवनमें फिरसे पाओगे, और तब वे ज्यादा कठिन होंगी। और इस तरह छोड़े बिना भी, अगर तुम्हें जीवनमें कुछ कठि-नाइयोंको पार करना है, हम यूं कह सकते हैं कि तुम्हें कोई परीक्षा पास करनी है, और अगर तुम इस बार पास न कर सको या उधरसे मुंह मोड़ लो, या उसे पार करनेकी जगह वहांसे चले जाओ तो तुम्हें उसे फिरसे पास करना होगा, और तब वह पहली बारसे बहुत अधिक कठिन होगी।

तुम जानते ही हो कि लोग बहुत अज्ञानी होते हैं, वे समझते हैं कि चीज इस प्रकार है: जीवन है, और फिर मृत्यु है; जीवन कष्टोंकी गठरी है, और मृत्यु शाश्वत शांति। लेकिन बात ऐसी हर्गिज नहीं है। साधारणतः, जब कोई सहसा, बिलकुल मनमाने ढंगसे, अज्ञान-भरे और अंधकारपूर्ण आवेगमें जीवनसे बाहर चला जाता है तो वह प्रायः, सीधा इन तमाम आवेगों और समस्त अज्ञानसे भरे प्राणमय जगत्में जाता है। तो वह जिन कष्टोंसे बचना चाहता था, वह फिरसे उन्हींको पाता है और अब वह सुरक्षा भी प्राप्त नहीं होती जो शरीर प्रदान करता है, क्योंकि अगर तुमने कभी दुःस्वप्न देखा है — यानी प्राणमय जगत्में अंधाधुंध यात्रा की है — तो तुम्हारा इलाज होता है, अपने-आपको जगा देना, यानी, तुरंत अपने शरीरमें दौड़ आना। लेकिन जब तुमने शरीरको नष्ट कर दिया, तो फिर रक्षा करनेके लिये तुम्हारे पास शरीर नहीं रहता। इसलिये तुम अपने-आपको निरंतर दुःस्वप्नमें पाते हो जो बहुत सुखद नहीं होता। क्योंकि, दुःस्वप्नसे बचनेके लिये तुम्हें चैत्य चेतनामें होना चाहिये, और जब तुम चैत्य चेतनामें हो, तो निश्चय जानो कि चीजें तुम्हें कष्ट न देंगी। जैसा कि मैंने कहा, निरंतर जो प्रयास होना चाहिये, उसके आगे यह सचमुच अज्ञानपूर्ण अंधकारकी गति है और बहुत बड़ी कायरता है।

मधुर मां, ऐसा क्यों है कि यह सब बुधवारको ही होता है, वर्षा या शोर-गुल या...

अच्छा! शायद यह कोई ऐसी चीज है जिसे हमारी कक्षाएं पसंद नहीं आतीं। लेकिन आज तो यह इस कारण है कि आज २६ जनवरी है;[१] यह इसी दिन आ पड़ी है।

मधुर मां, लोग बहुत-सा शोर मचानेमें क्यों मजा लेते हैं?

शोर मचानेमें? क्योंकि वे अपने-आपको संज्ञा-शून्य बना देना चाहते हैं। मौनमें उन्हें अपनी कठिनाइयोंका सामना करना होता है, वे स्वयं अपने

---

[१]माताजी की वे कक्षाएं जिनमें यह प्रश्नोत्तर होते थे, बुधवारको ही हुआ करती थीं। प्रायः, इस बातचीतके समय शहरके लाऊड स्पीकरोंसे जोर-जोरका संगीत या शोरगुल सुनायी देता था, लेकिन आज गणतंत्र दिवसका हो-हल्ला था।

सामने होते है, और साधारणतः, उन्हें यह पसंद नही आता। शोरमें वे सब कुछ भूल जाते हैं, वे संज्ञा-शून्य-से हो जाते हैं। इसलिये वे खुश रहते है।

मैं कैसे रहता हूं यह देखनेका समय न पानेके लिये आदमी हमेशा बाहरी क्रिया-कलापकी ओर दौड़ता है। यह चीज उसके अंदर ऊबसे पीछा छुड़ानेकी इच्छाके रूपमें प्रकट होती है। वस्तुतः, कुछ लोगोंके लिये शांत रहना — बैठे रहना या चुपचाप रहना बहुत ज्यादा थकान लाता है। उनके लिये बहुत-सा शोर मचाने, बहुत-सी बेवकूफियां करने और बहुत ज्यादा बेचैन होनेका अर्थ होता है ऊबसे पिंड छुड़ाना; ऊबसे बच निकलने-का यह उनका तरीका है। जब वे चुपचाप बैठते और अपने ऊपर नजर डालते हैं, तो वे ऊब जाते हैं। शायद इसलिये कि वे स्वयं ऊबाऊ होते है। यह बहुत संभव है। आदमी जितना ज्यादा ऊबाऊ होता है उतना ही ज्यादा ऊबता है। बहुत मजेदार लोग साधारणतः, नहीं ऊबते।

माताजी, अगर कोई कायर हो और किसी कठिनाईसे बचे, अगर वही कठिनाई दूसरी बार आये तो और भी बढ़ जाती है, यह सिलसिला कबतक चलता रहता है?

यह तबतक चलता है जबतक कि वह कायर होना छोड़ न दे, जबतक कि वह यह न समझ ले कि यह करने लायक चीज नहीं है। तुम अपनी कायरतासे पार पा सकते हो। अगर आदमी चाहे तो ऐसी कोई चीज नहीं है जिसपर विजय न पायी जा सके।

क्या आदमी अज्ञानके कारण कायर होता है?

आदमी किस कारण कायर होता है?

अज्ञानके कारण।

इसका मतलब होगा कि तुम अज्ञानको सभी बुरी चीजोंका कारण मान सकते हो। लेकिन मेरा ख्याल है कि आदमी बहुत ज्यादा तामसिक होनेके कारण और प्रयास करनेसे डरनेके कारण कायर होता है। कायर न होनेके लिये प्रयास करना पड़ता है, प्रयाससे आरंभ करना पड़ता है, और बादमें, यह बहुत मजेदार बन जाता है। लेकिन सबसे अच्छी बात है, अपने अंदरसे भाग निकलनेकी इस वृत्तिपर विजय पानेकी कोशिश

करना। चीजका सामना करनेकी जगह, तुम पीछे हटते हो, उससे कतराते हो, उसे पीठ दिखाकर भाग निकलते हो, क्योंकि शुरूका प्रयास कठिन होता है। इसलिये, जो चीज तुम्हें प्रयास करनेसे रोकती है, वह है जड़, अज्ञानमय प्रकृति।

राजसिक प्रकृतिमें प्रवेश करते ही तुम प्रयास करना पसंद करने लगते हो। राजसिक लोगोंको कम-से-कम एक लाभ है, वे साहसी होते हैं, जब कि तामसी लोग कायर होते हैं। प्रयासका डर उन्हें कायर बना देता है। क्योंकि, तुम एक बार शुरू कर दो, एक बार निश्चय कर लो और प्रयास शुरू कर दो, तो तुम्हें मजा आने लगेगा। कुछ लोगोंको पाठ अच्छा न लगनेका, अध्यापककी बात सुनना न चाहनेका कारण भी ठीक यही चीज होती है। यह तामसिक चीज है। यह निद्रावश होना है। यह चीज उस प्रयाससे बचती है जो किसी चीजको पकड़ने, समझने और बनाये रखनेके लिये करना पड़ता है। यह अर्द्ध तंद्रा है। यह भौतिक रूपसे वही चीज है, यह सत्ताकी तंद्रा है, जड़ता है।

ऐसे लोग हैं जो . . . मैं ऐसे लोगोंको जानती थी जो भौतिक रूपमें बहुत साहसी थे, पर नैतिक दृष्टिसे बहुत, बहुत कायर, क्योंकि मनुष्य विभिन्न भागोंसे बने हुए हैं। उनकी भौतिक सत्ता सक्रिय और साहसी हो सकती है, और उनकी नैतिक सत्ता कायर। मैं इससे उल्टे उदाहरण भी जानती थी: मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो अंदरसे बहुत साहसी थे और बाहरसे बहुत ही अधिक कायर। लेकिन इन्हें कम-से-कम एक लाभ होता है, उनमें एक आंतरिक संकल्प-बल होता है, और वे कांपते समय भी अपने-आपको बाधित कर सकते हैं।

एक बार मुझसे एक प्रश्न पूछा गया था, एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न। यह प्रश्न मुझसे एक ऐसे आदमीने पूछा था जो जंगली जानवरोंका व्यापार करता था। उसके पास एक प्राणि-शाला थी, और वह हर जगहसे जंगली जानवर खरीदा करता था; उन सब देशोंसे खरीदता था जहां ये जानवर पकड़े जाते हैं, और वहांसे लेकर उन्हें यूरोपके बाजारोंमें बेचता था। मेरा ख्याल है वह आस्ट्रियन था। पैरिस आया हुआ था। उसने मुझसे कहा: "मुझे दो तरहके सधानेवालोंसे काम पड़ता है। मैं यह जाननेके लिये बहुत उत्सुक हूं कि इन दोनोंमेंसे कौन-से ज्यादा साहसी हैं। ऐसे लोग हैं जो पशुओंसे बहुत प्रेम करते हैं, वे उन्हें इतना प्यार करते हैं कि वे सीधे कटघरेमें घुस जाते हैं, और यह जरा भी नहीं सोचते कि यह खतरनाक साबित हो सकता है। वे ऐसे हो जाते हैं जैसे एक मित्र दूसरे मित्रके घर जाता है। वे उनसे काम करवाते हैं, उन्हें कई

चीजें करना सिखाते हैं, वे रत्ती-भर डरके बिना उनसे काम करवाते हैं। मैं ऐसे लोगोंको जानता हूं जो अपने हाथमें चाबुकतक नहीं लेते थे। वे अंदर जाते और जानवरोंके साथ इतनी मैत्रीके साथ बात करते थे कि सब कुछ ठीक चलता था। लेकिन यह चीज एक दिन उनके खा लिये जानेको नहीं रोकती थी। फिर भी, यह एक प्रकार है। दूसरे प्रकारके ये लोग हैं जो अंदर घुसनेसे पहले ही बहुत डरते हैं, वे कांपते हैं, और प्रायः बीमार हो जाते हैं। फिर भी, वह प्रयास करते हैं, काफी अधिक नैतिक प्रयास करते हैं, और जरा भी डर दिखाये बिना अंदर जाते और जानवरोंसे काम करवाते हैं।"

फिर उसने मुझसे कहा: "मैंने दो मत सुने हैं: कुछ लोग कहते हैं कि न डरनेकी अपेक्षा, डरपर विजय पाना ज्यादा साहसपूर्ण काम है...। यह है समस्या। इन दोनोंमेंसे कौन-सा सचमुच साहसी है?"

शायद एक और प्रकार भी है जो सचमुच साहसी है, इन दोनोंसे ज्यादा साहसी। यह वह है जो खतरेको पूरी तरह जानता है, जो अच्छी तरह जानता है कि इन जानवरोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस दिन ये विशेष रूपसे उत्तेजित अवस्थामें होंगे उस दिन वे तुम्हारे ऊपर धोखेसे छलांग जरूर मार सकेंगे। लेकिन उनके लिये सब समान है। वे उसमें काम करनेके आनन्दके लिये जाते हैं। वे मनकी पूर्ण स्थिर शांतिके साथ, आवश्यक शक्ति और शारीरिक चेतनाके साथ यह प्रश्न उठाये बिना जाते हैं कि दुर्घटना होगी या नहीं। स्वयं यह आदमी इस तरहका था। उसमें इतनी जबर्दस्त इच्छा-शक्ति थी कि वह चाबुक-के बिना, केवल अपनी इच्छा-शक्तिके आग्रहसे उनसे अपनी मरजीके मुता-बिक सब कुछ करवा लेता था। उसे भली-भांति मालूम था कि यह एक भयंकर पेशा है। उसे इसके बारेमें कोई भ्रम न था। उसने मुझे बत-लाया कि उसने यह काम बिल्लीसे सीखा था — एक बिल्लीसे!

यह आदमी जंगली जानवरोंका व्यापारी होनेके अतिरिक्त, एक कला-कार भी था। उसे चित्र खींचनेसे प्रेम था, उसे चित्रकलासे प्रेम था, उसकी चित्रशालामें एक बिल्ली थी। और इस तरह उसे जानवरोंमें रस आने लगा। यह बिल्ली बहुत ज्यादा अक्खड़ थी, उसमें आज्ञापालन-का भाव बिलकुल न था। हां, तो वह अपनी बिल्लीका चित्र बनाना चाहता था। वह बिल्लीको कुरसीपर बिठा देता और अपने-आप चित्र-फलकके पास बैठनेके लिये जाता। बिल्ली फरार हो जाती। वह उसे ढूंढने जाता और उसे पकड़ लाता। वह जरा भी जोरसे बोले बिना, डांटे बिना, कुछ भी कहे बिना, चोट करने या मारनेका तो सवाल ही

न था, फिरसे कुरसीपर बिठा देता। वह बिल्लीको उठाता और कुरसी-पर रख देता। बिल्ली ज्यादा-ज्यादा चालाक हो चली। चित्रशालाके कुछ कोनोंमें केनवस थे — जिनपर चित्र बनाये जाते हैं, जो कहीं पीछे, कोनोंमें एकके ऊपर एक छिपे रखे थे। बिल्ली जाकर उनके पीछे छिप जाती। वह जानती थी कि उसके मालिकको उन कपड़ोंको एक-एक करके उठानेमें और उसे पकड़नेमें समय लगेगा; मालिक शांतिके साथ उन्हें एक-एक करके उठाता और बिल्लीको पकड़कर वापिस उसके स्थानपर रख देता।

उसने मुझे बताया कि एक दिन सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्ततक वह बिना रुके यही करता रहा; न उसने खाया, न बिल्लीने खाया (हंसी), वह सारे दिन यही करती रही; आखिर, दिनके अंतमें वह हार गयी। जब उसके मालिकने उसे कुरसीपर बिठाया तो वह वहां बनी रही (हंसी), और उसके बाद, उसने कभी भागनेकी कोशिश नहीं की। तब उसने अपने-आपसे कहा : "यही बात बड़े जानवरोंके साथ क्यों न आजमाई जाय ?" उसने परीक्षण किया और सफलता पायी।

निश्चय ही, वह इस तरह एक सिंहको पकड़कर कुरसीपर न बिठा सकता था, लेकिन वह उनसे कुछ गतियां करवाना चाहता था — वास्तव-में हास्यास्पद गतियां, जैसी सरकसमें की जाती हैं : अपने अगले पांव स्टूल-पर रखना, या बहुत छोटी-सी जगहमें चारों पैर सिकोड़कर बैठ जाना, सब प्रकारकी बेवकूफी-भरी बातें, फिर भी, यही तो फैशन है, यही चीजें तो लोग दिखाना चाहते हैं; या फिर, कुत्तेकी तरह पिछली टांगोंपर खड़ा होना; या ऊंगली सामने दिखायी जाय तो दहाड़ना शुरू कर देना, इसी तरहकी बिलकुल मूर्खता-भरी बातें। इसकी अपेक्षा बहुत ज्यादा अच्छा होगा कि जानवरोंको आजादीसे घूमने दिया जाय, वह बहुत ज्यादा मजेदार होगा। फिर भी, जैसा कि मैंने कहा, यह फैशन है।

परंतु वह यह चीजें बिना चाबुक लगाये करवा लेता था। वह अपनी जेबमें पिस्तौल कभी नहीं रखता था। वह उनके पास जाते हुए इस बारेमें पूरी तरह सचेतन होता था कि किसी दिन जब वे संतुष्ट न होंगे तो उसे एक घातक झपट्टा लगा सकेंगे। लेकिन वह अपना काम बड़ी शांतिके साथ, उसी धीरजके साथ करता था जैसे बिल्लीके साथ। और जब वह अपने जानवर देता था — वह अपने जानवर सरकसवालोंको, सधानेवालोंको देता था — तो वे अद्‌भुत होते थे।

निश्चय ही, वे जानवर — सभी जानवर — यह अनुभव कर सकते हैं कि तुम्हें डर लग रहा है या नहीं, तुम भले डर न दिखाओ। वे इसे

विलक्षण रूपसे, उस सहज-वृत्तिसे जान लेते हैं जो मनुष्योंमें नहीं होती। वे अनुभव कर सकते हैं कि तुम्हें डर लग रहा है, तुम्हारे शरीरमेंसे एक स्पंदन पैदा होता है जो उनके अंदर अत्यधिक अप्रिय संवेदन पैदा करता है। अगर वे बलवान पशु हों तो उससे क्रुद्ध हो जाते हैं, अगर वे निर्बल पशु हों तो उनमें आतंक पैदा हो जाता है। लेकिन अगर तुम्हारे अंदर जरा भी भय न हो, अगर तुम पूर्ण विश्वासके साथ जाओ, तुम्हारे अंदर बहुत विश्वास हो, अगर तुम उनके पास मैत्रीपूर्ण ढंगसे जाओ, तो तुम देखोगे कि उनमें भय नहीं है; वे डरे हुए नहीं हैं, वे तुमसे डरते नहीं और घृणा भी नहीं करते; और वे भी बहुत विश्वास करते हैं।

मैं तुम्हें इसके लिये प्रोत्साहित नहीं कर रही कि तुम जितने भी शेरों-के पिंजरे देखो उनमें जा घुसो, फिर भी, बात ऐसी है। जब तुम्हें कोई भौंकता हुआ कुत्ता मिल जाय और तुम डर जाओ तो वह तुम्हें काट लेगा, अगर तुम्हें डर न लगे तो वह चला जायगा। लेकिन तुम्हें सच-मुच नहीं डरना चाहिये, केवल न डरनेका दिखावा न हो, क्योंकि दिखावे-का नहीं, स्पंदनोंका महत्त्व है।

अब तो काफी शोर हो चुका है न?

मधुर मां, आपने यह नहीं बताया कि सबसे अधिक साहसी कौन है?

मैंने कहा तीसरा प्रकार सबसे ज्यादा साहसी है। साहस... भिन्न-भिन्न स्थानोंपर साहस होता है। जिसकी जानवरोंके साथ दोस्ती है, जिसमें डर नहीं है — उसका कारण यह है कि उनमें आपसमें बहुत भौतिक सादृश्य, सब प्रकारके कारणोंसे मैत्री है, एक सहज भौतिक मैत्री है। लेकिन हमें पता नहीं कि अगर अचानक ऐसे आदमीमें भयका भाव जागे, तो वह अपना साहस बनाये रख सकेगा या नहीं। यह संभव है कि वह तुरंत साहस खो बैठे।

दूसरी ओर, दूसरा आदमी है जिसमें जानवरोंके साथ सादृश्य नहीं है, और इसलिये वह उनसे डरता है। लेकिन उसके अपने अंदर बहुत साहस और सद्भावना है, संकल्प-बल और मनसिक और शायद प्राणिक साहस भी है जो उसे शारीरिक भयपर संयम देता है और वह इस तरह काम करता है मानों वह नहीं डरता। उसके शरीरमें भय मौजूद तो रहता है, लेकिन वह होता है उसके वशमें। अब यह देखना है कि शारीरिक

साहस बड़ा है या नैतिक साहस। इनमें एक दूसरेसे बड़ा नहीं है। यह अलग-अलग क्षेत्रोंका साहस है।

कुछ लोग सब तरहके खतरोंमें जरा भी कांपे बिना घूम सकते हैं। उनमें भौतिक साहस होता है।

और फिर ऐसे भी हैं... युद्धोंके समय, ऐसी घटनाएं घटी थीं जिनमें हमें सब तरहकी समस्याएं अध्ययनके लिये मिल सकती हैं। जब सिपाही खंदकोंमें होते थे और उन्हें अपनी खंदकमेंसे बाहर आकर किसी और खंदकपर अधिकार करनेके लिये कहा जाता था, और वे अपने ठीक सामने होती हुई गोलियोंकी बौछारमें बाहर आते थे... तब स्वभावतः, अगर तुम्हारे लिये अपने जीवनका जरा भी मूल्य है, तो तुम डरे बिना न रहते — अगर तुम अपने जीवनको महत्त्व देते हो —, या फिर, ऐसे लोग होते हैं जो निर्भय हो सकते हैं, परंतु तब वे योगी होंगे। साधारणतः, सिपाही योगी नहीं होते, वे एकदम साधारण आदमी होते हैं, क्योंकि हर आदमी सिपाही बन जाता है। पुराने जमानेमें, इसे बहुत समय बीत चुका, जिन्हें युद्ध प्रिय होता था वे ही सिपाही बनते थे। लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब तो सब तरहके बेचारे शांति-प्रिय लोगोंको पकड़कर सिपाही बना दिया जाता है, और हर-एकको लड़ाईमें जाना पड़ता है। तो हजारमें एक भी ऐसा नहीं होता जिसमें सचमुच सिपाहीकी प्रकृति हो — बिलकुल नहीं। बहुत अधिक लोग ऐसे होते हैं जो साधारण तरीकेसे साधारण जीवन बितानेके लिये बनाये गये हैं, जो चुपचाप रहना और अपने जीवनमें साधारण-सा कार्यक्रम रखना पसंद करते हैं। उन्हें यह बिलकुल नहीं लगता कि वे योद्धा हैं। इसलिये, उनसे यह आशा करना कठिन है कि वे रातों-रात वीर योद्धा बन जायंगे। फिर भी, चूंकि अफसरोंके हाथमें पिस्तौल होती है, और अगर उनका हुकुम न माना जाय तो वे पीठमें गोली दाग देते हैं, इसलिये यह ज्यादा अच्छा माना जाता है कि चूहेकी मौत मरनेकी अपेक्षा कूच करना ज्यादा अच्छा है। वहांकी स्थिति ऐसी होती है। यह बहुत काव्यमय तो नहीं है, पर होती ऐसी ही है। हां, कुछ लोगोंको जब बाहर निकलना पड़ा तो वे इस सबसे सचमुच बीमार हो गये, वास्तवमें बीमार हो गये। उन्हें दस्त लग गये, वे पूरी तरह बीमार हो गये। फिर भी, उन्हें बाहर निकलना पड़ा और वे निकले और कभी-कभी रास्तेमें वास्तविक संकटके सामने उनके अन्दर बड़ा साहस पैदा हो गया।

कुछ और लोग थे जो लकड़ीके कुंदेकी तरह बाहर निकल आये। वे यह भी न जानते थे कि क्या होनेवाला है, वे संकटकी तीव्रताके कारण बिल-

कुल मूढ़ बन गये थे। कुछ ऐसे लोग थे जो उस समय सामने आये जब सबको आज्ञा नहीं दी गयी थी। जब कोई विशेष लक्ष्य साधना था तो इन लोगोंने उसका बीड़ा उठाया; लेकिन इन्हें भली-भांति पता था कि उनका भविष्य क्या हो सकता है। तो यह थे साहसी लोग, लेकिन ऐसे बहुत नहीं थे। ऐसे बहुत कभी नहीं होते।

युद्धकी सरगर्मीमें जब वातावरण बहुत अधिक तनाव-भरा होता है, तो एक प्रकारका सामूहिक सम्मोहन होता है जो लोगोंको उस समयके लिये वीर बना देता है। बादमें, सब खतम, लेकिन उस समय तो आदमी वीर बन ही जाता है। लेकिन हां, यह सामूहिक सम्मोहन है।

सच्चा साहस, अपने गहरे-से-गहरे अर्थमें सच्चा साहस है हर चीजका सामना, जीवनमें हर चीजका सामना करनेके योग्य होना; छोटी-से-छोटी चीजसे लेकर बड़ी-से-बड़ी चीजतकका, भौतिक चीजोंसे लेकर आत्माकी चीजोंतकका सामना; जरा भी कांपे बिना, शारीरिक दृष्टिसे बिना ... हृदयकी धड़कनें तेज हुए बिना, स्नायुओंमें कम्पनके बिना, सत्ताके किसी भी हिस्सेमें जरा भी आवेगके बिना सामना करना। हर चीजका भागवत 'उपस्थिति' की निरंतर चेतनाके साथ, भगवान्‌के प्रति पूर्ण आत्मोत्सर्गके साथ, और सारी सत्ताको इस इच्छामें एक करके, मनुष्य जीवनमें आगे बढ़ सकता है, और चाहे कुछ क्यों न हो, सबका सामना कर सकता है। मैं कहती हूं: "बिना कंपके, बिना किसी स्पंदनके सामना कर सकता है।" यह लंबे प्रयासका परिणाम होता है। कोई, लेकिन यह और भी विरल है, विशेष कृपासे इस साहसके साथ पैदा होता है, इसी तरह पैदा होता है।

अपने भयपर विजय प्राप्त करनेका अर्थ है कि सत्ताका एक भाग दूसरेसे ज्यादा मजबूत है, और वह (जिसे भय नहीं है) भयभीत भागपर अपनी निर्भीकता आरोपित करता है। लेकिन इसका आवश्यक रूपसे यह मतलब नहीं है कि यह व्यक्ति उससे ज्यादा साहसी है जिसे भयको वशमें करनेकी जरूरत ही नहीं है। क्योंकि जिसमें वशमें लानेके लिये कोई भय ही नहीं है, इसका अर्थ है कि वह हर जगह साहसी है, अपनी सत्ताके हर भागमें। एक निर्भीकता ऐसी है जो अचेतना और अज्ञानसे आती है। उदाहरणके लिये, जो बच्चे संकटके बारेमें नहीं जानते, वे ऐसे काम करते हैं जिन्हें वे कभी न करते, अगर उन्हें संकटके बारेमें पता होता। इसका मतलब है कि उनकी निर्भीकता अज्ञानमय निर्भीकता है। लेकिन सच्चा साहस वस्तुओंके परे ज्ञानके साथ होता है, यानी, वह सब संभावनाओंको जानता है और वह, निरपवाद रूपसे, हर चीजका सामना करनेके लिये तैयार होता है।

२ फरवरी, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय तीन:
'कठिनाईमें' पर आधारित है।

"तुम्हें सत्य वृत्ति अपनानी चाहिये" का मतलब क्या है?

वे (श्रीअरविंद) इसे पहले समझा चुके हैं। सत्य वृत्ति है विश्वासकी वृत्ति, आज्ञाकारिताकी वृत्ति, निवेदनकी वृत्ति।

"किसी चीज या किसी व्यक्तिको अपने और माताजीकी शक्तिके बीच न आने दो।" यह व्यक्ति कौन है?

यह व्यक्ति? चाहे जो हो। चाहे जो व्यक्ति जो...। अपने और भागवत शक्तिके बीच किसीको आने देनेके बहुत-से तरीके हैं। सबसे पहला है, किसीके साथ अपने संबन्धको बहुत अधिक महत्त्व देना। किसी ऐसेकी दी हुई सलाह मानना जो सलाह देने योग्य नहीं है। किसी भी व्यक्तिको किसी भी कारणसे खुश करनेकी इच्छा करना। आदमी यह तो हमेशा ही करता रहता है। है न?

संभवतः, जिसे यह लिखा गया होगा वह कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसने कुछ चीजें (सलाहें, टिप्पणियां या मत) सुनी होंगी और उन चीजोंको बहुत महत्त्व दिया होगा, इसलिये श्रीअरविंद उससे कहते हैं: "किसी भी व्यक्तिको अपने और भगवान्के बीच न आने दो।"

वह चाहे कोई भी क्यों न हो, मां-बाप हों, मित्र हों, कोई भी क्यों न हो, यह कोई व्यक्ति-विशेष नहीं है। यह हर एकके लिये कोई व्यक्ति-विशेष भी हो सकता है।

मधुर मां, मैं यह नहीं समझ पाया: "साधना शरीरमें ही करनी चाहिये।"

शरीर? यह एक बातके क्रममें है। कहा जाता है कि ऐसे लोग हैं जो इस जीवनसे घृणा करते हैं, और वे इस आशाके साथ चले जाना चाहते हैं कि अगली बार जीवन ज्यादा अच्छा होगा। तो उनसे कहा गया है:

अपने शरीरको छोड़कर भाग जानेसे कुछ काम न बनेगा, शरीरके बिना काम ज्यादा आसान न होगा। इसके विपरीत, बहुत ज्यादा कठिन होगा। शरीर योग करनेके लिये ही बनाया गया है। हम धरतीपर हैं। हम जो समय धरतीपर बिताते हैं वह ऐसा समय है, जब हम प्रगति कर सकते हैं। पार्थिव जीवनके बाहर हम प्रगति नहीं करते। पार्थिव या भौतिक जीवन अनिवार्य रूपसे प्रगतिका जीवन है। हम यहां प्रगति करते हैं। पार्थिव जीवनके बाहर हम आराम करते हैं, हम या तो निश्चेतन होते हैं, या हमारे लिये आत्मसात् करनेका काल, विश्राम-काल, निश्चेतना-काल होता है, लेकिन प्रगतिका काल धरतीपर, शरीरमें ही होता है। इसलिये जब तुम शरीर धारण करते हो तो यह प्रगति करनेके लिये होता है और जब तुम शरीर छोड़ते हो तो प्रगति-काल समाप्त हो जाता है।

और सच्ची प्रगति है साधना, यानी, यह अधिक-से-अधिक सचेतन और अधिक-से-अधिक द्रुत प्रगति होती है। अन्यथा, हम 'प्रकृति'की लयके साथ प्रगति करते हैं और जरा-सी प्रगति करनेमें शताब्दियां, शताब्दियोंपर शताब्दियां, सहस्राब्दियां लग सकती हैं। लेकिन सच्ची प्रगति तो वह है जो साधनाद्वारा की जाती है। तुम योगमें वह चीज बहुत कम समयमें कर सकते हो जिसमें अन्यथा अनंतकाल लग जाता। लेकिन यह प्रगति हमेशा शरीरमें और हमेशा धरतीपर ही की जाती है, कहीं और नहीं। इसीलिये, जब तुम शरीरमें हो तो तुम्हें इससे लाभ उठाना चाहिये, समय नष्ट न करना चाहिये, यह न कहना चाहिये : "जरा देर बाद, जरा देर बाद।" तुरंत करना ज्यादा अच्छा है। तुम जो वर्ष प्रगति किये बिना गुजार देते हो वे वर्ष नष्ट होते हैं जिनके लिये तुम निश्चय ही पीछे पछताओगे।

"कठिनाई विश्वास और आज्ञाकारिताके अभावसे ही आयी होगी . . ."

हां, ये सब बातें — पत्रोंके उत्तरमें हैं। कोई एक कठिनाईकी शिकायत करता है। उस पत्रको पढ़ते हुए श्रीअरविंदने देखा कि इस व्यक्तिमें यह कठिनाई विश्वास और आज्ञाकारिताके अभावसे आयी होगी। उन्होंने उससे यही कहा। और चूंकि यह ऐसी चीज है जो प्रायः ही होती रहती है, यह काफी व्यापक बात है, अतः, यह सभीके लिये उपयोगी है।

माताजी, हमारे अंदर एक प्रकारका चिंतन-मनन एक ही प्रकारके संवेदन क्यों नहीं पैदा करता? यानी, उदाहरणके

लिये, जब हम समुद्रको या तारोंको देखते हैं और अपनी नगण्यताके बारेमें सोचते हैं, तो हमारे अंदर एक विशेष प्रकारका संवेदन पैदा होता है; किसी और समय जब हम उसी अनुभूतिको प्राप्त करना चाहें तो सोचनेके बावजूद, वह क्यों नहीं पैदा होती ?

तुम्हें एक ही अनुभूति दो बार कभी नहीं हो सकती, क्योंकि तुम कभी दो बार वही व्यक्ति नहीं होते। पहली और दूसरी अनुभूतिके बीच, भले उनके बीच एक घंटा ही बीता हो, तुम वह-के-वही मनुष्य नहीं रहते, और कभी एक ही चीजको ठीक एक ही रूपमें नहीं दोहरा सकते। अगर तुम ज्यादा सच्चे और निष्कपट, ज्यादा एकाग्र होनेकी ओर ध्यान दो, तो तुम्हें जो अनुभूतियां होंगी वह भिन्न होंगी, लेकिन वह ज्यादा गहरी और ज्यादा स्पष्ट हो सकती हैं। लेकिन अगर तुम किसी ऐसी चीजसे चिपके रहो जिसे तुम पा चुके हो और तुम उसीको दोहराना चाहो, तो तुम्हें कुछ भी न मिलेगा, क्योंकि तुम दोबारा उसी चीजको कभी नहीं पा सकते और तुम ऐसी अवस्थामें होते हो जहां तुम नयी अनुभूतियां पानेसे इंकार करते हो, क्योंकि तुम पिछली अनुभूतिसे ही बंधे रहते हो। और साधारणतः, जब तुम्हें कोई ऐसी अनुभूति हो जाती है जो अन्तःप्रकाश थी, एक ऐसी चीज जो बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण भी हो, तो तुम उसे छोड़ना नहीं चाहते, तुम्हें उसे खो देनेका डर रहता है, और इस तरह किसी चीजसे चिपके रहनेकी गतिके कारण तुम अपने-आपको प्रगति नहीं करने देते और अपने-आपको ऐसी स्थितिमें रख देते हो जहां तुम्हें अगली अनुभूतियां नहीं हो सकतीं।

लेकिन तुम्हें यह बात समझ लेनी चाहिये, क्योंकि यह एक निरपेक्ष तथ्य है, कि तुम एक ही अनुभूतिको दो बार कभी नहीं पा सकते। तुम्हें एक जैसी अनुभूतियां हो सकती हैं, बहुत निकटवर्ती और मुख्य रूपसे ऐसी जो देखनेमें एक-सी हैं। लेकिन अगर तुम बिलकुल सच्चे, निष्कपट, कोरे कागजकी तरह निष्पक्ष हो तो देखोगे कि कुछ फर्क है, चाहे देखनेमें दोनों बहुत मिलती-जुलती या एक जैसी हों, फिर भी, उनमें कभी-कभी बहुत मौलिक फर्क होता है। लेकिन तुमने जो कुछ अनुभव किया है उस सबको तुम जितना अधिक पीछे छोड़नेके लिये तैयार होगे — ताकि तुम किसी ज्यादा अच्छी और ज्यादा श्रेष्ठ चीजकी ओर जा सको — उतना ही अधिक तेज चलोगे; जितना ही अधिक तुम भूतके उस भारको ढोते रहोगे, जिससे तुम छुटकारा नहीं पाना चाहते, उतनी ही तुम्हारी गति धीमी होगी।

होना यह चाहिये कि समस्त भूत हमेशा ऐसे पायदान या सीढ़ीकी तरह हो जो तुम्हें आगे ले जाये, जिसका मूल्य केवल यही है कि वह तुम्हें आगे बढ़ाता चले। अगर तुम ऐसा अनुभव कर सको और हमेशा जो बीत चुका है उसकी ओर पीठ करके, जो तुम करना चाहते हो उसीपर नजर रखो, तो बहुत तेजीसे आगे बढ़ोगे। मार्गमें समय न खोओगे। जो चीज हमेशा तुम्हारा समय बरबाद करती है, वह है हमेशा भूतके साथ, बीते समयके साथ, वर्तमानके साथ संलग्न रहना, जो था उसमें तुम्हें जो अच्छा या सुन्दर लगा उसके साथ बंधे रहना। इसे केवल तुम्हारी सहायता करनी, चाहिये, इसका त्याग मत करो, बल्कि आगे बढ़नेमें इसे तुम्हारी मदद करनी चाहिये, यह एक ऐसी चीज हो जिसपर आगे बढ़नेके लिये तुम पैर टिका सको।

तो किसी क्षण-विशेषमें बाहरी और भीतरी परिस्थितियोंका ऐसा संयोग हो जाता है कि तुम किसी विशिष्ट स्पंदनके प्रति ग्रहणशील बन जाते हो। उदाहरणके लिये, जैसा तुमने कहा, तारोंको देखते हुए या किसी प्राकृतिक दृश्यका अवलोकन करते हुए, कोई पृष्ठ पढ़ते हुए या कोई भाषण सुनते हुए, तुम्हें अचानक एक आंतरिक अन्तःप्रकाश मिलता है, एक अनुभूति होती है, कोई ऐसी चीज होती है जो तुमपर प्रभाव डालती है और तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम किसी नयी चीजके प्रति खुल गये। लेकिन अगर तुम उसे इसी तरहसे कसकर पकड़े रहना चाहो, तो तुम सब कुछ खो बैठोगे, क्योंकि तुम भूतको नहीं बनाये रख सकते, क्योंकि तुम्हें बढ़ते रहना चाहिये, बढ़ते रहना चाहिये, हमेशा बढ़ते रहना चाहिये। होना यह चाहिये कि यह प्रकाश तुम्हें इसके लिये तैयार करे कि तुम अपनी पूरी सत्ताको इस नयी नींवपर संगठित कर सको ताकि तुम फिर एक दिन अचानक श्रेष्ठतर स्थितिमें छलांग लगा सको।

खड़ी चढ़ाइयोंके बीच क्षैतिज गति भी होती है। ऊंची चढ़ाईके समय तुम्हें अन्तःप्रकाशके जैसी चीजका एक महान्, आंतरिक आनन्दका आभास होता है। लेकिन एक बार तुमने छलांग मार ली, उसके बाद फिरसे छलांग मारना चाहो, तो तुम्हें नीचे उतरना होगा। ज्यादा ऊंची छलांग मारनेके लिये तुम्हें इसी स्तरपर अपने-आपको तैयार करते रहना चाहिये। हमेशा चढ़ाई ही तुम्हें अकस्मात् आनन्द प्रदान करती है। लेकिन यह चढ़ाइयां क्षैतिज प्रगतिके धीमे कार्यके द्वारा अपने-आपको तैयार करती हैं। यानी, तुम्हें अधिकाधिक सचेतन होना चाहिये, तुम जो भी हो उसे अधिक-से-अधिक पूर्णताके साथ प्रतिष्ठित करो, इसमेंसे सभी आंतरिक, मनोवैज्ञानिक परिणामोंको अपनी क्रियातकमें ले आओ। यह सीधी छलांग-

का लंबी अवधितक उपयोग करना है और, जैसा मैंने कहा, प्रगतिके दो प्रकार हैं, लेकिन क्षैतिज प्रगति अनिवार्य है।

तुम्हें रुकना न चाहिये, तुम्हें अपनी ऊपरकी ओर उन्नतिके साथ इस तरह न चिपकना चाहिये कि आगे बढ़ना बंद कर दो, क्योंकि इसने तुम्हें एक अन्तःप्रकाश दिया था। तुम्हें उसे छोड़ना जानना चाहिये ताकि अगलेके लिये तैयारी कर सको।

९ फरवरी, १९५५

यह वार्ता, 'योगके आधार', अध्याय चार:
'कामना — भोजन — सेक्स' पर अधारित है।

मधुर मां, यहां " 'सूर्य' और 'प्रकाश' सहायक हो सकते हैं और होंगे . . . ?"

स्पष्ट है कि किसीने किसी ऐसी अनुभूतिके बारेमें लिखा होगा जिसका सूर्य और प्रकाशके साथ संबन्ध होगा, और जो साधनामें सहायताके लिये उन-का सहारा चाहता होगा। यह एक अनुभूतिके उत्तरमें है।

मधुर मां, क्या कामना संक्रामक होती है?

हां, वत्स, बहुत संक्रामक। यह बीमारीसे भी अधिक संक्रामक होती है। अगर तुम्हारे पासके किसी व्यक्तिमें कोई कामना है, तो वह तुरंत तुम्हारे अंदर प्रवेश कर जाती है; और वस्तुतः, लोग इसी तरह ज्यादा पकड़े जाते हैं। यह एकसे दूसरेमें जाती है . . .। भयंकर रूपसे संक्रामक है, इतने सशक्त रूपसे कि तुम देख भी नहीं पाते कि यह एक संक्रमण है। अचानक तुम्हें लगता है कि तुम्हारे अंदरसे कोई चीज उछल पड़ी है; किसीने धीरेसे उसे तुम्हारे अंदर रख दिया है। स्पष्ट है कि तुम कह सकते हो: "जिन लोगोंमें कामनाएं हैं उन्हें अलग क्यों नहीं कर दिया जाता?" तो फिर, सारे संसारको अलग करना होगा। (माताजी हंसती हैं)

कामना कहांसे आती है?

बुद्धने कहा है कि वह अज्ञानसे आती है। काफी हदतक ऐसा ही है। यह सत्तामें एक ऐसी चीज है जो कल्पना करती है कि उसके संतुष्ट होनेके लिये किसी और चीजकी जरूरत है। यह अज्ञान ही है, इसका प्रमाण यह है कि एक बार उसे संतुष्ट कर दिया जाय तो सौमेंसे साढ़े निन्नानवे बार आदमी उसकी परवाह नहीं करता। मेरा ख्याल है कि अपने मूलमें यह विकासकी अंधकारमयी आवश्यकता है। जैसा कि जीवनके निम्नतम रूपोंमें होता है, प्रेम अपने-आपको निगलने, आत्मसात् करने, किसी और चीजके साथ अपने-आपको जोड़नेकी आवश्यकतामें बदल लेता है; यह जीवनके निम्नतम रूपोंमें प्रेमका सबसे आदिम रूप है। यह ग्रहण करना और आत्मसात् करना है। हां, तो यह ग्रहण करनेकी आवश्यकता ही कामना है। शायद अगर हम निश्चेतनाकी अंतिम गहराइयोंमें काफी दूरतक जायें, तो हम कह सकेंगे कि प्रेम ही कामनाका उत्स है। यह अपने अधिक-से-अधिक अंधकारमय और अधिक-से-अधिक निश्चेतन रूपमें प्रेम है। यह किसी चीजके साथ जुड़नेकी आवश्यकता, एक आकर्षण, ग्रहण करनेकी एक आवश्यकता है।

उदाहरणके लिये . . . तुम एक चीज देखते हो जो तुम्हें बहुत सुन्दर, बहुत सामंजस्यपूर्ण, बहुत मोहक लगती है या वास्तवमें ऐसी है; अगर तुम्हारे अन्दर सच्ची चेतना है, तो तुम किसी बहुत सुन्दर, बहुत सामंजस्यपूर्ण चीजके साथ सचेतन संपर्कमें आनेका, उसे देखनेका आनन्द प्राप्त करते हो, और बस। चीज वहीं समाप्त। तुम्हें इसका आनन्द मिल गया —कि एक ऐसी चीज मौजूद है और बस। और यह चीज कलाकारोंमें प्रायः पायी जाती है जिनमें सौंदर्यकी भावना होती है। उदाहरणके लिये, एक कलाकार किसी सुन्दर जीवको देखकर उसकी सुन्दरता, उसकी गति-विधिके सामंजस्य, उसके लालित्य आदिको देखनेका आनन्द ले सकता है, और बस, इतना ही। चीज वहींपर रुक जाती है। वह पूरी तरह प्रसन्न, पूरी तरह संतुष्ट होता है, क्योंकि उसने कोई सुन्दर चीज देख ली। एक सामान्य चेतना, बिलकुल ही सामान्य चेतना, सभी सामान्य चेतनाओंकी तरह मंद चेतना —जैसे ही वह किसी सुन्दर चीजको देखती है, चाहे वह चीज हो या व्यक्ति, तो झट उछल पड़ती है और कहती है: "यह मुझे चाहिये।" यह शोचनीय है, है न? और इस सौदेमें उसे सुन्दरताका आनन्द भी नहीं मिल पाता, क्योंकि वह कामनासे परेशान होती है। व्यक्ति उसे खो बैठता है और बदलेमें कुछ भी नहीं

पाता, क्योंकि किसी चीजके लिये कामना करना जरा भी सुखकर नहीं होता। वह बस, तुम्हें अप्रिय स्थितिमें रख देता है, और खतम।

बुद्धने कहा है कि कामनाको संतुष्ट करनेकी अपेक्षा उसपर विजय पानेमें कहीं अधिक आनन्द है। यह एक ऐसा अनुभव है जिसे सभी पा सकते हैं, और जो बहुत मजेदार है, बहुत ही मजेदार।

पैरिसकी बात है, किसीको प्रथम प्रदर्शनके लिये निमंत्रित किया गया था (प्रथम प्रदर्शनका मतलब है नाटक आदिका पहला दिन), मेरा ख्याल है मासेनेटका गीति-नाटय था . . . मुझे अब ठीक याद नहीं वह किसका था। विषय सुन्दर था, नाटक सुन्दर था, और संगीत अरुचिकर नहीं था; यह उसका पहला दिन था, यह व्यक्ति ललित कलाओंके मंत्रीके विशेष कक्षमें निमंत्रित था। सभी सरकारी नाटयशालाओंमें पहले दिन मंत्रीके लिये विशेष स्थान रहता है। उसने देखा कि ललित कलाओंका मंत्री एक भला आदमी था, देहाती बूढ़ा भला आदमी जो पैरिसमें बहुत कम रहा था, वह अपने मंत्रीपदपर नया ही था और उसे नयी चीजें देखनेमें बच्चोंका-सा आनन्द मिल रहा था। लेकिन वह एक सुसंस्कृत आदमी था, और चूंकि उसने एक महिलाको निमंत्रण दिया था, इसलिये उसने महिलाको सामने बिठाया और अपने-आप पीछे बैठा। लेकिन वह था बहुत दुःखी, क्योंकि वह पूरा न देख पा रहा था। वह इसी तरह झुका हुआ था और ज्यादा दिखाये बिना कुछ देखनेकी कोशिश कर रहा था। जो महिला उसके सामने बैठी थी उसने यह देखा। उसे बहुत रस आ रहा था, उसे यह बहुत सुन्दर लग रहा था, ऐसी बात नहीं है कि वह इसे देखकर प्रसन्न नहीं थी। उसे बहुत मजा आ रहा था। उसे नाटकमें बहुत आनन्द आ रहा था, लेकिन उसने देखा कि बेचारा मंत्री देख न पानेके कारण किस हदतक दुःखी था। उसने बिना कोई भाव लाये अपनी कुरसी पीछे सरका ली, और इस तरह पीछेको हो गयी मानों कुछ और सोच रही हो। वह इतनी अच्छी तरह खिसक गयी कि मंत्री आगे आ गया और पूरा नाटक अच्छी तरहसे देख लिया। यह महिला जब पीछेकी ओर खिसकी और उसने नाटक देखनेकी इच्छा छोड़ दी तो वह एक आंतरिक आनन्दके भावसे, चीजोंके लिये सब तरह-की आसक्तिसे मुक्ति और एक प्रकारकी शांति, अपने-आपको संतुष्ट करने लेनेकी जगह किसी औरके लिये कुछ करनेके संतोषसे भर गयी, इस हद-तक कि उस सांझके कार्यक्रममें नाटक देखनेसे जितनी प्रसन्नता होती उस-से कहीं अधिक प्रसन्नता हुई। यह एक सच्ची अनुभूति है। यह किसी किताबमें पढ़ी हुई सुन्दर-सी कहानी नहीं है। यह ठीक उस समयकी

बात है जब वह महिला बौद्ध साधनाका अध्ययन कर रही थी और उसका व्यवहार बुद्धकी उस शिक्षाके अनुसार था जिसका अनुभव करनेकी वह कोशिश कर रही थी।

और सचमुच यह अनुभूति इतनी ठोस थी, इतनी वास्तविक थी कि ...दो सेकेंडके बाद, मंचका नाटक, संगीत, अभिनेता, दृश्य, चित्र आदि सब गायब, बिलकुल गौण चीजोंकी तरह, बिलकुल नगण्य चीजोंकी तरह गायब हो गये, जब कि अपने अंदर किसी चीजपर प्रभुता पानेका, एक ऐसा काम करनेका आनन्द जो शुद्ध रूपसे स्वार्थपूर्ण नहीं था, ऐसे आनन्दनें उसकी सारी सत्ताको अनुपम स्थिर शांतिसे भर दिया—यह एक आनन्दमय अनुभूति थी...। यह एक ऐसी अनुभूति है जो शुद्ध रूपसे निजी या व्यक्तिगत नहीं है। जो भी कोशिश करना चाहें इसे पा सकते हैं।

चैत्य सत्ताके साथ एक प्रकारका आंतरिक संपर्क होता है, वह तब पैदा होता है जब व्यक्ति स्वेच्छासे किसी कामनाको छोड़ देता है। और इसी कारण, वह कामनाकी तुष्टिकी अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द प्राप्त करता है। और फिर, लगभग एक सामान्य नियमके रूपमें, प्रायः बिना किसी अपवादके, जब तुम किसी कामनाको तुष्ट कर लेते हो, तो हमेशा कहीं-न-कहीं एक प्रकारका कड़वा स्वाद रह जाता है।

ऐसी कोई कामना नहीं जो संतुष्ट होनेपर एक प्रकारकी कटुता न छोड़े। जैसे अगर तुम बहुत मीठी मिठाई खा लो तो तुम्हारा मुंह कड़वाहटसे भर जाता है। यह ऐसा ही है। तुम्हें सचाईके साथ प्रयास करना चाहिये। स्वभावतः, कामना त्यागनेका ढोंग करके उसे एक कोनेमें छिपाये न रखो, क्योंकि इससे बहुत दुःख होता है। तुम्हें सचाई और निष्कपटताके साथ प्रयास करना चाहिये।

चैत्य आवश्यकता अपने-आपको कैसे चरितार्थ करती है ?

(मौन)

मैंने ठीक तरह सुना है, लेकिन मैं प्रश्नका मतलब नहीं समझ पायी।

जब हम मनमें चरितार्थ करते हैं ?

नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं। "चैत्य आवश्यकताका चरितार्थ होना,"

तुम्हारा मतलब है: "वह कैसे चरितार्थ होती है? वह बाह्य जीवनमें कैसे अभिव्यक्त होती है?" तुम चरितार्थ होना किसे कहते हो? स्पष्ट नहीं है? यह तुम्हारे विचारमें स्पष्ट नहीं है? पहले यह लो, "चैत्य आवश्यकता", तुम "चैत्य आवश्यकता" किसे कहते हो? अपनी चैत्य सत्ताको जाननेकी आवश्यकता या चैत्यकी अपने-आपको अभिव्यक्त करनेकी आवश्यकता?

चैत्यकी अपने-आपको अभिव्यक्त करनेकी आवश्यकता।

वह अपने-आपको अभिव्यक्त करती है अपने-आपको चरितार्थ करके, अपने-आपको अभिव्यक्त करते-करते चरितार्थ करती है।

किस तरह?

तुम्हारे कहनेका मतलब है कि क्या उसे मनसे गुजरनेकी जरूरत होती है? भगवान्‌की कृपा है, ऐसा नहीं होता, क्योंकि यह बहुत ही कठिन कार्य होगा। चैत्य आवश्यकता 'भागवत कृपा' की अभिव्यक्ति है और यह 'भागवत कृपा' के द्वारा अभिव्यक्त होती है।

जगत्‌में चैत्य जीवन 'भागवत कृपा' की एक क्रिया है। चैत्य विकास 'भागवत कृपा' की क्रिया है, और भौतिक सत्तापर चैत्य सत्ताकी चरम शक्ति भी 'भागवत कृपा' का ही परिणाम होगी। और अगर मन जरा भी उपयोगी होना चाहे, तो उसे बहुत शांत रहना चाहिये, जितना नीरव रह सकता है रहे, क्योंकि अगर वह अपनी टांग अड़ायेगा तो निश्चय ही सब कुछ बिगाड़ देगा।

तो फिर मनकी जरूरत न रहेगी?

आह, क्षमा करो, मैंने यह नहीं कहा कि मनकी जरूरत नहीं है। मन और किसी चीजके लिये उपयोगी हो सकता है। मन रूप देनेका और व्यवस्था करनेका यंत्र है, और अगर मन चैत्यको अपना उपयोग करने दे तो बहुत अच्छा होगा। लेकिन मन चैत्यको अभिव्यक्त होनेमें सहायता नहीं देगा। भूमिकाएं उल्टी हैं। बादमें चलकर जब चैत्य सत्ता बाह्य चेतनापर अधिकार पा चुकेगी तो मन चैत्यकी अभिव्यक्तिका एक यंत्र बन सकेगा। इसका पहले होना बहुत ही विरल है। साधारणतः,

वह एक परदा और रुकावट होता है। लेकिन, निश्चय ही, वह अभि-व्यक्तिमें सहायक नहीं हो सकता। अगर वह सच्चा स्थान और सच्ची गतिविधि अपनाये तो क्रियामें सहायक हो सकता है। और अगर वह चैत्य प्रेरणाके प्रति बिलकुल विनीत बन जाय, तो वह जीवनको व्यवस्थित करनेमें सहायक हो सकता है, क्योंकि यही उसका काम है, यही उसका उद्देश्य है। लेकिन पहले जरूरत इस बातकी है कि चैत्य सत्ता क्षेत्रपर अधिकार कर ले, कि वह गृहस्वामी बन जाय। तब, उसके बाद, चीजें व्यवस्थित हो सकती हैं।

बाह्य सत्ताके लिये केवल एक ही तरीका है। हम भौतिक सत्ताको लें—भौतिक सत्ता, बेचारी, छोटी-सी भौतिक सत्ता, बाह्य सत्ता, जो कुछ नहीं जानती, जो अपने-आप कुछ नहीं कर सकती। उसके लिये चैत्य सत्ताको अपने अंदर अभिव्यक्त करने देनेका बस, एक ही तरीका है: एक बच्चेकी सरल ऊष्माके साथ (माताजी बहुत धीमे बोलती हैं) अभीप्सा करना, प्रार्थना करना, मांगना, अपनी सारी शक्तिके साथ चाहना, बिना तर्क किये, बिना समझनेकी कोशिश किये, चाहना। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि तर्क और समझनेकी कोशिश अनुभूतिमें कितने बाधक होते हैं। जिस क्षण तुम निश्चित रूपसे ऐसी स्थिति पाने-पानेको हो जहां कुछ होनेवाला है, सत्ताकी चेतनामें कुछ स्पंदन बदलेंगे . . . तुम एक अभीप्सामें पूरी तरह उठे हुए हो और तुम अपनी अभीप्साको संलग्न करनेमें सफल हो गये हो, और तुम उत्तरकी प्रतीक्षामें लगे हो, उस समय अगर यह कम्बख्त मन अस्थिर हो उठे और पूछे: "यह क्या हो रहा है, क्या होनेवाला है, वह कब होगा, वह कैसे होगा, और ऐसा क्यों है, और चीजें किस क्रममें अभिव्यक्त होंगी?" तो बस, खतम। तुम उठकर अपने कमरेमें झाड़ू लगा सकते हो। तुम किसी और चीजके लायक नहीं हो।

मधुर मां, क्या चैत्य अपने-आपको मन, प्राण और शरीरके बिना अभिव्यक्त कर सकता है?

वह उनके बिना अपने-आपको निरंतर अभिव्यक्त करता रहता है। केवल, साधारण मनुष्यके द्वारा अनुभव किये जानेके लिये यह जरूरी है कि वह इनके द्वारा अभिव्यक्त हो, क्योंकि साधारण मनुष्यका चैत्यके साथ सीधा संबंध नहीं होता। अगर उसका चैत्यके साथ सीधा संबन्ध होता, तो वह अपनी अभिव्यक्तिमें चैत्य होता—और सब कुछ सचमुच अच्छा होता। लेकिन चूंकि उसका चैत्यके साथ संपर्क नहीं है इसलिये वह यह भी नहीं जानता

कि वह है क्या? वह हक्का-बक्का होकर पूछता है कि यह किस तरहकी सत्ता हो सकती है; अतः, इस साधारण मानव चेतनातक पहुंचनेके लिये उसे सामान्य उपायोंका उपयोग करना होता है, यानी, मन, प्राण और शरीरमेंसे होकर गुजरना होता है।

तुम उनमें एकको लांघ सकते हो, परंतु निश्चय ही अंतिम (भौतिक) को नहीं, क्योंकि उस हालतमें, तुम किसी भी चीजके बारेमें सचेतन न रहोगे। साधारण मनुष्य अपने शरीरके सिवा किसीके बारेमें सचेतन नहीं होता। ऐसे क्षण अपेक्षया कम ही होते हैं, जब वह अपने मनके बारेमें जरा-सा सचेतन होता है, अपने प्राणके बारेमें अधिक बार सचेतन होता है। लेकिन यह सब उसकी चेतनामें घुला-मिला रहता है, यहांतक कि वह यह कहनेमें बिलकुल अक्षम होता है: "यह गति मनसे आती है, यह गति प्राणसे और यह गति भौतिकसे आती है।" अपने अंदरकी विभिन्न गतियोंके स्रोतको अलग-अलग पहचाननेके लिये काफी अधिक विकासकी जरूरत होती है। और यह इस तरहका घाल-मेल होता है कि आदमीके कोशिश करनेपर भी शुरूमें इन्हें एक-दूसरेसे अलग करना और इनका वर्गीकरण करना बहुत कठिन होता है।

यह ऐसा है जैसे तुमने कुछ रंग लिये, अलग-अलग तरहके, तीन, चार या पांच रंग लिये और उन्हें एक ही पानीमें घोल दिया, और इस सारे मिश्रणको इस तरह हिला-मिला दिया कि परिणाम भदरंग और अस्पष्ट हो गया, जिसमें कुछ पता नहीं चलता। तुम यह नहीं कह सकते कि कौन-सा लाल है, कौन-सा नीला, कौन-सा हरा है और कौन-सा पीला है; यह एक भद्दी-सी चीज होती है जिसमें बहुत-से रंग घुले-मिले रहते हैं। तो सबसे पहले लाल, नीला, पीला, हरा, सबको अलग-अलग करके रखा जाय, हर एक अपने कोनेमें। यह कोई आसान काम नहीं है।

मैं ऐसे लोगोंको जानती हूं जो अपने-आपको बहुत समझदार समझते थे, जो सोचते थे कि वे बहुत जानते हैं। और जब मैंने उनके साथ सत्ताके विभिन्न भागोंकी बात की तो वे मेरी ओर यूं देखते रह गये (संकेत) और मुझसे पूछा: "लेकिन आप किस विषयकी बात कर रही हैं?" वे बिलकुल नहीं समझ पाये। मैं ऐसे लोगोंकी बात कह रही हूं जो बुद्धिमान माने जाते हैं। वे बिलकुल कुछ नहीं समझते। उनके लिये वह चेतना है, बस, वह चेतना है: "वह मेरी चेतना है," "और फिर, पड़ोसीकी चेतना है; और फिर, ऐसी चीजें हैं जिनमें चेतना नहीं होती। और फिर, जब मैंने पूछा कि पशुओंमें चेतना है या नहीं, तो वे अपना

4

सिर खुजाते हुए बोले: "शायद जब हम पशुओंको देखते हैं, तो उनमें अपनी चेतना डाल देते हैं" तो इस तरह...

मधुर मां, जब चैत्य सत्ता अपने-आपको पूरी तरह अभिव्यक्त कर सकेगी, क्या तब भी उसे मनकी जरूरत रहेगी?

वह पूरी तरह तबतक अभिव्यक्त न हो सकेगी जबतक कि सत्ताके सभी भागोंका सहयोग न हो। लेकिन मुझे नहीं लगता कि मन इस उद्देश्यसे बनाया गया था कि उसे लुप्त कर दिया जाय। वह व्यापक रचनाका अंग है।

अगर तुम्हारा शरीर मनके बिना रहता तो वह बहुत परेशान रहता। वह शायद एक शरीरकी अपेक्षा वनस्पतिके ज्यादा सदृश होता। तुम सवेरेसे शामतक जो कुछ भी करते हो उसमें ऐसा कुछ नहीं होता जिसमें मनकी क्रिया न हो।

लेकिन अगर चैत्य सत्ता उसे राह दिखाती?

अगर चैत्य सत्ता मनको राह दिखाये तो मन चैत्य रीतिसे काम करेगा। तब वह एक विलक्षण मन होगा जो पूर्णतया सुसंगत होगा, जो सच्ची रीतिसे सत्य वस्तु करेगा।

लेकिन प्राण — उसके लिये भी वही चीज है, प्राणके लिये भी ठीक वही बात है। प्राण जैसा कि वह अभी है, उसके लिये कहा जाता है कि वह सभी कष्टोंका, सभी कठिनाइयोंका कारण है, कि वह कामनाओंका, आवेगोंका, आवेशोंका, विद्रोहों इत्यादि, इत्यादिका गढ़ है। लेकिन अगर प्राण पूरी तरह चैत्यको अर्पित हो तो वह विलक्षण यंत्र बन जाता है, उत्साह-से, शक्तिसे, चरितार्थ करनेकी सामर्थ्यसे, जीवन-शक्ति और साहससे भरा यंत्र।

और रह जाता है यह बेचारा भौतिक... बेचारे भौतिकको सब प्रकार-के अपराधोंका दोषी ठहराया गया है। पुराने जमानेमें हमेशा यही कहा जाता था कि इतनी जड़, इतनी अंधकारमय, इतनी कम ग्रहणशील चीज-के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता, यह असंभव है। लेकिन अगर वह भी चैत्यको समर्पित हो तो वह भी सत्य रीतिसे सत्य वस्तु करेगा, और तब उसमें एक स्थिरता होगी, एक शांति होगी, उसकी गतिविधिमें ऐसी यथार्थता होगी जो अन्य भागोंमें नहीं है, काम करनेमें एक ऐसी

सुस्पष्टता होगी जो शरीरके बिना संभव नहीं है। जब शरीर जरा-सा अस्वस्थ हो, जब वह बीमार हो तभी देख लो, तब तुम बड़ी इच्छा-शक्तिके साथ, मन और प्राणकी बहुत अधिक एकाग्रताके बावजूद, कितनी सारी चीजें नहीं कर पाते। जब तुम्हें इस बातका यथार्थ ज्ञान हो कि तुम्हें क्या करना चाहिये, उस समय अगर शरीर अस्वस्थ हो, तो तुम उसे नहीं कर पाते। मेरे कहनेका मतलब है... कि तुम ऐसी क्रिया भी न कर पाओगे जो शुद्ध रूपसे भौतिक नहीं है, जैसे कुछ लिखना।

अगर तुम्हारा मस्तिष्क जरा बीमार हो—बुखार या जुकाम हो—तो उससे उचित ढंगसे काम लेना बड़ा कठिन होता है। एक शिथिलता होती है और कुछ अस्पष्ट-सी चीज, चीजोंको ठीक-ठीक पकड़ने में कठिनाई; कुछ बेतुकी बातें, ऐसे विचार जो व्यक्त होनेसे पहले ही घुल-मिल जाते है, ऐसी चीजें होती हैं जो आपसमें टकराती हैं, और एक-दूसरेका विरोध करती हैं; जो एक साथ होकर इस तरह आनेकी जगह (संकेत), इस तरह (संकेत) करना शुरू करती हैं, और इससे अव्यवस्था होती है। तो तुम इसे पकड़नेकी कोशिश करते हो और यह निकल जाती है। तुम उसे खोजते हो और वह छटक जाती है। यह सब केवल इसलिये कि बुखार आया है और उसने जरा चीजोंको अस्त-व्यस्त कर दिया है, या जरा-सा जुकाम हुआ, जिसे सिरमें ठंड लग जाना या नजला कहते हैं, जिसने क्रियाओंको जरा गड़बड़ा दिया है। अगर तुम इससे ऊपर उठ जाओ, तो तुम बिलकुल स्वस्थ होते हो, तुम्हें पूर्ण चेतना प्राप्त होती है, पूर्ण स्वस्थता प्राप्त होती है। अगर तुम बहुत ज्यादा बीमार हो, तो भी, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ऊपर, वहां तुम सब कुछ पूरी तरह जानते हो, सब कुछ पूरी तरह देख सकते हो, सब कुछ पूरी तरह समझते हो। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

लेकिन अगर तुम इस सबको कागजपर लिख लेना चाहो, कागज और कलम लेकर बैठो, और उसे लिखना और रूप देना शुरू करो, तो तुम देखोगे कि इस तरहसे कोई जरा-सी बाधा आती है, जैसा कि मैंने कहा; चीजें एक गठरीके रूपमें, जिस ओर भेजा जाय उस ओर जानेकी जगह —जैसा कि सामान्य अवस्थामें होता है—वे कुछ ऐसा-वैसा करती हैं। या यूं भटक जाती हैं (संकेत)... अव्यवस्था होती है। आहा! आश्चर्य-जनक रूपसे यह अत्याधुनिक चित्रकलासे मेल खाती है। तो ऐसी बात है।

मैं हमेशा यही सोचती हूं कि जो चित्रकार ऐसे चित्रोंको बनाते हैं, वे प्रायः, तीव्र ज्वरके उन्मादमें बनाते होंगे। चीजें अपने-आपको इस

रूपमें प्रकट करती है, और जब तुम उन्हें एक यथोचित क्रममें रखनेकी कोशिश करते हो, तो हमेशा कोई चीज खिसक जाती है, कोई छिप जाती है या कोई बच निकलती है, या फिर, ये आकर एक-दूसरेसे टकराती है और इन सबसे असंगति पैदा होती है।

अद्यतन चित्र बनानेके लिये शायद यह सबसे अधिक अनुकूल अवस्था है। यह ज्वरकी पराकाष्ठा होनी चाहिये। मुझे लगता है कि वे इसे कृत्रिम उपायोंसे पैदा करते होंगे। भगवान् जाने वे कौन-सा स्वापक लेते होंगे, किस प्रकारका गांजा खाते या पीते होंगे, वे निश्चित रूपसे, न जाने किस अफीमकी पिनकमें जीते होंगे। जो लोग अफीम पीते हैं उनका कहना है कि वे विलक्षण अंतर्दृश्य देखा करते हैं। यह कोई ऐसी ही चीज होती होगी। (हंसी)

मैंने यह बात तुमसे इसलिये कही है, क्योंकि शायद जल्दी ही तुम्हें रंगीन फोटुओंका एक संग्रह दिखाया जायगा जो हमें . . . वह एक फोटोग्राफरके यहांसे प्राप्त हुआ है — मेरा ख्याल है कि चित्र केलीफोर्नियासे आये हैं। लोस एंजिलिस — केलीफोर्नियामें है न? (माताजी पवित्रसे पूछती हैं) मुझे अभीतक भूगोल आता है!

हां, तो ये बिलकुल अत्याधुनिक चित्र हैं। ये फोटो हैं। उनमें कोई रंग चित्र (पेंटिंग) नहीं है, वे फोटो हैं। ये नेगेटिवसे फोटोके कागजपर बनाये रंगीन चित्र हैं। इनके रंग प्रशंसनीय हैं। मैं ऐसे किसी चित्रकारको नहीं जानती जो ऐसे सुन्दर, ऐसे सजीव, ऐसे ऊष्मा-भरे ऐसे अद्भुत रूपसे सुन्दर रंग दे सके। लेकिन संयोजन अत्याधुनिक है। मेरा ख्याल है कि सबसे अधिक . . . "युक्तिसंगत" — अगर मैं "युक्तिसंगत" कहूं, तो लोग तुरंत यह सोच लेंगे : "तब तो वह भद्दी चीज होगी", लेकिन बात है भी सच्ची, अमुक दृष्टिकोणसे यह सच्ची है, लेकिन फिर भी — अधिक-से-अधिक युक्तिसंगत चीज, लेकिन इतनी युक्तिसंगत नहीं कि भद्दी हो जाय, मेरा ख्याल है, फोटोग्राफर-कलाकार की प्रतिकृति है; पता नहीं, उसने यह नहीं कहा है कि यह उसका चित्र है, लेकिन उसने एक छोटा-सा नाम दिया है, वहां लिखा है शायद "एकाग्रता मग्न अंटेल"। या कुछ ऐसा ही लिखा है : "एकाग्रता करता हुआ, मनन करता हुआ, भीतर पैठता हुआ" या कोई ऐसी बात। शीर्षक बहुत सुन्दर हैं। वे भी अत्याधुनिक हैं। हम यहां देखते हैं : इन सज्जनको जरा धुंधला-सा देखते हैं, मानों वह परदेके पीछे हों। एक हल्के-से पर्देके पीछे, लेकिन फिर भी, वह एक मनुष्यका सिर है। हम देखते हैं कि यह एक सिरका फोटो है, और सिर विकृत नहीं हुआ है।

वह समूचा है, सिर्फ पीछेसे जरा पिचका हुआ है; और फिर, बिलकुल अग्रभागमें टेढ़े-मेढ़े, वक्र, एक-दूसरेको काटते हुए आकारोंके साथ चमकदार रेखाएं हैं, कुछ ऐसे आकार हैं मानों चटकते रंगवाली शाखाओं और पत्तियोंका शुरूका हिस्सा हो। यह सब चीजें आगे हैं, क्योंकि यह कलाकार भौतिकसे निकला है, यह पिछली गहराइयोंमें जाकर स्वयं अपने अंतरमें, अपने अंतरमें प्रविष्ट हो गया है। यही है, यह टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं, ये पूलियां, ये प्रस्फुटन उसीके अंदर हैं। और एक ऐसे रंगमें जो उत्कृष्ट और मोहक हो। यह है "महाशय अंटेल जो अंदर जा रहे हैं"। यह वही चीज है जो हम सबसे अच्छी तरह समझ सकते हैं, हम, बिचारे मनुष्य, जो अत्याधुनिक नहीं है। यह वही है जिसे हम सबसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। इसमें और भी बातें हैं। हमारे मनमें यह प्रश्न उठता है कि चित्रपर शीर्षक ही क्यों दिया गया है। यह बात लिखनेवालेसे पूछनी चाहिये, वही तुम्हें समझायेगा। लेकिन कल्पना कर देखो वह सुन्दर है; उसका कोई अर्थ नहीं है, उसमें कृत्रिमताका आभास है, लेकिन वह सुन्दर है। वह इतना सुन्दर है कि मैंने कहा कि उसकी एक प्रदर्शनी करनी ही होगी, उससे मुझे इस तरहके फोटो खींचनेका विचार आया . . . अपने-आप नहीं, मैं फोटोग्राफर नहीं हूं, और मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानती, किसी फोटोग्राफरसे ऐसी फोटो खिचाऊं; लेकिन मुश्किल यह है कि वह एक विचार लिये हुए होगा। तब वह अत्याधुनिक बिलकुल न रहेगा। अगर हम इन रंगोंको उपयोग किसी ऐसी वस्तुके लिये ढूंढ पायें जिसे मैं अभिव्यंजक कहती हूं, तब वह उत्कृष्ट हो सकता है, सचमुच उत्कृष्ट। इसे एक साल लगा, चरितार्थ होनेमें शायद उससे भी अधिक। आखिर, श्रेय, फोटोग्राफी बनानेवाले उन सज्जनको है।

कहते हैं यह सारे संसारमें प्रसिद्ध है — लेकिन मैं इसमें कुछ नहीं समझती — कहते हैं कि ऐसा काम करनेके लिये बहुत मेहनत करनी पड़ती है। स्वभावतः, नेगेटिवोंको एक-दूसरेपर लगाकर, और फिर इस तरह आरोपित नेगेटिवोंसे और एक नेगेटिव बनाया गया। यह और भी जटिल है। मैं तुम्हें समझानेकी कोशिश नहीं कर रही हूं, क्योंकि मैं उसे बिलकुल नहीं समझती, लेकिन मुझसे कहा गया है इसमें बहुत श्रम लगा होगा। यह बहुत कठिन है, एक अत्यंत जटिल तकनीकपर प्रभुत्व है, और एक ऐसा परिणाम है जिसमें अभीतक कोई सफल नहीं हुआ। ये रंगीन फोटो इतने बड़े-बड़े हैं, और रंगीन फोटोग्राफीके लिये ये बहुत बड़े हैं। और उनमें एक लाल रंग है . . . ओह, सबसे अधिक सुन्दर लाल रंग जो

प्रकृति फूलोंमें या सूर्यास्तके समय रच सकी है — यह उससे भी अधिक सुन्दर है। लेकिन उसने यह कैसे किया, यह मैं नहीं जानती। उसमें भूरा है, उसमें हरा है, उसमें पीला है, उसमें सब तरहकी चीजें हैं। इनमें कुछ अधिक सुन्दर हैं और कुछ कम सुन्दर। इनमें मिश्रण हैं जो कम या अधिक सफल हैं; कुछ ऐसे फोटो हैं जिन्हें देखकर लगता है कि वे सूक्ष्मदर्शीकी सहायतासे लिये गये हैं: बहुत ही सूक्ष्म चीजें हैं, जो बहुत बड़ी बन गयी हैं, असाधारण चीजें बन गयी हैं; इनमें ऐसी ही चीजें हैं। तुम आसानीसे देख सकते हो कि ये एकके ऊपर एक आरोपित की गयी हैं, लेकिन उनमें रंगोंका प्रभाव विलक्षण है। तो बस।

मुझे पता नहीं यह सब तुम्हें कब दिखाया जायगा — इन्हीं दिनों किसी दिन बशर्ते कि उन्हें अभीतक लौटा न दिया गया हो, मुझे पता नहीं, मुझे पता लगाना होगा। मुझे इतना मालूम है कि मैंने कहा था कि ये चित्र तुम्हें दिखाये जायें। हां, तो मुझे लगता है कि ये फोटो...। सौभाग्यवश, यहां कोई चित्रकार नहीं है... (हंसी)। ये फोटो आधुनिक चित्रकलासे ज्यादा अच्छे हैं। और यह फोटोग्राफी है, क्योंकि आधुनिक चित्रकार अभीतक ऐसे रंगोंका उपयोग नहीं करता जिनमें यह पारदर्शकता और यह चमक हो। पानीके रंग इसके सामने एकदम फीके पड़ जाते हैं। तैल चित्र कीचड़-से लगते हैं। रंगीन कांच शायद कुछ ठहर सके, लेकिन उनमें पीछेसे आनेवाले सूर्यके प्रकाशका खेल होता है और वही महान् कलाकार है। लेकिन यह ज्यादा कठिन है।

मैंने रंगीन कांचपर काम करनेके बारेमें सोचा था। मैं जो करना चाहती थी वह था अंतर्दर्शनको रूप देना। मैंने कई बार अंतर्दर्शनोंको चित्रमें लानेकी कोशिश की, परंतु वह निरर्थक चीज हो गयी। वह निरर्थक चीज हो गयी, क्योंकि अभिव्यक्तिके साधन बुरे थे। मैंने रंगीन कांचके बारेमें सोचा, लेकिन रंगीन कांच — वे चित्र कांचके रंगीन टुकड़े होते हैं जिन्हें जोड़ना पड़ता है। फिर उन्हें सीसेके पतले तारसे जोड़ा जाता है; और तब वह भद्दा बन जाता है। सीसेके सभी तार यों होते हैं, तब ये भयंकर हो जाते हैं।

लेकिन यह काफी अच्छा है, हम कुछ कर सकेंगे।

बस।

फिर मिलेंगे, मेरे बच्चो।

१६ फरवरी, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय चार :
'कामना–भोजन–सेक्स' पर आधारित है ।

मधुर मां, यहां कहा गया है कि हमें भौतिक चीजोंके लिये कोई आसक्ति न रखनी चाहिये; तो, जब आप हमें कोई चीज देती हैं, अगर वह चीज खो जाय और उससे हमें खीज हो, तो क्या हम इसे आसक्ति कह सकते हैं?

ज्यादा अच्छा तो यह है कि उसे न खोया जाय। (हंसी) असलमें, चीज होनी चाहिये केवल...। तुम्हें स्वयं चीजके साथ आसक्त न होना चाहिये। तुम्हें अपने-आपको उसके प्रति खोलना चाहिये जो चीजके अंदर है, मैं चीज देते हुए उसमें जो रखती हूं उसके प्रति। यह बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। और स्पष्ट है कि दुर्घटना तो हमेशा हो सकती है, लेकिन यह निश्चित है कि अगर तुम उस चीजको उसका प्रतीकात्मक या आंतरिक और आध्यात्मिक मूल्य दो तो उसके खोये जानेकी संभावना बहुत कम हो जाती है; यह बात एक ऐसा संबंध पैदा कर देती है कि उसके खोये जानेकी संभावनाएं बहुत कम रह जाती हैं। चीज तुम्हारे पास रहती है।

मुझे लगता है कि जब कोई आदमी मेरी दी हुई कोई चीज खो देता है, तो इसका मतलब यह है कि उसका संबंध केवल बाहरी आकार या छिलकेके साथ ही था, मेरी दी हुई अंदरकी चीजके साथ नहीं, अन्यथा वह उसे न खोता; मुझे लगता है कि इसमें गहरे बोधका अभाव है। शायद वह बाहरी रूपसे बहुत आसक्त था, पर उसके पीछेकी चीजकी ओर बहुत खुला न था।

माताजी, यहां कहा गया है कि किसी व्यायामीके लिये अमुक भोजनकी आवश्यकता होती है, ताकि वह अमुक विटामिन पा सके जो जरूरी है। और यह सब...

यह आधुनिक विज्ञान है। हां...हां, अगर तुम पचास वर्ष ठहरो, तो वे कुछ और चीजें खोज लेंगे और यह बदल जायगा और विटामिन भुला दिये

जायेंगे.....। लेकिन तुम पूछना क्या चाहते हो?

आपने उत्तर दे दिया। (हंसी)
चीजोंका उपयोग कैसे करना चाहिये?

ओहो, यह, पहले तो चीजोंके सच्चे उपयोगको समझकर उनको काममें लाओ, उनके वास्तविक प्रयोगके ज्ञानके साथ और अधिक-से-अधिक सावधानीके साथ, ताकि वे बिगड़ें नहीं और कम-से-कम गड़बड़ हो।

मैं तुम्हें एक उदाहरण बतलाती हूं: तुम्हारे पास एक कैंची है। कैंचियां बहुत तरहकी होती हैं, कागज काटनेकी कैंची, धागा काटनेकी कैंची...। अगर तुम्हारे पास वह कैंची है जिसकी तुम्हें जरूरत है, तो उसका उपयोग उसी कामके लिये करो जिसके लिये वह बनी है। लेकिन मैं ऐसे लोगोंको जानती हूं, अगर उनके पास कैंची हो तो वे बिना सोचे-समझे किसी भी कामके लिये उसका उपयोग करते हैं। वे उसका रेशमके धागे काटनेके लिये उपयोग करते हैं, लोहेका तार काटनेकी कोशिश करते हैं, टीनके डब्बे खोलनेके औजारके रूपमें काममें लाते हैं, जहां कहीं उन्हें किसी औजारकी जरूरत हो वे अपनी कैंचीका उपयोग करते हैं। और स्वाभाविक रूपसे थोड़े-से समयके बाद ही वे आकर मुझसे कहते हैं: "मेरी कैंची खराब हो गयी है, मुझे एक और चाहिये।" और उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है जब मैं कहती हूं: "नहीं, तुम्हें दूसरी कैंची नहीं मिलेगी, क्योंकि तुमने इसे बिगाड़ दिया है, क्योंकि तुमने इसका उपयोग बुरी तरह किया है।" यह केवल एक उदाहरण है। मैं और भी बहुतेरे ऐसे उदाहरण दे सकती हूं।

लोग किसी चीजका उपयोग करते हैं जो गंदी हो जाती है और गंदी होते ही बिगड़ने लगती है, हम उसे साफ करना भूल जाते हैं या फिर, उसकी उपेक्षा कर जाते हैं, क्योंकि उसमें समय लगता है।

अपनी वस्तुओंके लिये एक तरहका मान होता है जिसके कारण हमें उनका उपयोग बहुत समझ-बूझकर करना चाहिये और हमें उन्हें यथासंभव लंबे समयतक रखनेकी कोशिश करनी चाहिये। इसलिये नहीं कि हमें उनसे आसक्ति है या हमें उनकी कामना है, बल्कि इसलिये कि चीजें आदरणीय हैं, जिन्हें बनानेमें कभी-कभी बहुत काम करने और परिश्रम करनेकी जरूरत होती है। अतः, हमें उनके बनानेमें जो काम हुआ है, जो परिश्रम लगा है उसके योग्य मान देना चाहिये।

ऐसे लोग हैं जिनके पास कुछ नहीं है, जिनके पास एकदम अनिवार्य चीजें भी नहीं हैं और जो उन्हें भली-बुरी तरह अपने निजी उपयोगके लिये बनाने-

के लिये बाधित होते हैं। मैंने ऐसे लोग देखे हैं, जो बहुत प्रयास और पटुता लगाकर कुछ चीजें बनानेमें सफल हुए हैं जो व्यावहारिक दृष्टिसे कम या अधिक अनिवार्य हैं। वे जानते थे कि उनके बनानेमें कितना श्रम लगा है, अतः, वे जिस तरीकेसे उनके साथ व्यवहार करते थे वह देखने लायक था। जो चीजें उन्होंने बनायी थीं, उनके साथ बहुत सावधानीसे व्यवहार करते थे, क्योंकि वे जानते थे कि उनमें उनका कितना परिश्रम लगा है। जब कि जिन लोगोंकी जेबें पैसोंसे भरी होती हैं, और जब उन्हें किसी चीजकी जरूरत होती है, तो वे किसी दुकानका दरवाजा खोलते हैं, अंदर घुसकर पैसा आगे करके चीज ले लेते हैं। वे चीजोंके साथ यूंही सा व्यवहार करते हैं। वे अपने-आपको हानि पहुंचाते हैं और एक बहुत बुरा उदाहरण रखते हैं।

बहुत बार मैंने कहा है: "नहीं, तुम्हारे पास जो है उसीका उपयोग करो। यथासंभव अच्छे-से-अच्छा उपयोग करो। व्यर्थमें चीजोंको फेंको मत, व्यर्थमें चीजें न मांगो। तुम्हारे पास जो है उसीको लेकर पूरी सावधानी, पूरी सुव्यवस्थाके साथ आवश्यक ढंगसे अव्यवस्थासे बचते हुए काम करो।"

हमारे यहां एक छोटी-सी कापी होती है जिसमें लोग हर महीने जो लेना चाहें वह लिख सकते हैं। लेकिन फिर देखा गया कि हम राशनिंग करनेके लिये बाधित हुए, क्योंकि चीजोंकी अति हो रही थी। लेकिन, यह राशनिंग स्वयं अपने उद्देश्यसे उल्टी जा पड़ी।

मुझे याद है, मैं एक साधकके कमरेमें गयी थी, इसे शायद पच्चीस वर्ष हो चुके होंगे, यह एक पुरानी कहानी है। मुझे अभीतक याद है। वहां दीवारमें एक टांड लगा था, एक पांच खानोंवाला टांड। टांड ऐसे ही बड़ा था। उसमें ऊपरसे पांच खाने लगा दिये गये थे। वे सब-के-सब... ये सब खाने भरे हुए थे; साबुनके छोटे-मोटे टुकड़ोंसे भरे थे। मैंने उससे पूछा: "भलेमानस, तुम साबुनके इन सब टुकड़ोंके साथ करते क्या हो? साबुनके ये सब टुकड़े यहां क्यों हैं? उनका उपयोग क्यों नहीं करते?" उसने मुझे उत्तर दिया: "हमें हर महीने एक साबुन पानेका अधिकार है। मैं हर महीने साबुन मांगता हूं। मैं उसे एक महीनेमें खतम नहीं कर पाता। मैं उस टुकड़ेको रख छोड़ता हूं।"

और उसने लेना जारी रखा?

बात ऐसी ही है। वह संग्रह कर रहा था, क्योंकि उसे महीनेमें एक साबुन लेनेका अधिकार था, इसलिये वह साबुन लेना चाहता था, और फिर,

साबुनको लेनेके लिये वह पुराने साबुनको एक ओर रख देता था। यह एक प्रामाणिक घटना है, मेरी गढ़ी हुई नहीं।

यहां बहुत-से लोग ऐसे हैं। मैं उनके नाम नहीं बताऊंगी, पर मैं उन्हें भली-भांति जानती हूं। ऐसे लोग बहुत-से हैं जो इस तरहके हैं। उन्हें इस चीजका अधिकार है; उन्हें उसकी जरूरत न हो, तो भी, वे उसकी मांग करेंगे क्योंकि उन्हें अधिकार है। यह . . . ऊं, वस्तुतः, यह वृत्ति . . . हम उसे नाम न देंगे।

ऐसे कंजूस लोग भी हैं जो अपना बक्सा सोनेकी सिलोंसे भर रखते हैं और जिसका वे कभी उपयोग नहीं करते। सोना सड़ता नहीं है, परंतु सचमुच नैतिक दृष्टिसे वह सड़ता है, क्योंकि जिस चीजमें गति न हो वह रुग्ण हो जाती है। तो, हम कोई निष्कर्ष न निकालेंगे :

मधुर मां, वे कौन-सी चीजें हैं जो हमारे जीवनके लिये सचमुच अनिवार्य हैं ?

मुझे नहीं लगता कि सबके लिये वही चीजें होंगी। यह देशपर निर्भर है, आदतोंपर निर्भर है, और सच पूछो तो, अगर हम विश्लेषण करें, तो ऐसी चीजें बहुत नहीं हैं। अगर तुम संसारकी यात्रा करो, हर देशमें लोगोंकी सोनेकी आदतें हैं, खानेकी आदतें हैं, कपड़े पहननेकी आदतें हैं, शृंगारकी आदतें हैं। और बिलकुल स्वाभाविक रूपसे वे तुमसे कहेंगे कि वे जिन चीजोंका उपयोग करते हैं वे अनिवार्य हैं, लेकिन अगर तुम किसी और देशमें चले जाओ तो तुम देखोगे कि ये सब चीजें वहांके लोगोंके किसी काम नहीं आतीं, क्योंकि वे और चीजोंका उपयोग करते हैं जो उन्हें उतनी ही अधिक उपयोगी और अनिवार्य मालूम होती हैं। फिर, तुम और देश बदलो तो और ही चीजें होंगी। तो, अंततः, अगर तुम सब जगहकी यात्रा करो तो तुम अपने-आपसे कहोगे : "वास्तवमें उपयोगी क्या है ?" मैं समझती हूं कि दांतोंका बुरुश एक अनिवार्य चीज है। मेरा पड़ोसी मुझे देखकर कहेगा : "तुम्हारा दांतोंका बुरुश, यह क्या चीज है ? मैं अपनी उंगलियोंका उपयोग करता हूं और यह बिलकुल ठीक रहता है।" और सब कुछ ऐसा ही है।

भोजनको लो। तुम्हें लगता है कि अमुक चीजोंकी अमुक मात्रा तुम्हें आवश्यक बल देनेके लिये अनिवार्य हैं। ये चीजें अनिवार्य हैं क्योंकि तुम उनके अभ्यस्त हो। दूसरे देशोंमें और ही चीज होगी।

इसलिये हम कोई नियम नहीं बना सकते, और अगर तुम बहुत कड़े होना चाहो, तो मेरा ख्याल है कि यह शुद्ध रूपसे व्यक्तिगत बात है, वह

हर एकके शरीरपर निर्भर है, क्योंकि जब तुम्हारी चेतनाका विस्तार होता है, तो यह मालूम होता है कि जो चीजें तुम्हें अनिवार्य मालूम होती हैं वे बिलकुल अनिवार्य नहीं हैं, कि तुम जिन चीजोंको अनिवार्य मानते हो उनमेंसे किसी भी चीजके बिना तुम स्वस्थ रह सकते हो, भली-भांति काम कर सकते हो, और बहुत शक्ति पा सकते हो। क्या ऐसी चीजें हैं जो दुनिया-भरमें अनिवार्य हों? मेरा मतलब भौतिक चीजोंसे है। हां, तुम कह सकते हो भोजनकी न्यूनतम मात्रा। हम कोई सामान्य नियम नहीं बना सकते, यह जलवायुपर निर्भर है।

प्रकृति काफी दूर दृष्टिवाली है। वह हर जगहके जलवायुमें ऐसी चीज पैदा करती है जो उसके अनुकूल हो। स्वभावतः, तुम्हें मनुष्यको केंद्रमें रखकर यह न कहना चाहिये कि प्रकृतिने यह मनुष्यके भलेके लिये किया है। मुझे नहीं लगता कि यह ऐसा है, क्योंकि मनुष्यके धरतीपर प्रकट होनेसे बहुत पहले उसने वह सब आविष्कार किये थे। लेकिन यह एक तरहका सामंजस्य है जो प्रकृतिने देशोंके जलवायु और वहांके उत्पादनमें स्थापित किया है। जैसा कि देखा गया है, देशकी विशालता और उसमें रहनेवाले जानवरोंके आकारमें एक सामंजस्य होता है। उदाहरणके लिये, भारतके हाथी अफ्रीकाके हाथियोंसे बहुत छोटे होते हैं, कहते हैं कि इसका कारण यह है कि अफ्रीकामें खुली जगहें बहुत विशाल हैं, इसलिये वहांके जानवर भी बहुत बड़े-बड़े हैं।

यह प्रकृतिकी ओरसे सृष्टिमें स्थापित सामंजस्य है। जैसे-जैसे देश छोटे होते हैं, वह इलाका छोटा होता है जहां ये जानवर रहते हैं, वैसे-वैसे जानवर भी छोटे होते जाते हैं। यहांतक कि जब खुले मैदानोंमें और उनके आकारोंमें अनुपात नहीं रह जाता, तो वे बिलकुल लुप्त हो जाते हैं। अगर तुम बहुत सारे मकान बना लो, तो स्वाभाविक है कि फिर रीछ नहीं रहेंगे, भेड़िये नहीं रहेंगे; पहले सिंह और बाघ लुप्त होते हैं, लेकिन मेरा ख्याल है कि इसमें आदमीका हाथ है...। भय मनुष्योंको बहुत अधिक विनाशक बना देता है। जैसे-जैसे आदमियोंका जमघट बढ़ता जाता है, खुले मैदान कम होते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे पशुओंकी जातियां कम होती जाती हैं। तो फिर नियम कैसे बनाया जाय?

आदमीके पास जितना अधिक धन हो उतनी ही अधिक आवश्यकताएं होती हैं...

मेरे बालक, आदमीके पास जितना अधिक पैसा होता है, वह उतनी ही

अधिक मुसीबतकी अवस्थामें होता है, हां, यह एक मुसीबत है।

पैसा होना एक महान् विपत्ति है। वह तुम्हें जानवर बना देता है, वह तुम्हें कंजूस बना देता है, वह तुम्हें दुष्ट बना देता है। यह संसार-की सबसे बड़ी मुसीबतोंमें से है। धन एक ऐसी चीज है जो तुम्हारे पास तबतक न होनी चाहिये जबतक तुम कामना-रहित न हो जाओ। जब तुम्हारे अंदर कामना न रहे, जब तुम्हारे अंदर आसक्तियां न रहें, जब तुम्हारी चेतना धरतीके समान विशाल हो जाय, तब सारी धरतीका धन तुम्हारे पास हो सकता है। वह सभीके लिये बहुत अच्छा होगा। लेकिन जबतक ऐसा न हो, तबतक तुम्हारे पास जो भी धन है वह तुम्हारे लिये अभिशाप है। यह बात मैं किसीके भी सामने कहूंगी, ऐसे आदमीके सामने भी जो धनवान् होना अपना अधिकार मानता है। यह एक मुसीबत है और शायद एक कलंक भी, यानी, यह भगवान्‌के प्रति असंतोषकी अभि-व्यक्ति है।

गरीब होनेकी अपेक्षा अमीर होने पर अच्छा होना, समझदार होना, बुद्धिमान और उदार होना, अधिक उदार होना — सुन रहे हो न — कहीं अधिक कठिन है। मैंने बहुत-से देशोंमें बहुत-से लोग देखे हैं। मैंने बहुत-से देशोंमें बहुत-से लोग देखे हैं, और सभी देशोंमें मुझे जो सबसे अधिक उदार लोग मिले वे सबसे गरीब थे। जैसे ही जेबें भर जाती हैं कि एक तरहकी बीमारी तुम्हें आ पकड़ती है, वह है धनके लिये एक घिनौनी आसक्ति। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, यह एक अभिशाप है।

अतः, जैसे ही तुम्हारे पास धन आये तो करने लायक पहली चीज यह है कि उसे दे दो। लेकिन जैसा कि कहा जाता है, विवेकके बिना मत दो। उन लोगोंकी तरह मत करो जो परोपकार करते हैं क्योंकि वे अपनी भलाईसे, अपनी उदारतासे और अपने महत्त्वसे भरे होते हैं। तुम्हें सात्विक ढंगसे क्रिया करनी चाहिये, यानी, यथासंभव अच्छे-से-अच्छा उप-योग करो। और फिर, हर एकको अपनी चेतनामें सबसे ऊंची स्थिति-में यह खोजना चाहिये कि उसके धनका अच्छे-से-अच्छा उपयोग क्या हो सकता है। और संचारणके बिना धनका कोई मूल्य नहीं। हर एकके लिये और सबके लिये धनका मूल्य तभी है जब वह खर्च किया जाय। अगर तुम उसे खर्च न करो तो . . . मैं कहती हूं, लोग ऐसी चीज चुनने-में सावधान रहते हैं जो न सड़े, यानी, सोना — जो नहीं सड़ता। अन्यथा नैतिक दृष्टिकोणसे वह सड़ जाता है। और अब जब सोनेकी जगह कागज-ने ले ली है, अगर तुम कागजको लंबे अरसेतक सावधानी बरते बिना रखो तो तुम दराज खोलते समय देखोगे कि तुम्हारे कागजके रुपयोंपर

छोटे-छोटे कीड़ों (सिलवर फिश) ने दावत की है। उन्होंने ऐसे फीते छोड़े हैं जिन्हें बैंक स्वीकार न करेगा।

ऐसे देश हैं और ऐसे धर्म हैं जो हमेशा यह कहते हैं कि भगवान् जिन लोगोंसे प्यार करते हैं उन्हें गरीब बना देते हैं। मुझे नहीं मालूम कि यह सच है या नहीं। लेकिन एक बात सच्ची है कि, निश्चय ही, जब कोई जन्मसे धनवान् होता है या बहुत धनाढ्य बन जाता है, जब उसके पास भौतिक संपत्तिकी दृष्टिसे बहुत कुछ होता है तो, निश्चय ही, यह इस बातका सूचक नहीं है कि भगवान्‌ने उसे अपनी भागवत 'कृपा' के लिये चुना है। अगर वह सच्चे मार्गपर भगवान्‌की ओर चलना चाहे, तो उसे परिमार्जन करना होगा।

मै तुमसे पहले ही एक बार कह चुकी हूं, कि धन एक शक्ति है, 'प्रकृति' की एक शक्ति है, उसे संचारणका एक साधन होना चाहिये, एक गतिशील शक्ति होना चाहिये, जैसे बहता हुआ पानी एक गतिशील शक्ति है। यह ऐसी चीज है जो उत्पादनमें, व्यवस्थामें सहायता कर सकती है। यह एक सरल तरीका है, क्योंकि मूलतः यह चीजोंके प्रचुर मात्रामें मुक्त संचारणका एक साधन है।

यह शक्ति उन लोगोंके हाथोंमें जानी चाहिये जो उसका यथासंभव अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना जानते हों, यानी, जैसा कि मैंने पहले कहा है, उन लोगोंके हाथोंमें जिन्होंने किसी प्रकार सभी व्यक्तिगत कामनाओं और सभी आसक्तियोंसे अपने-आपको मुक्त कर लिया है या उन्हें किसी तरह निकाल बाहर किया है। इसमें हम धरतीकी आवश्यकताओंको समझनेके लिये पर्याप्त रूपसे विशाल अंतर्दृष्टिको जोड़ सकते हैं, साथ ही, एक ऐसे ज्ञानको, जो इतने पर्याप्त रूपमें पूर्ण हो, जोड़ सकते हैं जो सभी आवश्यकताओंको व्यवस्थित करना जानता हो और इस शक्तिको उन उपायोंसे काममें लाना जानता हो।

अगर, इसके अलावा, इन लोगोंमें श्रेष्ठतर आध्यात्मिक ज्ञान हो, तो वे इस शक्तिका उपयोग धरतीपर थोड़ा-थोड़ा करके उस चीजका निर्माण करनेके लिये कर सकते हैं जो दिव्य 'सामर्थ्य', 'शक्ति' और 'कृपा' को अभिव्यक्त करने योग्य होंगी। और तब, धनकी, समृद्धिकी यह शक्ति, यह आर्थिक बल, जिसके बारेमें मैंने अभी कहा है कि वह एक अभिशाप-की तरह है, वही सबके भलेके लिये परम आशीर्वाद बन जायगा।

चूंकि मेरा ख्याल है कि अच्छी-से-अच्छी चीजें सबसे बुरी बन जाती हैं, शायद बुरी-से-बुरी चीजें ही अच्छी-से-अच्छी बन सकती हैं। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि बुरे-से-बुरे लोग ही अच्छे-से-अच्छे बनते हैं।

मैं आशा करती हूं कि अच्छे-से-अच्छे लोग बुरे-से-बुरे नहीं बन जायेंगे, क्योंकि यह दुःखद होगा।

लेकिन अंततः, निश्चय ही, बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी, यदि उसका दुरुपयोग किया जाय, तो वह एक बहुत बड़ी मुसीबत बन सकती है, जब कि वही बहुत बड़ी शक्ति, यदि उसका सदुपयोग किया जाय तो आशीर्वाद बन सकती है। सब कुछ इसपर निर्भर है कि तुम चीजोंका उपयोग कैसे करते हो। जगत्‌में हर चीजका एक स्थान है, एक उपयोग है, एक सच्चा उपयोग है, और अगर उसे किसी और काममें लगाया जाय तो इससे अव्यवस्था पैदा होती है, गड़बड़झाला होता है, अंध व्यवस्था आती है। और चूंकि जगत्‌में, जैसा कि वह है, बहुत ही कम चीजें ऐसी हैं जिन्हें उनके सच्चे उपयोगके लिये काममें लाया जा रहा है, इसलिये, बहुत ही कम चीजें हैं जो अपने सच्चे स्थानपर हैं। और चूंकि संसार एक भीषण अव्यवस्थामें है, इसीलिये ये सब दुःख और ये सब कष्ट हैं। अगर हर चीज अपने स्थानपर एक सामंजस्यपूर्ण संतुलनमें होती, तो समस्त संसार अब जिस दुःख और कष्टकी अवस्थामें है उसमें होनेकी आवश्यकताके बिना प्रगति कर पाता।

ऐसी कोई चीज नहीं है जो अपने-आपमें बुरी हो, लेकिन ऐसी बहुत-सी चीजें हैं (प्रायः सभी), जो अपने स्थानपर नहीं हैं।

शायद शरीरमें भी ऐसा ही है। ऐसी कोई चीज नहीं है जो अपने-आपमें बुरी हो, लेकिन ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जो अपने स्थानपर नहीं हैं। इसी वजहसे आदमी बीमार होता है। एक आंतरिक असामंजस्य पैदा होता है और परिणाम यह है कि हम बीमार पड़ जाते हैं। और लोग हमेशा सोचते हैं कि अगर वे बीमार हों तो इसमें उनका दोष नहीं है, और हमेशा उनका दोष होता है, और अगर तुम उनसे यह बात कहो तो वे बहुत नाराज होते हैं— "इसमें दया-माया नहीं है।" फिर भी यह है सच।

तो बस। यही काफी है न?

अब समाप्त। हम खतम करते हैं। मात्रा पूरी हो गयी।

२३ फरवरी, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय चार: 'कामना — भोजन — सेक्स' पर आधारित है।

मधुर मां, शुरूसे ही आदमी खाता आया है, क्योंकि जीनेके लिये उसे पोषणकी जरूरत है। तब फिर, भोजनके लिये स्वाद क्यों आया? हम वही खाते हैं जो हमें अच्छा लगता है और जो अच्छा नहीं लगता उसे नहीं खाते!

मेरा ख्याल है कि आदिम मानव जानवरके बहुत नजदीक था और वह अधिकतर बुद्धिकी अपेक्षा सहज-बोधके आधारपर जीता था। उसे जब भूख लगती थी, तो खा लेता था। उसके लिये कोई, किसी प्रकारका नियम न था। शायद उसके अपने स्वाद और अपनी पसंदें रही हों, हम उसके बारेमें बहुत कुछ नहीं जानते। लेकिन वह बहुत अधिक भौतिक स्तरपर जीता था, आजकी अपेक्षा मन और प्राणमें बहुत कम।

निश्चय ही, आदिम मानव बहुत अधिक भौतिक था, जानवरके बहुत अधिक नजदीक था। जैसे-जैसे शताब्दियां बीतती जाती हैं, मनुष्य ज्यादा मानसिक और प्राणिक होता जाता है; और जैसे-जैसे वह अधिक प्राणिक और मानसिक होता जाता है, स्वभावतः, सुरुचि संभव होती जाती है, बुद्धिका विकास होने लगता है और साथ-ही-साथ भ्रष्टता और विकृतिकी संभावना बढ़ती जाती है। इसमें भेद है कि हम अपनी इंद्रियोंको इस हदतक प्रशिक्षित कर सकें कि उनमें हर तरहकी सुरुचियां, विकास, ज्ञान, मूल्यांकनकी सब संभावनाएं, स्वाद और इसी तरह, सब कुछ आ जाये — सचमुच जो चेतनाका विकास और उसकी प्रगति है उसमें, और आसक्ति या चटोरेपनमें भेद है।

उदाहरणके लिये, तुम स्वादका बहुत गहरा अध्ययन कर सकते हो और चीजोंके विभिन्न स्वादोंका, विचारों और स्वादके परस्पर संबन्धका विस्तृत ज्ञान पा सकते हो, ताकि शुद्ध रूपसे प्राणिक विकास नहीं, बल्कि इंद्रियोंका पूर्ण विकास सिद्ध कर सको। इसमें और उन लोगोंमें बहुत फर्क है जो लालचके मारे खाते हैं, और सारे समय खानेके बारेमें ही सोचते रहते हैं। उनके लिये खाना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम है; उनके

सारे विचार उसीपर केंद्रित होते हैं, वे खाते हैं तो खानेकी आवश्यकताके कारण नहीं, बल्कि कामना, लालच और चटोरेपनके कारण।

वास्तवमें, जो लोग अपने स्वादको विकसित करनेके लिये, उसमें सुरुचि लानेकी कोशिश करते हैं उनमें ऐसे बहुत ही कम होते हैं जो खानेपर बहुत अधिक आसक्त हों। वे भोजनके प्रति आसक्तिके कारण ऐसा नहीं करते। वे यह सब करते हैं अपनी इंद्रियोंके प्रशिक्षणके लिये और यह बिलकुल और ही चीज है। यह एक कलाकारकी भांति है जो रंग, रेखाओं और आकारोंके, चीजोंकी रचना और भौतिक प्रकृतिमें पाये जाने-वाले सामंजस्यके मूल्यांकनके लिये आंखोंको प्रशिक्षित करता है; वह यह कामनाके द्वारा हरगिज नहीं करता। इसका कारण है सुरुचि, संस्कृति, दृष्टिका विकास और सौंदर्यका मूल्यांकन। और सामान्यतः, कलाकार, जो सच्चे कलाकार हों और अपनी कलासे प्रेम करते हों और सौंदर्यकी खोजमें ही जीते हों, वे ऐसे लोग होते हैं जिनमें अधिक कामनाएं नहीं होतीं। वे विकासके भावमें, केवल दृष्टिके विकासमें नहीं, बल्कि सौंदर्य-बोधके मूल्यांकनमें जीते हैं। जो लोग अपने आवेगों और कामनाओंसे जीते हैं उनमें और इनमें अधिक फर्क है। वह एकदम और ही बात है।

साधारणतः, समस्त शिक्षण, समस्त संस्कृति, इंद्रियों और सत्ताका समस्त परिमार्जन, सहज वृत्तियों, कामनाओं, आवेगोंकी शुद्धिके सबसे अच्छे उपायों-मेंसे एक है। इन चीजोंको अलग कर देनेसे ही उनका इलाज नहीं हो जाता; उन्हें दूर करनेका सबसे अच्छा उपाय है उन्हें प्रशिक्षित करना, और बौद्धिक बनाना, सुरुचिपूर्ण और शुद्ध बनाना। सामंजस्य और बोध-की यथार्थताको एक हदतक प्राप्त करना, प्रगति और वृद्धिके लिये यथा-संभव अधिक-से-अधिक विकसित होना—यह सत्ताके संस्कार, सत्ताके शिक्षणका एक भाग है। यह उन लोगोंकी तरह है जो अपनी बुद्धिको प्रशिक्षित करते हैं, जो सीखते हैं, जो पढ़ते हैं, जो सोचते हैं, जो तुलना करते हैं, जो अध्ययन करते हैं। यह ऐसे लोग हैं जिनके मन विस्तृत होते हैं, ये उन लोगोंकी अपेक्षा जिन्हें मानसिक शिक्षा नहीं मिली, बहुत ज्यादा विशाल और सहानुभूतिपूर्ण होते हैं, मानसिक शिक्षा-विहीन लोगों-में कुछ ओछे विचार होते हैं जो कभी-कभी उनकी चेतनामें परस्पर विरोधी होते हैं, फिर भी, पूरी तरह उनपर शासन करते हैं, क्योंकि उन-की कुल पूंजी यही है। वे सोचते हैं कि ये अनोखे विचार हैं जिन्हें उन-के जीवनका पथ-प्रदर्शन करना चाहिये; ये लोग बिलकुल संकीर्ण और सीमित होते हैं जब कि जो पढ़े-लिखे और प्रशिक्षित होते हैं—इससे उनके मनका विस्तार होता है और वे देख सकते हैं, विचारोंकी तुलना

कर सकते हैं, और देख सकते हैं कि संसारमें सभी संभव विचार हैं और एक सीमित संख्याके विचारोंके साथ संलग्न रहना और उन्हें ही सत्य-की अनन्य अभिव्यक्ति मानना ओछापन और बेतुकापन है।

चेतनाको उच्चतर विकासके लिये तैयार करनेके लिये शिक्षा निश्चय ही सबसे अच्छे तरीकोंमेंसे एक है। ऐसे लोग हैं जिनकी प्रकृति बहुत ही अनगढ़ और सरल है, उनमें बड़ी अभीप्सा हो सकती है और उन्हें एक हदतक आध्यात्मिक विकास प्राप्त हो सकता है, लेकिन उनका आधार हमेशा निम्न कोटिका होगा और जैसे ही वे अपनी सामान्य चेतनामें लौटेंगे वे उसमें बाधाएं पायेंगे, क्योंकि वहांका माल बहुत पतला है, उनकी भौतिक और प्राणिक चेतनामें पर्याप्त तत्त्व नहीं हैं जो उन्हें उच्चतर शक्तिके अवतरणको सहन करनेके योग्य बना सकें।

लोभवश और भोजनके लिये आवेशके कारण खाना एक चीज है और विभिन्न स्वादोंका अध्ययन करना, उनकी तुलना करना, उन्हें मिलाना और उनका मूल्यांकन करना जानना एक और ही चीज है।

कोई और प्रश्न है, नहीं?

मधुर मां, स्वाद कहांसे आते हैं?

यह इंद्रियोंमेंसे एक है; लोग कहते हैं कि यह जीभ है; मैं नहीं जानती। यह स्वादका संवेदन है, जैसे स्पर्शका संवेदन होता है। यह कैसे होता है कि हम चीजका अनुभव अपनी उंगलियोंकी पोरसे करते हैं? वहां स्नायुएं होती हैं, स्नायुएं और चेतना। स्वादके लिये — यह जीभ और तालूके अंदरकी स्नायुएं और चेतना है।

लेकिन विभिन्न वस्तुओंके लिये और तरहके स्वाद होते हैं?

शब्द एक ही है ... इस शब्दका प्रयोग एक तो वास्तविक अर्थमें होता है और फिर, दूसरे अलंकारके रूपमें। जैसे किसी चीजके लिये रस होना, यह शब्दका अलंकारिक प्रयोग है। इसका यह मतलब नहीं है कि यह वही चीज है जो जीभका स्वाद है; या कभी हम कहते हैं कि वह सुरुचिपूर्ण है, इसका मतलब यह है कि वह स्पष्ट और न्यायसंगत ढंगसे मूल्यांकन कर सकता है, लेकिन इसका मतलब जीभसे स्वाद लेना नहीं है।

उपवास ग्रहणशीलताकी स्थिति कैसे पैदा करता है?

यह इसलिये है क्योंकि साधारणतः, प्राण शरीरपर बहुत ज्यादा केंद्रित होता है, जब शरीर भली-भांति खाये-पिये हो, तो वह अपनी शक्ति भोजनसे पाता है और अपनी ऊर्जा भोजनसे पाता है, और यह एक तरीका है ...स्पष्ट है कि यह लगभग एकमात्र तरीका है; एकमात्र नहीं, बल्कि वर्तमान जीवनकी अवस्थाओंमें यह सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका है...लेकिन यह ऊर्जा ग्रहण करनेका बहुत ही तामसिक तरीका है।

अगर तुम इस बातपर विचार करो तो देखोगे कि यह वह प्राण-शक्ति है जो वनस्पतियों या पशुओंमें पायी जाती है, युक्तियुक्त रूपसे देखें तो यह उस प्राण-शक्तिसे घटिया है जो मनुष्यमें होनी चाहिये — जातियोंके वर्गीकरणमें मनुष्य जरा ज्यादा ऊंची सत्ता है। तो अगर तुम नीचेसे ऊर्जा खींचो तो तुम उसके साथ-ही-साथ नीचेकी निश्चेतनाको भी खींच लोगे। काफी मात्रामें निश्चेतनाको आत्मसात् किये बिना खाना असंभव है; यह तुम्हें भारी बना देती है, यह तुम्हें स्थूल बना देती है, और अगर तुम बहुत अधिक खाओ तो तुम्हारी चेतनाका बहुत बड़ा हिस्सा खायी हुई चीजोंको पचाने और आत्मसात् करनेमें लगा रहता है। अगर तुम खाना न खाओ तो तुम्हारे अन्दर यह सारी निश्चेतना नहीं आती जिसे तुम्हें आत्मसात् करना और अपने अंदर बदलना पड़ता है; इससे ऊर्जाएं मुक्त होती हैं। और फिर, सत्तामें यह सहज वृत्ति होती है कि वह खर्च की हुई ऊर्जाकी क्षतिपूर्ति करे, और चूंकि तुम भोजनसे, यानी, नीचेसे ऊर्जा नहीं लेते, अतः, सहज रूपसे तुम वैश्व प्राण-शक्तियोंसे एक होकर ऊर्जा लेनेका प्रयास करते हो जो मुक्त होती हैं। और अगर तुम उन्हें आत्मसात् करना जानो, तो उन्हें सीधा आत्मसात् करते हो, और उसकी कोई सीमा नहीं।

यह तुम्हारे आमाशयकी तरह नहीं है जो अमुक मात्रासे अधिक भोजन नहीं पचा सकता, अतः, तुम उससे अधिकको आत्मसात् नहीं कर सकते; और तुम जो भोजन करते हो वह भी अपने-आप बहुत थोड़ी मात्रामें, बहुत ही थोड़ी मात्रामें प्राणिक ऊर्जाको मुक्त करता है। तो फिर, निगलने, हजम करने आदिके कामके बाद तुम्हारे पास क्या रह जाता है? बहुत कुछ नहीं! लेकिन अगर तुम सीख लो...और यह एक प्रकारकी सहज-वृत्ति होती है, तुम सहज-वृत्तिसे ही उन वैश्व ऊर्जाओंको अपनी ओर खींचना सीखते हो, जो सारे विश्वमें मुक्त हैं और मात्रामें जिनकी कोई सीमा नहीं...तुम जितनी हदतक खींच सकते हो उतनेको आत्मसात् कर सकते हो — और जब नीचेका आधार नहीं रहता जो भोजनसे आता है, तो स्वभावतः, बाहरसे ऊर्जाओंको प्राप्त करनेके लिये हम

आवश्यक क्रिया करते हैं, और हमारे अंदर जितनी अधिक ऊर्जा लेनेकी क्षमता हो, ले लेते हैं, और कभी-कभी उससे अधिक भी। तो यह तुम्हें एक उत्तेजनाकी-सी अवस्थामें ला देती है, और अगर तुम्हारा शरीर बहुत मजबूत हो और वह पोषण बिना कुछ समयतक रह सके, तो तुम अपना संतुलन बनाये रख सकते हो और इन ऊर्जाओंका हर तरहकी चीज-में उपयोग कर सकते हो, उदाहरणके लिये, प्रगतिके लिये, अधिक सचे-तन होने और अपनी प्रकृतिका रूपांतर करनेके लिये। लेकिन अगर तुम्हारे भौतिक शरीरमें ऊर्जाका अधिक संचय नहीं है, और अगर न खाने-से वह बहुत अधिक कमजोर हो गया है, तो आत्मसात् की हुई ऊर्जाओं-की तीव्रता और शरीरकी सहन-शक्तिमें एक असंतुलन पैदा हो जाता है, और यह गड़बड़ पैदा करता है। तुम अपना संतुलन खो बैठते हो, और शक्तियोंका सारा संतुलन नष्ट हो जाता है, और तुम्हें कुछ भी हो सकता है। बहरहाल, बहुत हदतक तुम अपने ऊपर काबू खो बैठते हो, और सामान्यतः, तुम बहुत अधिक उत्तेजित हो जाते हो, और इस उत्तेजना-को तुम कोई उच्चतर अवस्था मान बैठते हो। लेकिन अधिकतर वह केवल एक आंतरिक असंतुलन होता है, उससे अधिक कुछ नहीं। यह ग्रहणशीलताको बहुत तेज बना देता है। उदाहरणके लिये, जब हम उप-वास करते हैं और निचली ऊर्जाओंको नहीं लेते, तब अगर हम किसी फूलको सूंघें, तो वह हमें पोषण देता है, सुगन्ध हमें पोषण देती है, वह हमें बहुत-सी ऊर्जा प्रदान करती है, अन्यथा, हमें उसका ख्याल ही नहीं आता।

कुछ क्षमताएं तीव्र हो जाती हैं, और हम उन्हें आध्यात्मिक प्रभाव समझ बैठते हैं। लेकिन आध्यात्मिक जीवनके साथ इसका कोई विशेष संबन्ध नहीं है, बस यही कि बहुत-से लोग ऐसे होते हैं जो बहुत अधिक खाते हैं, खानेके बारेमें बहुत अधिक सोचते हैं, जो उसमें पूरी तरह तन्मय हो जाते हैं, जैसा कि मैंने कहा, जब ये लोग भरपेट खा लेते हैं, तो उन्हें पचाना पड़ता है, और उनकी सारी ऊर्जा पचानेमें ही केंद्रित हो जाती है — ऐसे लोग स्वभावसे बहुत मन्द हो जाते हैं, और यह चीज उन्हें जड़ताकी ओर बहुत अधिक खींचती है; और अगर वह खाना छोड़ दें और खानेके बारेमें सोचना छोड़ दें, एक चीज याद रखो कि अगर हम उपवास करें पर सारे समय यही सोचें कि हमें भूख लगी है और हम खाना चाहते हैं, तो यह न खाना खानेसे दस गुना अधिक बुरा है। लेकिन अगर हम सचमुच उपवास कर सकें क्योंकि हम किसी दूसरी चीज-के बारेमें सोचते हैं और किसी दूसरी चीजमें व्यस्त रहते हैं और भोजन-

में रुचि नहीं रखते, तो यह चीज हमें कुछ हदतक चेतनाके उच्चतर स्तर-पर चढ़नेमें सहायता दे सकती है, भौतिक आवश्यकताओंके बंधनसे छुट-कारा दिला सकती है। लेकिन उपवास, सभी चीजोंकी भांति, उन लोगों-के लिये अच्छा है जो उसमें विश्वास रखते हैं। जब तुम्हें यह श्रद्धा हो कि इससे तुम्हारी प्रगति होगी, यह तुम्हें शुद्ध करेगा, तो इससे लाभ होता है। अगर तुम इसमें विश्वास न रखो तो इससे कुछ नहीं होगा, सिर्फ तुम दुबले हो जाओगे।

मैटरलिंकको लो . . . मैं सोचती हूं कि तुम लोग मैटरलिंककी किताबों-से परिचित होगे; तुमने "नील-विहंग" (L'Oiseau Bleu) आदि पढ़ी होंगी। वह बहुत भारी शरीरवाला आदमी था, सौंदर्य-बोध होनेके कारण उसे अपना मोटापा बहुत खटकता था। इस कारण उसने हफ्तेमें एक बार उपवास करनेका निश्चय किया; वह हफ्तेमें एक दिन न खाता था, वह आदमी समझदार था, इसलिये वह भोजनके बारेमें सोचता न था, वह लिखता जाता था, उस दिन वह बहुत अधिक कार्य कर लेता था, और इस कारण उसका शरीर उचित और सुन्दर बना रहता था; इस दृष्टिकोणसे उपवास उसके लिये बहुत उपयोगी था।

अगर तुम न खाओ तो दुबले हो जाते हो, यह एक निश्चित परिणाम है; अगर तुम बहुत मोटे हो और दुबले होना चाहते हो तो यह एक अच्छा तरीका है। लेकिन इसी शर्तपर कि तुम अपना सारा दिन केवल भोजनके बारेमें सोचनेमें ही न बिता दो, क्योंकि तब उपवास तोड़ते ही तुम उसकी ओर झपट पड़ते हो और इतना खा जाते हो कि जितना तुम-ने खोया था वह सब वापस आ जाता है। वस्तुतः, सबसे अच्छा तो यह है कि भोजनके बारेमें सोचा ही न जाय, जीवनको यंत्रवत् इस तरह व्यवस्थित किया जाय कि खानेके बारेमें सोचनेकी जरूरत ही न रहे। तुम निश्चित समयपर खाओ, उचित मात्रामें खाओ, खाना खाते समय तुम्हें खानेके बारेमें सोचनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है; स्थिर भावसे खाना चाहिये, बस इतना ही, शांतिके साथ, एकाग्रचित्त होकर, और जब तुम भोजन कर रहे हो तब उसके बारेमें सोचना भी न चाहिये। बहुत खाना नहीं चाहिये, क्योंकि तब तुम्हें अपनी पाचन-क्रियाके बारेमें सोचना पड़ेगा, और वह तुम्हारे लिये बहुत ही अरुचिकर होगा, और इसमें तुम्हारा काफी समय नष्ट होगा। ठीक मात्रामें खाना चाहिये . . . सभी काम-नाओं, सभी आकर्षणों, प्राणकी सब क्रियाओंसे मुक्त होना चाहिये, क्यों-कि जब तुम केवल इसलिये खाते हो कि शरीरको पोषणकी आवश्यकता है, तब जब शरीरके लिये काफी होगा तो वह सुनिश्चित और ठीक तौर-

पर तुम्हें बता देगा; जब मनुष्य किसी प्राणिक कामना या मानसिक विचारोंसे परिचालित नहीं होता तो वह इस बातको निश्चित रूपसे पकड़ लेता है। "बस, अब काफी है," शरीर कहता है, "मैं और अधिक नहीं चाहता।" तो व्यक्ति खाना बंद कर देता है। जैसे ही तुम्हारे अंदर विचार उठते हैं, या तुम्हारे प्राणमें कामनाएं उठती हैं, उदाहरणके लिये, कोई ऐसी वस्तु जो तुम्हें विशेष प्रिय है, क्योंकि वह तुम्हें विशेष प्रिय है तुम उसे तीन गुना अधिक खा लेते हो...। इसके अतिरिक्त, यह तुम्हारा एक हदतक उपचार भी करता है, क्योंकि अगर तुम्हारा पेट काफी मजबूत नहीं है, तुम्हें बदहजमी हो जाती है, और फिर, जिस चीजसे तुम्हें बदहजमी हुई उससे तुम्हें अरुचि हो जाती है। लेकिन आखिर ये सब काफी उग्र तरीके हैं। व्यक्ति इन तरीकोंका सहारा लिये बिना प्रगति कर सकता है। सबसे अच्छी बात यही है कि उसके बारेमें सोचो ही मत।

स्वभावतः, ऐसे लोग हैं जो अपने और दूसरोंके लिये खाना पकाते हैं, और जो उसके बारेमें सोचनेके लिये बाधित होते हैं, लेकिन बहुत ही कम। व्यक्ति कहीं अधिक रुचिकर चीजोंके बारेमें सोचते हुए भी खाना पका सकता है। बहरहाल, खानेके बारेमें जितना कम सोचा जाये उतना ही अच्छा; और अगर तुम्हारे मन और प्राण उसीमें न लगे रहें तो शरीर एक बहुत अच्छा सूचक बन जाता है। जब उसे भूख लगेगी वह तुमसे कह देगा, जब उसे कुछ लेनेकी जरूरत होगी तो वह तुमसे कह देगा; जब वह खाना खत्म कर लेगा, जब उसे और अधिकको आवश्यकता न रहेगी तो वह तुमसे कह देगा; जब उसे भोजनकी आवश्यकता नहीं होती तो वह उसके बारेमें सोचतातक नहीं, वह किसी और चीजके बारेमें सोचता है। यह दिमाग है जो सारी गड़बड़ करता है। वास्तवमें, यह दिमाग ही है जो हमेशा गड़बड़ पैदा करता है, क्योंकि तुम उसका उपयोग करना नहीं जानते। अगर तुम्हें उसका उपयोग करना आता तो वह भी सामं-जस्य पैदा कर देता। सचमुच यह बड़ी अजीब बात है कि लोग हमेशा अपनी कल्पना-शक्तिका उपयोग बुरी बातोंके लिये करते हैं, और यह बहुत ही विरल है कि वह अपनी कल्पना-शक्तिका उपयोग किसी अच्छी चीजके लिये करते हों। अनुकूल चीजें सोचनेकी जगह, जो तुम्हारे अंदर सामंजस्य और संतुलन बनाये रखनेमें मदद दें, तुम हमेशा सभी संभव विपत्तियोंके बारेमें सोचते हो, तो स्वाभावकि रूपसे, तुम अपनी सत्ताका संतुलन खो बैठते हो, और इस मामलेमें, दुर्भाग्यवश, अगर तुम भयभीत भी हो उठो, तो तुम उन्हीं संकटोंको आकर्षित करोगे जिनसे तुम डरते हो।

लो, बस। ठीक है? कोई प्रश्न तो नहीं है?
शुभ रात्रि, मेरे बच्चो।

२ मार्च, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय चार :
'कामना–भोजन–सेक्स' पर आधारित है।

मधुर मां, वह उचित भावना और उचित चेतना कौन-सी है जिसमें हमें भोजन करना चाहिये?

वह है समर्पणकी भावना और...
और दूसरी चीज तुमने क्या कही थी?

उचित चेतना।

हां, यह एक ही बात है। यह एक ऐसी चेतना है जो ऐकांतिक रूपसे भगवान्की ओर मुड़ी हुई है, और जो दिव्य उपलब्धि ही चाहती है, और कुछ नहीं; और उचित भावना है भगवान्के प्रति समर्पणकी भावना जो केवल रूपांतर चाहती है और कुछ नहीं, यानी, एक ऐसी चीज जो अभीप्साकी पूर्तिमें अपनी ही तुष्टिकी खोज नहीं करती।

हमेशा ही, जैसे ही अभीप्सा उठती है... वह बहुत ही निष्कपट और सहज अभीप्सा हो सकती है, लेकिन उसी समय मन और प्राण आ धमकते हैं और दरवाजेके पीछेसे चोरोंकी तरह झांकते हैं; और अगर कोई शक्ति प्रत्युत्तर दे, तो वे उसपर अपनी तुष्टिके लिये झपट पड़ते हैं। तो इस मामलेमें आदमीको बहुत, बहुत, बहुत सावधानी बरतनी चाहिये, क्योंकि चाहे अभीप्सा निष्कपट हो, पुकार एकदम सहज, निष्कपट और बहुत शुद्ध हो, फिर भी, जैसे ही उत्तर आता है कि ये दो बटमार आ जाते हैं और जो चीज आती है उसपर अपनी निजी तुष्टिके लिये अधिकार जमा लेनेकी कोशिश करते हैं। जो चीज आती है वह बहुत अच्छी होती है, पर ये उसे तुरंत विकृत कर डालते हैं, ये उसे निजी मतलबके

लिये, अपनी कामनाओं या महत्त्वाकांक्षाओंको पूरा करनेके लिये काममें लाते हैं और सब कुछ बिगाड़कर रख देते हैं। और स्वभावतः, वे सब कुछ बिगाड़ ही नहीं देते, बल्कि अनुभूतिको भी रोक देते हैं। तो अगर तुम पूरी सावधानी न रखो, तो वहीं फंस जाते हो और आगे नहीं बढ़ सकते। अगर तुम्हारे ऊपर कुछ भागवत 'कृपा' है, तो 'कृपा' जब यह देखती है तो वह यंत्रवत् तुम्हें जोरका चपत लगाती है ताकि तुम्हें वास्तविकताकी ओर, होशमें ले आये। वह तुम्हारे सिरपर, पेटमें, हृदयमें या कहीं और जोरसे आघात पहुंचाती है, ताकि तुम अचानक कह उठो: "नहीं, ऐसा नहीं चल सकता।"

कोई प्रश्न ?

माताजी, इसका क्या अर्थ है: "धीरे-धीरे नींदको यौगिक विश्राममें बदलना चाहिये।"

आहा, यौगिक विश्राम, इसका मतलब यह है कि वह निश्चेतन नींद होनेकी जगह — अगर तुम उसे नींद ही कहना चाहो — सचेतन नींद हो। शरीर पूर्ण विश्रामकी अवस्थामें होता है, स्नायु आराममें, मांसपेशियां आराममें होती हैं; और तुम पूरी तरह आराममें होते हो; लेकिन आत्मा सचेतन रहती है, इतनी सचेतन कि प्राणको भी आराम दे, मनको भी आराम दे और हर चीज शांति, अचंचलता, निश्चेष्टताकी अवस्थामें हो, ताकि चेतना पूरी तरह स्वतंत्र हो। तब यदि चेतना चाहे तो, अगर वह जरूरी समझे तो वह भी आराम कर सकती है, और अगर वह समझे कि काम जरूरी है, तो वह काम कर सकती है; बहरहाल, वह अपनी मनमानी करनेके लिये स्वतंत्र होती है, जिन क्षेत्रोंमें जाना चाहे वहां जा सकती है। लेकिन वर्तमान भौतिक सत्ताके भाग, यानी, मन, प्राण और शरीर पूर्ण विश्राममें, एक तरहकी निश्चेष्टतामें होते हैं, इसलिये नींदके घंटे इतने ज्यादा होनेकी जरूरत नहीं रहती। अगर आदमी विश्रामकी इस अवस्थामें शरीरको छोड़ सके, तो वह नींदके घंटे बहुत कम कर सकता है। लेकिन इसके लिये बहुत कामकी जरूरत होती है, और वह भी बहुत सचेतन कामकी, बहुत सचेतन और बहुत आग्रहपूर्ण कामकी। यह तुरंत नहीं प्राप्त हो सकती, इसके लिये वर्षोंकी साधनाकी जरूरत हो सकती है। बस, एक बार यह प्राप्त हो जाय, तो तुम्हें नींदपर प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है, और तुम . . . को रोक सकते हो। (उदाहरणके लिये, बहुत-से लोग हैं जो सोनेके लिये जाते वक्त चेतनाकी बड़ी

अच्छी अवस्थामें होते हैं, लेकिन सुबह जब वे सोकर उठते हैं, तो एकदम स्तब्ध-से होते हैं, उन्होंने पिछले दिन जो कुछ पाया था सब खो बैठते हैं; इसका कारण यह है कि उनकी नींद निश्चेतन होती है, वे प्राणमें या मनमें या सूक्ष्म भौतिकमें चले जाते हैं : वे अवांछनीय स्थानोंपर चले जाते हैं या निश्चेतनामें जा गिरते हैं, और इस निश्चेतनामें पहलेका प्राप्त किया हुआ सब कुछ खो बैठते हैं . . .) यह बहुत जरूरी चीज है, पर इसे आसानीसे नहीं प्राप्त किया जा सकता। यह करने लायक सबसे कठिन चीजोंमेंसे है; पर है बहुत उपयोगी; लेकिन तुम इसे बहुत निकटके पथ-प्रदर्शनके बिना नहीं कर सकते, क्योंकि जबतक तुम्हें पूरे ब्यौरेके साथ यह न मालूम हो कि इसे कैसे किया जाता है, तबतक यह खतरा रहता है कि तुम मूर्खता-भरी चीजें न कर डालो।

बहरहाल, एक ऐसी चीज है जिसे तुम पूर्ण सुरक्षाके साथ कर सकते हो, सोनेसे पहले एकाग्र होओ, भौतिक सत्ताके सारे तनावको शिथिल कर दो . . . शरीरमें, कोशिश करो कि तुम्हारा शरीर बिस्तरपर पड़े हुए एक नरम लत्तेकी तरह हो, उसमें कहीं कोई अकड़, ऐंठन या झटका न रहे; उसे बिलकुल शिथिल कर दो मानों वह एक लत्तेके जैसी चीज हो। और फिर, प्राण : उसे शांत करो, जितना कर सको उतना शांत करो, अचंचल करो, जितना संभव हो उतना शांत करो। और फिर, मन भी — उसे यूं बिना किसी क्रियाके रखनेकी कोशिश करो। तुम्हें अपने मस्तिष्कपर महान् शांतिकी, महान् स्थिरताकी, और संभव हो तो निश्चल-नीरवताकी शक्ति डालनी चाहिये। विचारोंका सक्रिय रूपसे अनुसरण नहीं करना चाहिये, कोई प्रयास नहीं करना चाहिये, कुछ नहीं, कुछ नहीं; वहां भी हर गतिको ढीला कर दो, लेकिन शिथिल करो एक प्रकारकी निश्चल-नीरवतामें और यथासंभव अधिक-से-अधिक शांत स्थिरतामें।

एक बार इतना कर चुको, तो फिर, तुम अपने स्वभावके अनुसार चेतना और शांतिके लिये एक प्रार्थना या अभीप्सा जोड़ सकते हो, और यह भी चाह सकते हो कि सारी नींदमें समस्त विरोधी शक्तियोंसे तुम्हारी रक्षा की जाय, शांत अभीप्सा और संरक्षणमें रहते हुए भागवत 'कृपा' से प्रार्थना करो कि वह तुम्हारी नींदपर नजर रखे; और फिर, सो जाओ। इस तरह सोना यथासंभव उत्तम अवस्थाओंमें सोना होता है। इसके बाद जो कुछ घटे, वह तुम्हारे आंतरिक आवेगोंपर निर्भर करता है, लेकिन अगर तुम इसे आग्रहके साथ रात-पर-रात, रात-पर-रात करते जाओ, तो कुछ समय बाद इसका प्रभाव होगा।

साधारणतः, व्यक्ति बिस्तरमें जाकर जितनी जल्दी हो सके सोनेकी

कोशिश करता है, बस, वह इतना ही करता है, लेकिन इसे किस तरह करना चाहिये इस बातसे वह सर्वथा अनभिज्ञ होता है। लेकिन जैसा कि मैंने तुमसे अभी-अभी कहा, अगर तुम इसे नियमित रूपसे करो, तो इसका प्रभाव होगा। हर हालतमें, यह तुम्हें रातको होनेवाले सभी आक्र-मणोंसे बचाये रख सकता है: तुम बहुत अच्छी हालतमें सोते हो, लेकिन उठते बीमार हो, यह एक ऐसी चीज है जो सचमुच अनर्थकारी होती है, इसका अर्थ यह है कि रातको पूर्ण निश्चेतनाकी अवस्थामें तुम्हें कहींपर कोई छूत लग गयी है।

अपने स्वप्नोंको भी याद रखना आवश्यक नहीं है क्या?

यह कम आवश्यक है। अगर तुम अपनी नींदपर महान् नियंत्रण रखना चाहो तो यह उपयोगी होता है। लेकिन इसे भी करना आना चाहिये। अपने स्वप्नोंको याद रखना, यह सुबहका काम है; मैं जो तुमसे कह रही हूं वह शामका है। सुबह जब तुम उठो, तो तुम्हें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। मतलब, तुम्हें ठीक उसी समय नहीं जागना चाहिये जो तुम्हारे उठनेका समय है; तुम्हारे हाथमें थोड़ा समय होना चाहिये, और तुम्हें बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये, सोनेसे पहले एक रचना बना लो, और जागते समय इस बातका विशेष ध्यान रखो कि तुम झटकेके साथ कोई क्रिया न करो, क्योंकि अगर तुम झटकेके साथ कोई क्रिया करते हो, तो स्व-भावतः, स्वप्नोंकी याद चली जाती है। तकियेपर अपने सिरको एकदम निश्चेष्ट रखे हुए, बिना हिले-डुले तुम्हें तबतक पड़े रहना चाहिये जब-तक कि तुम शांत भावसे अपने अंदर उस गयी हुई चेतनाको वापस न बुला लो, जैसे कोई धीरे-धीरे खींचता है उसी तरह इस यादको वापिस ले आओ, बहुत धीरे-धीरे, बिना किसी जल्दी या हड़बड़ीके, बड़ी एका-ग्रता और ध्यानके साथ। और फिर, जो चेतना बाहर चली गयी थी, जैसे-जैसे वह चेतना वापिस आने लगे, और तुम बिलकुल गति-शून्य, नितांत अचंचल बने रहो, सब तरहकी चीजोंके बारेमें सोचना न शुरू कर दो, तो वह पहले एक छाप लायेगी, फिर स्मृति जगेगी, कभी-कभी आंशिक स्मृति। अगर तुम निश्चल ग्रहणशीलताकी उसी अवस्थामें रहो, तो वह अधिकाधिक सचेतन स्मृति बन सकती है। लेकिन इसके लिये, समय होना चाहिये। तेजी करनी है, इस बातका हल्का-सा आभास हुआ नहीं कि सब चौपट, तुम कुछ भी न कर पाओगे। जागते ही तुम्हें अपने-आपसे यह भी न पूछना चाहिये कि कितने बजे हैं? इससे सारा चौपट

हो जायगा। अगर तुमने ऐसा किया तो सब कुछ गायब हो जायगा।

लेकिन, माताजी, न हिलने-डुलनेसे हम फिरसे सो जाते हैं!
(हंसी)

इसका दोमेंसे एक अर्थ होगा : या तो व्यक्ति पर्याप्त नहीं सोया, इसलिये उसे और सोना चाहिये; या फिर, यह कि प्रकृतिसे वह कुछ तामसिक है और अचेतनमें रहना पसंद करता है।

इतना काफी है, मेरे बच्चो, कोई प्रश्न तो नहीं है?

माताजी, बाहरी क्रिया-कलापके बिखरावमें आंतरिक प्रयास बहुधा बिगड़ जाता है।

जब तुम बाहरी रूपमें सक्रिय हो, तो एकाग्रताको कैसे बनाये रखा जाय? . . . ओह, यह बहुत कठिन न होना चाहिये। सचमुच यह बहुत कठिन न होना चाहिये। मुझे जो चीज कठिन लगती है वह है, आंतरिक चेतना-की एक प्रकारकी तीव्रताका न होना, उससे अलग होना; यह असंभव-सी चीज मालूम होती है। अपने अंदर एक बार इसे पकड़ लेनेके बाद तुम उससे भला कैसे अलग हो सकते हो, अगर तुमने एक बार उसे पा लिया, अगर वह चेतना, चैत्यके साथ वह आंतरिक ऐक्य, चेतना और अभीप्साकी वह तीव्रता, और वह ज्वाला जो हमेशा जलती रहती है—ये चीजें अगर तुम्हारे लिये सत्य बन जायें तो तुम इनसे भला कैसे अलग हो सकते हो? लेकिन तुम चाहे कुछ भी क्यों न करो, वह बुझ नहीं सकती, हमेशा बनी रहती है।

मुझे लगता है कि एक बार यह आ जाय, तो अपने-आपको इससे अलग करनेके लिये तुम्हें दरवाजा बंद करना पड़ेगा, जान-बूझकर उसके सामने, यूं, दरवाजा बंद करना पड़ेगा, और कहना होगा : "अब मुझे इसमें कोई रस नहीं।" लेकिन अगर तुम्हारे अंदर सचमुच संपर्क बनाये रखनेकी इच्छा हो, तो मुझे यह बहुत कठिन नहीं लगता। मुझे लगता है इससे मुंह मोड़नेके लिये तुम्हारे अंदर जबरदस्त इच्छा होनी चाहिये, तभी वह दूर जा सकता है; अन्यथा वह हर चीजके, सभी चीजोंके पीछे निरंतर बना रहता है। और इसके विपरीत, अगर तुमने यह आदत डाल ली हो कि कुछ भी कहते समय, कोई क्रिया करते समय, केवल क्रिया करते समय या कुछ भी करते समय, उससे—यहां अंदर, पूछ लो, और उसकी सहा-

तुम लोगोंके लिये ऐसा नहीं है,, मेरे बच्चो।

दरवाजा खुला हुआ है, केवल तुम्हें इस ओरसे देखना चाहिये। तुम्हें उससे मुंह नहीं मोड़ना चाहिये।

तो, बस?

मधुर मां, निम्न प्राणकी भ्रांतिका क्या अर्थ है?

तुम पूछ रहे हो वह क्या है?

सभी कामनाएं, सभी आवेग, सभी अहंकारमयी, अंधकारमयी, अज्ञानमयी आवेश-भरी उग्र क्रियाएं; वस्तुतः, अधिकतर वे सभी क्रियाएं जो व्यक्ति रोज करता रहता है। यही निम्न प्राणकी भ्रांति है। प्राण सब कुछ अपने लिये ले लेना चाहता है। वह सारे जीवनका स्वामी बनना चाहता है, सबपर शासन करना चाहता है। और जब मन भी उसका साथी होता है (जैसा कि सौमेंसे साढ़े निन्यानवे बार होता है), तब मन कहता है: "इसे, इसे ही जीना कहते हैं, व्यक्तिको अपना जीवन जीनेका अधिकार है" — इसका मतलब है, अज्ञानी और मूर्ख पशु बने रहनेका अधिकार होना।

माताजी, नींद क्या है? क्या यह केवल शरीरको आरामकी आवश्यकता है, या कुछ और?

नींद एकाग्रता और आंतरिक ज्ञानका बहुत सक्रिय साधन हो सकती है। अगर तुम वहां अपना पाठ सीखना जानो, तो नींद एक ऐसा स्कूल है जिसमेंसे तुम्हें गुजरना ही पड़ता है, ताकि आंतरिक सत्ता भौतिक आकारसे स्वतंत्र होकर स्वयंमें सचेतन हो जाये और अपने जीवनपर प्रभुत्व पा ले। सत्ताके कई पूरे-पूरे भाग ऐसे हैं जिन्हें इस निश्चलता और बाहरी सत्ता, अर्थात्, शरीरकी अर्ध-चेतन अवस्थाकी आवश्यकता होती है — ताकि वह अपना जीवन स्वतंत्र रूपसे जी सके।

केवल लोग जानते नहीं, वे सोते हैं, क्योंकि वे सोते हैं, जैसे एक तरहकी सहजवृत्ति, एक अर्द्ध-चेतन आवेशके द्वारा खाते और जीते हैं। वे अपने-आपसे यह प्रश्न तक नहीं पूछते। तुम अब प्रश्न कर रहे हो: लोग क्यों सोते हैं? लेकिन हजारों, हजारों लोग स्वयंसे कभी यह पूछे बिना कि वे क्यों सोते हैं, यूं ही सोते चले आये हैं। वे इसलिये सोते हैं, क्योंकि उन्हें नींद आती है, वे इसलिये खाते हैं, क्योंकि उन्हें भूख लगती है, और बिना सोचे-समझे, बिना तर्क-वितर्क किये मूर्खताएं करते

हैं, क्योंकि उनकी सहज-वृत्तियां उन्हें धकेलती हैं; लेकिन जाननेवालोंके लिये नींद एक विद्यालय है, एक उत्तम विद्यालय है, जहां वे जाग्रत अव-अवस्थाके विद्यालयसे भिन्न कुछ और ही सीखते हैं।

यह एक और ही उद्देश्यके लिये, एक और ही विद्यालय है, पर है विद्यालय ही। अगर तुम यथासंभव अधिक-से-अधिक प्रगति करना चाहते हो, तो तुम्हें अपनी रातोंका उपयोग करना उसी तरह जानना चाहिये जैसे तुम दिनोंका उपयोग करते हो, बस, सामान्यतः, लोग यह जानते ही नहीं कि कैसे करना चाहिये, वे जागते रहनेकी कोशिश करते हैं, और वे बस, प्राण और शरीरका असंतुलन ही पैदा कर पाते हैं — और कभी, परिणामस्वरूप मानसिक असंतुलन भी।

भौतिक और अन्नमय भौतिक भागोंको पूरी तरह विश्राममें रहना चाहिये लेकिन ऐसे विश्राममें जो निश्चेतनामें गिर जाना नहीं है — यह भी एक शर्त है। और प्राणको नीरव विश्राममें होना चाहिये। तो, अगर यह तीनों चीजें विश्राम कर रही हों: आंतरिक सत्ता, जिसका बाह्य जीवनके साथ कभी-कदास ही कोई संबन्ध होता है — क्योंकि उसको अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके लिये बाह्य जीवन बहुत अधिक शोरगुलसे भरा, बहुत अधिक निश्चेतन मालूम होता है — तब, वह आंतरिक सत्ता अपने-आपसे अवगत हो सकती है और जाग सकती है, सक्रिय हो सकती है और निचले भागोंपर क्रिया कर सकती है, एक सक्रिय संपर्क स्थापित कर सकती है। जीवनकी वर्तमान स्थितिमें सक्रियता और विश्राम, विश्राम और सक्रियताको एकके बाद एक आना चाहिये। इस आवश्यकताके सिवा यह सचेतन संपर्क ही नींदका वास्तविक कारण है।

शरीरको विश्रामकी आवश्यकता होती है, लेकिन जैसा कि मैंने कहा, बहुत कम लोग ही सोना जानते हैं। वे इस तरह सोते हैं कि वे ताजा-दम होकर नहीं उठते, उन्हें मुश्किलसे ही आराम मिल पाता है। यह सीखने लायक एक पूरा विज्ञान है।

माताजी, हमारा भौतिक संचय किसपर निर्भर होता है?

भौतिक संचय? तुम्हारा मतलब है ऊर्जाका संचय?

जी हां।

यह वैश्व प्राणिक शक्तियोंको ग्रहण करनेकी क्षमतापर निर्भर है; क्योंकि

वस्तुत, भोजनके द्वारा भी तुम उन्ही प्राणिक शक्तियोको पाते हो, लेकिन पाते हो नीचेसे। लेकिन सचय कर सकनेके लिये तुम्हे सदा वैश्व प्राणिक शक्तियोको लगातार ग्रहण करते रहना और अपनी सत्तामे एक सतुलन-सा रखना सीखना चाहिये, जो तुम्हे, जितना तुम्हारे पास है उससे ज्यादा खर्च करनेसे रोकता है।

ग्रहण करने और व्यय करनेमे एक अनुपात रखना होता है। सत्तामे एक प्रकारका सामजस्य है जिसे अपने-आपको स्थापित करना होता है। कुछ लोगोमे प्राणिक शक्तियोको अपनी ओर आकर्षित करनेकी या उन्हे आत्मसात् करनेकी लगभग सहज क्षमता होती है — मेरा मतलब वैश्व प्राणिक शक्तियोसे है —, तो वे जैसे खर्च करते चलते है वैसे ही उसकी क्षति-पूर्ति भी करते जाते है। यह लोग दूसरोकी अपेक्षा बहुत ज्यादा उत्पन्न कर सकते है। उनमेसे कुछ लोग अमुक अवस्थाओमे, जैसे नीद, एक तरहके विश्राम या शिथिलतामे शक्तिया जुटा सकते है, और बादमे उन्हें अपने क्रिया-कलापमें खतम कर डालते है, उन्हें फिर-से अपनी बैटरी चार्ज करनी पडती है — यह एक बहुत कम अनुकूल अवस्था है।

कुछ लोग शक्तियोको ग्रहण करना जानते ही नही। ये शरीरमे सचित ऊर्जाओपर ही जीते है — क्योंकि शरीरके सभी कोषाणुओमे कुछ सचित ऊर्जा रहती है। ये उसीपर जीते है, लेकिन कुछ समय बाद, अगर वे फिरसे बल-प्राप्ति करना न जानते हो, तो पूरी तरहसे निचुड जाते है, जब वे अपने अन्दर इकट्ठी की हुई सारी ऊर्जाओंको खतम कर लेते है, तो या तो बीमार पड जाते है या, वे फिर कभी स्वास्थ्य-लाभ नही कर पाते। लेकिन यह बहुत समयतक नही चल सकता, यह सामान्य मनुष्यकी औसत आयुतक चलता है, परंतु फिर, कुछ वर्षोंके बाद वे वैसा ही प्रयास नहीं कर पाते, या फिर, उतनी ऊर्जा उत्पन्न नही कर पाते, और इससे भी बढकर, किसी भी तरहकी प्रगति नही कर पाते।

लेकिन जो वैश्व प्राण-शक्तियोको सहज रूपसे ग्रहण करना और सचित करना जानते है या जिन्होने यह सीख लिया है उनका सचय लगभग अनन्त कालतक चलता है। उनमे घिसाई या टूट-फूट बहुत कम होती है, अगर उन्हे उसका प्रयोग करना आता हो, और अगर वे उसे ज्ञान और विधिपूर्वक करे, तो यह उन्हें पूर्णताकी एक हदतक ले जा सकता है।

जब तुम्हे यह करना आ जाय, तो कभी-कभी कई दिनोंकी खर्च की

हुई शक्तियोंको प्राप्त करनेके लिये दो या तीन मिनट ही पर्याप्त होते हैं। केवल इसे करना आना चाहिये।

लेकिन जो लोग अपने अन्दर चले जाते हैं, जो अपने-आपमें सिमट जाते हैं, वे इसे नहीं कर सकते। सारे समय तुम्हें एक बहुत विशाल और बहुत विस्तृत चेतनामें रहना चाहिये (मुझे मालूम नहीं कि तुम इस शब्द — विस्तृत चेतना — को समझ रहे हो या नहीं, इसका अर्थ है कोई ऐसी चीज जो बिलकुल समान रूपसे, बहुत शांतिसे फैल जाती हो, जैसे ज्वारका पानी शिखरपर उठकर जिस शांत भावसे यूं चारों तरफ फैल जाता है, तो यह ऐसा ही भाव है)। प्राणको ऐसा ही होना चाहिये — तब, व्यक्ति वैश्व शक्तियोंके प्रति खुला रहता है। लेकिन, उदाहरण-के लिये, अगर व्यक्तिको अपने साथी-मनुष्योंके साथ प्राणशक्तियोंके आदान प्रदानकी बहुत बुरी आदत हो, तो वह उस ग्रहणशीलताको पूरी तरह खो बैठता है। तो जबतक वह किसीके संपर्कमें न हो तबतक वह एक-दम कुछ नहीं पाता, क्योंकि स्वभावतः, अगर वह दूसरोंके द्वारा शक्ति प्राप्त करे, तो साथ-ही-साथ उस व्यक्तिकी सारी कठिनाइयां भी पाता है, कभी-कभी शायद उसके गुण भी, लेकिन ये कम संक्रामक होते हैं। यह सचमुच एक ऐसी चीज है जो व्यक्तिको सबसे अधिक रुद्ध कर देती है।

कई ऐसे लोग भी होते हैं, जो दूसरोंके साथ कम या अधिक सामा-जिक संबन्ध, मैत्रीका संबन्ध, बातचीत . . . और फिर, यह और भी आगे बढ़ता है . . . बनाये बिना शक्तियां प्राप्त नहीं कर सकते, वे शक्तियां इसी तरह प्राप्त करते हैं। लेकिन इससे एक खिचड़ी बन जाती है। व्यक्ति जिन शक्तियोंको प्राप्त करता है वे पहले ही से आधी पची होती हैं, बहरहाल, उनमें उनकी आदिम शुद्धता नहीं रहती, और यह चीज व्यक्तिकी अपनी ग्रहणशीलताको बदल देती है।

लेकिन जब तुम्हारी चेतनामें यह ग्रहणशीलता हो: उदाहरणके लिये, तुम कहीं घूमने निकलो और कहीं ऐसे स्थानपर जा पहुंचो जो कुछ-कुछ समुद्र-तटकी तरह विशाल हो, या किसी विस्तृत समतल भूमिकी तरह हो, या किसी पर्वत-शिखरकी भांति हो — ऐसा स्थान जहां क्षितिज काफी विस्तृत हो —, उस समय अगर तुम्हारे अन्दर उस तरहकी भौतिक सहज वृत्ति हो जो तुम्हें हठात् क्षितिजकी तरह विस्तृत बना दे, तो तुम्हारे अन्दर अनन्तता, विशालताका भाव जागेगा; और जितने अधिक विशाल तुम होगे उतने ही अधिक निश्चल और शांत भी बनोगे . . .

प्रकृतिके साथ इस तरहका एक संपर्क तुम्हारे लिये काफी है।

बहुत-से और भी तरीके हैं, लेकिन यह बहुत सहज है। इसके अलावा

...अगर तुम कोई बहुत सुन्दर वस्तु देखो, तो तुम्हारे अंदर वही चीज आ सकती है: एक तरहका आंतरिक आनन्द और शक्तियोंके प्रति खुलाव, और यह तुम्हें विस्तृत कर देता है और साथ-ही-साथ तुम्हें भर देता है। तरीके बहुत-से हैं, लेकिन साधारणतः, हम उनका उपयोग नहीं करते। स्वभावतः, अगर तुम ध्यानमें चले जाओ और उच्च जीवनकी अभीप्सा करो, ऊपरकी शक्तियोंको बुलाओ, तो इससे तुम और किसी भी चीजकी अपेक्षा अधिक शक्ति प्राप्त कर लेते हो। इसे प्राप्त करनेके अनेक तरीके हैं।

बस, इतना काफी है? तो ठीक है।

अच्छा, बच्चो, फिर मिलेंगे।

शुभ रात्रि।

९ मार्च, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय ५:
'भौतिक चेतना आदि' पर आधारित है।

मधुर मां, "भौतिक सत्तामें चैत्यके खुलने" का क्या अर्थ है?

मेरा ख्याल है कि एक बार पहले भी मैं तुमसे यह कह चुकी हूं। तुम चेतनाके हर भागके द्वारा चैत्यको पा सकते हो: तुम भौतिक चेतनाके पीछे चैत्यको पा सकते हो...तुम सीधा, भौतिक चेतनाके द्वारा, सीधा प्राणिक चेतनाके द्वारा, सीधा मानसिक चेतनाके द्वारा चैत्यसे संबन्ध स्थापित कर सकते हो। ऐसी बात नहीं है कि चैत्यको पानेके लिये सत्ताकी सभी अवस्थाओंको पार करना पड़े। अपनी भौतिक चेतनाको छोड़े बिना तुम चैत्य सत्तामें अंतर्मुख होकर प्रवेश कर सकते हो, क्योंकि यह कोई आरोहण या अनुक्रम नहीं है। यह अंतर्मुख होना है, सत्ताकी अन्य अवस्थाओंमेंसे गुजरे बिना भी सीधा अंतर्मुख हुआ जा सकता है। श्रीअरविंद यही कहना चाहते हैं: तुम भौतिक चेतनामें हो, कोई चीज तुम्हें इस भौतिक चेतनाको चैत्य चेतनाकी ओर खोलनेसे नहीं रोकती, चैत्यके साथ संबन्ध जोड़नेके लिये तुम्हें प्राणिक या मानसिक रूपमें विकसित होनेकी, या उन अवस्थाओंकी ओर लौटनेकी अवश्यकता नहीं है। तुम

सीधे चैत्यमें प्रवेश कर सकते हो। चैत्य तुम्हारी भौतिक सत्तामें, दूसरी आवश्यकताओंसे गुजरे बिना सीधा प्रकट होता है, इसका यही अर्थ है।

मधुर मां, यहां श्रीअरविंद कहते हैं: "प्राणके निम्न भागोंमें और भौतिक सत्तामें पूर्ण शांति और पूर्ण समचित्तता और समर्पण-भावको स्थापित करना चाहिये जो सभी कामनाओं और निजी मांगोंसे मुक्त हो।"

हां, तो फिर क्या?

इसे कैसे किया जाय?

कैसे किया जाय इसे? पहले इसकी इच्छा करनी होगी, फिर अभीप्सा; और फिर, हर बार जब तुम कोई ऐसी चीज करो जो इस आदर्शके विपरीत हो, तो तुम्हें उस चीजको अपने सम्मुख रखकर उसपर परिवर्तनकी इच्छा और प्रकाश डालना होगा। जब कभी तुम कोई स्वार्थपूर्ण क्रिया करो—या ऐसी चीजें करो जो नहीं करनी चाहिये—, तो तुम उसे तुरंत पकड़ लो, मानों तुम उसे पूंछसे पकड़ रहे हो, फिर उसे अपने आदर्श और प्रगतिकी इच्छाकी उपस्थितिमें रखो और उसपर चेतना और प्रकाश डालो ताकि वह बदल सके।

हर उस चीजको पकड़ लो जो न की जानी चाहिये, उसे यूं पकड़ो, और फिर मजबूतीसे प्रकाशके आगे तबतक रखे रहो, जबतक कि प्रकाश उसपर अपनी क्रिया करके उसे रूपांतरित न कर दे। यह एक ऐसा कार्य है जिसे तुम सारे समय कर सकते हो। तुम चाहे कुछ भी क्यों न करते हो, यह तो हमेशा किया ही जा सकता है। हर बार जब तुम देखो कि कोई चीज खटक रही है, तब हमेशा उसे इस तरह पकड़ना चाहिये, उसे छिपनेसे रोकना चाहिये, क्योंकि वह छिपनेकी कोशिश करती है: पकड़कर उसे अपनी सचेतन इच्छाके प्रकाशके सामने इस तरह रखो, और फिर, उसपर रोशनी डालो ताकि वह बदल सके।

और कुछ नहीं? कोई प्रश्न? क्या?

(माताजी पवित्रकी तरफ मुड़ती हैं जो आंखें बंद किये बैठे हैं) पवित्रके पास कोई प्रश्न है? (वह स्थिर बैठे रहते हैं, उन्होंने सुना ही नहीं कि माताजी उनसे कह रही हैं। पास बैठा व्यक्ति उन्हें ध्यानमेंसे खींचनेके लिये अपना कलम चुभोता है। हंसीके बीच पवित्र आंखें खोलते हैं।

माताजी उनसे कहती हैं) : कोई प्रश्न ? (वह इशारेसे बताते हैं कि उनके पास कोई प्रश्न नहीं है। हंसी)

मधुर मां, कभी-कभी अवतारका भौतिक शरीर बहुत दुर्बल होता है; क्या ऐसी हालतमें पृथ्वीपर अपने कार्यके लिये उसका शरीर बाधक नहीं होता ?

अवतारी सत्ता, अवतारी सत्ता तुम किसे कहते हो ?

उदाहरणके लिये, रामकृष्ण या कोई और . . .

ओ, हो, हो, लेकिन मैं प्रश्नको ठीक तरह नहीं समझ पा रही। वर्तमान सत्तामें, वह चाहे कुछ भी क्यों न हो, और उसके भीतर चाहे जो भी हो, चैत्य सत्ता हमेशा रहती है। साधारणतः यह चैत्य पुरुषके विकासकी अवस्थापर निर्भर है, लेकिन फिर भी, शरीरमें स्थित हर चैत्य सत्ताके साथ उसके वर्तमान रूपमें गठित अवस्थाएं होती हैं। उसका हमेशा यही काम होता है कि वह इन अवस्थाओंका रूपांतर करे; मानों विश्वका यही हिस्सा उसे उसके रूपांतरके कामके लिये दिया गया हो। चाहे उसका उद्देश्य अपने निजी व्यक्तित्वसे अधिक विशाल हो, जबतक वह इस कामको अपने अंदर न कर ले तबतक कहीं और नहीं कर सकता. . . तुम बाहरी जगत्को तबतक नहीं बदल सकते जबतक तुम स्वयंको बदलना शुरू न करो। यह पहली शर्त है ; और सभीके लिये है, बड़ोंके लिये, बच्चोंके लिये, बूढ़ोंके लिये और जवानोंके लिये — बूढ़ोंसे मेरा मतलब उन लोगोंसे है जो बहुत समयसे जीते आ रहे हैं, और जवान वे जिन्हें अभी बहुत समय नहीं हुआ — काम हमेशा वही होता है। इसी कारण किसी चैत्य सत्ताके लिये पार्थिव जीवन प्रगतिका अवसर होता है।

पार्थिव जीवनकी अवधि ही प्रगति करनेका समय है। या यूं कहें कि पार्थिव जीवनके बाहर प्रगति नहीं होती। पार्थिव जीवनमें करनेकी संभावनाएं और साधन होते हैं। जिन्हें तुम अवतारी सत्ता कहते हो केवल उन्हींके लिये नहीं, बल्कि सभी सचेतन सत्ताओंके लिये यही बात है। सभीके लिये वही बात है। पहले अपने अंदर काम शुरू करना चाहिये। जब हम अपने अंदर काम कर लें तभी दूसरोंपर कर सकते हैं; लेकिन करने योग्य पहला काम है उसे अपने अंदर करना।

मधुर मां, भगवान् अंधकार और अज्ञानके जगत्‌में उतर आये हैं...

तो फिर, क्या ?

उन्हें कैसा लगता है ? ...

क्या ? उन्हें कैसा लगता है ? क्या तुम कभी कहीं ऐसी जगह नहीं गये जहां बिलकुल अंधेरा हो और जहां तुम बिना रोशनीके अपना रास्ता खोजनेके लिये बाधित हुए हो ? तुम्हारे साथ ऐसा हुआ है ? ...एक ऐसा स्थान जिसे तुम नहीं जानते और जहां बिलकुल अंधेरा हो, जहां तुम बिना रोशनीके अपना रास्ता खोजनेके लिये बाधित हुए हो ? क्या तुमने स्वयंको कभी ऐसे किसी स्थानमें नहीं पाया ? नहीं ? ओह, अगर तुम्हारे साथ ऐसा हुआ होता तो तुम जरूर जानते। उदाहरणके लिये, तुम बाहर किसी... किसी जंगलको ले लो... यह तो बहुत बड़ी चीज होगी... चलो, मान लें कि तुम किसी जरा बड़े बगीचेमें हो, और वहां तुम बहुत समयतक रह चुके हो और अब रोशनी बिलकुल नहीं रही, और तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि रास्ता कैसे ढूंढ़ा जाय ? क्या तुम्हारे साथ ऐसा कभी नहीं हुआ ? क्या तुम हमेशा स्पष्ट देखते रहे ?

मधुर मां, अगर कोई व्यक्ति अनुभूतियां या ऐसा ही कुछ प्राप्त करना चाहे तो उसे सबसे पहले कौन-सी चीज करनी चाहिये ?

अनुभूतियां प्राप्त करनेके लिये ? किस तरहकी अनुभूतियां ? अंतर्दर्शन प्राप्त करना, या मनोवैज्ञानिक अनुभूतियां पाना या किस तरहकी अनुभूतियां ?

मूलतः सारा जीवन ही एक अनुभूति है, है न ? हम अपना समय अनुभूतियां प्राप्त करनेमें बिताते हैं। क्या तुम्हारा मतलब भौतिक यथार्थतासे भिन्न, दूसरी यथार्थताओंसे संबंध जोड़नेसे है ? यही है क्या ? ओह ! ..

हां, तो मेरा ख्याल है कि पहली शर्त है, यह विश्वास कि भौतिक यथार्थताके अतिरिक्त कुछ और भी है। यह पहली शर्त हो सकती है। दूसरी शर्त है, उसे जाननेकी कोशिश करना और इसके लिये सबसे अच्छा क्षेत्र तुम अपने-आप हो। तो तुम्हें शुरू यूं करना चाहिये कि अपने-आपका थोड़ा-बहुत अध्ययन करो, इसे पहचाननेकी कोशिश करो कि कौन-सी चीज

पूरी तरह शरीरपर निर्भर है और कौन-सी किसी ऐसी चीजपर जो शरीर नहीं है। तुम इस तरह शुरू कर सकते हो। तुम अपनी प्रतीतियों या अपने विचारोंको उनकी क्रियामें देखनेसे आरंभ कर सकते हो; क्योंकि संवेदनाएं शरीरके साथ इतनी अधिक जुड़ी होती हैं कि उन्हें अलग पहचानना मुश्किल है, वे हमारी इंद्रियोंसे इतनी बंधी होती हैं, और इंद्रियां शरीरके यंत्र हैं, इसलिये उन्हें अलग पहनचाना मुश्किल है। लेकिन प्रतीतियां पहले ही बच निकलती हैं... ऐसी प्रतीतियां जिनका हम अनुभव करते हैं; और फिर इनका मूल खोजनेकी कोशिश करना, और फिर विचार... विचार क्या हैं?

अगर तुम यह खोजना और यह समझना शुरू करो कि प्रतीति क्या है, और विचार क्या है, और ये कैसे काम करते हैं, तो इससे ही तुम मार्गपर काफी आगे जा सकते हो। साथ ही, तुम्हें यह भी देखना चाहिये कि तुम्हारी प्रतीतियों और तुम्हारे विचारोंकी शरीरपर क्या क्रिया होती है, उनमें क्या आदान-प्रदान होता है। और फिर, एक और प्रयोग है जिसमें अपने अंदर यह देखना होता है कि कौन-सी चीज स्थायी है, कौन-सी चीज टिकाऊ है, कोई ऐसी चीज जो हमसे "मैं" कहलवाती है, परंतु यह शरीर नहीं है। क्योंकि, स्पष्टतः, जब तुम बहुत छोटे थे, और फिर हर साल बढ़ते गये, अगर हम काफी लंबी अवधिको लें, उदाहरणके लिये, दस वर्षकी अवधिको लें, तो इन वर्षोंके "मैं" उस "मैं"से बहुत भिन्न हैं जब तुम इतने जरा-से थे (संकेत); और फिर तब, तुम जो हो उसके लिये यह कहना कठिन है कि यह वही व्यक्ति है, है न। अगर हम केवल इसी चीजको लें, तो फिर भी इसमें कोई ऐसी चीज है जिसे हमेशा यह प्रतीत होता है कि यह वही, एक ही व्यक्ति है। इसलिये तुम्हें सोचना चाहिये, खोजना चाहिये, और समझनेकी कोशिश करनी चाहिये कि वह क्या है। यह, यह चीज तुम्हें मार्गपर बहुत दूरतक ले जा सकती है। तो अगर तुम इन विभिन्न चीजोंके संबंधका अध्ययन करो — विचारों, प्रतीतियों, शरीरपर क्रियाओं और इनके उत्तरमें शरीरकी प्रतिक्रियाओंका अध्ययन करो — और यह भी कि वह कौन-सी चीज है जो स्थायी रूपसे "मैं" कहती है, वह कौन-सी चीज है जो सत्ताकी गतिविधिमें एक आलेख (ग्राफ) अंकित कर सकती है, अगर तुम काफी सावधानीके साथ खोजो तो यह खोज तुम्हें काफी दूर ले जायेगी। स्वभावतः, अगर तुम काफी दूरतक ढूंढ़ते चलो, काफी अध्यवसायके साथ खोजते चलो, तो तुम चैत्य पुरुषतक जा पहुंचोगे।

यह तुम्हें चैत्यकी ओर ले जानेवाला रास्ता है; तो यह अनुभूति है, यह पहली अनुभूति है। जब तुम्हें अपनी अमर सत्ताके इस स्थायी भागके साथ

संपर्क प्राप्त हो जाय, तो इस अमरताके द्वारा तुम और आगे जाकर 'शाश्वत'तक पहुंच सकते हो। यह चेतनाकी एक और अवस्था है। लेकिन इसी तरह धीरे-धीरे तुम मार्गपर चलते हो। और भी उपाय हैं, परंतु यह ऐसा है जो हमेशा तुम्हारी पहुंचके अंदर होता है। तुम्हारा शरीर और उसकी संवेदनाएं और उसके विचार हमेशा तुम्हारे साथ रहते हैं, दिनके किसी भी क्षण, यहांतक कि रातको भी तुम इस कार्यमें व्यस्त रह सकते हो; जब कि अगर तुम्हें अपने चारों तरफ किसी और चीजकी, व्यक्तियों या चीजोंकी या किन्हीं विशेष परिस्थितियोंकी जरूरत होती तो बात ज्यादा जटिल होती; लेकिन यह हमेशा मौजूद है, तुम्हारी पहुंचके अंदर है। कोई भी तुम्हें अपने शरीरको अपने साथ रखनेसे नहीं रोक सकता, तुम्हारे विचार, तुम्हारी प्रतीतियां, तुम्हारे संवेदन तुम्हारे साथ रहते हैं, यह ऐसा कार्यक्षेत्र है जो हमेशा मौजूद रहता है, यह बहुत सुलभ है — बाहर खोजनेका कष्ट करनेकी जरूरत नहीं। जो कुछ जरूरी है वह सब तुम्हारे पास है। अब तुम्हें जो चीज प्राप्त करनी है, वह है, अवलोकन शक्ति और फिर एकाग्र होनेकी क्षमता, और अपनी सत्तामें किसी गतिका लगभग लगातार पीछा करनेकी क्षमता; उदाहरणके लिये, जब तुम्हारे अंदर कोई जोरदार प्रतीति हो जो तुमपर कब्जा कर लेती है, तुम्हें पकड़ लेती है, तो तुम्हें उसे देखना चाहिये और उसपर एकाग्र होकर यह जाननेकी कोशिश करनी चाहिये कि वह कहांसे आती है, कौन-सी चीज उसे तुम्हारे पास लायी है। इसका पता लगानेमें सफल होनेके लिये एकाग्र होनेका कार्य ही तुम्हें सीधा एक अनुभूतितक पहुंचा देगा, और फिर, उदाहरणके लिये तुम कोई व्यावहारिक चीज करना चाहते हो, अगर तुम अपनी मनोदशामें बिलकुल विक्षुब्ध, अस्तव्यस्त हो, अगर तुम्हारे अंदर एक प्रकारका तूफान है, तो तुम एकाग्र होकर उसका पता लगा सकते हो कि इस सबका कारण क्या है, है न, तुम उसके आंतरिक कारण, असली कारणको देख सकते हो, और साथ ही शांति, स्थिरता, अपनी प्रतीतियोंमें एक प्रकारकी आंतरिक निश्चेष्टता लानेके लिये अभीप्सा कर सकते हो, क्योंकि इसके बिना तुम स्पष्ट रूपसे नहीं देख सकते। जब हर चीज बगूलेमें हो, तुम्हें कुछ नहीं दीखता; उदाहरणके लिये, जब तुम बड़े तूफानमें हो और आंधी चारों ओरसे आ रही हो और धूलके बादल छाये हुए हों, तो तुम नहीं देख सकते; यहां भी वही चीज है; देख सकनेके लिये सब कुछ स्थिर-शांत होना चाहिये। तो तुम्हें अभीप्सा करनी चाहिये, और फिर इस तूफानमें शांति, अचंचलता, स्थिरता, निश्चेष्टताको यूं खींचना चाहिये; अगर तुम सफल हो जाओ तो यह एक और अनुभूति है, यह आरंभ है।

हां, तुम बैठकर कोशिश कर सकते हो... ध्यान मत करो, क्योंकि यह विचारकी क्रिया है जो अनुभूति तक नहीं ले जाती। एकाग्र होने, अभीप्सा करने और अपने-आपको ऊपरकी शक्तिके प्रति खोलनेकी कोशिश करो; अगर तुम इसे काफी निरंतर रूपसे करते रहो, तो एक ऐसा क्षण आता है जब तुम इस शक्तिका अनुभव करते हो, इस शांति, या इस नीरवता, इस शांत स्थिरताको नीचे उतरते हुए, सत्ताके अंदर प्रवेश करते और कम या अधिक दूरतक उतरते हुए अनुभव करते हो। पहले दिन यह अनुभूति बहुत कम हो सकती है और फिर, धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। यह भी एक अनुभूति है। करनेमें ये सब चीजें आसान हैं।

लेकिन अगर, उदाहरणके लिये, तुम कोई स्वप्न देखो और उसे यथार्थ रूपमें पूरे विस्तारके साथ याद रखो, और फिर इस स्वप्नको समझनेके लिये एकाग्र होओ, तो यह भी एक अनुभूति हो सकती है, समझका एक द्वार खुल सकता है और तुम्हें अचानक उस गहरे अर्थका पता लग सकता है जो स्वप्नके पीछे छिपा था; यह भी एक अनुभूति है — बहुत-सी चीजें ... और तुम्हें हमेशा उन्हें पानेका अवसर मिलता है। स्वभावतः, ऐसी अनुभूति जो तुम्हें सबसे अधिक अंतःप्रकाश या किसी ऐसी नयी चीजका भान कराती है तब होती है, जब तुम चैत्य सत्ताके साथ संबंध जोड़ लेते हो और चैत्य सत्तामें, जब तुम भगवान्‌की उपस्थितिमें होते हो। यह एक आदर्श अनुभव है जिसका सत्ताकी सभी गतिविधियों और स्थितियों-पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह जल्दी भी हो सकता है और इस में समय भी लग सकता है। लेकिन वर्तमान स्थितिमें जिसमें तुम हो, और उस स्थितिके बीच बहुत-से सोपान हैं। वह ठीक उन अनुभवोंके सोपान हैं जिन्हें तुम पा सकते हो।

तो यह एक विस्तृत कार्यक्रम है। पहले कदम ये हैं: स्वयंको एकाग्र करना, बहुत शांत रहनेकी कोशिश करना और यह देखना कि अंदर क्या हो रहा है, चीजोंके संबन्धको देखना, और अन्दरकी गतिविधियोंको देखना, केवल सतहपर ही नहीं जीना।

बस। इतना काफी है?

कभी-कभी ध्यानके समय हम बहुत अप्रिय आकार देखते हैं जो कुछ मिनटोंतक हमारी आंखोंके सामने रहते हैं। वह शुरू होता है, फिर खत्म हो जाता है। इसका अर्थ क्या है?

हां, संभवतः इसका अर्थ यह है कि शांतिकी एकाग्रतामें ध्यान करनेकी

जगह, तुमने अपनी चेतनाको किसी ऐसे प्राणिक स्तर या मानसिक स्तर-पर खोल दिया है जो बहुत प्रिय नहीं है। इसका यही अर्थ है। इसका यह अर्थ भी हो सकता है (यह इस बातपर निर्भर है कि तुम विकास-के किस स्तरतक पहुंच चुके हो), कुछके लिये इसका यह अर्थ भी हो सकता है, जब तुम अपने ध्यानके स्वामी होते हो और इसका तुम्हें ज्ञान होता है कि तुम कहां जा रहे हो... यह भी काफी कड़े अनुशासनकी मांग करता है...। हो सकता है कि यह विरोधी शक्तियों या दुर्भावनाओंका कोई विशेष आक्रमण हो, जो या तो किन्हीं सत्ताओंसे आया हो या किन्हीं क्षेत्रोंसे आया हो; लेकिन आवश्यक नहीं है कि ये आक्रमण ही हों; केवल यह भी हो सकता है कि तुमने अपनी चेतना किसी ऐसे स्थानपर खोल दी जो बहुत वांछनीय नहीं है, या कभी-कभी, बहुधा, ऐसा भी हो सकता है, कि स्वयं तुम्हारे अंदर प्राणिक और मानसिक कुछ ऐसी क्रियाएं चल रही हों जो बहुत वांछनीय न हों, और, जब तुम ध्यानकी निश्चल-नीरवतामें या कुछ होनेकी "प्रत्याशा" और उसकी निष्क्रिय भावना-में हो, तो वे सब स्पंदन जो तुमसे बाहर निकल चुके हैं, तुम्हारी ओर अपने सच्चे रूपमें वापस आ जाते हैं और वह रूप बहुत प्रिय नहीं होता। ऐसा बहुधा होता है: तुम्हारे अंदर बुरी भावनाएं उठती हैं, यह जरूरी नहीं है कि वे दुष्ट हों, लेकिन ऐसी चीजें जो वांछनीय नहीं होतीं, बुरे विचार, असंतोष, विद्रोह या अधैर्यकी क्रियाएं, या तृप्तिका अभाव, या... है ना, तुम किसीसे नाराज हो, भले विचारमें ही, बोलनेकी भी जरूरत नहीं ...इसी तरहकी चीजें। जब तुम शांत हो और कोई अनुभूति प्राप्त करनेके लिये निश्चल रहनेकी कोशिश कर रहे हो, तो वे सभी चीजें, अपने सच्चे रूपमें तुम्हारी ओर वापिस आ जाती हैं, यानी, वे बहुत प्रिय आकारमें नहीं आतीं: बहुत भद्दे आकारमें, ऐसे आकारोंमें जो कभी-कभी बहुत ही भद्दे होते हैं। मेरा ख्याल है कि इसके बारेमें मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूं: यह ऐसी चीज है जो अक्सर होती है अगर अपने विचारों और अपनी प्राणिक प्रतिक्रियाओंपर तुम्हारा प्रभुत्व नहीं है, और अगर किसीने किसी भी कारण तुम्हें नाराज कर दिया, उस व्यक्तिने कुछ ऐसा किया या कुछ ऐसा कहा जो तुम्हें पसंद नहीं है, और तुम उसे अपना विरोधी मान बैठते हो, तो सहज प्रतिक्रिया यही होती है — उसको किसी-न-किसी तरह दण्ड देनेकी इच्छा होती है, या (अगर मैं ऐसा कहूं) अगर व्यक्ति ज्यादा गंवारू हो तो वह बदला लेनेकी इच्छा रखता है, या यह कामना करता है कि उस व्यक्तिके लिये कुछ बुरा घटे।

यह बहुत सहज रूपसे भी आ सकता है, कोई तीव्र प्रतिक्रिया हो सकती

है, ऐसी, और फिर, तुम उसके बारेमें सोचतेतक नहीं। लेकिन फिर, रातमें, सोते समय, ऐसी स्थितिमें सौमेंसे निन्यानवे बार, उपर्युक्त व्यक्ति तुम्हारी ओर तीव्र हिंसाके साथ आता है, या तो तुम्हें मारनेके लिये या तुम्हें बीमार करनेके लिये, मानों वह तुम्हें अधिक-से-अधिक कष्ट देना चाहता हो, और तुम अपने अज्ञानमें कह बैठते हो: "हां, मेरा उसपर नाराज होना उचित ही था।" लेकिन यह केवल तुम्हारी अपनी रचना ही है जो तुम्हीं पर आ पड़ती है, उसके अलावा कुछ नहीं। व्यक्तिका इसमें कोई हाथ नहीं होता — वह इस मामलेमें बिलकुल निर्दोष होता है। यह एक ऐसी घटना है जो प्रायः ही घटती रहती है, मेरा मतलब ऐसे लोगोंसे है जिनके अंदर द्वेष या क्रोध या हिंसाकी गतियां होती हैं; वे इस तरह स्वप्नमें हमेशा अपनी गतिविधियोंको न्यायसंगत ठहरा लेते हैं, जब कि वह केवल उनकी निजी भावनाओंका एक अद्‌भुत चित्र होता है। क्योंकि रचना इसी ढंगसे तुम्हारी तरफ वापिस आती है।

तो ऐसी स्थितिमें हमें क्या करना चाहिये?

तुम्हें क्या करना चाहिये? पहली चीज है, कभी कोई बुरे विचार न लाना; फिर दूसरी चीज है, कभी भयभीत न होना, चाहे तुम बहुत अधिक भद्दी चीजें क्यों न देखो — केवल भयभीत न होना ही नहीं, बल्कि कोई अरुचि या विकर्षण भी न होना, केवल एक पूर्ण नीरवता —, और अधिक-से-अधिक पवित्र और शांत रहनेकी कोशिश करना। फिर कुछ भी क्यों न हो, चाहे वह तुम्हारी रचना हो या दूसरोंसे आयी हो, चाहे वह कोई आक्रमण हो, या कोई बुरा स्थान — चाहे कुछ भी क्यों न हो —, सब ठीक होगा। लेकिन सबसे पहले यह: निश्चल, शांत और स्वभावतः सभी संभव भयोंसे बचे रहना, बिना किसी अरुचिके, बिना विकर्षणके, कुछ भी नहीं, बस, इसी तरह रहना: पूर्ण शांतिके साथ पूर्णतः तटस्थ। तब कुछ भी बुरा नहीं हो सकता, बिलकुल कुछ नहीं। चाहे सचमुच कोई शत्रु ही क्यों न आक्रमण करे, वह भी शक्तिहीन हो जाता है।

बिना अपवादके हर हालतमें, चाहे कुछ भी क्यों न हो, स्थिरता और निश्चलता और सौम्य शांति और भागवत 'कृपा' में पूर्ण श्रद्धा — अगर तुम्हारे अन्दर यह सब है, तो तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। अगर तुम अनुभूतियां प्राप्त करना चाहते हो तो इनका होना जरूरी है; क्योंकि इनके बिना अनुभूतियां — यह ठीक नहीं है; लेकिन इनके साथ हों तो बहुत अच्छा।

१६ मार्च, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय ५ :
'भौतिक चेतना आदि' पर आधारित है।

आजके पाठके अंतमें है :

> **"...अवचेतना ही इसका मुख्य कारण है कि सब चीजें बार-बार अपने-आपको दोहराती रहती हैं और ऊपरी दिखावेको छोड़कर सचमुच कुछ भी नहीं बदलता। इसी कारण लोग कहते हैं कि स्वभाव नहीं बदल सकता और यही कारण है कि लोग जिन चीजोंके बारेमें आशा करते हैं कि उनसे बिलकुल पिंड छुड़ा चुके वे हमेशा लौट आती हैं...वे सब चीजें जिनसे पूरी तरह पिंड नहीं छुड़ाया जाता, जिन्हें सिर्फ दबा दिया जाता है वे नीचे धंस जाती हैं और वहां बीज बनकर किसी भी समय फूट निकलने या पहले ही अवसरपर अंकुरित होनेके लिये तैयार रहती हैं।"**

लेकिन यह बिलकुल आशाहीन नहीं है, क्योंकि अगर यह बात निराशाजनक हो, तो हम कभी भौतिक रूपांतर सिद्ध न कर पायेंगे।

तो यह लो।

अब प्रश्न।

> **मधुर मां, हम प्राणकी किसी चीजको किस तरह त्यागें कि वह अवचेतनमें न उतर जाय?**

ओह!

किसी चीजको केवल इसलिये धकेल देनेमें कि तुम उसे नहीं चाहते, और अपनी चेतनाकी स्थितिको इस तरह बदलनेमें कि वह तुम्हारे स्वभावके लिये बिलकुल विजातीय हो जाय, बहुत फर्क है। साधारणतः, जब तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी क्रिया होती है जिसे तुम नहीं चाहते, तो तुम उसे खदेड़ देते हो, या पीछे हटा देते हो, लेकिन तुम अपने अंदर यह पता लगानेकी सावधानी नहीं बरतते कि वह कौन-सी चीज थी या अब भी है जो इस क्रियाको सहारा देती है, वह कौन-सी विशेष वृत्ति

या चेतनाका मोड़ है जो इस चीजको चेतनामें प्रवेश करने देता है। इसके विपरीत, अगर केवल एक अस्वीकृति और त्यागकी क्रिया-भर करनेकी जगह, तुम अपनी प्राणिक चेतनाकी गहराईमें घुसो और वहां उसके सहारेको खोजो, यानी, एक छोटे-से विशेष स्पंदनको देखो जो एक कोनेमें बहुत गहरा धंसा हुआ हो, साधारणतः, इतने अंधेरे कोनेमें कि वहां उसे खोज निकालना मुश्किल; अगर तुम और गहराईमें उसका पीछा करते चलो, यानी, और अंदर जाओ, वहां एकाग्र होकर इस क्रियाके मूल स्रोततक जाओ, तो वहां एक बहुत ही छोटा-सा सर्प कुंडली मारे बैठा मिलेगा। यह कभी-कभी बहुत ही छोटा होता है, मटरसे बड़ा नहीं होता, परंतु होता है बहुत ही काला और बहुत गहराईमें धंसा हुआ।

और फिर, दो तरीके हैं : या तो इसपर इतना तेज प्रकाश, सत्य चेतनाका इतना जोरदार प्रकाश डालो कि यह विलीन हो जाय; या फिर, उसे ऐसे पकड़ लो जैसे चिमटेसे पकड़ते हैं। उसे अपने स्थानसे बाहर खींचकर अपनी चेतनाके सामने रखो। पहला तरीका मूलभूत और उग्र है, लेकिन यह सत्यका प्रकाश हमेशा तुम्हारे हाथमें नहीं होता, इसलिये तुम हमेशा उसका उपयोग नहीं कर सकते। दूसरा तरीका अपनाया जा सकता है, लेकिन उससे कष्ट होता है, उससे वैसा ही दर्द होता है जैसा दांत उखाड़नेसे; पता नहीं तुमने कभी दांत निकलवाया है या नहीं, इससे वैसा ही दर्द होता है, इससे यहां, इस तरह दर्द होता है (माताजी वक्षके बीचकी ओर इशारा करती हैं और मरोड़का संकेत करती हैं)। साधारणतः, तुम बहुत साहसी नहीं होते। जब वह बहुत कष्ट देता है तो तुम उसे यूं मिटा देनेकी कोशिश करते हो (संकेत), और इसलिये चीजें बनी रहती हैं। लेकिन अगर तुम्हारे अंदर इतनी हिम्मत हो, और अगर वह बहुत, बहुत, दर्द करे, फिर भी तुम उसे पकड़कर बाहर खींच सको और अपने सामने रख सको... उसे यूं सामने रख सको (संकेत), यहांतक कि तुम उसे स्पष्ट देख सको और फिर विलीन कर सको तो वह खतम हो जाता है। तब वह चीज कभी अवचेतनामें न जा छिपेगी, कभी तुम्हें तंग करनेके लिये न लौटेगी। लेकिन यह एक उग्र शल्य क्रिया है। इसे शल्य क्रियाकी तरह ही करना चाहिये।

पहले इस खोजके लिये तुम्हारे अंदर बहुत अधिक अध्यवसाय होना चाहिये, क्योंकि जब तुम खोजना शुरू करते हो, तो मन आकर सैकड़ों अनुकूल व्याख्याएं देने लगता है ताकि तुम उसे खोजनेकी कोई आवश्यकता न समझो। वह तुमसे कहता है : "नहीं, नहीं, यह तुम्हारा दोष बिलकुल नहीं है; यह यह है, यह वह है, यह परिस्थितियां हैं, ये लोग हैं; ये

बाहरसे आयी हुई चीजें हैं" — सब प्रकारके अच्छे-अच्छे बहाने, जबतक तुम अपने निश्चयपर बहुत दृढ़ न रहो तुम ढील कर बैठते हो और फिर खेल खतम; तो फिर कुछ समयके बाद सारा मामला फिरसे शुरू करना पड़ता है, वह बुरा आवेग या वह चीज जिसे तुम नहीं चाहते, वह क्रिया जिसे तुम नहीं चाहते वापिस आ जाती है, और तब तुम्हें सब कुछ फिर-से शुरू करना पड़ता है — और उस दिनतक करना पड़ता है जब तुम शल्य क्रियाका निश्चय न कर लो। शल्य क्रिया हो जाय तो खतम, फिर तुम स्वाधीन हो। लेकिन, जैसा मैंने कहा, तुम्हें मानसिक व्याख्याओं-पर विश्वास न करना चाहिये, क्योंकि हर बार तुम यही कहते हो: "हां, हां, पिछली बार तो ऐसा था, लेकिन इस बार सचमुच, सचमुच, यह मेरा दोष नहीं है, यह मेरा दोष नहीं है।" तो यह लो। मामला खतम। तुम्हें फिरसे शुरू करना होगा। अवचेतना तो है ही, चीज उसमें उतर जाती है, और वहां बड़े आरामसे रहती है, और जब तुम चौकस न हो तो पहले ही अवसरपर झपटकर ऊपर उफन आती है और टिकी रह सकती है — मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिनमें यह चीज पैंतीस वर्षसे भी अधिक बनी रही, क्योंकि उन्होंने एक बार भी जो जरूरी था उसे करनेका निश्चय नहीं किया।

हां, उससे कष्ट होता है, उससे जरा कष्ट होता है, बस; उसके बाद खतम। तो ऐसी बात है।

कुछ नहीं? . . . किसीको कुछ नहीं कहना? तुम, नहीं? तुम्हें कुछ पूछना है? तुम?

विषयसे बाहर।

विषयसे बाहर? इस विषयमें सब कुछ आ जाता है। तो विषयसे बाहर कैसे हो सकता है? हमें बताया गया है कि अवचेतना सार्वभौम है।

माताजी, जब कोई यहां रहता है और पूर्ण योगका अनुसरण करता है, यहां, तो . . .

"यहां रहता है", का मतलब "आश्रममें रहता है" या "कक्षामें रहता है"? कक्षामें? नहीं! (हंसी)

हम कक्षामें भी हैं और आश्रममें भी।

अच्छी बात है! तो फिर?

तो क्या यह निश्चित है कि अगले जन्ममें भी वह यहां यानी आश्रममें आयेगा? या किन्हीं और अनुभूतियोंके लिये कहीं और चला जायगा?

यह, यह, व्यक्तियोंपर निर्भर है। पहली बात तो यह कि तुम अगला जन्म कहते किसे हो? तुम्हारा मतलब उन लोगोंसे है जिन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और दूसरा शरीर लेंगे?

जी हां।

यह पूरी तरह इसपर निर्भर है कि वे किन परिस्थितियोंमें मरे थे और उनकी अंतिम इच्छा क्या थी, उनके चैत्यका क्या निश्चय था। यह कोई यांत्रिक या आरोपित चीज नहीं है। यह हर एकके लिये अलग है।

मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूं कि मृत्युके बादकी नियतिके लिये, साधारणतः, चेतनाकी अंतिम अवस्था सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, यानी, अगर मरते समय किसीके अंदर यह तीव्र अभीप्सा हो कि वह लौटकर अपना काम जारी रखे, तो उसके लिये ऐसी अवस्थाओंकी व्यवस्था कर दी जाती है। लेकिन देखो, मृत्युके उपरान्त क्या होता है, इसके लिये सब प्रकारकी संभावनाएं हैं। ऐसे लोग हैं जो चैत्यमें लौट जाते हैं। मैं तुम्हें बता चुकी हूं कि बाहरी सत्ताका बना रहना बहुत ही विरल है; इसलिये हम केवल चैत्य चेतनाकी ही बात करते हैं जो हमेशा बनी रहती है। और फिर ऐसे लोग हैं जिनका चैत्य भावी जीवनकी तैयारीके लिये, अपने प्राप्त किये हुए अनुभवोंको आत्मसात् करनेके लिये चैत्य लोकमें चला जाता है। इसमें शतियां लग सकती हैं। यह लोगोंपर निर्भर है।

चैत्य पुरुष जितना अधिक विकसित होगा उतना ही अपनी पूर्ण परिपक्वताके नजदीक होगा, उतना ही अधिक समय उसके जन्मोंके बीच लगेगा। ऐसी सत्ताएं हैं जो एक हजार वर्ष बाद, दो हजार वर्ष बाद नया जन्म लेती हैं।

व्यक्ति जितना अधिक चैत्यके निर्माणकी प्रारंभिक अवस्थामें होगा, उतने ही नजदीक-नजदीक उसके जन्म भी होंगे; और कभी-कभी, बिलकुल ही

निचले स्तरपर, जब मनुष्य पशुके बिलकुल नजदीक होता है तो यह यूं चलता है (संकेत), यानी, लोगोंके लिये यह असाधारण नहीं होता कि अपने बच्चोंके बच्चेके रूपमें जन्म लें, इस तरह, कुछ-कुछ इस तरह, या फिर एकदम अगली ही पीढ़ीमें। लेकिन यह हमेशा विकासके बहुत प्रारंभिक स्तरोंपर होता है, जब चैत्य बहुत सचेतन नहीं होता, वह अभी निर्माण-की स्थितिमें होता है। और जैसे-जैसे वह अधिक विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे, जैसा कि मैंने कहा, उसके जन्म एक-दूसरेसे ज्यादा दूर होते जाते हैं। जब चैत्य पुरुष पूरी तरह विकसित हो जाता है, जब उसे अपने विकासके लिये फिरसे धरतीपर आनेकी जरूरत नहीं रहती, जब वह पूरी तरह स्वतंत्र होता है तो उसके सामने कई विकल्प होते हैं, अगर उसे लगे कि उसका काम कहीं और है, या अगर वह शुद्ध चैत्य चेतनामें, जन्म लिये बिना रहना अधिक पसंद करे तो वह धरतीपर वापिस ही न आये; या वह जब चाहे, जैसे चाहे, जहां चाहे, पूर्ण सचेतन रूपमें जन्म ले। और फिर ऐसे हैं जो वैश्व क्रमकी शक्तियों और 'अधिमानस'की या कहीं और-की सत्ताओंके साथ एक हो जाते हैं जो हमेशा धरतीके वातावरणमें ही रहते हैं, और कार्यके लिये एकके बाद एक जन्म लेते ही रहते हैं। इस-का अर्थ यह है कि जिस क्षण चैत्य पुरुष पूर्णतया निर्मित हो जाता है और बिलकुल स्वतंत्र होता है — जब वह पूर्णतया निर्मित हो तो वह पूर्णतया स्वतंत्र हो जाता है —, तो वह जो करना चाहे कर सकता है, यह इसपर निर्भर है कि वह क्या चुनता है; इसलिये तुम यह नहीं कह सकते: "वह ऐसा होगा, वह वैसा होगा;" वह ठीक वही करता है जो वह करना चाहे और वह शरीरकी मृत्युके समय यह घोषणा भी कर सकता है (ऐसा हो चुका है), कि उसका अगला जन्म कैसा होगा, वह क्या करेगा, वह तभी चुन सकता है कि वह क्या करेगा। लेकिन इस स्थितिसे पहले, जो बार-बार नहीं आती — वह पूरी तरह चैत्यके विकास-की अवस्था और सत्ताकी समग्र चेतनाकी संजोयी हुई आशापर निर्भर है —, मानसिक, प्राणिक और भौतिक चेतना भी है, जो चैत्य चेतनाके साथ युक्त होती है; तो उस समय, मृत्युकी घड़ीमें शरीर-त्यागके क्षण वह एक आशा, एक अभीप्सा, एक संकल्प संजोती है, और साधारणतः यही अगले जीवनका निश्चय करती है।

इसलिये तुम यह नहीं पूछ सकते: "क्या होता है और क्या करना चाहिये?" सभी संभव चीजें होती हैं और सब कुछ किया जा सकता है।

हर एकके मनमें कोई बात होती है: वह एक सामान्य प्रश्न पूछता

है, लेकिन उसके मनमें एक और ही प्रश्न विशेष होता है; लेकिन यह —इन चीजोंपर खुले आम बात नहीं की जा सकती।

(माताजी पवित्रकी ओर मुड़ती हैं) पवित्र, तुम्हें कुछ पूछना है? (पवित्र कहते हैं कि उनके पास कोई प्रश्न नहीं है।) आह! यह खेद की बात है।

माताजी, यहां कहा गया है कि सत्यका प्रकाश हमेशा हमारे अधिकारमें नहीं होता....

वह हमेशा रहता है; लेकिन तुम हमेशा उसका उपयोग नहीं कर सकते।

लेकिन अगर....

वह हमेशा रहता है; वह सब जगह है; लेकिन वह तुम्हारे अधिकारमें नहीं है, इस अर्थमें कि तुम उसका उपयोग करना नहीं जानते।

लेकिन अगर कोई आपसे पूछे कि यह कैसे किया जाय?

आहा! लेकिन यहां व्यक्तिगत प्रश्न न पूछने चाहिये। निश्चय ही, अगर तुम मुझसे पूछो: मैं क्या करूं?"—तुममेंसे कोई भी—, तो मैं तुमसे कहूंगी: "वत्स, यह बहुत आसान है, तुम्हें सिर्फ मुझे बुलाना होगा और जब तुम्हें लगे कि संपर्क हो गया है तो उसे उस भागपर रखो, जबतक कि वह भाग समझ न जाय।"

लेकिन तुम्हें जानना चाहिये कि इसमें भी जरा कष्ट होता है, मैं तुम्हें चेतावनी दे रही हूं, चूंकि वह चीज कहींपर चिपकी रहती है, इसलिये उसे खींच निकालनेके लिये साहसकी जरूरत होती है; और जब तुम उसपर सत्यका प्रकाश डालते हो; तो वहां जलन होती है, कभी-कभी वह टीस मारता है, तुम्हें उसे सहना आना चाहिये। सच्चाई इतनी पर्याप्त होनी चाहिये कि..."उफ, दुखता है," कहकर अपने-आपको बंद कर लेनेकी जगह, तुम्हें बहुत अधिक खुल जाना चाहिये और उसे पूरी तरह ग्रहण करना चाहिये।

कुछ लोगोंके सिरमें नाना प्रकारकी ऐसी छोटी-छोटी चीजें हैं, काली, छोटी-छोटी चीजें। कुछ लोगोंके यहां होती हैं (माताजी हृदयकी ओर इशारा करती हैं), कइयोंमें यह और भी नीचे होती हैं, हर एकके लिये

यह निर्भर है, लेकिन हर एकके लिये चीज एक ही है, यह हमेशा... मैं यह इसलिये कह रही हूं क्योंकि यह बहुत खास बात है कि अगर कोई काम करे — वह चाहे कोई क्यों न हो —, परिणाम हमेशा एक ही होता है, वह चाहे जहां हो, वह सिरमें हो, हृदयमें हो या चेतनाके अन्य केंद्रमें हो, अगर तुम अपने अन्वेषणको काफी आगे बढ़ाओ, बिना थके एक-एक पग, एक-एक पग, बढ़ाओ, तो तुम हमेशा ऐसी चीजतक जा पहुंचोगे जो दूर-से छोटे-से मटर-सी लगती है... छोटे-छोटे मटरों जैसी... एक छोटे-से काले मटर-सी; लेकिन अगर तुम काफी नजदीकसे देखो (यह तुम्हारी एकाग्रतापर निर्भर है), तो तुम देखोगे कि यह छोटे-से... सांप जैसी है, एक छोटे-से कीटाणुके आकारका सांप जो कुंडली मारे बैठा होता है, अपने ही ऊपर, यूं लिपटा होता है। तुम उसे पूंछसे पकड़कर बाहर खींचकर निकालते हो।

मधुर मां, क्या जितनी बुरी क्रियाएं होती हैं उतने ही सांप भी होते हैं?

हां, ठीक है! (हंसी) और ये बहुत होते हैं, पूरी एक सेना। जब यह सिरमें होते हैं तो और भी ज्यादा कष्टदायक होते हैं, क्योंकि तब उन्हें खोज पाना और भी कठिन होता है, और आदमी गलत विचारोंसे इतना भरा होता है कि वहांपर उनमें कोई व्यवस्था लाना बहुत कठिन होता है। यही जगह है जहां सबसे आसानीसे उसकी खोज और उसका उप-चार किया जा सकता है (माताजी मध्यवक्षकी ओर इशारा करती हैं), लेकिन सबसे ज्यादा दर्द यहां होता है, लेकिन यही जगह है जहां तुम उसे सबसे ज्यादा आसानीके साथ पा सकते हो और उसका आमूल उप-चार कर सकते हो। इसके नीचे, प्राणमें, यह ज्यादा अंधकारपूर्ण और उलझा हुआ होता है — वह बहुत घालमेलमें होता है। यह सब कुछ खिचड़ी होता है, और ऐसी बहुत-सी चीजें होती हैं — यह चीजें जब होती हैं तो बहुत-सी होती हैं। उन्हें खोजनेसे पहले तुम्हें वहां कुछ व्य-वस्था लानी पड़ती है। उनमें से कुछ इस तरह उलझी रहती हैं। उदा-हरणके लिये, बहुत-से लोगोंकी यह प्रकृति होती है कि उन्हें बड़े ताव आते हैं — अचानक क्रोध उनपर कब्जा कर लेता है, फट! और वे भयंकर रूपसे क्रुद्ध हो जाते हैं —, यहां तुम्हें कारण ढूंढना चाहिये; और यहां सब कुछ यूं उलझा हुआ होता है, सब कुछ मिला-जुला, इसके लिये तुम्हें बहुत गहराईमें और बहुत तेजीसे जाना चाहिये; क्योंकि यह बाढ़-

की तेजीसे फैलता है; और जब यह फैल जाय तो एक ढेर बन जाता है... मानों काला धुंआ हो जो ऊपर उठता हो और चेतनाको बोझिल बना देता हो। इसके अंदर व्यवस्था लाना बहुत, बहुत कठिन है। लेकिन जब तुम्हें लगे कि प्रकोप उठ रहा है, तो अगर तुम तुरंत दौड़कर वहां जाओ, इस तरह तेजीसे प्राणिक केंद्रमें अच्छी प्रकाशमय मशाल लेकर जाओ तो तुम्हें वह कोना मिल सकता है। अगर तुम्हें वह कोना मिल जाय, तो झपटकर यूं करो, उसे पकड़ लो और वह खतम हो जायगा, क्रोध तुरंत, तुम्हें एक भी शब्द बोलनेका समय मिले उससे पहले चला जाता है। मैं एक उदाहरण दे रही हूं, ऐसे और सैंकड़ों हैं। भावनाओंकी सभी चीजें, स्वाभिमान, महत्त्वाकांक्षा, आवेश — आवेश... हां, और केवल भौतिक आवेश नहीं: मेरा मतलब है उससे (मैं उस शब्दका उपयोग तो नहीं करना चाहती, क्योंकि यह उसका दुरुपयोग है, फिर भी), जिसे लोग प्रेम कहते हैं —, वह सब, वहां हैं और वहां पाये जाते हैं, सब आसक्तियां, सारी भावुकताएं, यह सब उसमें हैं।

और सिरमें ?

आह! सिरमें, विचारोंके समस्त विकृत रूप, सभी विश्वासघात — विश्वासघातोंकी बहुत बड़ी संख्या है: आदमी बहुधा, ऐसे निरंतर रूपमें अपनी अंतरात्माके साथ विश्वासघात करता है जो भयानक है —, सभी निर्णय, दृष्टि-बिंदु, अनुकूल व्याख्याएं, जैसा कि मैं तुमसे कह रही थी, और फिर, आलोचना करनेकी एक प्रकारकी आदत...। तुम जो चीज नहीं सुनना चाहते, जब कोई उच्चतर चीज तुम्हारा दोष दिखलाती है तो तुम्हारी यह आदत होती है कि तुरंत एक व्याख्या कर दो और उस विचार या भावकी बड़ी समालोचना करो; कुछ लोग उसे मजाककी बात बना लेते हैं; ऐसे लोग हैं जो तुरंत उसके विरोधमें कोई और विचार या घिसी-पिटी धारणा ला खड़ी करते हैं। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि सिरमें कैसा बाजार लगा रहता है! यह एक भयानक चीज है। अगर तुम व्यवस्था लाने, स्पष्ट रूपसे देखने और सब कुछ व्यवस्थित करनेसे पहले, यह देखनेसे पहले कि दो विरोधी भाव साथ-साथ नहीं चल सकते, सचमुच तटस्थ होकर अंदर जो हो रहा है उसे देखो, तो वह भयावह दीखेगा।

मैं बड़ी संख्यामें ऐसे लोगोंको जानती हूं जो अपने मनमें विरोधी भावोंको व्यवस्था या समन्वयके बिना आश्रय देते हैं — उनके लिये समन्वयका

प्रश्न ही नहीं होता —, लेकिन यूं . . . घातक रूपसे विरोधी चीजोंको, यानी, ऐसे भावोंको जो साथ नहीं रह सकते, उनमें एक भाईचारेका-सा सहवास होता है। तुम उन्हें एक विशाल समन्वयमें व्यवस्थित कर सकते हो। लेकिन यह वस्तुतः एक उच्चतर व्यवस्थाका काम है; फिर भी दो चीजें, दो भाव, जो क्रियामें एकदम विरोधी परिणाम लाती हैं और एक ही तथ्यकी दो परस्पर-विरोधी व्याख्याएं हैं . . .। ये दोनों चीजें साथ-साथ चलती हैं, कभी-कभी इतनी नजदीक कि तुम्हें लगता है कि वे जुड़ी हुई हैं, वे अपने संगकी उपहासास्पद स्थितिसे जरा भी विचलित हुए बिना एक साथ रहती हैं।

एक दिन मुझे तुमको एक उदाहरण-माला देनी चाहिये। मैंने तुमसे यह बात बहुत बार कही है, पर उदाहरण कभी नहीं दिये; लेकिन एक दिन मैं बहुत-से उदाहरण इकट्ठे करके तुम्हें सुनाऊंगी। तुम यह देखोगे; अगर यह दुःखद नहीं है, तो ऊट-पटांग है। अधिकतर लोग, जिनमें यह चीज होती है, इसे कभी देखतेतक नहीं, इससे उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। अगर तुम्हारे अंदर चीजोंके बारेमें कुछ विचार हैं — निश्चय ही चीजोंके बारेमें, संसारके बारेमें, जीवनके बारेमें, जीवनके उद्देश्य, जीवन-के लक्ष्य, भावी सिद्धि आदिके बारेमें विचार होंगे ही; वस्तुतः, तुम्हारे अंदर बहुत-से विचार होंगे —, हां, तो एक दिन यह छोटा-सा खेल खेल देखो: इन सभी विचारोंको इस तरह अपने सामने रखो और फिर उन-को व्यवस्थित करो; तुम देखोगे कि यह कितना आसान है, और शायद तुम्हें बहुत मजा आये; तुम्हें बहुत-सी आश्चर्यजनक चीजें मिलेंगी।

सिर्फ इतना काम ही, बस, उनको बाहर लानेका यह काम, उन्हें बस, अपने सामने पास-पास रखना, किसी भी विषयपर तुम्हारे अंदर जितने विचार हैं उन सबको लाकर रखना मानों तुम उन्हें एक प्रयोगके रूपमें लिख डालनेके लिये बाधित हो — मानों तुम्हें एक निबंध लिखनेके लिये कहा गया हो: "तुम अमुक चीजके, अमुक विषयके बारेमें सोचते हो?" और तुम उसका खाका बनानेके लिये बाधित हो —, सभी विचारोंको साथ-साथ रखो और तुम देखोगे कि यह मजेदार है। जबतक कि तुम्हें एक केंद्रीय विचार बनानेकी आदत न हो, अगर संभव हो तो एक स्थिर केंद्रीय सत्य हो जिसके चारों ओर तुम अपने सब विचारोंको व्यवस्थित कर दो। तुम उन्हें एक युक्तियुक्त क्रममें, हर एकको अपने स्थानपर रखते हुए व्यवस्थित करो और उनसे एक तरहका कीर्तिस्तंभ बनाओ — अगर तुमने यह कभी नहीं किया है, और तुम अपने मनको पढ़नेकी कोशिश करो, तो तुम वहांपर सचमुच कुछ देखोगे। मैं कहती हूं:

"अगर वह सचमुच दुःखद न हुआ तो बहुत हास्यास्पद होगा।" तुम कल्पना नहीं कर सकते कि एक घंटेके अंदर तुम किस हदतक परस्पर विरोधी चीजोंके बारेमें, बिना आश्चर्यके सोच सकते हो।

इसे लिख लेना एक अच्छा प्रयोग है: अच्छा, मैं अब एक छोटा-सा निबंध लिखने वाला हूं... "जीवन किस उद्देश्यकी ओर मुड़ता है?" (इसे ले लो, या किसी औरको ले लो, उसमें कोई फर्क नहीं), या फिर "धरतीपर जीवनका उद्देश्य क्या है?" या "मनुष्य मरनेके लिये क्यों पैदा होते हैं?" कोई भी चीज, ऐसी ही चीजें लो। मैं यह नहीं कहती कि ऐसे विषय लो: "आज तुम फुटबॉल क्यों खेले थे और कल बास्कैट बॉल क्यों खेलोगे", नहीं, इस तरहकी चीजें नहीं, क्योंकि इन्हें तुम हमेशा समझा सकते हो। मैं कुछ अधिक व्यापक चीजोंकी बात कर रही हूं। उसे अपने सामने रखो फिर उस विषयपर तुम्हारे अन्दर जितने विचार उठें उन्हें लिख लो। तुम देखोगे कि यह मजेदार है।

कभी-कभी कुछ पढ़ते हुए हमारे अंदर विचार आते हैं। मधुर मां, हम स्वयं अपने और दूसरोंके विचारोंमें कैसे फर्क कर सकते हैं?

ओह! यह, अपने विचार और दूसरे व्यक्तिके विचार, इसका अस्तित्व ही नहीं है।

किसीके अपने विचार नहीं होते। एक विशालता है जिसमेंसे आदमी अपने सादृश्यके अनुसार विचार ले लेता है; विचार — एक सामूहिक संपत्ति, सामूहिक संपदा है।

केवल भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। सबसे सामान्य स्तर वह है जहां सबके मस्तिष्क गोते लगाते हैं; इसीकी यहां भीड़ लगी है, यह "महाशय हर-एक" का स्तर है। इससे जरा ऊपर, जो विचारक कहलाते हैं उनका स्तर है। और फिर, दूसरे कई उच्च स्तर हैं — बहुत —, कुछ शब्दातीत हैं, लेकिन फिर भी वे भावोंके क्षेत्र हैं। और फिर, ऐसे लोग होते हैं जो एकदम ऊंचाईतक उठकर किसी ऐसी चीजको पकड़ सकते हैं जो एक प्रकाशके जैसी होती है, और फिर, उसे उसके विचारोंकी मालमताके साथ, उसके भावोंकी मालमताके साथ नीचे उतार लाते हैं। अगर किसी उच्चतर लोकके भावको खींचा जाय, तो वह अपने-आपको ऐसे बहुत-से विचारोंका रूप दे सकता, उन्हें संगठित कर सकता है जो उसे विभिन्न तरीकोंसे प्रकट कर सकें; और अगर तुम लेखक, कवि या कलाकार हो, तो जब तुम उसे और नीचे उतारो तो तुम हर एककी अत्य-

धिक विभिन्न और श्रेष्ठ अभिव्यक्तियां पा सकते हो जो बहुत ही ऊपरसे आनेवाले एक ही छोटे-से भावके चारों ओर केंद्रित हों। जब तुम्हें यह करना आ जाय, तो यह चीज तुम्हें शुद्ध भाव और उसे अभिव्यक्त करनेके तरीकेमें फर्क करना सिखाती है।

कई लोग इसे अपने मस्तिष्कमें नहीं कर पाते, क्योंकि उनमें कल्पना करने या लिखनेकी क्षमता नहीं होती, लेकिन वह इसे अध्ययनके द्वारा, दूसरोंके द्वारा लिखी चीजको पढ़कर कर सकते हैं। उदाहरणके लिये, कई कवि हैं जिन्होंने एक ही भावको व्यक्त किया है — एक ही भाव, लेकिन रूप इतने भिन्न होते हैं कि बहुत पढ़नेवालोंको (ऐसे लोगोंके लिये जिन्हें पढ़ना अच्छा लगता है और जो खूब पढ़ते हैं) यह देखनेमें बड़ा मजा आता है: अरे! इस भावको उसने इस तरह कहा है, दूसरेने इस तरह व्यक्त किया है, तीसरेने इस तरह रचा है इत्यादि। तो इस तरह तुम्हारे पास ऊपर, बहुत ऊपरसे आये हुए एक ही विचारकी अभिव्यक्तियों-का एक पुलिंदा बन जाता है, जो विभिन्न कवियोंद्वारा की गयी अभि-व्यक्तियां होती हैं। और तुम देखोगे कि शुद्ध भाव, प्रारूप भाव और मानसिक जगत्में, चिंताशील और कलात्मक मानसिक जगत्में भी, उस भावकी रचनामें प्रायः एक मौलिक अंतर होता है। अगर तुम जिम-नास्टिक प्रेमी हो, तो यह करना बहुत अच्छा है। यह मानसिक जिम-नास्टिक है।

अगर तुम सचमुच बुद्धिमान होना चाहो, तो तुम्हें मानसिक जिम-नास्टिक करनी आनी चाहिये; जिस तरह, अगर तुम सचमुच कुछ मज-बूत शरीर पाना चाहो, तो तुम्हें शारीरिक जिमनास्टिक करनी आनी चाहिये। यह वही चीज है। जिन्होंने कभी मानसिक जिमनास्टिक नहीं की ऐसे लोगोंका दिमाग बहुत छोटा-सा, बिलकुल एकांगी होता है, और वे सारे जीवन; बच्चोंकी भांति सोचा करते हैं। इसे करना आना चाहिये — गंभीरतासे नहीं लेना चाहिये, अर्थात्, तुम्हारे अंदर धारणाएं नहीं होनी चाहिये जो यह कहती हों: "यह भाव सत्य है और वह मिथ्या है; यह रचना सही है और वह नहीं; या यह धर्म सच्चा है और वह धर्म झूठा है," और ऐसे ही अंट-शंट...। अगर तुम इसमें घुस जाओ तो तुम बिलकुल मूर्ख बन जाओगे।

लेकिन अगर तुम यह सब देख सको, और उदाहरणके लिये, सभी धर्मोंको एकके बाद एक लेकर यह देखो कि उन्होंने परम 'सत्ता' के प्रति मनुष्यकी अभीप्साको किस तरह अभिव्यक्त किया है, तो यह बहुत रुचि-कर बन जाता है; फिर तुम शुरू करो, हां, फिर तुम उन सबसे खेल

सकते हो। और जब तुम उन सबपर प्रभुत्व पा लो, तो तुम इससे ऊपर उठकर सभी शाश्वत मानव विवेचनाओंको एक मुस्कानके साथ देख सकते हो। तब तुम अपने विचारोंके स्वामी बन जाते हो, और चूंकि कोई दूसरा तुम्हारी तरह नहीं सोचता, इस कारण क्रोधकी पराकाष्ठाको नहीं पहुंचते, दुर्भाग्यवश यह रोग यहां बहुत व्यापक है।

किसीको कोई प्रश्न तो नहीं पूछना, नहीं?

तो बस, काफी है? तो बस, खतम!

२३ मार्च, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार' अध्याय पांच:
'भौतिक चेतना आदि' पर आधारित है।

यहां श्रीअरविंद कहते हैं: "हमारी प्रकृतिकी उन चीजोंके बारेमें जिन्हें हम अस्वीकृतिके द्वारा फेंक देते हैं, परंतु जो फिरसे वापिस आ जाती हैं — यह इसपर निर्भर है कि उन्हें कहां फेंका जाता है। बहुधा इसके लिये एक प्रकारकी पद्धति होती है।" यह क्या पद्धति है, मधुर मां?

वे बादमें इसका वर्णन करते हैं। वे बादमें बताते हैं कि जो चीज मनमें होती है उसे प्राणमें फेंक दिया जाता है; जो उच्चतर प्राणमें हो उसे निम्न प्राणमें फेंका जाता है, जो निम्न प्राणमें हो उसे भौतिकमें फेंका जाता है और जो भौतिकमें हो उसे अवचेतनामें फेंक दिया जाता है। वे सब कुछ बताते हैं — यह सब।

लेकिन मेरा ख्याल था कि त्यागकी कोई पद्धति है।

नहीं, यही पद्धति है कि चीजको त्यागकर या अस्वीकार करके निचले भागमें भेज दिया जाय, और वे कहते हैं कि अंतिम आश्रय है निश्चेतना; सच पूछो तो किसी चीजसे पिंड छुड़ानेके लिये तुम्हें सीधे निश्चेतनातक जाना चाहिये; अगर तुम वहां भी पीछा करो तो वह और

नीचे नहीं जा सकती। तब उसके सामने एक ही उपाय रह जाता है— अपने-आपको रूपांतरित करना।

क्या और आगे गये बिना उसे रूपांतरित नहीं किया जा सकता?

तुम कर सकते हो, पर वह काफी कठिन है। लेकिन यह किया जा सकता है, क्योंकि अस्वीकार करना या त्यागना ही सबसे अच्छा उपाय नहीं है। लेकिन यह करना (संकेत) सबसे सरल उपाय है; कोई चीज तुम्हें कष्ट देती है, तुम यह करते हो (संकेत), जैसे तुम मक्खियोंके लिये करते हो; लेकिन यह भी कुछ-कुछ मक्खियों जैसा है, वह एक चक्कर लगाती और फिर लौट आती है।

लेकिन जैसा कि मैंने तुम्हें पिछली बार विस्तारसे बताया था, यह ज्यादा जरूरी है कि यह पता लगाओ कि वह आती क्यों है, वह यहां क्यों है, और स्वयं कारणको — बदल डालो। तब वह वापिस न आयेगी, कोई सादृश्य या आकर्षण न बचेगा।

चीजें तुम्हारे पास एक सादृश्य या आकर्षणके कारण आती हैं। कोई ऐसी चीज होती है जिसके साथ वे चिपक सकती हैं, कहींपर एक प्रकार-की सहानुभूति होती है जो भले बहुत सचेतन या बहुत खुली हुई न हो, पर होती जरूर है। और अगर वह न रहे, तो फिर यह चीज कभी न आयेगी। अगर एक बार तुम अपनी प्रकृतिमें कुछ आवश्यक बातोंको बदल लो, तो चीजोंका एक पूरा समूह है जो आगेसे तुम्हें तंग करनेके लिये न आयेगा।

मैं पूछना चाहती थी, मैं... मैं तुमसे एक प्रश्न पूछती हूं : अंतस्तलीय और अतिचेतनमें क्या फर्क है? यह बात नलिनी बतायेंगे।

(नलिनी) अन्तस्तलीय वह है जो पीछे हो...

अंदर, और अतिचेतन ऊपर है। ठीक, मैंने यही सोचा था, पर मुझे पूरा विश्वास न था।

हां, तो आज कोई प्रश्न नहीं है?

मधुर मां, जब हम कोई चीज सुनानेके लिये मौखिक याद करते हैं तो उसे याद करनेका सच्चा तरीका क्या है, ताकि वह याद रह सके?

अगर तुम उसे याद रखना चाहते हो, तो सच्चा तरीका है उसे समझना, रटना नहीं। तुम किसी चीजको रटते हो, तो यह यांत्रिक क्रिया है; अगर तुम उसका हमेशा उपयोग न करते रहो, तो कुछ समयके बाद यह मिट जाती है। उदाहरणके लिये, तुम्हें पहाड़े रटाये जाते हैं; अगर तुम हमेशा उनका उपयोग करते रहो, तो वे तुम्हें याद रहेंगे, लेकिन अगर संयोगवश, तुम बरसों उनका उपयोग न करो, तो तुम उन्हें पूरी तरह भूल जाओगे। लेकिन अगर तुम सिद्धांतको समझ लो, तो तुम उन्हें याद रख सकोगे। अगर तुम गुणाके सिद्धांतको, उसके गणितीय बोधके साथ समझ लो, तो तुम्हें उसे रटनेकी जरूरत ही न रहेगी, उसकी क्रिया तुम्हारे मस्तिष्कमें स्वाभाविक रूपसे होगी; हर चीजके लिये यही बात है।

अगर तुम चीजको समझ लो, अगर तुम उसके पीछेके सिद्धांतका बोध पा लो तो अगर तुम सैंकड़ों वर्ष जियो तो उसे सैंकड़ों वर्षतक याद रख सकोगे; जब कि याद की हुई कोई चीज . . . कुछ समय बाद मस्तिष्कके कोषाणु बढ़ते हैं, स्थानांतरित होते हैं, तो कुछ चीजें बिलकुल ही मिट जाती हैं। तुम अभी इस तरहके अनुभवोंके लिये बहुत छोटे हो, बादमें चलकर आदमीको पता चलता है कि उसके जीवनमें कुछ चीजें सीमा-चिह्न-की तरह होती हैं, जब कि कुछ चीजें बिलकुल ही मिट जाती हैं, यहांतक कि तुम्हें उनकी याद तक नहीं रहती, वे चली जाती हैं। लेकिन जीवनमें ऐसी चीजें भी हैं जो सचमुच जीवनमें मीलके पत्थरकी तरह सीमाचिह्न होती हैं। हां, ये चीजें सचेतन अनुभूतियां थीं, यानी, उन्हें समझ लिया गया था; यह अनुभूति अनिश्चित कालतक रह सकती है, चेतनाकी एक जरा-सी गतिके साथ तुम उसे सामने ला लकते हो। लेकिन जिस चीजको यांत्रिक तरीकेसे सीखा गया हो, वह — जैसा कि मैंने कहा — अगर तुम उसे रोज-रोज काममें न लाओ तो वह मिट जाती है।

मधुर मां, "जो चीजें सामान्य 'प्रकृति' से आती हैं" का मतलब . . . ?

इसका क्या अर्थ है ?

मैं बादमें पूछूंगा।

अमुक स्पन्दनोंकी कुछ गतियां होती हैं, ये जातीय स्पंदन होते हैं, तुम जिस जातिके हो उस जातिकी विशेष गतियां होती हैं — अन्य जातियोंकी तरह

मनुष्योंकी भी एक जाति होती है। इनमेंसे कुछ गतिविधियां व्यक्तिगत गतिविधियां नहीं होतीं, वे जातिगत गतिविधियां होती हैं।

मानवजातिकी कुछ अपनी विशेष बातें होती हैं जिन्हें हम यंत्रवत् दोहराते जाते हैं, उदाहरणके लिये, सीधे होकर यूं चलना (संकेत), जब कि बिल्ली चारों हाथों-पैरोंपर चलती है। अपने पिछले दो पैरोंपर, सीधे खड़े होनेकी सहज-वृत्ति मनुष्यकी विशेषता है; यह जातिगत क्रिया है; जैसे हम सिर ऊपर करके बैठते हैं, पीठपर लेटते हैं....

तुम जानवरोंको देख सकते हो: वे प्रायः गुड़ी-मुड़ी होकर सोते हैं, है न? प्रायः सभी। मेरा ख्याल है कि मनुष्यके साथ ही पीठके बल सीधा सोना शुरू हुआ; मुझे बिलकुल नहीं लगता कि बंदर इस तरह सोते होंगे, मेरा ख्याल है कि वे दोहरे होकर सोते हैं। मनुष्यने ही इस तरहकी आदतें शुरू की हैं। इससे मुझे याद आता है...

मेरे पास एक बिल्ली थी — उन दिनों मैं फर्शपर सोया करती थी — वह हमेशा मच्छरदानीमें घुस आती और मेरे पास सो जाया करती थी। हां, तो यह बिल्ली बिलकुल सीधी होकर सोती थी, वह बिल्लियोंकी तरह न सोती थी, वह अपना सिर इस तरह रखकर मेरे पैरोंके पास, यूं सोती थी (संकेत), उसके अगले पांव ऐसे होते थे, और पिछले छोटे-छोटे पांव बिलकुल सीधे। और उसमें एक चीज बहुत, बहुत ही विचित्र थी जिसे मैंने एक रात यूं ही देखा। मैं अपने-आपसे पूछा करती थी कि यह ऐसा क्यों है। एक रात मैंने रूसी ग्रामीण स्त्रीको देखा जो बालोंवाली टोपी पहने थी और उसके साथ तीन बच्चे थे। इस स्त्रीको अपने बच्चोंके लिये एक प्रकारका विशेष मानका भाव था और वह हमेशा उनके लिये किसी आश्रयकी तलाशमें रहती थी; पता नहीं, मुझे वह कहानी नहीं मालूम, लेकिन मैंने देखा था कि उसके तीन छोटे बच्चे थे, बहुत छोटे, एक इतना, एक इतना, एक इतना (माताजी संकेतसे ऊंचाईमें फर्क दिखाती हैं, और वह उन्हें अपने साथ घसीट रही थी और किसी ऐसे कोनेकी तलाशमें थी जहां उन्हें सुरक्षित रख सके। उसे जरूर कुछ हो गया होगा, वह अचानक एक प्रकारकी सहज पाशविक मातृ-वृत्तिके साथ, भय, चिंता, मनोव्यथासे भरी हुई मर गयी होगी। यह चीज वहांसे आयी होगी और किसी-न-किसी तरह उसने यहां जन्म लिया होगा। यह एक गतिविधि थी — यह एक व्यक्तित्व नहीं था, वह एक गतिविधि थी जो इस व्यक्तिसे संबद्ध थी और वही इस बिल्लीमें आ गयी होगी। वह किसी-न-किसी कारणसे वहां थी, मुझे पता नहीं कि यह हुआ कैसे, मुझे इस बारेमें कुछ भी नहीं मालूम, परंतु यह बिल्ली अपने व्यवहारमें बिलकुल मनुष्य

जैसी थी। और उसके बाद, जल्दी ही, उसने तीन बच्चोंको जन्म दिया, यूं; यह बात असाधारण थी, वह उन्हें छोड़ना न चाहती थी, वह उन्हें छोड़नेसे इंकार करती थी। वह पूरी तरह . . . न वह खाती थी, न जरूरतें पूरी करनेके लिये इधर-उधर जाती थी, वह सदा बच्चोंके साथ रहती थी। एक दिन उसे कुछ विचार आया, किसीने कुछ कहा-सुना नहीं था। एक दिन उसने अपने एक बच्चेको गरदनकी खालसे पकड़-कर उठाया जैसे बिल्लियां किया करती हैं, और आकर मेरे पैरोंके बीचमें रख दिया; मैं हिली-डुली नहीं; वह लौट गयी, दूसरे बच्चेको लेकर आयी, उसी तरह रख गयी, वह तीसरेको ले आयी और उसी तरह रख दिया। जब तीनों बिलौटे वहां आ गये, तो उसने मेरी ओर देखा और म्याऊं करके चली गयी। बच्चे जननेके बाद वह पहली बार उन्हें छोड़-कर गयी थी। वह बगीचेमें गयी, वह अपनी जरूरतें पूरी करने और खानेके लिये गयी। वह शांत थी क्योंकि बच्चे मेरे पैरोंके बीचमें थे। जब उसके बच्चे हुए तो वह उन्हें स्त्रियोंकी तरह अपनी पीठपर ले जाना चाहती थी। जब वह मेरे पास सोती थी तो चित होकर। वह बिल्लीकी तरह कभी न रहती थी।

हां, तो यह जातिकी आदतें हैं, जातिकी गतिविधियां हैं। ऐसी और बहुत-सी हैं, यह एक उदाहरण है।

इस तरहके जानवर जो उस बिल्लीकी तरह असाधारण होते हैं, क्या वे मृत्युके बाद मानव शरीरमें आ जाते हैं?

ओ!

एक बिल्ली थी . . . पता नहीं उसका क्या नाम था; मेरे पास बहुत-सी बिल्लियां थीं, अब मुझे उनकी याद नहीं है। एकका नाम था 'कीकी'। वह इस बिल्लीका पहला बिलौटा था, और एक और था, इसीका दूसरा बेटा (यानी, जो दूसरी बार पैदा हुआ था) जिसका नाम था 'ब्राउनी'।

यह बहुत अच्छा था। यह बिल्लियोंकी बीमारीसे मरा था — जैसे कुत्तोंकी बीमारी होती है उसी तरह बिल्लियोंकी भी बीमारी होती है — पता नहीं उसे यह बीमारी कैसे लग गयी। वह बीमारीके दौरान अद्‌भुत था। मैं बच्चेकी तरह उसकी देखभाल कर रही थी। वह हमेशा एक तरहकी अभीप्सा प्रकट करता था। उसके बीमार पड़नेसे पहलेकी बात है . . . उन दिनों हम पुस्तकालय-भवनके एक कमरेमें ध्यान किया करते थे, वहां के एक कमरेमें — स्वयं श्रीअरविंदके कमरेमें। हम फर्श-

पर बैठा करते थे। कोनेमें एक आराम कुरसी रहती थी। जब हम ध्यानके लिये इकट्ठे होते तो यह बिल्ली आकर आराम कुरसीपर जम जाया करती थी, और वास्तवमें, समाधिमें चली जाती थी, उसमें समाधिकी गतिविधियां होती थीं; वह सोती न थी, वह खाती न थी, वह सचमुच समाधिमें चली जाती थी; उसके लक्षण दिखायी देते थे और आश्चर्यजनक गतियां करती थी जैसे स्वप्नस्थ जानवर करते हैं; वह उसमेंसे बाहर न आना चाहती थी, वह समाधि छोड़नेके लिये तैयार न होती थी, घंटों उसीमें रहती थी। लेकिन वह हमारे ध्यान शुरू करनेसे पहले कभी उस कमरेमें न आती थी। वह उस जगह जम जाती थी और ध्यानके सारे समय वैसे ही रहती थी। हम लोग तो खतम कर लेते थे, लेकिन वह ध्यानमें ही रहती थी, जब मैं उसे लेने जाती और उसे एक खास तरहसे बुलाती और उसे शरीरमें वापिस ले आती तभी वह जानेको राजी होती थी; अन्यथा चाहे जो आता और उसे पुकारता वह हिलतीतक न थी। हां, तो इस बिल्लीमें हमेशा एक बड़ी अभीप्सा रहती थी — मनुष्य बननेकी अभीप्सा, और वस्तुतः, जब उसने शरीर छोड़ा तो वह मानव शरीरमें चली गयी। हां, वह मनुष्यकी चेतनाका एक बहुत छोटा-सा भाग था। यह मानों इस दूसरी बिल्लीके साथ उस स्त्रीकी क्रियासे उल्टी क्रिया थी। लेकिन यह बिल्ली मानव शरीरके साथ संपर्क पानेके लिये बहुत-से जन्मोंको, यानी, बहुत-सी चैत्य अवस्थाओंको लांघ गयी। वह काफी सीधा-सादा मानव शरीर था, फिर भी, फिर भी...

बिल्लीके विकास और मानव सत्ताके विकासमें फर्क है...

ऐसा होता है... मेरा ख्याल है ये अपवादस्वरूप उदाहरण थे, फिर भी ऐसा हुआ तो था ही।

क्या इन उदाहरणोंमें चैत्य पुरुष सचेतन होता है?

अभीप्सा सचेतन होती है, हां, सचेतन। उसमें अभीप्सा बहुत सचेतन थी, बहुत सचेतन। यह एक गठित चैत्य नहीं होता, वैसा नहीं होता जैसा वह पूर्णतया स्वतंत्र सत्ता बनकर हो जाता है, यह वह नहीं है; यह एक अभीप्सा है, यह प्रगतिके लिये एक तीव्र अभीप्सा है — जैसा कि हम जानते हैं, हमारे अंदर मानव बने रहनेकी जगह अतिमानव बन जानेकी अभीप्सा है, तो यह उससे बिलकुल मिलती-जुलती चीज थी: वह मनुष्य बननेके लिये योग साधनेवाली बिल्ली थी।

यह शायद इसलिये होगा क्योंकि उसकी मांमें एक ऐसी चेतनाकी क्रिया,

रचना, निहित सत्ता थी जो मनुष्यकी थी; यह संभव है कि वह मानव जीवनके लिये एक विरह भावना छोड़ गयी थी जिसने उसकी अभीप्सा-को यह तीव्रता प्रदान की। परंतु उसने इसके लिये सचमुच योग किया था।

३० मार्च, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय पांच:
'भौतिक चेतना आदि'पर आधारित है।

मधुर मां, यहां लिखा है: "'योग-शक्ति' कुण्डलित या सोयी हुई रहती है..." उसे कैसे जगाया जा सकता है?

मेरा ख्याल है कि तुम जिस समय योग करनेका संकल्प करते हो उसी क्षण वह स्वाभाविक रूपसे जग जाती है। अगर संकल्प सच्चा और निष्कपट हो, तुम्हारे अन्दर अभीप्सा हो, तो वह अपने-आप जाग जाती है।

वास्तवमें, शायद उसके जागनेसे ही योग करनेकी अभीप्सा पैदा होती है।

यह संभव है कि यह भागवत 'कृपा' का परिणाम हो... या किसी बातचीतके बाद, या कुछ पढ़ने, किसी ऐसी चीजसे जिसने अचानक तुम्हारे अन्दर योग क्या है यह जानने और उसका अभ्यास करनेका विचार दिया या अभीप्सा दी। कभी-कभी किसीके साथ एक साधारण-सी बातचीत, किसी पुस्तकमें पढ़ा हुआ कोई परिच्छेद 'योग-शक्ति' को जगानेके लिये पर्याप्त होता है और यह तुम्हें योग करनेके लिये प्रवृत्त करता है।

शुरूमें तुम्हें उसका पता नहीं होता — बस, इतना लगता है कि हमारे जीवनमें कुछ बदल गया है, एक नया निर्णय लिया गया है, एक नया मोड़ आया है।

मधुर मां, यह 'योग-शक्ति' क्या चीज है?

यह प्रगतिकी ऊर्जा है। यह वह ऊर्जा है जो तुमसे योग करवाती है, तुमसे सचेतन रूपसे प्रगति करवाती है। यह एक सचेतन ऊर्जा है।

वस्तुत:, 'योग-शक्ति' योग करनेकी शक्ति है।

मधुर मां, क्या नीचेसे दिव्य शक्तियोंको खींचना ज्यादा कठिन नहीं है?

मेरा ख्याल है कि यह बिलकुल बेकार है।

कुछ लोगोंका ख्याल है कि ऊर्जाके और भी भंडार है — मैंने यह बहुत बार सुना है : ऊर्जाका बहुत बड़ा भंडार है — धरतीमें, और अगर वे इस ऊर्जाको अपने अंदर खींच सकें, तो वे बहुत कुछ कर सकेंगे; लेकिन वह हमेशा मिली-जुली होती है।

भागवत 'सत्ता' सब जगह है — यह मानी हुई बात है। और वस्तुत: न कोई ऊपर है, न नीचे। मेरा ख्याल है कि जिसे ऊपर और नीचे कहा जाता है वह चेतनाकी मात्राका, या भौतिकताका सूचक है : अधिक निश्चेतना है और कम निश्चेतना है, फिर वह है जिसे अवचेतना कहते हैं, और वह है जिसे अतिचेतन कहते हैं। भाषाकी सुविधाके लिये हम नीचे और ऊपरका प्रयोग करते हैं।

लेकिन वस्तुत:, यह धरतीसे ऊर्जा लेनेका विचार है जो अगर तुम खड़े हो, तो तुम्हारे पैरोंके नीचे होती है, यानी, तुम्हारी तुलनामें बहुत नीची होती है। लेकिन ये ऊर्जाएं सदा मिली-जुली होती हैं। अधिक-तर वे बहुत भयंकर रूपसे अंधेरी होती हैं।

कोई प्रश्न नहीं है?

(जिस बच्चेने पहला प्रश्न पूछा था उससे) तुम्हें कुछ और पूछना है?

मधुर मां, इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या होता है : "प्रकृतिके निचले भागों या क्षेत्रोंमें" उतर जाना।

यह यथार्थत:, अंधेरेमें उतर जाना है, प्रकाशसे दूर चले जाना है ताकि अंधकारके ज्यादा निकट हुआ जा सके, चेतनासे दूर चले जाना ताकि निश्चेतनाके निकट पहुंचा जा सके।

तुम्हें अपनी चेतनामें ऐसा लगता है मानों तुम अंधकार, सामान्य निश्चेतनसे ऊपर उठ रहे हो, अपने-आपको उठा रहे हो — क्योंकि साधारणत:, हमारा सिर सबके ऊपर होता है, और सिर बाकी शरीरसे ज्यादा सचेतन होता है —, ऐसा आभास होता है कि हमारे ऊपर महत्तर चेतना है। इसलिये जब तुम प्रगतिके लिये प्रयास करते हो, तो साथ-

ही-साथ ऊपर उठनेका प्रयास भी करते हो। कभी-कभी तुम्हें प्रतीकात्मक रूपमें यह भी लगता है कि तुम चोटीतक पहुंचनेके लिये पहाड़पर चढ़ रहे हो, यानी, जहांतक संभव हो प्रकाशके खुले विस्तारमें, अधिक शुद्ध क्षेत्रमें जानेकी कोशिश कर रहे हो। और अगर तुम सावधानी न बरतो, तो बिलकुल स्वाभाविक रूपसे, सहज रूपमें तुम फिरसे सामान्य चेतनामें लुढ़क पड़ते हो।

निम्न, अंधेरी, सामान्य चीजोंमें एक बहुत बड़ी आकर्षण शक्ति होती है। ऐसा आभास होता है कि तुम्हारे पांव दलदलमें खिंच रहे हैं... अमुक संपर्क, अमुक क्रियाएं, चेतनाकी अमुक गतिविधियां तुम्हें अंधेरे कीचड़-भरे छेदमें खिसकनेका आभास देती हैं।

प्रायः, जब तुम प्रयास करते और प्रगति कर लेते हो, तो तुम्हें लगता है कि अपने-आपसे ऊपर, अधिक साफ, अधिक शुद्ध, सच्चे प्रकाश और चेतनामें उठ रहे हो। लेकिन अगर तुम इस अभीप्साको बनाये न रखो और वह निश्चित रूपसे तुम्हारे अंदर बस न जाय, तो कोई बहुत छोटी-सी चीज — उदाहरणके लिये, किसी प्रकारका भौतिक असामंजस्य — या किसीसे मिलना, दो बातें करना, या निश्चेतन रूपसे की गयी कोई क्रिया इसके लिये काफी है कि तुम्हें किसी चीजके गिरनेका आभास दे; और फिर, तुम उस ऊंचाईको, उस प्रकाशको नहीं पकड़ पाते जहां तुम थे। इसलिये तुम्हें फिरसे अपने-आपको खींचना पड़ता है, ढलवां चढ़ाईपर चढ़ना और नीचेके आकर्षणसे बचना होता है। कभी-कभी इसमें समय लगता है; आदमी बहुत तेजीसे नीचे फिसल जाता है, पर साधारणतः वापिस ऊपर चढ़नेमें कुछ कठिनाई होती है।

यह ऐसा है जैसे अगर तुम भौतिक रूपसे योगकी पद्धतिसे किसी रोगके साथ युद्ध करो, तो वह बारी-बारीसे चला जाता है। हम कह सकते हैं कि तुम अपने-आपको उसमेंसे बाहर निकालनेमें सफल हो सकते हो, बीमारीसे अपने-आपको खींच सकते हो, उसके साथ अपना संबन्ध तोड़ सकते हो; और फिर, अचानक तुम बेचैनी, अव्यवस्था, गड़बड़के भावसे ऊपर उठ जाते हो और अनुभव करते हो कि तुम अच्छे हो गये हो। कभी-कभी उस चीजके वापिस आ जानेके लिये उसे याद कर लेना, जरा-से आश्चर्यकी क्रिया, वह जो थी उसकी याद-भर काफी है, और तुम्हें फिर नये सिरेसे काम शुरू करना पड़ता है। कभी-कभी तुम्हें तीन बार, चार बार, दस बार, बीस बार, फिर, फिर शुरू करना पड़ता है। और फिर, कुछ लोग एक बार प्रयास कर सकते हैं, लेकिन दूसरी बार वे अच्छी तरह नहीं करते, और तीसरी बार तो वे बिलकुल करते ही नहीं;

वे तुमसे कहते हैं: "आह, यह चीज गुह्य उपायोंसे ठीक नहीं की जा सकती, भागवत 'शक्ति' तुम्हें अच्छा नहीं करती, दवाइयां लेना ज्यादा अच्छा है।" तो इन लोगोंके लिये, डाक्टरके पास जाना ज्यादा अच्छा है, क्योंकि इसका अर्थ है कि उनके अंदर आध्यात्मिक अध्यवसाय नहीं है, और केवल भौतिक उपाय ही उन्हें अपने प्रभावका विश्वास दिला सकते हैं।

जब तुम भौतिक जीवनकी कोई चीज बदलना चाहो, वह अंगोंकी क्रिया-का स्वभाव हो या आदतें, तुम्हे स्थिर अध्यवसायके साथ वही चीज, उसी तीव्रताके साथ सौ बार करनेके लिये तैयार रहना चाहिये जिस तीव्रता-से पहली बार प्रयास किया था, और इस तरह करना चाहिये मानों पहले कभी न किया हो।

जो लोग छुई-मुई होते हैं, वे यह नहीं कर सकते। लेकिन अगर तुम यह नहीं कर सकते, तो योग भी नहीं कर सकते, कम-से-कम पूर्ण योग तो नहीं, तुम अपना शरीर नहीं बदल सकते।

अपना शरीर बदलनेके लिये, तुम्हें एक ही चीज लाखों बार करनेके लिये तैयार रहना चाहिये, क्योंकि शरीर आदतों और रूढ़िबद्ध क्रियाओं-का प्राणी है, और नैत्यिक चर्याको नष्ट करनेके लिये बरसों अध्यवसाय करना पड़ता है।

बस ?

यह पाठसे बाहरका प्रश्न है।

कोई हर्ज नहीं है, वत्स।

मधुर मां, सच्ची आत्मा और चैत्य पुरुष एक ही हैं क्या ?

नहीं।

सच्ची आत्मा वह है जिसे सत्ताका सत्य भी कहते हैं। वह तुम्हारा परमार्थ तत्त्व है। भागवत तत्त्व ही तुम्हें एक पृथक् व्यक्तित्व बनाता है, साथ-ही-साथ वह एकमेव 'सत्ता' का भाग और स्वभावतः, स्वयं एक-मेव 'सत्ता' भी है; यानी, एक ऐसा विशेष पहलू होनेके साथ-साथ जो तुम्हें व्यक्ति बनाता है, वह 'एकमेव' का संपूर्ण भाग भी है जो तुम्हें उस 'एक' का वस्तुगत रूप बनाता है।

यह है सच्ची आत्मा या सच्चा स्व। चैत्य पुरुष एक पार्थिव रचना

है। मनुष्योंके अंदर ऐसी चैत्य सत्ता होती है जो धरतीपर, पार्थिव जीवनद्वारा विकसित होती है, वह 'जड़ भौतिक' तत्त्वमें भागवत 'चेतना'-का प्रक्षेपण है जो उसे तमस्‌में‌से जगानेके लिये आता है, ताकि वह फिरसे भगवान्‌की ओर लौटनेका रास्ता अपना ले।

परंतु कुछ उदाहरणोंमें सच्ची आत्मा चैत्य पुरुषमें ही पायी जाती है, यानी, चैत्य पुरुषमें ही निवास करती है — लेकिन हमेशा नहीं।

चैत्य पुरुषमें एक दिव्य 'सत्ता' हमेशा रहती है, परंतु यह वह दिव्य 'सत्ता' है जो चैत्य रचनाके शुरूमें थी, यह दिव्य 'चेतना' का निर्गत अंश है, जब कि सच्ची आत्मा कोई पार्थिव रचना नहीं है। यह पार्थिव रचनाके पहलेसे ही होती है।

तो बस अब? और कोई प्रश्न नहीं है? तुम्हें अब भी कुछ पूछना है? पूछ सकते हो।

मधुर मां, दिनमें जब हमारे सामने कोई कठिनाई हो और आपसे मिलना या आपसे बात करना संभव न हो तो क्या करना चाहिये ?

अगर यह बिलकुल संभव न हो तो तुम एकदम अकेले, चुपचाप बैठ जाओ, नीरव होनेकी कोशिश करो, बुलाओ, मुझे इस तरह बुलाओ मानों मैं मौजूद हूं। मुझे वहां बुला लो और पूरी सचाई और तटस्थतासे अपनी कठिनाई मेरे सामने रखो; और फिर, बिलकुल नीरव रहो, बिलकुल चुप-चाप रहो और परिणामके लिये प्रतीक्षा करो।

और मेरा ख्याल है कि परिणाम आता है। यह कठिनाईकी प्रकृति-पर निर्भर है। अगर कोई ऐसी समस्या है जिसका हल करना है, तो हल आ जाता है; अगर वह कोई आंतरिक गतिविधि है, कोई ऐसी चीज है जो पथ-भ्रष्ट हो गयी है, तो अगर तुम पूरी सचाईके साथ यह करो, तो सामान्यतः, चीजको अपने रास्तेपर वापिस रख दिया जाता है; और अगर कोई निर्णय करना है, अगर कोई ऐसी चीज है जिसके बारेमें तुम्हें पता नहीं कि उसे करना चाहिये या नहीं, तो अगर तुम बहुत शांत हो, तो यह भी पता लग जाता है कि उसका उत्तर हां या ना होता है; उत्तर "हां" या "ना" में आता है। तब तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिये, मनको यह न कहना चाहिये : "लेकिन अगर . . . ? और फिर . . . ", क्योंकि तब सब कुछ धुंधला हो जाता है। तुम्हें कहना चाहिये : "अच्छा !" और इस तरह अनुसरण करना चाहिये। लेकिन इसके लिये

तुम्हें सच्चा और निष्कपट होना चाहिये, मतलब यह कि तुम्हारे अंदर पसंद-नापसंद न होनी चाहिये।

जब कठिनाई इस कारण आती है कि सत्ताका एक भाग एक चीज चाहता है और दूसरा भाग जानता है कि वह चीज न मिलनी चाहिये, तो चीज ज्यादा जटिल हो जाती है, क्योंकि जो भाग चाहता है वह उत्तरमें अपनी ही इच्छाको घुसा देनेकी कोशिश कर सकता है। तो जब तुम बैठो तो पहले तुम्हें उसे इस बातके लिये मनानेसे शुरू करना चाहिये कि वह सचाईके साथ समर्पण करे, और इसमें तुम सच्ची प्रगति कर सकते हो, तुम कह सकते हो: "अब मैं सचेतन हूं कि मैं यह चाहता हूं, लेकिन अगर इस कामनाको छोड़ना जरूरी हो तो मैं इसे छोड़नेको तैयार हूं।" लेकिन तुम्हें यह सिर्फ अपने सिरमें ही नहीं करना चाहिये, यह चीज सचाईके साथ की जानी चाहिये, उसके बाद तुम उस तरह आगे बढ़ो जैसे मैंने अभी कहा। तब तुम जान जाओगे — जान जाओगे कि क्या करना चाहिये।

कभी-कभी लिख लेनेसे ज्यादा आसानी होती है; तुम कल्पना करो कि मैं उपस्थित हूं, तब एक कागज लो, और मुझसे जो कहना चाहते हो वह उसपर लिख लो। कभी-कभी उस चीजको स्पष्ट रूपसे प्रतिपादित करने-का तथ्य ही तुम्हें स्थितिका सच्चा चित्र देता है, और तुम ज्यादा आसानीसे उत्तर पा सकते हो। यह कई बातोंपर निर्भर है, कभी-कभी यह जरूरी होता है, कभी नहीं भी होता, लेकिन अगर तुम उलझनमें हो, एक प्रकारके बगूलेमें हो, या उससे भी बढ़कर प्राण उमड़-घुमड़ रहा हो, तो अपने-आपको कागजपर लिखनेके लिये बाधित करनेका तथ्य ही तुम्हें शांत कर देता है, इससे शुद्धिका काम शुरू हो जाता है।

वस्तुतः, जब तुम्हें लगे कि तुम किसी-न-किसी तरहके आवेगमें फंस गये हो, विशेष रूपसे क्रोधके आवेगमें, तो तुम्हें यह हमेशा करना चाहिये। अगर तुम अपने लिये यह निश्चित अनुशासन बना लो, कि कुछ करने या बोलनेकी जगह (क्योंकि बोलना भी एक क्रिया है), आवेगमें आकर क्रिया करनेकी जगह, तुम पीछे हट जाओ और तब जैसा मैंने कहा वैसा करो, चुपचाप बैठ जाओ, एकाग्र होकर चुप, और अपने क्रोधको देखो और उसको लिख लो, तो जब तुम लिखना खतम करोगे, तबतक वह चला जायगा — बहरहाल — अधिकतर ऐसा ही होगा।

६ अप्रैल, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय पांच :
'भौतिक चेतना आदि' पर आधारित है।

मधुर मां, यह फ्रायडका मनोविश्लेषण क्या है ?

ओह, यह एक ऐसी चीज है जिसका फैशन था, इस शतीके आरंभमें बहुत फैशन था . . . नहीं, शतीके बीचमें !

(माताजी पवित्रकी ओर मुड़ती हैं) पवित्र, तुम जानते हो यह फैशन कब था ?

(पवित्र) शतीके आरंभमें।

शतीके आरंभमें, हां, यही।

इसके बारेमें श्रीअरविंद कहते हैं : यह भयानक, व्यर्थ, अज्ञानपूर्ण और छिछला है; और यह फैशन था क्योंकि लोग ऐसी चीजें पसंद करते हैं, यह ठीक उन चीजोंके साथ मेल खाती है जो उनकी प्रकृतिमें अशोभन हैं। तुम जानते हो कि बच्चोंको कीचड़में उछलना-कूदना कितना पसंद होता है ! तो बड़े लोग उनसे खास अच्छे नहीं होते। चलो !

मधुर मां, "अंतस्तलीय सत्ता" का ठीक-ठीक अर्थ क्या है ?

अच्छा, यहां वे कहते हैं, है न ? यह वह सत्ता है जो पीछे रहती है। मेरा ख्याल है कि यह वह है जिसे हम सूक्ष्म भौतिक, सूक्ष्म प्राणिक, सूक्ष्म मन कह सकते हैं। यह कोई ऐसी चीज है जो अभिव्यक्तिके पीछे रहती है। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि जो अभिव्यक्त है वह एक परतकी तरह है, किसी पपड़ीकी तरह है, यह एक छिलका है; हम इसी-को देखते हैं और इसीके साथ हमारा संपर्क होता है। और यह किसी चीजको ढके रहता है। यह किसी ऐसी चीजको ढकता या प्रकट करता है जो अधिक सूक्ष्म है और जो सहारेका काम देती है।

जब तुम स्वप्न देखते हो, तो तुम बहुधा अपनी अंतस्तलीय सत्तामें चले जाते हो, वहां चीजें लगभग एक-सी होती हैं और लगभग एक-सी

नहीं भी होतीं; उनमें बहुत ज्यादा सादृश्य होता है और फिर भी एक अंतर होता है; और साधारणतः यह बहुत बड़ा अंतर होता है। तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम किसी ऐसी चीजमें प्रवेश कर रहे हो जो अधिक विशाल है; उदाहरणके लिये, तुम्हें लगता है कि तुम अधिक कर सकते हो, तुम अधिक जानते हो, कि तुम्हारे अंदर एक ऐसी शक्ति और ऐसी सूक्ष्म दृष्टि है जो साधारण चेतनामें नहीं होती; सपने देखते समय तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम जाग्रत अवस्थाकी अपेक्षा बहुत अधिक जानते हो। है ना? ऐसा नहीं होता? तुम ऐसे सपने नहीं देखते? ... जब तुम सपने देखते हो, और जब तुम बहुत ज्यादा जानते हो तो उदाहरणके लिये, तुम्हें लगता है कि तुम चीजोंके गुप्त कारण, प्रकट गतिविधिके बारेमें ... उन सब चीजोंको, तुम्हें लगता है तुम उन्हें जानते हो। उदाहरणके लिये, जब तुम किसीका स्वप्न देखते हो, तो तुम ज्यादा अच्छी तरह जानते हो कि वह क्या सोचता है, वह क्या चाहता है और इस तरहकी सभी चीजोंको तुम जाग्रत संपर्ककी अवस्थासे ज्यादा अच्छी तरह जानते हो। यह तब होता है जब तुम अंतस्तलीय चेतनामें प्रवेश करते हो। बहुधा तुम अंतस्तलीय चेतनामें स्वप्न देखते हो।

क्या अंतस्तलीय चेतनाका चैत्यके साथ संपर्क होता है?

सीधा नहीं, बाहरकी अपेक्षा ज्यादा सीधा नहीं। अगर बाह्य रूपसे, अपनी साधारण चेतनामें तुम्हारा अपने चैत्य पुरुषके साथ संपर्क है, तो यह भी चैत्यके साथ संपर्क रखती है, हम इसे और तरहसे कह सकते हैं: अगर इसका चैत्य पुरुषके साथ संपर्क है, तो यह तुम्हें चैत्य पुरुषके साथ नाता जोड़नेमें सहायता देती है, लेकिन आवश्यक रूपसे नहीं, हमेशा नहीं; यह सत्ताके विकासकी अवस्थापर निर्भर है। यह जरूरी नहीं है कि यह अधिक प्रकाशित, अधिक संतुलित हो — नहीं। यह ज्यादा सूक्ष्म है, यह हमारी बाह्य चेतनाकी अपेक्षा कम छिछली है। हमारी बाह्य चेतना इतनी छिछली है, उसमें गहराई नहीं होती; जैसे हमारे बाहरी बोधमें गहराई नहीं होती, हमारे संवेदनोंमें गहराई नहीं होती; यह सब ऐसे है मानों सब कुछ छिछला हो। तो, यह अधिक भरी होती है, लेकिन अनिवार्य रूपसे अधिक सच्ची नहीं होती।

तो फिर यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों होती है?

क्योंकि यह आंतरिक है। यही बाह्यको सहारा देती है। बाह्य केवल इसका आभास मात्र है। जैसा मैंने कहा, स्वप्नमें जब तुम वहां (अंतस्तलमें) जाते हो, तो तुम ऐसी चीजें जानते हो जिन्हें तुम नहीं जानते थे, ऐसी चीजें कर सकते हो, ऐसी चीजोंके संपर्कमें होते हो जिन्हें तुम जाग्रत् अवस्थामें नहीं पहचानते, क्योंकि यह बहुत ज्यादा उथली होती है।

यह किसी चीजके आंतरिक भागकी तरह है। बाह्य इसीकी अभिव्यक्ति है, लेकिन केवल ऊपरीतलकी अभिव्यक्ति। तो स्वभावतः, इनमें एक समानता दीखती है; जो हर हालतमें समरूपतासे बढ़कर होता है, हम उसके बाह्य रूपमें जो देखते हैं उसके साथ एक तादात्म्य होता है। हम आकार देखते हैं, एक अभिव्यक्ति देखते हैं; हां तो, यह अभिव्यक्ति अनिवार्य रूपसे जो अंदर है उसके अनुरूप — बल्कि अनुरूपसे बढ़कर — पूरी तरह समान होती है। तो अगर हम देखें कि कोई व्यक्ति, बाह्य रूपसे, अपने चैत्यके बारेमें एकदम अज्ञानमें है तो यह असंभव है कि वह आंतरिक रूपसे पूरी तरह सचेतन हो; वह उसके (चैत्यके) ज्यादा नजदीक हो सकता है, लेकिन यह नहीं हो सकता कि उसे चैत्य चेतना तो प्राप्त हो पर वह उसकी बाह्य सत्तामें उसकी झलक तक न पाये। अतः अगर बाह्य सत्तामें उसकी झलक न दिखायी दे, तो इसका अर्थ है कि वह अंदर भी ठीक तरहसे स्थापित नहीं हुई है।

समझे, नहीं ?

बहुत अच्छी तरह नहीं।

तो क्या किया जाय ? इसी विषयका कोई और प्रश्न करो। शायद तब तुम समझ पाओ।

क्या अंतस्तलीय अहं वही चीज है ?

वत्स, अगर तुम ऐसी बातें पूछना शुरू करो, तो तुम्हें उन सज्जनसे पूछना चाहिये जो तुम्हारे पीछे बैठे हैं (नलिनी), क्योंकि मैं ऐसी बातें भूल जाती हूं।

यहां अंतस्तलीय अहंकी बात कहां की गयी है ?

"अंतस्तलीय अहं पीछे रहता और पूरे बाह्य मनुष्यको सहारा देता है..."

मैं तुमसे यही तो कह रही थी। मैं तुमसे यही तो कह रही थी। इसे कैसे समझाया जाय ?

(लंबा मौन)

शायद यह — शायद — कोई ऐसी चीज है जैसे किसी फलका स्वाद। तुम एक फल देखते हो, उसका एक रूप है, उसका एक खास रंग है, वह एक खास तरहका लगता है, लेकिन उसका स्वाद तबतक भली-भांति नहीं जान सकते जबतक कि तुम उसे चख न लो, यानी, तुम उसके अन्दर प्रवेश न करो। यह कुछ ऐसी ही चीज है, इसीके सदृश।

या जैसे घड़ीमें — इस बातका ख्याल रखो कि यह केवल तुम्हें समझानेके लिये है, चीज ऐसी है नहीं, यह सिर्फ इस बातकी कोशिश है कि मैं तुम्हें अपनी बात समझा सकूं — जब तुम एक घड़ी देखते हो, तो तुम एक डायल देखते हो और सूइयोंको चलते देखते हो, लेकिन अगर तुम घड़ीको जानना चाहो तो तुम्हें उसे खोलना और उसकी अंदरकी क्रियाको देखना होगा।

यह कुछ-कुछ ऐसी चीज है — तुम यहां केवल कार्य देखते हो; कारण उसके पीछे रहता है। यह कुछ-कुछ ऐसा है।

संसारको और अपनी बाह्य चेतनाको हम जिस रूपमें देखते हैं वह उस वस्तुका प्रभाव है जो पीछे है, जिसे श्रीअरविंद अंतस्तल कहते हैं। और वह भी, जैसा कि वे कहते हैं, निचली अवचेतना और ऊपरी अतिचेतनासे आनेवाले आवेगोंसे संचालित होता है, मानों ये सब वहां इकट्ठे हो जाते हैं, और एक बार वहां व्यवस्थित हो जानेपर वह बाहरी चेतना, साधारण चेतनामें अभिव्यक्त होता है।

सबसे अच्छा तरीका है वहां जाना; एक बार वहां जानेपर तुम यह समझ जाओगे कि वह क्या है। और यह कठिन नहीं है; व्यक्ति वहां बड़ी आसानीसे और बिना प्रयासके सपनोंमें काफी नियमित रूपसे जाता है।

यह कैसे जाना जाय कि हम वहीं गये हैं?

अगर तुम्हें याद रहे, तो तुम समझ सकते हो। अगर तुम उस संस्कारके भेदको याद रखो तो (वहां एक प्रकारका संस्कार पड़ता है, और) लौटते समय तुम्हें चिटकनी खुलनेका-सा अनुभव होता है। संस्कार भिन्न हो

जाता है, यहांतक कि जिस दृष्टिकोणसे पहले तुम वस्तुओंको देखते थे वह भी बदल जाता है। अगर तुम इसे याद रखो, तो समझ लोगे। इसके अलावा, अगर तुम्हें ऐसी आदत हो, बातें करते समय, या कुछ भी करते समय, — विशेषकर जब तुम बातें कर रहे हो, कुछ सोच रहे हो या किसी चीजपर विचार कर रहे हो — तो तुम भली-भांति यह देख सकते हो कि सबके पीछे एक और परत है जो बाहरी चेतनाकी अपेक्षा कहीं अधिक विशाल होती है और जहां चीजें बहुत ज्यादा समन्वयके साथ व्यवस्थित होती हैं (यद्यपि प्रत्यक्ष रूपमें बोधगम्य नहीं)। अगर तुम जरा-सा सोचो और अपने-आपको विचार करते हुए देखो, तो तुम उसे (अंतस्तलको) आसानीसे पीछे देख सकोगे, तुम दोनों चीजोंको एक साथ गति करते हुए, यूं (संकेत), देख सकोगे . . . जैसे, विचार कैसे रूप लेते हैं और उनके पीछे विचारोंका जो स्रोत है। और फिर जब तुम सोचते हो तो तुम्हें यूं लगता है मानों तुम किसी चीजमें बंद हो; जब कि वहां तुरंत तुम्हें ऐसा लगता है मानों तुम्हारा और बहुत-सी चीजोंके साथ संपर्क है; और वह बहुत अधिक विशाल है।

मधुर मां, सच्चा मनोविज्ञान कैसा होना चाहिये ?

सच्चा मनोविज्ञान, सच्चे मनोविज्ञानसे तुम्हारा क्या मतलब है ?

क्योंकि यहां कहा है . . .

श्रीअरविंद कहते हैं कि यह सच्चा मनोविज्ञान नहीं है, उन्होंने कहा है कि आधुनिक मनोविज्ञान ज्ञानहीन है। सच्चा मनोविज्ञान वह मनोविज्ञान होगा जिसमें ज्ञान हो।

मनोविज्ञान (साइकोलौजी)[1] का मतलब है . . . "लोगोस" का ठीक-ठीक अर्थ क्या है ? "लोगोस" का अर्थ है जानना, विज्ञान; और "साइकी" का अर्थ है अंतरात्मा। अतः इसका मतलब हुआ आत्माका विज्ञान या चैत्यका विज्ञान। मौलिक अर्थ यही है। अब इसका अर्थ कर दिया गया है सभी आंतरिक गतिविधियोंका ज्ञान, सभी संवेदनोंका, ऐसी सभी आंतरिक गतिविधियोंका जो शुद्ध रूपसे भौतिक नहीं हैं, वह सब जिस-

---

[1]माताजी जिस अर्थमें "साइकोलौजी" शब्दका प्रयोग कर रही हैं उस अर्थमें हमें "आध्यात्म ज्ञान" कहना चाहिये। (अनु०)

का भावनाके साथ संबन्ध है, विचार, और सूक्ष्म संवेदनका भी ज्ञान। मगर सच्चा मनोविज्ञान है अंतरात्माका ज्ञान, यानी, चैत्य पुरुषका ज्ञान। और अगर तुम्हें चैत्य पुरुषका ज्ञान हो, तो साथ-ही-साथ तुम्हें सत्ताकी सभी सच्ची गतिविधियोंका, आंतरिक सत्ताके विधि-विधानका ज्ञान होगा। यह है सच्चा मनोविज्ञान (साइकोलौजी)। लेकिन यह व्युत्पत्तिके अनुरूप शब्दका असली अर्थ है, प्रचलित अर्थ नहीं।

प्रकृतिके निम्न भागोंमें प्रकाशको उतारनेकी अपेक्षा, अपने-आप उतरना क्यों कम आसान होता है?

ओह! इसके बारेमें है? यह सिद्धांतोंकी बात है। क्या मैंने आज यह पढ़ा है?

नहीं, माताजी, पिछली बार... "अधिक आसान"!... यह मेरी भूल थी। वहां "अधिक आसान" है....

अच्छा, तो उस वाक्यको फिरसे स्पष्टताके साथ पढ़ो।

प्रकृतिके निम्न भागोंमें प्रकाशको उतारनेकी अपेक्षा अपने-आपको उतारना क्यों आधिक आसान होता है...

ऐसा लिखा है?

जी, मुझे पता नहीं।

तुम्हें नहीं मिल रहा?

शायद उल्टा हो...

शायद उल्टा हो!...

यह यहां नहीं लिखा है।

यह नहीं लिखा है? तो तुमने कहांसे जुटा लिया?

अगर तुम अपनी प्रकृतिके निम्न भागों या क्षेत्रोंमें उतरो तो तुम्हें हमेशा सावधानीके साथ जाग्रत् संपर्क बनाये रखना चाहिये . . . .

लेकिन यहां इसके अधिक सरल या अधिक कठिन होनेका तो प्रश्न ही नहीं है। यह कहना क्या चाहती है?

(पवित्र) **यहां एक अनुच्छेद है: "अगर तुम अपनी प्रकृतिके निम्न भागों या क्षेत्रोंमें उतरो तो तुम्हें हमेशा इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये कि चेतनाके उच्चतर स्तरोंके साथ जाग्रत् संपर्क बना रहे" आदि। और बादमें: "सबसे अधिक निश्चित उपाय है चेतनाकी उच्चतर भूमिकामें निवास करना और वहांसे निम्नतर भूमिकापर बदलनेके लिये दबाव डालना।"**

हां, लेकिन तुमने जो पूछा है उसके साथ इसका तो कोई संबन्ध नहीं है।

यथार्थ रूपमें सबसे अधिक सुरक्षित उपाय है उसमें न उतरना, ऊपर ही रहना और वहींसे नीचेकी चीजपर दबाव डालना। लेकिन अगर तुम नीचे उतरो तो ऊपरकी भूमिकाके साथ संपर्क बनाये रखना बहुत कठिन होता है; वहां अगर तुम भूल जाओ तो फिर कुछ भी नहीं कर सकते, तुम जिस भागमें उतरते हो उसी जैसे बन जाते हो। यह एक ऐसी चीज है जिसे करना बहुत कठिन है, इसके विपरीत, ज्यादा अच्छा यही है कि अपनी उच्चतर चेतनामें निवास करो और वहींसे, नीचे उतरे बिना निचली चेतनाकी गतिविधिपर क्रिया करो।

यह ऐसा है जैसे, उदाहरणके लिये, तुम्हें लगे कि अवचेतनासे क्रोध चढ़ रहा है; अगर तुम उसपर संयम करना चाहते हो तो तुम्हें अपने-आपको उसके साथ एक होनेसे बचाना चाहिये। तुम्हें उसके भीतर न उतरना चाहिये। तुम्हें अपनी चेतनामें उदात्त, शांत और स्थिर बने रहना चाहिये और वहींसे इस क्रोधको देखना चाहिये और फिर उसपर प्रकाश और शांति डालनी चाहिये, ताकि वह शांत हो जाय और गायब हो जाय। लेकिन अगर तुम उसके साथ एक हो जाओ, तो तुम भी गुस्सेमें आ जाते हो, तुम उसे नहीं बदल सकते।

कोई बात? कुछ नहीं! कहींसे नहीं। किसीको कुछ नहीं कहना? कुछ नहीं! वहां? नहीं? बस, खतम? तुम सब विश्वस्त हो? अच्छा, अगर तुम सब विश्वस्त हो तो हम बंद करते हैं।

(जिस बच्चेने प्रश्न किया था उससे) तुम्हें और कुछ पूछना था?

ओह, उसने बहुत सारे प्रश्न तैयार किये हैं। लेकिन उस तरहके नहीं! तुम्हें कुछ पूछनेसे पहले कम-से-कम मूल पाठको समझना चाहिये। हां, तो तुम्हारा दूसरा प्रश्न क्या है?

आपने पिछली बार जो पढ़ा था, यह उससे संबंध रखता है: वहां "एक उच्चतर चेतनाके स्तर" की बात है जो "पुनरुज्जीवित हो चुका है"।

हां, तो फिर?

में नहीं समझ पायी।

तुम क्या नहीं समझ पायीं? तुम्हें पता नहीं है कि "पुनरुज्जीवित" किसे कहते हैं?

जी हां, जो पहले था उसका फिरसे पैदा होना...

पुनरुज्जीवितका मतलब है रूपांतरित, जिसे पूर्ण, शुद्ध और ज्योतिर्मय कर दिया गया हो। तो यह प्रश्न है चेतनाकी सभी भूमिकाओंपर, सबसे अधिक जड़से लेकर सबसे अधिक सूक्ष्मतक।... चेतनाकी इन भूमिकाओं-पर कुछ भाग दूसरोंकी अपेक्षा ज्यादा प्रकाशमय होते हैं।

हां, तो फिर, तुम्हारा प्रश्न क्या है? तुम जानना चाहती हो कि तुम्हारी सत्तामें सबसे अधिक प्रकाशमय भाग कौन-से हैं?

जी हां।

ओह! चलो देखें, हम इस तरहका एक छोटा-सा खेल खेल सकते हैं:

प्रत्येक व्यक्तिमें वह कौन-सा भाग है जिसे भागवत 'कृपा' में पूरी-पूरी श्रद्धा है?

चैत्य।

ओह, नहीं! मैं अनुभूतिकी बात कर रही हूं, मैं शाब्दिक ज्ञानकी बात नहीं कर रही। मैं कहती हूं... तुममेंसे हर एकमें वह कौन-सा भाग

है जहां तुम्हें भागवत 'कृपा' पर पूरी-पूरी श्रद्धा है? यह भौतिक रूपमें हो सकती है, प्राणिक रूपमें हो सकती है, यह चैत्य रूपमें हो सकती है, यह किसी एक अंश या दूसरे अंश, एक क्रिया या किसी और क्रियामें हो सकती है। उदाहरणके लिये, ऐसे लोग होते हैं, जिन्हें भागवत 'कृपा' में श्रद्धा होती है, भागवत 'कृपा' के साथ पूरी तरहसे, एक प्रकारके मानसिक संबन्धकी अनुभूति होती है; और फिर जैसे ही वे अपनी प्राणिक या भौतिक चेतनामें आते हैं, तो कुछ भी नहीं रहता। इसके विपरीत, कई ऐसे होते हैं जिन्हें भौतिक रूपमें, अपने भौतिक शरीरमें... ऐसा हो सकता है कि उनमें मानसिक ज्ञान अधिक न हो, लेकिन अपनी भौतिक चेतनामें उन्हें भागवत 'कृपा' पर निरपेक्ष श्रद्धा होती है, उन्हें एक पूर्ण विश्वास होता है, और वे उस विश्वास और श्रद्धामें इसी तरह जीते हैं। कइयोंमें यह केवल उनकी गंभीर भावनाओंमें ही होता है; और उनके विचार घुमक्कड़ होते हैं। ऐसे लोग भी होते हैं जिन्हें प्राणिक श्रद्धा होती है—ऐसे विरले ही होते हैं, लेकिन होते जरूर हैं—जिन्हें काफी प्रबल भावसे भागवत 'कृपा' में प्राणिक श्रद्धा होती है कि सब कुछ हमेशा पूरी तरह अच्छा होगा।

परीक्षणके तौरपर, क्या तुमने कभी इस छोटे-से व्यायामको नहीं किया? पहली बात तो यह है कि क्या तुम्हें भागवत 'कृपा' पर श्रद्धा है?

जी हां।

है! ठीक है, यह अपने-आपमें अच्छा है। हां, तो फिर, तुम्हारी सत्ताके किस भागमें? क्या तुम्हारे विचारोंमें, क्या तुम्हारी भावनाओंमें, क्या तुम्हारे संवेदनोंमें या तुम्हारी भौतिक क्रियाओंमें? अगर एक साथ इन इन सभीमें (श्रद्धा) है, तो तुम पूर्ण सत्ता हो, और मैं तुम्हें बधाई देती हूं।

संवेदनाओंमें।

संवेदनाओंमें? तुम्हें इसका संवेदन होता है? तो तुम बहुत विरल व्यक्ति हो! (हंसी)

नहीं, वह भावनामें है।

ओह, भावनामें, यह और ही बात है। साधारणतः, वह भावनामें होती

है, कुछ ऐसे लोग होते हैं जिन्हें पहले विचारोंमें श्रद्धा होती है, जिनमें एक तरहका मानसिक ज्ञान होता है, बस, इतना ही, वह वहीं रुक जाता है। और ऐसे लोग भी होते हैं जिनमें श्रद्धाकी भावना होती है लेकिन मानसिक अनुभूति नहीं होती, उनका मस्तिष्क ऐसा होता है...

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कभी हमारे अंदर श्रद्धाकी भावना उठे और कभी विचार ?

यह एक और ही तथ्य है। इसका यह अर्थ है कि भागवत 'कृपा' पर यह श्रद्धा, यह विश्वास चैत्यमें है — वहां, पीछे, इस तरह, हमेशा चैत्यमें स्थित है। इसलिये कभी उसका भाव उठता है तो कभी विचार, या कभी-कभी स्वयं शरीरका भी चैत्यके साथ संबन्ध होता है, जो बिना जाने भी चैत्यसे प्रभावित रहता है; और ऐसे समय इस तरहका विश्वास, इस तरहकी श्रद्धा यूं आगे आती हैं। दोनों शरीरको सहारा देते हैं। यह तब होता है जब चैत्यके साथ तुम क्षणिक संपर्कमें आते हो। उदाहरणके लिये, जब तुम स्वयंको किसी बड़ी मुसीबतमें या किसी भयंकर भौतिक संकटमें पाओ और अचानक उस शक्तिको, श्रद्धाकी शक्तिको, तुम्हारी सहायता करनेवाली भागवत 'कृपा' पर परम विश्वासकी शक्तिको, अपने अंदर प्रवेश करता हुआ अनुभव करो तो इसका यह अर्थ है कि तुम्हारा चैत्यके साथ सचेतन संबन्ध है और यह, यह तुम्हारी सहायताके लिये आता है — इसे विशेष रूपसे की गयी कृपा कहते हैं। ऐसी स्थिति यहां बहुधा होनी चाहिये, क्योंकि प्रत्येकके अंदर यह संबन्ध स्वेच्छापूर्वक, सचेतन रूपसे, सारे समय स्थापित रहता है। अतः ऐसी स्थिति यहां बहुधा होनी चाहिये, यहांके लिये यह बिलकुल सामान्य है। इसका यह अर्थ है कि तुम्हारा जो भाग क्रियाशील है या उस क्षणकी जो आवश्यकता है उसके अनुसार, यह यहां भी हो सकता है, या वहां भी, या कहीं और, अचानक तुम्हें यह विश्वास अपने अंदरसे उठता हुआ प्रतीत होता है और यह तुम्हारी रक्षा करता है। तो बात ऐसी है।

बस !

१३ अप्रैल, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय पांच :
'भौतिक चेतना आदि' पर आधारित है।

हां, तो किसीके पास कोई प्रश्न है ?

> **मधुर मां, यहां लिखा है : "इन मनोविश्लेषकोंको जरा भी गंभीरतासे लेना मुझे मुश्किल लगता है . . ."**

इसका मतलब यही है कि वे उनपर व्यंग्य कर रहे हैं, बस इतना ही।

> (बालक आगे पढ़ना जारी रखता है) . . . **"जब वे अपनी टार्चकी टिमटिमाती चमकसे (जेबी दीपकसे) आध्यात्मिक अनुभूतिकी टोह लेनेकी कोशिश करते हैं . . ."**

". . . जेबी दीपक"। यह एक मजाक है; इसका मतलब यह है कि यह एक छोटी, बेकार-सी रोशनी है और वे सोचते हैं कि इस रोशनीके द्वारा, जो एक छोटे-से जेबी दीपकसे अधिक कुछ नहीं है, वे आध्यात्मिक अनुभवोंका मूल्यांकन कर सकते हैं; यानी, एक ऐसी चीजके द्वारा जिसमें कोई बल नहीं है। यह एक मजाक है।

लेकिन तुम पूछना क्या चाहते थे ?

> **यहां, "जेबी दीपककी टिमटिमाती चमकसे आध्यात्मिक अनुभूति" . . .**

हां, यही, इसका मतलब यह है कि वे आध्यात्मिक अनुभूतियोंका मूल्यांकन अपनी जेबी रोशनीसे करना चाहते हैं जिसका कोई मूल्य नहीं, जिसमें जरा भी बल नहीं, जो एक जेबी रोशनी, एक जेबी दीपक है, यह कुछ भी नहीं है। ये लोग मानव जीवनकी हर चीजको, सबसे साधारण, सबसे अधिक भौतिक तथ्योंके आधारपर समझानेकी कोशिश करते हैं; वे साधारण-से-साधारण चेतनाकी छोटी-से-छोटी भौतिक आदतोंकी सहायता-

से समस्त सृष्टि और उच्चतर तथ्योंको समझानेकी कोशिश करते हैं। यह एकदम हास्यास्पद है।

मधुर मां, "अति-अहं" क्या चीज है?

हम कह सकते हैं कि अति-अहं बढ़ा-चढ़ा अहं है, फूला हुआ, उसे जितना महत्त्व दिया जा सकता है उससे भी बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त...। यह सारा पत्र व्यंग्यसे भरा है। अति-अहं का मतलब है साधारण अहं-से भी बढ़कर अहं, बहुत बढ़ा-चढ़ा, ऐसा अहं जो कुछ भी न होते हुए बहुत बड़ा होनेकी कोशिश करता है।

लेकिन "भूमिगत अति-अहं" क्यों?

भूमिगत, हां, इसका मतलब है कोई ऐसी चीज जो छिपी हुई है, जो चेतनामें बहुत नीचे है, बहुत ही निम्न स्तरपर, बहुत नीचे। "भूमिगत" से लगता है कि कोई चीज बहुत अंधेरेमें है, निम्न कोटिकी है और अंधेरे-में छिपी है, जिसकी गतिविधि बहुत जड़तासे भरी है — एक ऐसा अहं जो बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बननेकी कोशिश करता है।

मधुर मां, कभी-कभी हम सामान्य चीजोंके स्वप्न देखते हैं, लेकिन कभी हम ऐसे सपने देखते हैं जो...

हां, यही तो श्रीअरविंद कहते हैं, है ना? वे कहते हैं कि सभी स्वप्न साधारण स्वप्न नहीं होते, स्मृतियोंके संयोजन नहीं होते, ऐसे स्वप्न भी होते हैं जो अन्तःप्रकाश होते हैं। वे यहां सब प्रकारके, सब तरहके सपनों-का वर्णन करते हैं।

माताजी, क्या यह दिनपर निर्भर है? क्या अगर हम दिनमें ज्यादा सचेतन रहें तो ज्यादा अच्छी तरहके स्वप्न देखेंगे?

यह कहना बहुत मुश्किल है कि यह किसपर निर्भर है।

देखा जाता है कि जब तुम्हें किसी चीजका स्वप्न देखनेकी जरूरत होती है; ताकि वह तुम्हारी प्रकृतिके किसी बिंदुपर प्रकाश डाल सके, तुम्हें कोई निर्देश दे सके कि तुम्हें किस ओर प्रयास करना चाहिये तो ऐसे स्वप्न आ जाते हैं।

यह शायद उस चेतनापर निर्भर है जो हर एकपर निगरानी रखती है; और अगर आदमी जरा-सा खुल जाय तो वह उसका पथ-प्रदर्शन कर सकती है और निश्चित आदेश दे सकती है।

मेरा ख्याल है कि ऐसे स्वप्नोंकी एक पूरी श्रेणी होती है जो अति सामान्य, व्यर्थ और बहुत थकानेवाले होते हैं, इनसे बचा जा सकता है अगर, तुम सोनेसे पहले, जरा-सी एकाग्रताके लिये कोशिश करो, तुम्हारे अपने अंदर जो अच्छे-से-अच्छा हो उसके साथ संपर्क बनानेकी कोशिश करो — वह चाहे अभीप्साके द्वारा हो या प्रार्थनाके द्वारा, और यह कर लेनेके बाद ही सोओ . . . यदि तुम चाहो तो ध्यान करनेकी कोशिश करो और फिर अनायास ही, एकदम स्वाभाविक रूपसे ध्यानमेंसे ही निद्रामें चले जाओ . . . । साधारणतः ऐसे स्वप्नोंकी एक पूरी श्रेणी होती है जो बेकार और थकानेवाले होते हैं, तुम्हारे आराममें बाधक होते हैं — तुम इन सबसे बच सकते हो। अगर तुम सचमुच एकाग्रतामें भली-भांति सफल हो गये तो यह बिलकुल संभव है कि रातको तुम्हें ठीक स्वप्न तो नहीं, बल्कि अनुभूतियां हों जिनके बारेमें तुम सचेतन हो जाते हो और जो बहुत उपयोगी होती हैं, बल्कि संकेत होती हैं, जैसे कि मैंने अभी कहा, ऐसे प्रश्नोंकी संकेत जिन्हें तुमने अपने-आपसे पूछा था लेकिन जिनका तुम्हें उत्तर नहीं मिला; या परिस्थितियोंकी एक शृंखला जहां तुम्हें कोई निर्णय लेना चाहिये लेकिन तुम्हें मालूम नहीं क्या निर्णय लिया जाय; या फिर तुम्हारे चरित्रका कोई ऐसा रंग-ढंग जो अपने-आपको तुम्हारे आगे, जाग्रत अवस्थामें प्रकट नहीं करता — क्योंकि तुम उसके इतने अभ्यस्त हो कि तुम्हें उसका भान नहीं होता — लेकिन कोई ऐसी वस्तु जो तुम्हारे विकासको क्षति पहुंचाती और तुम्हारी चेतनाको धुंधला देती है, और वह स्वप्न तुम्हें प्रतीकात्मक अंतर्दर्शन लगता है, तुम वस्तुके प्रति पूर्ण सचेतन हो जाते हो, फिर उसपर कार्य कर सकते हो।

यह इसपर निर्भर नहीं होता कि दिनमें तुम क्या थे, क्योंकि इसका रातपर हमेशा बहुत असर नहीं होता, यह ज्यादा इसपर निर्भर है कि तुम रातको किस अवस्थामें सोने गये थे। सोते समय क्षण-भरकी सच्ची अभीप्सा इस बातके लिये काफी है कि रात चेतनाका अंधकार होनेकी जगह, किसी चीजको समझनेमें कोई अनुभूति प्राप्त करनेमें सहायक हो; हालांकि यह चीज हमेशा नहीं आती, फिर भी उसके आनेकी एक संभावना रहती है।

और, जानते हो, रातके क्रिया-कलापकी एक बहुत बड़ी मात्रा होती है जिसकी हमें जरा भी याद नहीं रहती। कभी-कभी जब तुम एकदम धीरे-धीरे

और शांतिके साथ जागते हो, जब तुम जागते ही उछल नहीं पड़ते, तुम एकदम धीरेसे, एकदम आहिस्ता-आहिस्ता, बिना हिले-डुले जागते हो तो एक अस्पष्ट-सी छाप रहती है कि कुछ हुआ था जो तुम्हारी चेतनापर एक चिह्न छोड़ गया है — उठनेका तुम्हारा अपना खास ढंग होता है — विशेष ढंग, जो कभी-कभी अजाना भी होता है। और अगर तुम बहुत शांत बने रहो और ध्यानसे, बिना हिले-डुले देखो तो तुम रातको होने-वाले क्रिया-कलापकी एक प्रकारकी अर्द्ध स्मृति-सी पाओगे और अगर तुम इसपर एकाग्र रहो, कुछ समयतक और भी निश्चल बने रहो, तो वह अचानक इस तरह आ सकती है जैसे कोई चीज परदेके पीछसे आती है, और तुम उस स्वप्नके सिरेको पकड़ सकते हो। जब तुम सिरेको पकड़ लो — यह एक मामूली-सी घटनासे बढकर कुछ नहीं है — जब तुम सिरे-को पकड़ लो, तो उसे ऊपरकी ओर, यूं इस तरह खींचो, बहुत आहिस्ता-आहिस्ता, और वह ऊपर आ जाता है। लेकिन तुम्हें बहुत शांत रहना चाहिये और जरा भी हिलना-डुलना न चाहिये। और साधारणतः ये स्वप्न बहुत मजेदार होते हैं; ये क्रिया-कलाप बहुत शिक्षाप्रद होते हैं।

रातको तुम बहुत-सी, बहुत-सी चीजें करते हो जिनके बारेमें तुम नहीं जानते और अगर तुम सीखो तो जब तुम सचेतन हो जाओ, तो उनके ऊपर अधिकार पाना शुरू कर सकते हो। सचेतन होनेसे पहले उनपर तुम्हारा बिलकुल अधिकार नहीं होता। लेकिन जब तुम सचेतन होना शुरू करते हो तो अधिकार भी पाने लगते हो। और अगर तुम्हें अपने रातके क्रिया-कलापपर अधिकार हो तो तुम कहीं ज्यादा अच्छी तरह आराम कर सकते हो; क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि जागनेके समय तुम कम-से-कम उतने ही थके हुए होते हो जितने कि सोते वक्त थे, और तुममें एक सुस्तीका-सा भाव रहता है, ऐसा इसलिये होता है क्योंकि रात-को तुम असंख्य निरर्थक चीजें करते हो, प्राणिक जगतोंमें दौड़-भाग करके या मनमें उत्तेजनापूर्ण क्रिया-कलापके द्वारा अपने-आपको थका देते हो। इस लिये उठनेपर तुम थकान महसूस करते हो।

हां, तो एक बार अगर तुम इसे नियंत्रणमें कर लो तो तुम इसे पूरी तरहसे रोक सकते हो . . . सोनेसे पहले इसे रोक लो . . . अपने-आपको विशाल सागरकी तरह बना लो, जो निश्चल, विशाल और सपाट होता है . . . तो, तुम अपने मनको भी उसी तरह किसी सपाट और निश्चल सतहकी भांति विशाल और सपाट बना सकते हो; तब तुम्हारी नींद उत्तम होती है।

स्वभावतः यहां ऐसे लोगोंका प्रश्न भी उठता है जो अपनी नींदमें बहुत

ही बुरे प्राणिक स्थानोंमें पहुंच जाते हैं, और फिर, जब वे लौटते हैं, तो कभी-कभी बुरी तरह थके होते हैं, कभी-कभी अपने-आपको बीमार पाते हैं, या पूरी तरहसे टूटे हुए होते हैं। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि वे बुरी जगहोंमें थे और वहां लड़ाई-झगड़ा हुआ था। लेकिन निश्चय ही इसका संबन्ध तुम्हारी जाग्रत अवस्थाकी चेतनाकी स्थितिके साथ होता है। उदाहरणके लिये, अगर दिनमें तुम क्रुद्ध रहे हो, तो इसकी बहुत संभावना है कि रातको तुम कुछ देरके लिये किसी प्राणिक युद्धमें भाग ले रहे होंगे: ऐसा होता है।

बस काफी है? और कुछ नहीं?

"कमलके दिव्य आदि रूप" का क्या अर्थ है?

इसका अर्थ है कमलकी पहली धारणा।

भौतिक रूपसे जड़ जगत्में प्रकट होनेसे पहले हर चीजकी कहींपर एक धारणा बनती है।

रचना करनेवालोंका एक अलग ही जगत् होता है जहां सभी धारणाएं बनती हैं। और वह जगत् बहुत उच्च जगत् होता है, मनके सभी जगतोंसे बहुत अधिक ऊंचा; वहींसे ये रचनाएं, ये कृतियां, ये प्रारूप, जिनकी रचना करनेवालोंने कल्पना की थी, नीचे उतरकर भौतिक उपलब्धियोंके रूपमें प्रकट होती हैं। धारणाकी पूर्णता और वह चीज जिसने भौतिक रूप ले लिया है, इन दोनोंमें हमेशा बहुत अंतर होता है। बहुधा भौतिक रूप धारण करनेवाली वस्तुएं पहली धारणाकी तुलनामें उसके व्यंग्यचित्रके समान होती हैं। इसीको वे आदि रूप कहते हैं। यह कई लोकोंमें घटता है....हमेशा समान लोकोंमें नहीं, यह वस्तुओंपर निर्भर होता है; लेकिन कई भौतिक चीजोंके लिये ये पहली धारणाएं, ये आदि रूप वहां थे जिसे श्रीअरविंद 'अधिमानस' कहते हैं।

लेकिन इससे भी ऊपर एक और क्षेत्र है जहां उद्भव और भी अधिक शुद्ध होते हैं, और अगर तुम वहां पहुंच जाओ, उसे प्राप्त कर लो, तो तुम्हें पृथ्वीपर अभिव्यक्त प्रारूपोंका पूर्णतया शुद्ध रूप मिलेगा। और तब तुलना करना बड़ा ही रुचिकर होता है, यह देखना कि पार्थिव सृष्टि किस हदतक भयंकर रूपसे विकृत है। और इसके अतिरिक्त, जब तुम इन क्षेत्रोंको प्राप्त कर वहांकी वस्तुओंके सत्यको सार रूपमें देख पाओगे, केवल तभी तुम ज्ञानके साथ यहां उनके रूपांतरके लिये कार्य कर सकते हो; अन्यथा इस जगत्से अधिक अच्छे, अधिक पूर्ण, अधिक सुन्दर जगत्-

की कल्पना भला तुम किस आधारपर कर पाओगे? यह हमारी कल्पना-पर आधारित नहीं हो सकता जो स्वयं ही बहुत तुच्छ और बहुत स्थूल है। लेकिन अगर तुम उस चेतनामें प्रवेश कर सको, सर्जनके इन जगतोंतक उठ सको, तो उस चेतनाके साथ तुम कार्य कर सकते हो जिससे जड़ वस्तुएं अपना सच्चा रूप ले लें।

माताजी, रातके समय जब हम किसी व्यक्तिको मरते हुए देखते हैं, और कुछ महीनोंके बाद फिर उसीको मरते हुए देखते हैं तो इसका अर्थ क्या होता है? क्या वह व्यक्ति संकटमें है?

स्वप्नमें, तुम किसी व्यक्तिको देखते हो... फिर कुछ महीनोंके बाद फिर उसे देखते हो?

जी हां, मरते हुए।

तुम किसी व्यक्तिको मरते हुए देखते हो, फिर कुछ महीनोंके बाद एक बार फिर उसे मरते हुए देखते हो, उसी व्यक्तिको! वह मृत है या जीवित है?

जीवित।

बात चिंताजनक हो रही है, मेरे बच्चे! मैं नहीं जानती; यह पूरी तरह व्यक्तिपर निर्भर है।

यह आध्यात्मिक मृत्यु हो सकती है, यह प्राणिक मृत्यु हो सकती है, यह ऐसी वस्तुकी मृत्यु हो सकती है जिसे सत्तासे गायब हो जाना चाहिये (और फिर इसका अर्थ प्रगति होता है), यह पूर्वसूचक घटना हो सकती है, यह और बहुत कुछ हो सकता है। जबतक तुम्हारे स्वप्नका संदर्भ न मालूम हो इसे समझाया नहीं जा सकता। लेकिन तुम्हारे अन्दर वह चीज होनी चाहिये जिसे हम स्वप्नोंका विधिशास्त्र कहते हैं। तुम-ने होनेवाली घटनाओंके साथ स्वप्नकी तुलना कभी नहीं की?... उदा-हरणके लिये, क्या तुम्हारे साथ ऐसा नहीं हुआ — मैं जानती हूं कि तुम्हारे साथ ऐसा हुआ है — कि तुम किसी व्यक्तिको मरते हुए देखो, और वह व्यक्ति सचमुच मर जाय? लेकिन तुम उसे फिरसे, दोबारा मरते हुए नहीं देखते। अगर तुम उसी स्वप्नको दोबारा देखो, इसका

अर्थ दोमेंसे एक होता है: या तो वह फिरसे अपनी सत्ताकी एक और अवस्था खो बैठा है, वह किसी प्राणिक चेतनामें चला गया है, या बादमें, इस प्राणिक चेतनासे चैत्य चेतनामें प्रवेश करनेके लिये निकल गया। शायद यह ऐसा है। लेकिन तुम्हें निश्चित संकेत मिलेंगे। स्वप्न तुम्हें धोखा नही दे सकता, और वह एक जैसा नहीं हो सकता। या इसका सहज रूपसे यह अर्थ भी हो सकता है कि कोई ऐसी बात हुई जिसका तुम्हारे विचार, तुम्हारे मस्तिष्कपर गहरा असर पड़ा, और फिर कुछ परिस्थितियोंमें, जिनके बहुत-से कारण हो सकते हैं... फिर भी कुछ परिस्थितियोंमें... यह प्रभाव पुनः क्रियान्वित हो उठता है और तुम्हें फिरसे वही स्वप्न आता है। अगर वह स्वप्न ठीक एक जैसा हो, तो हो सकता है वह केवल मस्तिष्ककी एक घटना हो।

बहुत-से स्वप्न केवल मस्तिष्कके तथ्य होते हैं, यानी, ऐसी चीजें जो किसी-न-किसी उत्तेजनाके कारण सक्रिय हो उठती हैं और फिरसे वही चित्र ले आती हैं, कभी पूरी तरहसे एक जैसी, और कभी जरा-से भिन्न संबन्ध और संसर्गके साथ; इसीलिये भिन्नता होती है।

कभी-कभी सपने दोबारा दिखायी देते हैं, है न, बहुधा ऐसे स्वप्न जो कोई शिक्षा या संकेत देते हैं, ऐसे स्वप्न जो कुछ घोषणा करते हैं, या किसी चीजकी ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, या तुम्हें किसी वस्तुसे सावधान करते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि वे या तो थोड़े अंतरके बाद या कुछ अधिक समय लेकर वापिस आते हैं। साधारणतः इसका अर्थ यह होता है कि पहली बार उसका आभास बहुत हल्का था, तुम्हें उसकी अच्छी तरह याद नहीं रही। तीसरी या दूसरी बार जब तुम उसीको देखते हो तो तुम्हारे अन्दर एक धुंधली-सी छाप पड़ती है: "अरे, यह पहली बार नहीं है।" उसके बाद तीसरी बार वह स्पष्ट, ठीक-ठीक और निरपेक्ष होती है, और तुम्हें उसकी याद बनी रहती है: "अरे, इसे तो मैं पहले ही तीन बार देख चुका हूं।"

साधारणतः, ये स्वप्न बहुत अधिक मजेदार होते हैं और तुम्हें यथार्थ निर्देश देते हैं: या तो अमुक चीज करनी चाहिये और अमुक नहीं करनी चाहिये, या कौन-सी सावधानी बरतनी चाहिये या किसीके साथ तुम्हारा संबन्ध कैसा हो, तुम किसी व्यक्तिसे क्या पानेकी आशा कर सकते हो, तुम्हें उसके प्रति या किन्हीं परिस्थितियोंमें कैसे व्यवहार करना चाहिये।

तुम देख रहे हो यह एक बहुत सूक्ष्म विवरणकी बात है, बहुत सूक्ष्म विवरणकी बात जो बार-बार यूं आती है; कभी-कभी वह तुरंत आ जाती है: एक रात, दूसरी रात, तीसरी रात; कभी उसे आनेमें

कई-कई सप्ताह लग जाते हैं।

मधुर मां, अपनी रातसे लाभ उठानेके लिये, अच्छे स्वप्नोंके लिये, क्या यह जरूरी है कि हम रातको देरतक कोई बौद्धिक कार्य न करें, या हम रातको बहुत देरसे न खायें, या कोई भी बाहरी चीज न करें?

यह हर एकपर निर्भर है; लेकिन निश्चय ही, अगर तुम रातको शांतिसे सोना चाहते हो, तो ठीक सोनेसे पहलेतक नहीं पढ़ना चाहिये। अगर तुम कोई ऐसी चीज पढ़ो जो एकाग्रताकी मांग करती हो तो तुम्हारा मस्तिष्क चलता ही रहेगा, और इस तरह तुम अच्छी तरह न सोओगे। जब मन काम करता रहता है तो तुम विश्राम नहीं करते।

आदर्श है पूर्ण विश्राममें प्रवेश करना, अर्थात्, शरीरमें निश्चलता, प्राणमें पूर्ण शांति, मनमें पूर्ण नीरवताका होना — और सभी क्रियाओंसे निकलकर चेतनाका सच्चिदानंद में जाना। अगर तुम यह कर सको, तो जागते समय तुम एक असामान्य शक्ति, एक संपूर्ण आनन्दके भावके साथ उठोगे। लेकिन ऐसा करना बहुत अधिक आसान नहीं है। इसे किया जा सकता है; यह आदर्श अवस्था होती है।

साधारणतः ऐसा कभी नहीं होता, और अधिक समय, नींदके प्रायः सभी घंटे अव्यवस्थित-सी क्रियाओंमें नष्ट हो जाते हैं; तुम्हारा शरीर पलंगपर छटपटाता है, तुम लातें मारते हो, करवटें बदलते हो, उछल पड़ते हो, कभी इधर, कभी उधर करवटें बदलते हो, फिर तुम यूं (संकेत) करते हो, फिर यूं...। इस तरह तुम जरा भी विश्राम नहीं पाते।

दिनमें समय नहीं मिलता, अतः हम रातको पाठ तैयार करनेके लिये बाधित होते हैं।

ओह, कुछ भी चीज करनेके लिये हमेशा पचास हजार कारण होते हैं! यहां किसी नैतिक प्रश्नको एकदम ला खड़ा न करना चाहिये। तुम अपना काम पूरे... निःस्वार्थ भावसे कर सकते हो, और फिर भी, यह होते हुए भी, हो सकता है कि वह तुम्हारे सोनेमें बाधा दे।

आंतरिक प्रगतिके साथ नैतिक वस्तुओंका कोई संबन्ध नहीं। यह कहते हुए मुझे खेद होता है, लेकिन एक इस दिशामें जाता है तो दूसरा दूसरी दिशामें। तुम अपने-आपको ऐसा काम करके भी पूरी तरह बीमार कर

सकते हो जो . . . कैसे कहा जाय ? . . . निःस्वार्थ हो, जिसमें कोई भी स्वार्थ न हो, और तुम पूरे-पूरे स्वार्थी होते हुए भी बहुत स्वस्थ रह सकते हो। यह मार्गमें व्यवधान नहीं डालती, यह इस तरहकी नैतिकता नहीं है जिसका असर होता है।

नैतिक चेतनाके होने और उस चेतनामें जो सत्यकी अभिव्यक्ति है बहुत बड़ा अंतर होता है। लेकिन मुझे यह कहना चाहिये कि नैतिक चेतनाके होनेकी अपेक्षा सत्यको अभिव्यक्त करनेवाली चेतनाका होना कहीं अधिक कठिन है, क्योंकि किसी भी अल्पमतिमें नैतिक चेतना हो सकती है जो सामाजिक नियमोंको जानता और उनका अनुसरण करता है, जब कि सत्य चेतनाको पानेके लिये व्यक्तिको मूर्ख न होना चाहिये —हर हालतमें, यह पहली शर्त है !

एक सालसे अधिक हो गया मैं अपनी रातें यूं ही गंवा रहा हूं।

हां। लेकिन तुम्हें पता नहीं कि ये सारी चीजें तुम्हारे जीवनमें व्यवस्थाके अभावका परिणाम हैं ? मनुष्य, जैसे भी हो, यूं ही एक-एक क्षणके लिये जीता है। या फिर, वह मानसिक व्यवस्थाके लिये प्रयत्न करता है, जो सत्यके साथ बिलकुल मेल नहीं खाती, और इसलिये हर क्षण विफल होता है।

लेकिन अगर तुम अपने जीवनको चेतनाके किसी उच्चतर तत्त्वके अनुसार व्यवस्थित करो, और बिना टटोले, जैसा कि तुम सामान्यतः करते हो, अर्थात्, हर क्षण तुम्हें क्या करना है और कैसे करना है इसका ठीक-ठीक संकेत मिलता रहे तो मैं समझती हूं कि तुम ऐसी व्यवस्था कर सकते हो जिससे चीजें भद्दे ढंगसे कठिन न हो जायें। एक अच्छा अध्यापक होना बहुत अच्छी बात है, लेकिन शायद सभी गृहकार्योंको ठीक सोनेसे पहले जांचना अनिवार्य नहीं है। पता नहीं, क्योंकि मैं कभी एक अच्छी अध्यापिका नहीं रही, अतः मैंने अपने विद्यार्थियोंके लिये कभी पाठ तैयार नहीं किये, न कभी अपने विद्यार्थियोंके गृहकार्य देखे। लेकिन फिर भी, मुझे लगता है कि यह काफी संभव होना चाहिये।

साधारणतः, अपने कामको सावधानीके साथ चुनने और ठीक उतना ही लेनेकी बजाय जितना तुम अच्छे-से-अच्छा कर सकते हो, प्रायः तुम बहुत अधिक ले बैठते हो। और इस अंतिमें बहुत-सी चीजें आंशिक रूपमें निरुपयोगी होती हैं, जिन्हें, परिणामको किसी तरहकी क्षति पहुंचाये बिना, हम काफी हदतक कम कर सकते हैं (यह याद रखो कि मैं यह

कोई सामान्य नियम नहीं बना रही, यह केवल मेरा अनुभव है); और जब तुम आंतरिक संकेतोंकी ओर पूरा ध्यान देते हो और बाहरसे आनेवाली लहरोंपर हिचकोले खानेसे इंकार करते हो — ये लहरें सब प्रकारकी गतिविधियां होती हैं जो दूसरोंकी इच्छाओंसे, या परिस्थितियोंकी एक तरहकी लीकसे या ऐसी शक्तियोंके विरोधसे आती हैं जो बहुत अनुकूल नहीं होतीं — तो, इस तरह उनसे धकेले जाने, और उन चीजोंसे विचलित होनेकी बजाय, अगर तुम्हें एकदम स्पष्ट और ठीक-ठीक आंतरिक संकेत मिलता रहे और तुम बिना चूं-चपड़ किये, बिना किसी असमंजसके, जरा सख्तीके साथ उसका अनुसरण करो — अगर वह दूसरोंको पसंद न आये तो वे खुद भुगतें —, हां, तो ऐसा होता है कि तुम एक तरहसे परिस्थितियोंके स्वामी हो जाते हो, वे तुम्हारे अनुकूल व्यवस्थित हो जाती हैं, और तुम बहुत थोड़े समयमें बहुत अधिक कार्य कर लेते हो।

एकाग्रताको बहुत अधिक बढ़ा लेनेपर किसी कामको करनेके लिये आवश्यक समयको घटानेका एक तरीका होता है। कुछ लोग इसे अधिक समयतक नहीं कर पाते, वह उन्हें थका देती है; लेकिन यह तो वजन उठानेकी तरह है, है ना, व्यक्ति उसका अभ्यस्त हो जाता है। और फिर, अगर तुम उस एकाग्रताकी शक्तिपर प्रभुत्व पानेमें सफल हो सको, और अपने मस्तिष्कको पूरी तरहसे शांत रख सको — क्योंकि यह निश्चय ही पहली शर्त है — और अगर इस . . . निश्चल-नीरवतामें तुम उसपर एकाग्र होओ, एकाग्र होओ, एकाग्र होओ, जो तुम करना चाहते हो उस बिन्दुपर या जो काम तुम्हें करना है उसपर या जो क्रिया तुम्हें करनी है उसपर एकाग्र होओ, तो तुम . . . यह प्रक्षेपणकी अत्यंत शांत किंतु सबल शक्तिकी तरह आती है, और तुम एक ही क्रियासे आगे बढ़ जाते हो . . . और तुम बिना किसी असमंजसके यथार्थ रूपसे, पन्द्रह मिनटमें उतना कर सकते हो जिसमें इसके बिना एक घंटा लगता। और इस लिये इससे यह बड़ी सुविधा होती है कि तुम्हें समय मिलता है; और फिर उसके बाद एक कार्यसे दूसरे कार्यतक जानेके बजाय, एक उत्तेजनासे दूसरी उत्तेजनातक जानेके बजाय, तुम कुछ मिनटोंके लिये स्वयंको पूरी तरह शिथिल करके पूर्ण विश्राम पा सकते हो। इससे तुम्हें विश्रामका समय मिल जाता है; और, स्वभावतः, इस विश्राममें जब तुम स्वयंको शिथिल छोड़ देते हो, जो भाग कुछ तना हुआ हो वह शिथिल हो जाता है, और व्यवस्थित कर दिया जाता है, और यह चीज तुम्हें उस अवस्थामें ला खड़ा करती है जिसमें तुम फिरसे एक और एकाग्रता ला सको। कोशिश करो!

बस। काफी है? कोई प्रश्न नहीं है?
तो फिर मिलेंगे, मेरे बच्चो।

२७ अप्रैल, १९५५[1]

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय पांच:
'भौतिक चेतना आदि' पर आधारित है।

मधुर मां, प्रतीकात्मक स्वप्न और अंतर्दर्शनमें क्या भेद है?

सामान्यतः अंतर्दर्शन तब होता है जब तुम सो नहीं रहे होते, जब तुम जगे हुए होते हो। जब तुम जगे हुए होते हो और अपने अंदर—चाहे ध्यानमें या एकाग्रतामें—पैठते हो, तब तुम्हें अंतर्दर्शन होते हैं। या रातको जब तुम सो नहीं सकते... लेटे रहो, शांत रहो, न सोओ, तब तुम्हें अंतर्दर्शन हो सकते हैं।

स्वप्न तब आते हैं जब तुम सोये रहते हो, यानी, जब तुम्हारे अंदर जाग्रत चेतना बिलकुल नहीं होती; जब कि अंतर्दर्शनमें तुम जाग्रत चेतनामें होते हो, लेकिन तुम उसे शांत और निश्चल कर लेते हो, यह जाग्रत अवस्थासे ज्यादा अंदरकी चेतना होती है जो जग जाती है; लेकिन यह निद्रा नहीं होती, शरीर सोया हुआ नहीं होता, उसे सिर्फ शांत किया जाता है।

सक्रिय होते हुए भी तुम्हें अंतर्दर्शन प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे लोग हैं जिन्हें सक्रिय रहते हुए भी अंतर्दर्शन प्राप्त होते हैं। अंतर्दर्शन दर्शनका एक और स्तर है जो जाग्रत हो उठता है। ये मनकी इंद्रियां या प्राणकी इंद्रियां या शरीरकी इंद्रियां होती हैं जो जाग्रत हो उठती हैं और अपनी अनुभूतियां बाह्य चेतनातक पहुंचाती हैं। यह ऐसा है मानों इन आंखोंके पीछे तुम्हारे और दो आंखें हों, ऐसी आंखें जो भौतिकमें देखनेकी जगह, प्राणमें देख सकती हों। और यह हमेशा होता है। सिर्फ, चूंकि आदमी अधिकतम भौतिक जीवनपर केंद्रित रहता है, वह उन्हें नहीं

[1] पिछले हफ्ते (२० अप्रैल) की कक्षा वर्षाके कारण नहीं हुई।

देखता। लेकिन ऐसे बच्चे होते हैं जिनमें दोनों चीजें जुड़ी रहती हैं, जो भौतिक रूपसे ऐसी सब तरहकी चीजोंको देखते हैं जो बिलकुल नहीं होतीं। साधारणतः उनसे कहा जाता है कि वे बकवास करते हैं; इसलिये वे बोलना बंद कर देते हैं। लेकिन वे शुद्ध भौतिक रूपसे ही नहीं देखते, वे पीछेकी अन्य चीजें देखते हैं। तुम्हें अंतर्दर्शन बंद आंखोंके साथ भी दिखायी दे सकते हैं और खुली आंखों भी अंतर्दर्शन हो सकते हैं; जब कि स्वप्न हमेशा सोती हुई अवस्थामें ही आते हैं।

और प्रश्न ?

प्रतीकात्मक स्वप्न और अन्य स्वप्नोंमें कैसे फर्क किया जाय ?

यह हर एकके लिये अलग-अलग है; लेकिन यह इसपर निर्भर है कि तुमपर कैसी छाप पड़ती है। साधारणतः देखनेमें प्रतीकात्मक स्वप्न बहुत ज्यादा स्पष्ट, ज्यादा यथार्थ, ज्यादा ताल-मेलवाला होता है, और अपने साथ एक प्रकारकी सच्ची चीजकी चेतना लिये होता है . . . पता नहीं . . . वह ज्यादा अच्छी तरह याद रहता है, वह याद रखनेमें बिगड़ नहीं जाता।

तो फिर, बस ?

मधुर मां, ज्योतींद्रका एक प्रश्न है।

ओ! यह बच्चा क्या जानना चाहता है ?

वह यह जानना चाहता है कि जब हम बहुत बीमार हों या बहुत क्षुब्ध हों तो कैसे शांत होकर सो सकते हैं ?

यह, इसके लिये एक विशेष योग-शक्ति होनी चाहिये। सबसे अच्छा तरीका है — और यह सुनिश्चित है — अपने शरीरसे बाहर निकल जाना।

जब शरीर कष्ट पाता हो, जब किसीको बुखार हो, या कोई बीमार हो, या जब शरीर बिलकुल ही अस्वस्थ हो, तो करने लायक एक ही चीज होती है, बाहर निकल जाओ, अपनी प्राणमय सत्ताको बाहर निकालो, फिर, अगर तुम योगी हो और यह करना जानते हो तो तुम जरा ऊपर उठते हो — बस, इतना कि अपने शरीरको देख सको; प्राणिक सत्ता, अगर

वह पर्याप्त भौतिक रूपमें बाहर निकली है, तो शरीरको देख सकती है; तुम अपने निजी भौतिक शरीरको दखते हो आग उस समय तुम्हारे पास जो चेतना है और जो शक्ति है उसके द्वारा तुम अपनी शक्तियोंकी किरणोंको शरीरके उस स्थलपर बिखेर सकते हो जो रुग्ण है। लेकिन यह तो सबसे ऊंचा तरीका है, यह अपने-आपको रोगमुक्त करनेका सबसे अच्छा उपाय है; और अगर तुम्हारे अंदर शक्ति और ज्ञान है तो यह अचूक उपाय है।

तुम अपने-आपको बहुत कम समयमें किसी भी रोगसे मुक्त कर सकते हो। केवल इस सबके लिये बहुत प्रशिक्षणकी, सत्ताको सधानेकी जरूरत होती है। यह तत्काल नहीं आ जाता। लेकिन जब पीड़ा असह्य हो और व्यक्ति मूर्च्छित हो जाय, तो वह सहज-बोधसे यही करता है। मूर्छित होना अपने शरीरसे बाहर जाना है। तो, ऐसे लोग हैं जो अपने शरीरसे बहुत ज्यादा संलग्न नहीं होते, जब उनमें कोई गड़बड़ी होती है, जब उन्हें बहुत कष्ट होता है या जब वे अस्वस्थ होते हैं, तो वे मूछित हो जाते हैं।

बहुत अधिक पीड़ा तुम्हें मूछित कर देती है, यानी, तुम अपने शरीर-से बाहर निकल जाते हो, तुम सचमुच बाहर निकल जाते हो और शरीर-को बिलकुल जड़तामें छोड़ देते हो; बशर्ते कि तुम्हारे पास कोई ऐसा आदमी हो जिसे इतना ज्ञान हो कि वह तुम्हें जगानेके लिये (संकेत), हिलाये-डुलाये नहीं, तो यह दुःख-दर्दसे बचनेका एक उपाय है। स्व-भावतः, अगर तुम्हारे पास कोई ऐसा आदमी हो जो घबरा जाय और तुम्हारे ऊपर ठंडे पानीके छींटें मारे या तुम्हें हिलाये-डुलाये, तो परिणाम भयंकर होता है, अन्यथा तुम . . . । और थोड़ा-थोड़ा करके, स्वभावतः, चूंकि कष्ट व्यक्त करनेके लिये चेतना नहीं होती, इसलिये तुम शांत हो जाते हो, और प्रायः सभी उदाहरणोंमें शरीर इतना पर्याप्त निश्चल हो जाता है कि वह कष्टके होते हुए भी आराम कर सकता है। वह उसे फिर बिलकुल अनुभव नहीं करता। यह सबसे अच्छा तरीका है।

इससे कम अच्छे उपाय भी हैं जिनके परिणाम भी घटिया होते हैं; वे बहुत ज्यादा सरल भी नहीं हैं। वह उपाय है जो भाग पीड़ा सह रहा है उसके और मस्तिष्कका जो भाग उसे अंकित करता है उनके बीचके संबन्धको काट देनेकी शक्तिका ज्ञान। तुम संबन्ध काट देते हो और फिर मस्तिष्क अंकित नहीं करता। लोग यही करते हैं, डाक्टर निश्चेतक और संवेदन हरनेवाली चीजके द्वारा यही करते हैं। वे स्नायु-को किसी ऐसे बिंदुपर काट देते हैं जो मस्तिष्क और उस भागके बीचमें

हो जिसमें पीड़ा हो रही है; तो मस्तिष्क या तो कुछ भी नहीं अनुभव करता या कम-से-कम अनुभव करता है। और बात फिरसे एक-न-एक तरह उसी चीजपर लौट आती है: और इस सबके लिये गुह्य शक्तिकी या प्रशिक्षणकी जरूरत है। कुछ लोगोंमें यह चीज सहज रूपसे होती है; ऐसे लोग बहुत नहीं हैं—बहुत कम हैं। लेकिन स्पष्ट है कि इस बिंदुतक पहुंचनेसे पहले तुम एक चीज करनेका प्रयास कर सकते हो, और वह है: अपने दुःख-दर्दपर एकाग्र न होओ, जहांतक बन पड़े अपने ध्यान-को किसी और तरफ मोड़ दो, अपने दर्दके बारेमें बिलकुल न सोचो, जितना कम हो सके उतना कम सोचो और सबसे बढ़कर यह कि उसपर जरा भी एकाग्र न होओ, उसपर ध्यान न दो—जैसे ही तुमने कहा: "ओह, मेरे दर्द हो रहा है," वैसे ही वह ज्यादा खराब हो जाता है; तुम कहते हो: "मुझे और भी दर्द हो रहा है", तो वह और भी बढ़ जाता है, यूं, क्योंकि तुम उसपर एकाग्र होते हो; और आदमी यह भूल हमेशा करता है: उसके बारेमें सोचता है, वहीं एकाग्र बना रहता है, दुःख-दर्द-के लक्षणमें एकाग्र रहता है; तो स्वभावतः वह आता है, उसपर जो ध्यान दिया जाता है, एकाग्रता की जाती है उससे वह बढ़कर आता है। इस-लिये तुम जब स्वस्थ न हो, तो सबसे अच्छी चीज है कि कुछ पढ़ो या कुछ पढ़वाकर सुनो; यह इसपर निर्भर है कि तुम किस अवस्थामें हो। लेकिन अगर तुम ध्यान बंटा सको, तो फिर तकलीफ नहीं रहती।

हां, तो फिर, खतम?

मधुर मां, क्या हमें सपने देखनेकी आवश्यकता है?

हमें क्या? . . .

. . . सपने देखनेकी आवश्यकता है? . . . .

सपने देखनेकी आवश्यकता! लेकिन यह आवश्यकताका प्रश्न ही नहीं है, वत्स, आदमी हमेशा सपने देखता है।

लेकिन हम सपने क्यों देखते हैं?

तुम सिर हवामें ऊंचा रखकर अपने पैरोंपर क्यों चलते हो, क्यों खाते हो, सोते हो? यह भी वैसा ही है। इसमें 'क्यों' नहीं होता। न,

इसमें 'क्यों' नहीं होता, यह एक सामान्य क्रियाका भाग है।

स्वप्न कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम्हारे ऊपर, यूं, कृत्रिम रूपसे लाद दिया गया हो। यह ऐसी चीज भी नहीं है, जैसे तुम्हें कुछ सीखनेके लिये विद्यालय भेजा जाता है। यह तुम्हारे सामान्य क्रिया-कलापका अंग है, कहनेका मतलब यह कि साधारणतः सिर, मस्तिष्क चलता रहता है। कभी-कभी, जब तुम जरा उच्चतर अवस्थाओंमें होते हो, तो कोई आंतरिक सत्ता क्रियामें प्रवेश करती है, जो अपने क्षेत्रमें जाती और वहां निवास करती है। लेकिन ये ऐसी चीजें नहीं हैं जिन्हें किसी कारणसे कृत्रिम रूपसे व्यवस्थित किया जाता है। ये शरीरके क्रिया-कलापका एक भाग हैं। स्वप्न भी वैसी ही स्वाभाविक चीजें हैं जैसे दिनके क्रिया-कलाप; स्वप्नमें तुम न्यूनाधिक ऐसी चीजें देखते हो जिन्हें तुम बिलकुल नहीं समझते, लेकिन जीवनमें भी तो ठीक ऐसा ही है क्योंकि — चाहे कुछ भी हो — तुम हमेशा "क्यों", "कैसे", "यह कैसे हुआ" जाननेके लिये अपने-आपसे सैकड़ों प्रश्न करते हो। तुम उनके बारेमें कुछ भी नहीं जानते। बस, तुम्हें आदत होती है उन्हें ऐसा ही देखनेकी।

बस। और कोई प्रश्न नहीं है?

मेरे पास अब भी एक प्रश्न है।

अभी भी एक?

मधुर मां, जब हम सोते हैं तो हमारी चेतना जाग्रत् अवस्थाकी चेतनासे भिन्न होती है . . .

हां, और फिर "क्यों?" (हंसी)

यह किस तरह भिन्न होती है?

क्या तुमने कभी यह ख्याल नहीं किया कि यह भिन्न होती है? उदाहरणके लिये, तुम्हारी भौतिक चेतना, या तुम्हारी सूक्ष्म भौतिक चेतना, तुम्हारी प्राणमय चेतना या तुम्हारे निम्न प्राण या उच्चतर प्राणकी चेतना, तुम्हारी चैत्य चेतना, तुम्हारी मानसिक चेतना, हर एक बिलकुल अलग-अलग हैं। तो, जब तुम सोते हो तो तुम्हारे अन्दर एक चेतना होती है, और जब तुम जागते हो तो एक और ही। जाग्रत अवस्थामें तुम अपने

बाहर प्रक्षिप्त चीजोंको देखते हो और सोते समय तुम अंतर्मुख चीजोंको देखते हो। तो यह ऐसा है मानों एक अवस्थामें तुम अपने-आपसे बिलकुल बाहर धकेल दिये गये हो और दूसरी अवस्थामें मानों तुम अपने-आपको आंतरिक दर्पणमें देखते हो।

समझे नहीं? अच्छी तरह नहीं!

हां, तो यह ऐसी चीज है जिसमें भेद करना तुम्हें सीखना चाहिये, चेतनाकी इन अवस्थाओंमें भेद करना सीखना चाहिये, नहीं तो तुम सतत उलझनमें रहते हो।

वास्तवमें, यह मार्गपर पहला पग है, यह धागेका आरंभ है, अगर तुम सिरे पकड़े न रहोगे, तो तुम रास्तेमें भटक जाओगे। यह धागेके एक सिरेको पकड़ना-भर है।

तो बस?

मधुर मां, जब हम स्वप्नमें अपनी मृत्यु देखें तो उसका क्या अर्थ होता है?

आह! यह प्रश्न मुझसे कई बार पूछा जा चुका है। यह प्रसंग पर निर्भर है।

हो सकता है कि यह स्वप्न तुमसे कहना चाहता है कि तुम इतनी पर्याप्त प्रगति कर चुके हो कि अपने-आपको पूरी तरह जीवनके पुराने रंग-ढंगसे अलग कर लो, अब उसके बचे रहनेका कोई कारण नहीं रह गया। मेरा ख्याल है बहुधा ऐसा ही होता है। अन्यथा यह पूरी तरह प्रसंगपर निर्भर होता है, यानी, स्वप्नके चारों ओरकी परिस्थितियोंपर निर्भर होता है।

यानी . . . आदमी अपने-आपको मरा हुआ देखता है . . . । वह अपने-आपको मरा हुआ कैसे देखता है? क्या वह सिर्फ जड़ बने हुए शरीर-को देखता है या अपने-आपको मरा हुआ या जो मरा तो नहीं है उसे मरा हुआ मान लेता है?

अगर तुम अपना शरीर छोड़ो — जैसा मैंने अभी बतलाया उस तरह-से शरीर छोड़ो — अगर तुम काफी भौतिक तरीकेसे शरीरसे बाहर निकलो, स्थूल भौतिक प्राणमें जाओ, तो बिस्तरपर पड़ा हुआ शरीर बिलकुल मरा हुआ मालूम होगा, लेकिन वह मरा हुआ नहीं होगा। लेकिन अगर तुम बाहर हो और यह जानते नहीं हो और उसे बाहरसे देखो, उस-पर नजर डालो, तो उससे पूरी तरह मौतका भान होगा, ऐसा लगेगा

कि शरीर अकड़ गया है। उस समय अगर तुम्हें यह पता हो कि तुम्हें क्या करना चाहिये, तो बहुत आसान हो जाता है; लेकिन अगर तुम नहीं जानते, और अगर तुम्हारी कल्पना इधर-से-उधर भटकने लगे, तो तुम भयके लिये दरवाजा खोल देते हो और तब कुछ भी हो सकता है।

लेकिन वस्तुतः मुझे नहीं लगता कि लाखोंमें एक बार भी यह पूर्व-सूचक स्वप्न होता है। मेरा ख्याल है कि बहुधा यह सत्ताका कोई अंश होता है जो अब उपयोगी नहीं रहा और इसलिये विलीन हो जाता है; तो वह अंश ही पूरी चीजका रूप ले लेता है, और तुम स्वयंको मरा हुआ देखते हो, क्योंकि अब वह अंश तुम्हारे अंदर अपना अस्तित्व नहीं रखता। अधिकतर यही स्थिति होती है और यह सबसे अधिक न्यायसंगत है।

तुम केवल मृत्युको ही नहीं, उदाहरणके लिये, किसी दुर्घटना या हत्या, या इसी तरहकी चीजोंको देख सकते हो। तो ऐसा स्वप्न, जिसका तुम-ने अनुभव किया, बड़ा भयंकर होता है, इसका यह अर्थ हो सकता है कि वह बुरी शक्तियोंका हमला हो जो किसी व्यक्तिके द्वारा किसी सुनिश्चित लक्ष्यके हेतु भेजी गयी हों। तब तुम्हें बस, जोरसे प्रहार करना चाहिये और उग्रतासे प्रतिक्रिया करनी चाहिये।

मधुर मां, कभी-कभी जब हम सोये हुए होते हैं तो हमें पता होता है कि हम सो रहे हैं, फिर भी आंख नहीं खुलती। ऐसा क्यों होता है?

यह तब होता है जब तुम शरीरसे बाहर चले जाओ, तुम्हें जोर नहीं डालना चाहिये, तुम्हें पूरे सहज-भावसे, धीरे-धीरे, अपनी चेतनाको अपने शरीर-पर केंद्रित करना चाहिये और थोड़ी देर ठहरना चाहिये ताकि स्वाभाविक रूपसे संयोजन हो जाय; तुम्हें चीजें जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये।

कभी-कभी आंखें जरा खुली होती हैं और हम चीजें देख भी सकते हैं...

लेकिन हिल नहीं सकते!

जी, हां।

इसका मतलब यह है कि चेतनाका एक अंश ही लौटा है जो शरीरमें

गति लानेके लिये काफी नहीं है। तुम्हें अपने-आपको हिलाना-डुलाना न चाहिये, वरना अपना एक अंश खोनेका डर रहता है। तुम्हें बिलकुल चुपचाप रहना चाहिये और धीरे, धीरे अपने शरीरपर एकाग्र होना चाहिये; इसमें अधिक-से-अधिक दो-एक मिनट लग सकते हैं।

हम क्या खो सकते हैं?

कोई भी चीज, कोई ऐसी चीज जो बाहर गयी हो, समझे। यह इसलिये है कि सत्ताका एक भाग बाहर गया है; तो अगर तुम अपने-आपको झकझोरो, तो उसे वापिस आनेका समय नहीं मिलता। तुम्हारे पीछे ही एक ऐसा व्यक्ति है (नलिनी) जिसे इस तरहका अनुभव हो चुका है — किसीने उसे नींदमें चौंका दिया, और जब वह वापिस आया तो सचमुच उसे लग रहा था कि कोई चीज खो गयी है, है न? (माताजी नलिनीकी ओर मुड़ती हैं।)

(नलिनी) **जी हां।**

तब मैंने उससे कहा चुपके-से एकाग्र होओ; वह चीज वापिस आ गयी। हां, अगर तुम डर जाओ तो मामला पेचीदा हो सकता है, समझे।

लेकिन तुम्हें किसीको नींदमें चौंकाना नहीं चाहिये क्योंकि उसे अपने शरीरमें लौटनेके लिये समय मिलना चाहिये। उदाहरणके लिये, यह अच्छा नहीं है कि उठते समय तुम बिस्तरपरसे हप् करके उछल पड़ो। तुम्हें क्षण-भरके लिये, यूं, शांत-स्थिर रहना चाहिये (संकेत), मानों तुम अपने-आपको अपने अंदर वापिस ला रहे हो, इस तरह, बिलकुल शांतिसे . . . शांतिसे। जब शांत हो जाओ, जब तुम्हें लगे कि सब कुछ ठीक है, तब तुम उठ बैठो, सब कुछ ठीक होगा। लेकिन तुम्हें कभी बिस्तरसे हठात् उछल नहीं पड़ना चाहिये, यह अच्छा नहीं है। इसके अतिरिक्त, कभी-कभी ऐसा होता है कि जो लोग अकस्मात् जागकर उछल पड़ते हैं उन्हें चक्कर आते हैं और गिरनेका भय रहता है। तुम्हें हमेशा इस प्रकारकी गति करनी चाहिये (संकेत), मानों तुम अपनी चेतनाको इकट्ठा कर रहे हो या अपने शरीरमें इकट्ठी की जा सकनेवाली सब प्रकारकी चीजोंको इकट्ठा कर रहे हो; तुम आत्मसात् करनेके कुछ क्षणोंके लिये बिलकुल शांत रहो और जब यह हो जाय, तो तुम चुपचाप, शांतिसे उठो।

और क्या? कुछ नहीं?
तो यह समाप्त!

४ मई, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार', अध्याय पांच:
'भौतिक चेतना आदि' पर आधारित है।

मधुर मां, "वैश्व प्राणिक 'शक्ति'" को हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

तुम यह कई तरीकोंसे कर सकते हो।

पहले तो तुम्हें यह जानना चाहिये कि इसका अस्तित्व है और तुम इसके साथ नाता जोड़ सकते हो। फिर, तुम्हें इसके साथ संपर्क स्थापित करनेकी कोशिश करनी चाहिये, यह अनुभव करनेकी कोशिश करनी चाहिये कि यह हर जगह संचारित हो रही है, सबमेंसे होकर, सभी व्यक्तियों और सभी परिस्थितियोंमें फैली हुई है; उदाहरणके लिये, यह अनुभव करना कि जब तुम कहीं बाहर देहातमें पेड़-पौधोंके साथ हो, तो इसे समस्त 'प्रकृति' में, पेड़-पौधोंमें, चीजोंमें संचारित होते देखो, और इसके साथ नाता जोड़ो, अपने-आपको उसके नजदीक अनुभव करो, और हर बार जब तुम उसके साथ संबन्ध स्थापित करना चाहो, तो तुम उस पिछले संस्कारको याद करो और उसके साथ संपर्क स्थापित करनेकी कोशिश करो।

कुछ लोग अनुभव करते हैं कि वे अमुक गतियों, अमुक संकेतों और अमुक क्रियाओंके द्वारा अधिक घनिष्ठ संपर्क बना पाते हैं। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो चलते समय हाथोंको इधर-उधर डुलाते थे . . . इससे उन्हें सचमुच ऐसा लगता था कि उनका उस शक्तिसे नाता है — वे चलते हुए कुछ संकेत किया करते थे . . .। लेकिन बच्चे, जब वे पूरी तरह खेलमें रम जाते हैं तो इसे स्वाभाविक रूपसे करते हैं, दौड़ते हुए, खेलते हुए, कूदते हुए, चिल्लाते हुए; जब वे अपनी सारी शक्ति इस तरह खर्च कर देते हैं, तो वे अपने-आपको पूरी तरह दे देते हैं, और खेलने, हिलने और

दौड़नेके आनन्दमें उनका उस वैश्व प्राणिक शक्तिके साथ नाता जुड़ जाता है; उन्हें इसका पता नहीं होता, लेकिन वे अपनी प्राणिक शक्तिको वैश्व प्राणिक शक्तिके संपर्कमें रखकर खर्च करते हैं और इसी कारण अधिक थकावट महसूस किये बिना वे दौड़-भाग कर सकते हैं, उन्हें थकान बहुत देरमें आती है। इसका यह अर्थ है कि वे इतनी शक्ति खर्च करते हैं कि अगर वे वैश्व शक्तिके संपर्कमें न होते, तो तुरंत थककर चूर हो जाते। इसीलिये वे बढ़ते भी हैं; यह इसलिये होता है क्योंकि वे जितनी शक्ति खर्च करते हैं उससे अधिक पाते हैं। वे जितना खर्च करते हैं उससे अधिक पाना जानते हैं। और यह किसी ज्ञानके अनुरूप नहीं होता। यह एक सहज-स्वाभाविक क्रिया है। आनन्दकी क्रिया . . . वे जो कुछ करते हैं उसमें आनन्द मानते हैं—शक्तिको खर्च करनेका आनन्द। व्यक्ति इससे बहुत-से कार्य कर सकता है।

मैं कुछ ऐसे युवकोंको जानती थी जो हमेशा शहरोंमें ही रहे थे—शहरमें, और वहां उन छोटे कमरोंमें, जैसे कि बड़े शहरोंमें हुआ करते हैं जहां हर एक ठुंसा रहता है। हां, तो वे अपनी छुट्टियां देहातमें बिताने दक्षिण फ्रांसमें आये थे, वहां सूरज काफी तपता है, स्वभावतः यहांकी तरह नहीं, लेकिन फिर भी वहां गर्मी बहुत पड़ती है (उदाहरणके लिये, जब तुम भूमध्य सागरके तटकी धूपकी तुलना पैरिसकी धूपके साथ करो, तो सचमुच उसमें बहुत फर्क होता है), तो, जब वे देहातमें घूमने निकले तो पहले कुछ दिनोंतक उनके सिरमें भयंकर दर्द रहा। वे धूपके कारण बिलकुल बेचैन हो उठे; लेकिन अचानक उन्हें यह विचार आया: "अगर हम सूरजके साथ दोस्ती कर लें तो वह हमें आगेसे नुकसान नहीं पहुंचायेगा।" और उन्होंने सूरजके साथ मैत्री और विश्वासका संबन्ध जोड़नेके लिये एक तरहका आंतरिक प्रयास शुरू कर दिया, और जब वे धूपमें होते तो सिमट-सिकुड़कर अपने-आपसे यह कहनेके बजाय: "ओह, कितनी गर्मी है, कितनी जलन होती है!" वे कहते: "आहा, यह सूरज कितनी शक्ति, कितने आनन्द और कितने प्रेमसे भरपूर है!" इत्यादि, . . . , वे यूं (संकेत) खुल गये, और इतना ही नहीं कि आगेसे उन्हें बिलकुल कष्ट न उठाना पड़ा, बल्कि उन्होंने स्वयंको इतना शक्तिशाली अनुभव किया कि उनसे जो भी कहता: "ओह, गरमी पड़ रही है"—वे यही कहते: "हमारी तरह करो, तुम देखोगे कि यह कितना भला करती है।" और वे नंगे सिर, बिना किसी असुविधाके घंटों तपती धूपमें रह सकते थे। सिद्धांत वही है।

हां, सिद्धांत वही है। उन्होंने अपने-आपको सूर्यमें जो वैश्व प्राणिक

शक्ति है उसके साथ जोड़ लिया और उन्हें वह शक्ति प्राप्त हुई जिसने उन सभी चीजोंको हटा दिया जो उन्हें अप्रिय थीं।

जब तुम देहातमें होते हो, पेड़ोंके नीचे टहलते हुए स्वयंको 'प्रकृति' के, वृक्षोंके, आसमानके, सभी पत्तियों, सभी शाखाओं और सभी घासोंके बहुत निकट अनुभव करते हो, जब तुम इन वस्तुओंके साथ एक गहरी दोस्ती-का अनुभव करते हो और जब तुम उस हवामें सांस लेते हो जो इतनी अच्छी है, जो सभी पेड़-पौधोंकी सुगंध लिये होती है, तब तुम अपने-आपको खोलते हो, खुलते समय वैश्व शक्तियोंके साथ तुम्हारा संबन्ध जुड़ जाता है, सभी चीजोंके साथ यही बात होती है।

क्या ठंडमें भी हम यही चीज कर सकते हैं?

हां, मेरा ख्याल है। मैं समझती हूं कि सभी परिस्थितियोंमें तुम यही कर सकते हो।

'प्रकृति' की व्यवस्थामें सूरज एक बहुत शक्तिशाली प्रतीक है। इस-लिये बात एकदम वही न होगी, उसमें ऊर्जाकी असाधारण घनता होती है। ठंड मुझे अधिक अभावात्मक वस्तु प्रतीत होती है: वह किसी वस्तुका अभाव है। लेकिन हर हालतमें, अगर तुम 'प्रकृति' के क्रिया-कलापोंके तालके साथ मेल बैठाना जानो, तो तुम बहुत-सी असुविधाओंसे बच जाते हो। जो चीज तुम्हें कष्ट देती है, जो शरीरके संतुलनमें गड़बड़ पैदा करती है वह है एक संकीर्णता, यह हमेशा संकीर्णता ही होती है। यह इसलिये होता है क्योंकि तुम अपनी सीमाओंमें बन्द रहते हो, अतः, जैसा श्रीअरविंद यहां लिखते हैं, कोई शक्ति होती है जो इन सीमाओं-को बहुत ज्यादा दबाती है — इससे सब कुछ अस्तव्यस्त हो जाता है।

मधुर मां, "आंतरिक भौतिक" क्या है?

लो, अभी उस दिन ही तो अंतस्तलके बारेमें यह प्रश्न किया गया था। यह वही चीज है, है न?

हम कह सकते हैं बाह्य भौतिक, यानी, शरीरका वह रूप जो हम देखते हैं, एक तरहके आंतरिक अस्तित्व और द्रव्यके आधारपर और उसके सहारे खड़ा है। वही बाहरी वस्तुके द्वारा अभिव्यक्त होता है। तुम इसका स्पष्ट अनुभव तब करते हो जब कोई चीज बाहरसे तुमपर आघात करती है, और वह तुम्हें प्रिय नहीं होती: जब तुम उससे पीछे

हटते हो, तो परिस्थितियों या वस्तुओंके उस संबन्धसे पीछे हट जाते हो, हां, तो तुम्हें पहला अनुभव यह होता है कि तुम अपनी आंतरिक भौतिक सत्तामें ही लौट जाते हो, उस भौतिक सत्तामें जो पीछे रहती है, जो मानों नया रूप बनानेके लिये बाह्य आकारपर दबाव डाल रही है।

यही चीज बच्चोंको बढ़ाती है, यह एक ऐसी आंतरिक चीज है जो धकेलती है, क्रियाके लिये, हिलने-डुलनेके लिये, प्रगति करनेके लिये उन्हें प्रेरित करती है। लेकिन यह भौतिक है, यह कोई प्राणिक या मानसिक चेतना नहीं है, यह शुद्ध रूपसे भौतिक है। यह एक ऐसी चीज है जो अन्दरसे अभिव्यक्तिकी ओर बढ़ती है और अभिव्यक्तिमें एकाग्र होती और दिशा पाती है। यह अन्दर अधिक विशाल और अधिक अस्पष्ट होती है। इसीको श्रीअरविंद "आंतरिक भौतिक" कहते हैं। यह अधिक अनिश्चित और अधिक अस्पष्ट होती है। तुम वहां स्वप्न देख सकते हो। उदाहरणके लिये, तुम सपना देखते हो कि तुम एक कमरा देख रहे हो, अपना कमरा। हां, तो वह तुम्हारा कमरा है, लेकिन फिर भी उसमें छोटे-मोटे अंतर हैं; वह ठीक वैसा नहीं है जैसा तुम पूरी तरह जागते हुए, इन दो आंखोंसे देखते हो। यह अपने-आपमें भौतिक दर्शन है, केवल हल्के-से भेदके साथ, अत्यंत जड़ भौतिकसे तुलना करें तो कुछ भिन्न।

बस ?

मधुर मां, क्या वैश्व प्राणिक शक्तियोंकी सीमाएं होती हैं ?

मैं नहीं सोचती कि शक्तियोंकी सीमा होती है, क्योंकि तुम्हारे अनुपातमें वे निश्चय ही असीम हैं। लेकिन तुम्हारी ग्रहणशीलताकी शक्ति सीमित होती है। तुम अमुक मात्रासे अधिक आत्मसात् नहीं कर सकते, और फिर हमें खर्च और ग्रहण करनेकी क्षमतामें एक संतुलन रखना चाहिये। अगर तुम यकायक किसी आवेशमें आकर खर्च करो — उदाहरणके लिये, किसी आवेशपूर्ण क्रियामें — तुम्हें जितनी शक्ति मिली है उससे कहीं अधिक खर्च कर डालो, तो तुम्हें वैश्व शक्तियोंको आत्मसात् करनेके लिये क्षण-भरकी एकाग्रता, शांति, ग्रहणशीलताकी आवश्यकता होती है। उन्हें प्राप्त करनेके लिये तुम्हें अपने-आपको एक विशेष अवस्थामें रखना होता है; तब वे कुछ समयतक बनी रहती हैं, एक बार खर्च कर देनेपर तुम्हें उन्हें फिरसे प्राप्त करना होगा। सीमाएं इसी अर्थमें होती हैं। शक्तियां सीमित नहीं होतीं, ग्रहणशीलता सीमित होती है।

हर व्यक्तिकी ग्रहणशीलता भिन्न होती है। कोई भी दो ग्रहणशीलताएं

गुण और परिमाणमें, विशेषकर गुणमें, समान नहीं होतीं। तुम्हारा बहुत पवित्र, बहुत तीव्र शक्तियोंके साथ संपर्क जुड़ जाता है — ऐसी शक्तियोंके साथ जिन्हें तुम परिवर्तित शक्तियां कह सकते हो, अर्थात्, ऐसी वैश्व शक्तियां जिनका भगवान्‌के साथ संबन्ध है और वे न केवल भगवान्‌को प्राप्त करती हैं, बल्कि उन्हें पानेके लिये अभीप्सा करती हैं। तो अगर तुम इन शक्तियोंको आत्मसात् कर लो, तो ये तुम्हें प्रगतिके लिये महान् बल देती हैं। इसमें गुण बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। रही बात वैश्व प्राणिक शक्तियोंके गुणकी, यह स्वभावतः बहुत कुछ इसपर निर्भर ह कि तुम क्या हो, और साथ-ही-साथ इसपर कि तुम क्या करते हो।

अगर तुम इन शक्तियोंका उपयोग शुद्ध रूपसे किसी निम्न प्रकारकी स्वार्थपूर्ण क्रियाके लिये करो, तो तुम अपने लिये फिरसे उसी गुणकी नयी शक्तियोंको पाना बिलकुल असंभव कर देते हो। सब कुछ इसपर निर्भर है कि जिन शक्तियोंको तुम प्राप्त करते हो उनका किस तरह उपयोग करते हो। इसके विपरीत, अगर तुम उनका उपयोग प्रगति करनेके लिये, स्वयंको पूर्ण बनानेके लिये करो, तो यह तुम्हें ग्रहणशीलता प्रदान करती है . . . तुम्हारी ग्रहणशक्तिको बहुत अधिक बढ़ा देती है, और अगली बार तुम पहलेसे बहुत अधिक प्राप्त कर सकते हो। सब कुछ (हर हालतमें, मुख्यतः) उनके उपयोगपर निर्भर है। उदाहरणके लिये, ऐसे लोग हैं जो स्वभावसे चिड़चिड़े हैं और जो अपने क्रोधको वशमें करनेमें सफल नहीं हुए हैं। हां तो, अगर अभीप्सा या किसी और प्रक्रियाद्वारा उन्होंने कुछ उच्चतर प्राणिक शक्तियां प्राप्त कर ली हैं तो, चूंकि उनके अन्दर आत्म-संयम नहीं है, यह प्राप्ति चिड़चिड़ेपन या गुस्सेको शांत करनेकी जगह, उनका क्रोध और बढ़ा देती है, अर्थात्, उनकी खीझ, उग्रताकी क्रिया अधिक शक्ति, अधिक ऊर्जासे भर जाती है और बहुत अधिक उग्र हो उठती है। तो यह ठीक ही कहा गया है कि वैश्व शक्तियोंके साथ संपर्क कोई प्रगति नहीं करवाता। लेकिन यह इसलिये होता है क्योंकि लोग उनका गलत उपयोग करते हैं। लेकिन स्वभावतः कुछ समयके बाद गलत उपयोग ग्रहणशीलताको कम कर देता है; लेकिन इसमें समय लगता है, यह तुरंत नहीं हो जाता। अतः यह बहुत जरूरी है कि तुम निम्न शक्तियोंको नहीं, उच्च शक्तियोंको ग्रहण करनेके लिये अपने-आपको उचित अवस्थामें रखो, और फिर दूसरी बात यह कि जब उन्हें पा लो तो उनका उपयोग यथासंभव अच्छी-से-अच्छी चीजके लिये करो, ताकि तुम अपने-आपको अधिक ऊंची शक्तियोंको ग्रहण करनेके लिये तैयार कर सको। लेकिन अगर तुम अपने-आपको खोल कर शक्तियोंको प्राप्त

कर लो, और फिर उस प्राप्तिसे संतुष्ट होकर स्वयंको हर साधारण क्रिया-में जा गिरने दो, तो तुम दरवाजा बन्द कर देते हो और शक्ति फिर वापिस नहीं आती।

हम ग्रहणशीलताको बढ़ा भी सकते हैं? . . .

ग्रहणशीलताको किस तरह बढ़ाया जाय? प्रगति करके।

पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि अपने-आपको कैसे खोला जाय। एक महान् शांतिमें उन प्राप्त की गयी शक्तियोंको आत्मसात् करना आना चाहिये, उन्हें फिरसे फेंक न देना चाहिये। उन्हें आत्मसात् करना जानना चाहिये।

तो प्रगति सामान्य किंतु क्रमशः बढ़ते हुए संतुलनमें है, आत्मसात् करनेकी अवधियां — ग्रहण और आत्मसात् करनेकी — और उन्हें खर्च करनेकी अवधियां, इन दोनोंमें तुम्हें संतुलन रखना आना चाहिये, और उन्हें बारी-बारीसे ऐसी लयमें बदलना भी आना चाहिये जो तुम्हारी निजी हो। तुम्हें अपने सामर्थ्यकी सीमाको न लांघना चाहिये, न ही सामर्थ्यसे कम करना चाहिये, क्योंकि वैश्व प्राणिक शक्तियां ऐसी चीज नहीं हैं जिन्हें तुम तिजोरीमें बंद करके रख सको। उनका संचार होना चाहिये। अतः ग्रहण करना आना चाहिये और साथ-ही-साथ व्यय करना भी, लेकिन तुम्हें ग्रहणशीलताकी क्षमताको इस तरह बढ़ाना चाहिये कि जो चीजें खतम करने या खर्च करनेके लिये हैं उन्हें अधिक-से-अधिक प्राप्त किया जाय। तो ऐसा होता है, जैसा कि मैं कह रही थी, बच्चोंमें यह स्वाभाविक रूपसे होता है। वे कुछ शुरू करते हैं, कुछ प्रयास करते हैं, सहज रूपसे कुछ शक्ति ग्रहण करते हैं, उसे आत्मसात् कर लेते हैं, फिर कुछ दिनोंके बाद, दो दिन, दस दिन, बीस दिनतक वे अधिक खर्च कर सकते हैं। एक सालके बाद वे बहुत अधिक कार्य कर सकते हैं, क्योंकि वे बारी-बारीसे स्वाभाविक रूपमें ग्रहण और व्यय करते हैं, और वे अपने आकारमें बढ़ते जाते हैं। निस्संदेह वे यह अचेतन रूपसे करते हैं, लेकिन अधिक बड़े होकर यह करना अधिक कठिन हो जाता है, उदाहरणके लिये तुम बढ़ना बंद कर देते हो। तब इसका अर्थ होता है कि बढ़नेकी एक अवधि होती है जो अब खतम हो गयी है। लेकिन उसे ज्यादा लंबा किया जा सकता है। एक आंतरिक अनुशासनद्वारा इसे बढ़ाया जा सकता है, एक ऐसे तरीकेसे जिसे तुम खोज निकालते हो, जो तुम्हारा अपना तरीका होना चाहिये।

११ मई, १९५५

यह वार्ता 'योगके आधार' अध्याय पांच
'भौतिक चेतना आदि' पर आधारित है।

आज कौन प्रश्न पूछ रहा है?

मधुर मां, शरीरको सब प्रकारके आक्रमणोंसे कैसे असंक्राम्य बनाया जाय?

आहा, श्रीअरविंदने बादमें यह लिखा है न? वे कहते हैं कि केवल अतिमानसिक 'शक्ति' का अवतरण ही शरीरको हर आक्रमणसे उन्मुक्त रख सकता है। उनका कहना है कि अन्यथा यह चीज केवल क्षणिक हो सकती है, और यह हमेशा काम नहीं करती। वे कहते हैं कि शरीर व्यावहारिक रूपसे रोग-मुक्त हो सकता है लेकिन पूरी तरहसे नहीं; पूरी तरहसे ऐसा होनेके लिये वर्तमान प्रकृतिके अतिमानसिक प्रकृतिमें रूपांतरित होनेसे ही, शरीर पूरी तरह हर आक्रमणसे मुक्त हो सकता है।

मधुर मां, क्या अवचेतना मन, प्राण, शरीरसे ज्यादा बलवान् है?

ज्यादा बलवान्से तुम्हारा क्या मतलब है?

यहां लिखा है...

इसमें अधिक शक्ति है। हां तो, इसी कारण कि वह अवचेतना है, वह सब जगह है, ऐसा लगता है कि सब कुछ अवचेतनामें शराबोर है। अतः, 'अवचेतना' का मतलब है अर्द्ध-चेतना जो न सचेतन है, न निश्चेतन। वह दोनोंके ठीक बीचमें है; चीज ऐसी है, बीचोंबीच; इसलिये चीजें उसमें फिसल जाती हैं, तुम्हें पता नहीं चलता कि वे वहां हैं, और वे वहांसे क्रिया करती हैं; और चूंकि तुम्हें पता नहीं होता कि वे मौजूद हैं इसलिये वे बनी रह सकती हैं। ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिन्हें तुम रखना नहीं चाहते, और तुम उन्हें सक्रिय चेतनासे खदेड़ देते हो, लेकिन वे वहां, नीचे उतर जाती हैं, छिप जाती हैं, और चूंकि यह अवचेतना

है अतः तुम देख नहीं पाते; लेकिन वे पूरी तरह जाती नहीं हैं, और जब कभी उन्हें ऊपर उठनेका अवसर मिलता है, वे उठ आती हैं। उदाहरणके लिये, शरीरकी कुछ बुरी आदतें होती हैं, इस अर्थमें, जैसे शरीरमें असंतुलित होनेकी आदत होती है — जिसे हम बीमार पड़ना कहते हैं, है न; पर फिर भी, शारीरिक क्रियाएं बुरी आदतोंके कारण विकृत हो जाती हैं। तुम 'शक्ति' को एकाग्र करके उसे इस दोषपर लगाकर उसे गायब तो कर देते हो, लेकिन वह पूरी तरहसे गायब नहीं हो जाता, वह अवचेतनामें घुस जाता है। और फिर, जब तुम असावधान होते हो, जब उसपर पूरी निगरानी रखना बंद कर देते हो और उसे अपनेआपको प्रकट करनेसे नहीं रोकते, तो वह ऊपर उठकर बाहर आ जाता है। तुमने महीनों या शायद सालोंतक सोचा होगा, तुमने सोचा होगा कि तुम अमुक प्रकारकी बीमारीसे, जो तुम्हें हुआ करती थीं, बिलकुल छुटकारा पा गये हो, और तुमने आगेसे ध्यान देना बंद कर दिया, और अचानक एक दिन वह यूं वापिस लौट आती है मानों कभी गयी ही न हो; वह फिरसे अवचेतनासे फूट पड़ती है, और जबतक तुम उस अवचेतनामें उतरकर वहांकी चीजोंको न बदल डालो, अर्थात्, तुम उस अवचेतनाको चेतनामें न बदलो, तबतक हमेशा ऐसा ही होता रहता है। और इसका तरीका है अवचेतनाको चेतनामें बदलना — अगर सतहपर उठनेवाली हर चीज सचेतन हो जाय, तो उसे उसी क्षण बदल देना चाहिये। इसके अतिरिक्त एक और अधिक सीधा तरीका है: अपनी पूरी चेतनाके साथ अवचेतनामें प्रवेश करके वहां कार्य करना, लेकिन यह कठिन है। फिर भी जबतक यह नहीं किया जाता, तबतक तुमने जितनी भी प्रगति की है — मेरा मतलब है भौतिक रूपसे, अपने शरीरमें — वह हमेशा नष्ट हो सकती है।

(माताजी एक बालककी तरफ मुड़ती हैं) तुम सो रहे हो? करीब-करीब!

कोई प्रश्न नहीं? . . . तुम? कुछ नहीं!

मधुर मां, जब हम किसी बीमारीको आते हुए देखें तो उसको किस तरह रोक सकते हैं?

ओह! सबसे पहले, उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, तुम्हारे शरीरकी किसी चीजको उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। तुम्हारे अन्दर बीमार न पड़नेके लिये बहुत प्रबल संकल्प होना चाहिये। यह पहली शर्त है।

दूसरी शर्त है ज्योतिको पुकारना, संतुलनकी ज्योतिको, शांति, स्थिरता और समताकी ज्योतिको पुकारना, और उसे शरीरके सभी कोषाणुओंमें प्रविष्ट करना, उन्हें भयभीत न होनेका आदेश देना, क्योंकि यह एक और शर्त है।

पहले, बीमार पड़नेकी इच्छा न करना, और फिर बीमारीसे भयभीत न होना। तुम्हें न तो बीमारीको आकर्षित करना चाहिये और न उस-से कांपना ही चाहिये। बीमारीकी इच्छा बिलकुल नहीं करनी चाहिये। लेकिन ऐसा न हो कि भयके कारण तुम उसकी इच्छा न करो, तुम्हें डरना नहीं चाहिये; तुम्हारे अन्दर एक शांत निश्चिति और पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि 'कृपा' की शक्ति सभी चीजोंसे तुम्हारी रक्षा कर सकेगी, और फिर किसी और ही वस्तुके बारेमें सोचो, इसके विषयमें अब और चिंता न करो। जब तुम इन दो चीजोंको कर लो, अपनी पूरी इच्छा शक्तिके साथ बीमारीको अस्वीकार करो और एक ऐसे विश्वाससे भर जाओ जो कोषाणुओंमेंसे भयको पूरी तरह निकाल दे, और फिर अपने-आपको किसी और चीजमें व्यस्त कर लो, आगेसे बीमारीके बारेमें और न सोचो, यह भूल जाओ कि उसका अस्तित्व है . . . हां, अगर तुम इसे करना जान लो, तो तुम ऐसे लोगोंके संपर्कमें आ सकते हो जिन्हें संक्रामक रोग हो, और फिर भी तुम उन रोगोंसे अछूते रहोगे। लेकिन यह करना आना चाहिये।

बहुत-से लोग कहते हैं: "लो, देखो, मैं नहीं डरता।" उनके मनमें भय नहीं होता, उनका मन नहीं डरता, वह मजबूत है, उसे डर नहीं लगता; लेकिन शरीर कांपता है, और मनुष्य इसे नहीं जानता, क्योंकि शरीरके कोषाणुओंमें कंपन चलता रहता है। वह भयंकर व्याकुलतासे कांपता है और यही चीज बीमारीको आकर्षित करती है। यहांपर तुम्हें शक्ति और पूर्ण शांतिकी स्थिरता तथा 'कृपा' में निरपेक्ष श्रद्धाको स्थापित करना चाहिये। और फिर, कभी-कभी अपने विचारकी ऐसी ही शक्तिद्वारा तुम्हें इस तरहके सभी सुझावोंको खदेड़ना पड़ता है: "आखिर, भौतिक जगत् बीमारियोंसे भरा पड़ा है, और ये संक्रामक हैं, और चूंकि हमारा ऐसे व्यक्तिसे संपर्क था जो बीमार है, इसलिये निश्चय ही हमें भी वह छूत लग जायगी," या यह कि "आंतरिक तरीके इतने शक्तिशाली नहीं होते कि वे भौतिकपर क्रिया कर सकें" और हर तरहकी मूर्खताएं जो वातावरणमें भरी हुई हैं। ये सामूहिक सुझाव होते हैं जिन्हें हर व्यक्ति एक-दूसरेको देता चला जाता है। और संयोगसे अगर वहां दो-तीन डाक्टर हों, तो बस, बात भयंकर हो जाती है। (हंसी)

जब श्रीअरविंद कहते हैं कि बीमारी बाहरसे आती है तो वस्तुतः क्या आता है ?

वह एक तरहका स्पंदन है जो किसी मानसिक सुझाव, अव्यवस्थाकी प्राणिक शक्तिसे और कुछ उन भौतिक तत्त्वोंसे बनता है जो मानसिक सुझाव और प्राणिक स्पंदनका भौतिकीकरण होते हैं। और ये सब भौतिक तत्त्व वे हो सकते हैं जिन्हें मनुष्यने कीटाणु, जीवाणु, 'यह', 'वह' तथा कई अन्य नाम दिये हैं।

उसके साथ कोई संवेदन हो सकता है, उसके साथ कोई स्वाद हो सकता है, कोई गंध हो सकती है, बशर्ते कि तुम्हारी सूक्ष्म इंद्रियां बहुत विकसित हों। बीमारियोंकी ऐसी रचनाएं होती हैं जो हवाको एक विशेष स्वाद, विशेष गंध या कोई छोटा-सा विशेष स्पंदन देती हैं।

व्यक्तिके अन्दर बहुत-सी सुप्त इंद्रियां हैं। वे भयंकर रूपसे तामसिक होती हैं। अगर तुम्हारे अंदरकी सभी इंद्रियां जगी होतीं, तो तुम बहुत-सी ऐसी वस्तुएं देख पाते, जो यूं ही गुजर सकती हैं और किसीको कुछ शंका भी नहीं होती।

उदाहरणके लिये, इस समय कई लोगोंको एक तरहका इंफ्लुएंजा हुआ है। यह बहुत फैला हुआ है। हां तो, जब यह निकट आता है, तो इसमें एक विशेष स्वाद होता है, एक विशेष गंध होती है, और यह तुम्हारी ओर एक तरहका संपर्क लाता है (स्वभावतः यह एक प्रहारकी तरह नहीं होता), एक अधिक सूक्ष्म वस्तु, एक तरहका संपर्क, ठीक उसी तरहका जैसा तब होता है जब तुम अपना हाथ किसी द्रव्यपर फेरते हो, किसी कपड़ेपर उल्टी दिशामें . . . तुमने कभी ऐसा नहीं किया ? कपड़ेका एक दाना होता है, है न; जब तुम सीधी दिशामें हाथ फेरते हो, या तुम यूं (संकेत) फेरते हो, हां तो, वह तुम्हें . . . यह एक ऐसी चीज है जो तुम्हारी त्वचापरसे गुजरती है, इस तरह, पीछेकी ओर। लेकिन स्वभावतः, मैं तुम्हें बतला सकती हूं कि वह चकरा देनेवाले आघात-की तरह नहीं आती। वह बहुत सूक्ष्म परंतु बहुत स्पष्ट होती है। तो अगर तुम उसे देख लो, तो बहुत आसानीसे . . .

इसके अतिरिक्त, अगर तुम बहुत अधिक शांत स्पंदनोंको प्राप्त करना जानते हो, इतने शांत कि वे तुम्हारे चारों ओर एक प्रकारकी दीवार-सी खड़ी कर दें, तो यह हमेशा सुरक्षाके वातावरणद्वारा अपने-आपको अलग कर लेनेका एक तरीका होता है। लेकिन तुम सारे समय, सारे समय, बाहरसे आनेवाले स्पंदनोंके उत्तरमें स्पंदित होते रहते हो। अगर

तुम्हें इसका भान हो, तो सारे समय कोई चीज यूं करती रहती है (संकेत) इस तरह, इस तरह, इस तरह, (संकेत), जो बाहरसे आनेवाले सभी स्पंदनोंका उत्तर देती है। तुम कभी उस बिलकुल शांत वातावरणमें नहीं रहते जो तुम्हारे अंदरसे निकलता है, यानी, जो अंदरसे बाहरकी ओर आता है (कोई ऐसी चीज नहीं जो बाहरसे अंदरकी ओर आती हो), वह तुम्हारे चारों ओर लिफाफेके जैसी चीज है, बहुत शांत, इस तरह —और तुम चाहे जहां चले जाओ और ये स्पंदन जो बाहरसे आते हैं तुम्हारे वातावरणके चारों ओर इस तरह (संकेत) करना नहीं शुरू करते।

अगर तुम उस तरहका नृत्य देख पाओ, तुम्हारे चारों ओर सारे समय स्पंदनोंका जो नृत्य होता रहता है, तो तुम भली-भांति देख पाओगे, समझ सकोगे कि मेरा क्या मतलब है।

उदाहरणके लिये, किसी खेलमें, जब तुम खेलते हो, तो ऐसा होता है (संकेत), और फिर यह किसी बिंदुके स्पंदनोंकी तरह होता है, वह बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है, यहांतक कि अचानक, धड़ाम! ...एक दुर्घटना। और यह इस तरहका सामूहिक वातावरण है; हम आकर उसे देखते हैं, तुम खेलके बीचमें हो—बास्केट-बॉल, फुट-बॉल या कोई और खेल—हम उसे अनुभव करते हैं, देखते हैं, वह तुम्हारे चारों ओर एक तरहका धुंआ-सा पैदा कर देता है (गरमीकी भाप, जो कभी-कभी आया करती है, कुछ-कुछ वैसा, और तब वह स्पंदनका रूप ले लेती है, इस तरह, इस तरह, अधिकाधिक, अधिकाधिक, अधिकाधिक, यहांतक कि अचानक संतुलन बिगड़ जाता है: किसीकी टांग टूट जाती है, कोई गिर पड़ता है, किसीके मुंहपर गेंदकी चोट लग जाती है, आदि। और जब ऐसा हो तो पहलेसे कहा जा सकता है कि ऐसा होनेवाला है। लेकिन किसीको उसका पता नहीं होता।

फिर भी, कम गंभीर चीजोंमें भी, तुममेंसे हर एकके चारों ओर व्यक्तिगत रूपसे ऐसी चीज होती है जो बहुत व्यक्तिगत, शांत लिफाफा होनेकी जगह, जो तुम्हें ऐसी सब चीजोंसे बचाये रखे जिन्हें तुम नहीं पाना चाहते... मेरा मतलब है कि तुम्हारी ग्रहणशीलता सुविवेचित और सचेतन हो जाती है,—अन्यथा तुम ग्रहण नहीं कर सकते—केवल तभी जब तुम्हारे अन्दर यह अत्यंत सचेतन शांत वातावरण हो, और जैसा कि मैं कहती हूं, जब वह अंदरसे आये (यह कोई ऐसी चीज नहीं है जो बाहरसे आती हो), केवल तभी जब ऐसा हो तो तुम जीवनमें, अर्थात्, दूसरोंके बीच, हर क्षणकी सभी परिस्थितियोंमें सुरक्षित रूपसे चल सकते हो...

अन्यथा यदि कोई बुरी चीज पकड़ी जा सकती है, उदाहरणके लिये,

क्रोध, भय, रोग, कुछ बेचैनी, तो तुम निश्चय ही उसे पकड़ लेते हो। जैसे ही वह यूं करना शुरू करे (संकेत), तो यह ऐसा है मानों तुम उन जैसे सभी स्पंदनोंको बुलाते हो ताकि वे आकर तुम्हें पकड़ लें।

आश्चर्यकी बात यह है कि मनुष्य कितने अचेतन रूपमें अपना जीवन बिताते हैं; वे यह जानते ही नहीं कि कैसे जिया जाय। करोड़ोंमें एक भी नहीं है जो जानता हो कि कैसे जिया जाय, और वे किसी-न-किसी तरह, लंगड़ाते हुए, संभलते, न संभलते जी लेते हैं; और यह सब उनके लिये, छिः! यह क्या है? वे वस्तुएं जो घटती रहती हैं।

वे जीना जानते ही नहीं, फिर भी, आदमीको सीखना चाहिये कि कैसे जिया जाय। यह पहली चीज है जो बच्चोंको सिखानी चाहिये: वे यह सीखें कि कैसे जिया जाय। मैंने कोशिश तो की है पर पता नहीं मैं बहुत सफल हूं या नहीं। मेरा ख्याल है कि मैंने यह सब बातें तुमसे बहुत बार कही हैं, नहीं कहीं क्या? नहीं कहीं?

जी हां।

तो बस, और कोई प्रश्न?

मधुर मां, मैं अंतिम भाग नहीं समझ पाया।

अंतिम भागमें 'अतिमानस' की बात है, हैं न?

ओह, हां, तुम्हारा मतलब है कि तुम योग-शक्तियों और अतिमानसिक प्रकृतिमें फर्क नहीं समझ पाये। लेकिन श्रीअरविंद इसकी व्याख्या करते हैं।

मैं नहीं समझ पाया।

बाहरी चेतनामें, यानी, मानसिक भौतिक और शारीरिक चेतनामें इस तरह-का परिणाम पानेके लिये जिसकी हम बात कर रहे थे (उदाहरणके लिये तुम्हें अवांछनीय संपर्कसे सुरक्षित रखनेवाले एक निजी रक्षक वातावरण पानेके लिये), तुम्हारे अन्दर योग-शक्ति, यानी, योगाभ्यासद्वारा प्राप्त शक्ति होनी चाहिये; जब कि अगर तुम्हारा शरीर अतिमानसिक हो जाय, अगर उसमें सामान्य भौतिक प्रकृतिकी जगह, अतिमानसिक प्रकृति हो तो तुम्हारी रक्षाके लिये किसी यौगिक ज्ञानके हस्तक्षेप, योग-शक्तिकी

जरूरत न होगी, क्योंकि तुम इस अतिमानसिक प्रकृतिके अस्तित्व मात्रसे बिलकुल स्वाभाविक रूपसे सुरक्षित रहोगे। श्रीअरविंद यही कहते हैं।

लेकिन शरीरमें अतिमानसिक प्रकृति एक ऐसी चीज है जिसे अभी उपलब्ध करना बाकी है। यह ऐसी चीज है जिसे भौतिक चेतनामें उपलब्ध करना बाकी है। यह भौतिक चेतनामें संभव है लेकिन शरीरमें, अभी नहीं।

और फिर, श्रीअरविंदने हमसे कहा है कि इसमें तीन सौ वर्ष लगेंगे, अतः हमें प्रतीक्षा करनी होगी। हमें केवल प्रतीक्षा करना और डटे रहना सीखना चाहिये।

तो बस?

मधुर मां, पीड़ाको सुखके रूपोंमें कैसे बदला जा सकता है?

आह! लेकिन यह करने लायक चीज नहीं है, मेरे बच्चो। निश्चय ही मैं तुम्हें इसका उपाय न बताऊंगी! यह एक विकृति है।

पहली और सबसे अधिक अनिवार्य चीज है संबन्ध काटकर पीड़ाको निष्प्रभाव कर देना। तुम पीड़ाके बारेमें सचेतन होते हो क्योंकि वह (संबन्ध) वहां है।

उदाहरणके लिये, तुमने अपनी उंगली काट ली है, एक स्नायुपर असर पड़ा है, अतः स्नायु तुरंत ऊपर, मस्तिष्कको खबर देती है कि यहां, कोई ऐसी चीज हुई है जो ठीक नहीं है। यही चीज तुम्हारा ध्यान खींचनेके लिये तुम्हें पीड़ा देती है, तुमसे यह कहनेके लिये: "जानते हो, यहां कुछ गड़बड़ है।" तब विचार एकदम चिंतित हो उठता है: "क्या गड़बड़ है? ओह! कितना दर्द होता है," आदि, आदि — तब वह उंगलीकी ओर लौटता है और जो नष्ट नहीं हुआ है उसे फिरसे व्यवस्थित करनेकी कोशिश करता है। साधारणतः एक पट्टी बांध दी जाती है। लेकिन अगर बहुत दर्द हो रहा हो, तो दर्द अनुभव न करनेके लिये तुम्हें बस, विचारके द्वारा संबन्ध काट देना चाहिये, स्नायुसे कहना चाहिये: "लो, चुप रहो, तुमने अपना काम कर दिया, तुमने मुझे चेतावनी दे दी, अब तुम्हें और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है; पट्ट! मैं तुम्हें बंद कर रहा हूं।" और जब तुम इसे भली-भांति कर लेते हो तो फिर तुम्हें कष्ट नहीं होता, वह समाप्त हो जाता है, तुम दर्दको पूरी तरह बंद कर देते हो। यह सबसे अच्छी चीज है। अपने-आपसे यह कहनेकी अपेक्षा कि **यहां** दर्द हो रहा है, यह कहीं ज्यादा अच्छा है।

मैं एक आदमीको जानती थी जिसका... पता नहीं कभी तुम्हारा नाखून अंदरकी ओर बढ़ा है या नहीं — नाखून अंदरकी ओर बढ़नेका मतलब है नाखूनका त्वचामें घुस जाना और अगर यह पांवमें हो तो बहुत कष्ट देता है; वह त्वचाके अंदर धंसकर बढ़ता है; तो स्वभावतः, विशेष रूपसे अगर तुम तंग जूते पहनते हो, तो यह बहुत कष्ट देता है। हां तो, मैं एक लड़केको जानती थी जिसने अपने नाखूनको यूं (संकेत) दबाना शुरू किया, इस ख्यालसे कि दर्द स्पंदनोंकी कुछ तीव्रताओंको सह सकनेकी केवल अक्षमता है, समझे; तो वह मर्यादाके पार चला गया, और वस्तुतः दबाता गया, शुरूमें बहुत भयंकर पीड़ा हुई, वह तबतक दबाता गया जबतक उसकी पीड़ा एक प्रकारके सुखमें नहीं बदल गयी, इसमें वह भली-भांति सफल हुआ।

अगर तुम्हें दर्द हो रहा हो, और तुम अपने-आपको और भी ज्यादा दर्द दो, तो अन्तमें एक क्षण आता है जब तुम या तो बेहोश हो जाते हो (जो लोग जरा कमजोर होते हैं और बहुत सहनशील नहीं होते, वे बेहोश हो जाते हैं), या फिर वह सुखमें बदल जाता है; लेकिन यह वांछनीय नहीं है। मैं तुम्हें केवल यह बता रही हूं कि यह किया जा सकता है। मैंने ऐक लड़का देखा है जो यह किया करता था — वह बारह वर्षका था, और वह यह चीज जान-बूझकर, बहुत सचेतन रूपसे करता था। उसने कभी योगके बारेमें सुना भी न था लेकिन यह तरकीब उसने अपने-आप खोज निकाली थी। लेकिन यह वांछनीय नहीं है क्योंकि उसके पैरकी उंगलियां ज्यादा खराब हो गयीं। इससे हालत जरा भी सुधरी नहीं।

लेकिन मेरा अपना तरीका बहुत ज्यादा अच्छा है जिसमें स्नायुसे कहा जाता है: "अब तुम अपना काम कर चुकी, चुप रहो, अब तुम्हें मुझसे और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है!" तुम उसे काट देते हो और बस, खतम।

जब तुम्हारे दांतमें सख्त दर्द हो (पता नहीं तुम्हारे दांतमें कभी दर्द होता है या नहीं, दांतका दर्द बहुत ज्यादा कष्ट देता है क्योंकि स्नायु मस्तिष्कके बिलकुल, बिलकुल पास है, इसलिये मार्गमें उसकी तीव्रता कम नहीं होती, वह सीधा असर करती है और बहुत कष्ट देती है), सबसे अच्छा तरीका तो यह है — वस्तुतः कोई और तरीका है भी नहीं — सबसे अच्छा तरीका है उसे काट देनेका: "अच्छा, ठीक है, तुमने अपना काम कर दिया, तुमने मुझे बता दिया कि वहां कुछ गड़बड़ है, यह काफी है, अब हिलो मत।" और तुम काट देते हो, यूं काट देते हो (संकेत),

संबन्ध काट देते हो, वह (स्नायु) संवेदनको और आगे नहीं भेजती। स्वभावतः तुम्हें किसी दूसरी चीजके बारेमें सोचना चाहिये। बादमें अगर तुम यह कहना शुरू करो: "क्या मेरे अब भी दर्द हो रहा है..."

माताजी यहां श्रीअरविंद कहते हैं कि पीड़ा एक मौलिक 'आनंद' की अवनति है...

हां, लेकिन सब, सभी कुछ तो एक अवनति है। उन्होंने कहा है, सुख भी। सुख-दुःख, दोनों ही समान रूपसे 'आनन्द' की अवनति हैं। इसके अतिरिक्त, मनुष्यकी भौतिक चेतनाके संतुलनकी क्षमता बहुत कम होती है। अगर तुम किसी सुखको जरा ज्यादा दूरतक ले जाओ, वह चाहे कुछ भी हो, तो वह तुरंत दुःख बन जाता है — वह चाहे कुछ भी क्यों न हो। और हमेशा एक ऐसा स्थान होता है जहां तुम यहतक नहीं जानते कि वह सुख है या दुःख, वह यह भी हो सकता है और वह भी। और लो, कोई ऐसी चीज खाओ जो बहुत मीठी हो और तुम उसका प्रभाव देखोगे। पहले तो तुम कहते हो कि वह बहुत बढ़िया है, फिर अचानक वह कुछ ऐसी चीज बन जाती है... ओह! वह करीब-करीब असह्य बन जाती है। सभी चीजोंके लिये ऐसा होता है, सभी चीजोंके लिये। ये बड़े नजदीकके सगे-संबन्धी होते हैं।

बस, इतना? तुम्हें कुछ और भी पूछना है?

माताजी, कई ऐसे काल होते हैं जब आश्रममें सामूहिक बीमारी फैल जाती है। ...

हां, केवल आश्रममें ही नहीं। दुर्भाग्यसे, पहले वह शहरमें आती है, फिर कोई बहुत आहिस्ता... ऐसे लोग जो अपना समय शहरमें इधर-उधर आने-जानेमें बिताते हैं, वे उसे अपने साथ यहां ले आते हैं, और फिर यहां लोग "पानर्गे" के भेड़ोंकी तरह हैं, अगर एक उस बीमारीमें फंस जाय, तो इसमें शान मानी जाती है, इसमें शोभा होती है, हर एक उसमें फंस जाता है।

(मौन)

तुम क्या पूछना चाहते थे?

मैं पूछना चाहता था कि ऐसा क्यों...

क्यों? लो! मैं उसका जवाब दे चुकी हूं।
अनुकरणका भाव! 'पानर्गे' की भेड़ें!

क्या तुम लोग जानते हो कि "पानर्गे" की भेड़ें क्या हैं? तुम नहीं जानते? ओह! वह...मेरा ख्याल है कि वह पहली कहानी है ...मैं नहीं जानती कि यह उसने पुरानी परंपरासे ली है, यह संभव है, लेकिन फिर भी...तुम लोगोंने राबलेका नाम सुना है! हां! हां तो, तो, यह फ्रांसमें राबलेने किसी किताबमें लिखी थी — यह...(माताजी पवित्रकी ओर मुड़ती हैं, उन्हें नहीं मालूम, फिर नलिनीकी ओर मुड़ती हैं) शायद नलिनीको पता हो!

(नलिनी) : **"पौंताग्रुएल"**।

"पौंताग्रुऐल"। मैं उसके बारेमें कुछ नहीं जानती। यह राबलेकी प्रसिद्ध किताबोंमेंसे एक है...मैंने वह नहीं पढ़ी, इसके अलावा...लेकिन वह भेड़ोंके किसी गल्लेकी कहानी सुनाता है जो किसी नावपर ले जाया जा रहा था और फिर...पता नहीं उसने (भेड़ने) यह जान-बूझकर किया या यह संयोगसे हो गया, इसकी मुझे अब याद नहीं क्योंकि मैंने यह कहानी बहुत लोगोंसे भिन्न-भिन्न रूपोंमें सुनी है...मेरा मतलब है, मेरा ख्याल है कि पुरानी हिन्दू परंपरामें भी ऐसा है, कुछ फारसी कहानियां भी इस तरहकी हैं. कुछ अरबी कहानियां भी इस तरहकी हैं; अतः मैं ठीक-ठीक नहीं जानती कि राबलेने क्या कहा; बहरहाल, कहानी यूं है:

किसी कारण उनमेंसे एक भेड़ नावसे समुद्रमें जा गिरती है, और बाकी सब एकके बाद एक उसकी देखा-देखी पानीमें जा गिरती हैं (हंसी)। चूंकि एक कूद पड़ी, इसलिये सभी हड़बड़ाकर अंधाधुंध पानीमें जा गिरती हैं। और यह प्रसिद्ध हो गया। वे "पानर्गे" की भेड़ें कहलाती हैं।

लेकिन एक ही तरीका है, जैसा कि मैंने करनेके लिये कहा, वह है शांत, ज्योतिर्मय, नीरव व्यक्तिगत वातावरण...। तब व्यक्ति "पानर्गे" की भेड़ नहीं बनता।

लो, मेरे बच्चो। बस, काफी है?

१८ मई, १९५५

यह वार्ता माताजीके लेख 'स्त्रियोंकी समस्या'[1] पर आधारित है।

बस, और प्रश्न नहीं! मुझे और कुछ नहीं कहना। मैं सब कुछ कह चुकी। तुम कुछ पूछना चाहते थे?

जी, आपने शीर्षक तो दिया है "स्त्रियोंकी समस्या", परंतु आप साथ-ही-साथ पुरुषोंकी समस्याके बारेमें भी बोल रही हैं।

हां, क्योंकि उन्हें अलग करना कठिन है। मैं यह नहीं कहना चाहती थी कि यह ऐसी समस्या है जिसका समाधान नारियोंको ही करना है; मैं कहना चाहती थी कि पार्थिव जीवनने स्त्रियोंके कारण यह समस्या हमारे सामने रखी है।

अभी बहुत समय नहीं हुआ जब पुरुष अपने-आपसे और अपनी करनीसे पूरी तरह संतुष्ट थे। शायद एक शतीसे कुछ ऊपर समय बीता है कि स्त्रियोंने विरोध करना शुरू किया। पहले तो ऐसा लगता था कि वे कुछ भी नहीं कहती थीं या उन्हें कुछ कहनेका अवसर ही नहीं मिलता था। खैर, हालमें — इसे अभी बहुत समय नहीं बीता — स्त्रियोंने कहना शुरू किया: "क्षमा कीजिए, हम निश्चय ही संतुष्ट नहीं हैं।" पहले, अगर वे ऐसी बात कहनेका साहस करतीं, तो शायद उन्हें एक चपत मिलता और उनसे कहा जाता: "चुप रहो, यह तुम्हारा मामला नहीं है।" लेकिन आखिर इस सबके बावजूद चीज आगे बढ़ी और पिछली शताब्दीके अंतमें पुरुष नारीके साथ जैसा व्यवहार करते हैं उसके विरुद्ध सार्वजनिक रूपसे विरोध शुरू हुआ; चूंकि सारे कानून पुरुषोंके बनाये हुए हैं अतः पुरुषोंके लाभकी दृष्टिसे बने थे, और पुरुषोंकी बनायी हुई सभी समाजिक संस्थाएं पुरुषोंके हितमें थी, और नारीका स्थान हमेशा नीचा और कभी-कभी बिलकुल घृणित था। कुछ देशोंमें यह अब भी ऐसा है...

---

[1]सबसे पहले अप्रैल १९५५ के बुलेटिनमें छपा, अब "शिक्षा" श्रीमातृवाणी खंड १२ में प्रकाशित।

बहरहाल, तबतक, अगर नारीने विरोध किया भी तो वह या तो व्यक्तिगत रूपमें था या काफी छिपे हुए रूपमें, क्योंकि यह कोई सार्व-जनिक प्रश्न नहीं बना। लेकिन पिछली शताब्दीके अंतमें एक आंदोलन शुरू हुआ जिसे "नारी-आंदोलन" कहते हैं और चीजें जिस अवस्थामें थीं उसके विरुद्ध नारियोंने उग्र रूपसे विरोध करना शुरू किया, उन्होंने कहा: "क्षमा कीजिए, हमें लगता है कि आप अपने सभी मामलोंमें असफल रहे हैं, और आपने कोई चीज ठीक तरह नहीं संभाली। जो कुछ आपने किया है वह बिलकुल खराब मालूम होता है। आपने आपसमें झगड़ने, आपसमें मार-काट करने और सभीके लिये जीवन असह्य बना देनेके सिवा किसी बातमें सफलता नहीं पायी। हम कहना शुरू करती हैं कि हमें कुछ कहना है, और हम कहना चाहती हैं कि इस तरह नहीं चलेगा और इसे सुधारना होगा।" यह चीज इस तरह शुरू हुई थी। हां तो, फिर, विरोध, झगड़े, व्यंग्य.. इन्हें व्यंग्यके नीचे दबा देनेकी कोशिश की गयी। लेकिन पुरुष ही मूर्ख बने, स्त्रियां नहीं (माताजी हंसती हैं), और अंतमें, उन्हें एक चीज प्राप्त हुई: अब राजकाजमें वे अपनी बात कह सकती हैं।

यह शुरू हुआ... यह भयंकर अपकीर्ति थी लेकिन अब यह मानी हुई बात है, और हम देखते हैं कि कुछ देशोंमें, जो औरोंसे जरा कम पिछड़े हुए हैं, नारियां शासन में भी प्रवेश पा रही हैं। और मुझे कहना चाहिये कि, जहांतक मुझे मालूम है, स्वीडन वह पहला देश है जहां ऐसा हुआ। मैं यह बात इस शताब्दीके आरंभमें जानती थी। यह उसी समयकी बात है। स्वीडनमें नारियोंको संसदमें प्रवेश मिला, और सर-कारमें भी, और पहली चीज जो उन्होंने की, जिसमें उन्हें सफलता मिली वह थी नशा-बंदी।

इसका मतलब...?

नशाबाजी, तुम्हें पता नहीं नशाबाजी किसे कहते हैं? नशाबाजीका मत-लब है शराब पीना, और, दुर्भाग्यवश, यह चीज सारी दुनियामें बहुत फैली हुई है, और, सामान्यतः पुरुष ही पीते हैं। मजदूर वर्ग तनखाह मिलने-पर आधेसे अधिक पीनेमें उड़ा देता है, और जब पत्नी उन्हें खिलानेके लिये पैसा मांगती है, तो उसे मार मिलती है। साधारणतः ऐसा ही होता है। स्वीडनकी सरकारने बड़े लंबे अरसेतक कोशिश की, क्योंकि वे काफी समझदार लोग थे और उन्होंने देखा था कि यह (शराब)

सामाजिक शांतिमें गड़बड़ी पैदा करनेवाली चीजोंमेंसे है; लेकिन उन्हें कभी सफलता नहीं मिली। लेकिन ऐसा लगता है कि दो-तीन वर्षोंके शासन-में ही नारियोंने इस मामलेमें सफलता पा ली। और चीज वहींपर खत्म हो गयी, उसके बाद इसके बारेमें कुछ नहीं सुना गया। उन्होंने यह कैसे किया इसकी मुझे अब याद नहीं है। मुझे उस समय यह बताया गया था। स्वभावतः, यह नशा-बंदीके द्वारा नहीं किया गया, क्योंकि जहां-जहां इसका प्रयोग किया गया है, कहीं भी इसे सफलता नहीं मिली। लेकिन उन्होंने सफलता पा ली। यह अब भी है। अब भी वहां है। इसे फैलनेमें आधी शताब्दीसे ज्यादा लग गयी। अब तो बहुत-से देश हैं जहां शासनमें स्त्रियां भाग लेती हैं।

(पवित्रसे) क्या फ्रांसमें भी हैं? क्या वहां संसदमें कोई नारी-सदस्य हैं?

(पवित्र): **जी हां।**

हैं?

(पवित्र): **जी हां। मंत्री। एक मंत्री थी।**

नहीं, मंत्री नहीं, राज्य सचिव। कुछ थीं, उन्होंने कोशिश की थी।

(पवित्र): **एक नारी शिक्षा-मंत्री है।**

नहीं, यह नहीं, राज्य सचिव थी एक। बहरहाल मैंने यह इसलिये कहा क्योंकि फ्रांस सबसे पिछड़े हुए देशोंमेंसे था और अब भी है। और यह एक बड़ी मजेदार चीज है: शायद यही देश है जो राजनीतिक दृष्टिसे विचारोंमें सबसे आगे है; फ्रांस ही से 'समानता', 'भ्रातृभाव' और 'स्वाधीनता'के भाव उठे थे: इन्होंने वहीं जन्म लिया था और सारी दुनियामें फैले थे, लेकिन नर और नारीके संबंधकी दृष्टिसे निश्चय ही यह सबसे पिछड़ा हुआ है। इसके मनोवैज्ञानिक कारण हैं, परंतु मैं यहां उनकी बात नहीं कहना चाहती। तो, बस!

मधुर मां, यहां कहा गया है: "विशेषकर आधुनिक समाजमें सभी पुरुष किन्हीं पहलुओंसे स्त्री होते हैं और सभी स्त्रियां

बहुत-से लक्षणोंके कारण पुरुष-सी होती हैं।"

हां, कोई भी शुद्ध प्रकार नहीं है।

तो फिर अब भी जटिलता क्यों है?

क्योंकि वे अपने-आपको जानते नहीं हैं। वे अपने-आपको नहीं जानते और फिर वे अपने रूप और आकारके गुलाम हैं। क्योंकि जब वे अपने-आपको आईनेमें देखते हैं तो उन्हें पता लगता है कि वे पुरुष हैं और स्त्रियां देखती हैं कि वे स्त्रियां हैं---और वे अपने भौतिक आकारके गुलाम हैं। यह इसी कारण है।

लेकिन इसके अलावा, मुझे याद है, मैं ऐसे पुरुषोंसे मिली हूं जो अमुक दृष्टिकोणोंसे बहुत ज्यादा स्त्रैण थे, लेकिन बहुत प्रिय ढंगसे नहीं, और वे ही हमेशा पुरुष होनेके अपने अधिकारकी धौंस जमाते थे और उनमें अपनी श्रेष्ठताका भान बहुत अधिक रहता था। इसके अलावा, नारी-आंदोलनके आरंभके दिनोंमें, मुझे ऐसी नारियां भी मिली हैं... वे सभी स्त्रियां जो नारीवादका आंदोलन करती थीं, वे झूठे कालर, नेकटाई लगातीं, बास्कट पहनतीं, बाल कटातीं, उनका हाव-भाव... वे जहांतक बन पड़े पुरुषोंका हाव-भाव करनेकी कोशिश करती थीं। लेकिन वे शोचनीय ढंग-से, शो...च...नी...य ढंगसे स्त्रैण होती थीं! (हंसी) वे खुश करना चाहती थीं, ध्यान खींचना चाहती थीं; और अगर बदकिस्मतीसे पुरुष उनके साथ पुरुषों जैसा व्यवहार करते तो बहुत चिढ़ जाती थीं। (हंसी) इसके बदलनेमें बहुत समय लगता है।

और फिर?

मधुर मां, यहां आप परम जननीकी बात कहती हैं। क्या यह वही हैं जिनके बारेमें श्रीअरविंदने अपनी 'द मदर' (माता) में लिखा है?

हां।

तो क्या परम जननीकी धारणा शुद्ध रूपसे मानव धारणा है? या वे भी अपने मूल रूपमें लिंग-रहित हैं?

नहीं।

लेकिन मैंने यह कभी नहीं कहा कि यह शुद्ध रूपसे मानव चीज है। मैंने कहा था कि यह सूत्रीकरण मानव चीज है। मैंने यह नहीं कहा कि यह शुद्ध रूपसे मानवीय है; मैंने ऐसा कहीं नहीं कहा कि यह शुद्ध रूपसे मानवीय चीज है। यह कहा जा सकता है कि यह व्याख्या जरा ज्यादा मानव चीज है, लेकिन मैं यह नहीं कहना चाहती कि यह (जननी) शुद्ध रूपसे मानवीय है।

तो क्या उनके मूल रूपमें लिंग है?

अभिव्यक्तिके उस पार कोई फर्क नहीं है, यानी, वहां दो नहीं हैं, बस, एक ही है। सृजनके समय दो हुए। लेकिन पहले एक ही था, कोई फर्क न था; केवल एक ही था। वहां अनगिनत संभावनाएं थीं, लेकिन था एक ही, वास्तवमें एक ही था, और केवल सृजनमें ही दो हुए। यह अंतर कोई शाश्वत और सहगामी वस्तु नहीं है। यह सृजनके लिये, और वास्तवमें इस सृष्टिके सृजनके लिये ही है। शायद इस सृष्टिसे बिलकुल भिन्न प्रकारसे बनी हुई और बहुत-सी सृष्टियां रही हैं। केवल रही ही नहीं हैं, शायद अब भी अनगिनत सृष्टियां हैं जिनके साथ हमारा कोई संपर्क नहीं है। ऐसी सृष्टियां हो सकती हैं जिनके बारेमें हम पूरी तरह अज्ञानमें हैं।

मधुर मां, क्या ऐसी सृष्टियां हैं?

मैं कहती हूं, हो सकती हैं। (हंसी) हम इस बारेमें कुछ भी नहीं कह सकते। हम कुछ नहीं जानते। हम जो कुछ भी जानते हैं, अगर हम उसे जानते भी हैं तो वह अपनी इस सृष्टिके बारेमें है, बस। लेकिन इसका कोई कारण नहीं कि और सृष्टियां नहीं हो सकतीं—हम नहीं कह सकते: "और सृष्टियां नहीं हैं", हम कुछ नहीं जानते—जहां सभी चीजें बिलकुल भिन्न हों, शायद इतनी भिन्न कि उनका हमारे साथ कोई संबंध ही नहीं है। जो मैं अंतमें कहती हूं वह यह है, है न? मैं अंतमें कहती हूं...

एक नयी सृष्टि होगी, अतिमानसिक सृष्टि। तो, इसका कोई कारण नहीं कि वह वर्तमान सृष्टिसे, उस सृष्टिसे जो अभीतक चल रही है भिन्न रूप न ले... और जहांतक मेरा सवाल है, जो बात मैं यहां कह रही हूं

वह यह है कि समस्याका एक यही समाधान है, वह विभाजन होनेकी जगह, एक सर्जन हो, एक सत्ता हो जो . . . जो "धारणा और क्रियान्विति, अंतर्दर्शन और सृष्टिको एक ही 'चेतना' और एक ही क्रिया"में युक्त कर दे— क्योंकि यही चीज भिन्नता लाती है, यानी, पहले धारणा बनती है, फिर उस धारणाको क्रियान्वित किया जाता है, जो होना चाहिये उसका अंतर्दर्शन और फिर उस अंतर्दर्शनका सृजन किया जाता है, अर्थात्, उस अंतर्दर्शनकी वस्तुगत उपलब्धि होती है; हां तो, इसका कोई कारण नहीं कि इनका विभाजन हो; दोनों चीजें एक ही सत्ताके द्वारा की जा सकती हैं और फलस्वरूप एकमेव अद्वितीय सत्ता होनी चाहिये।

नर और नारीके दो अलग-अलग वंशक्रम होनेकी जगह, केवल एक और अद्वितीय सत्ता रहेगी, और इसे ही मैं सभी समस्याओंके समाधान के रूपमें देखती हूं — केवल इसीके नहीं, सभी समस्याओंके समाधानके रूपमें — और अतिमानसिक सृष्टिके प्राग्रूपकी तरह भी देखती हूं।

मधुर मां, यहां आपने कहा है कि 'परम जननी' ही विश्वकी स्रष्टा हैं। लेकिन भारतमें, साधारणतः, कहा जाता है कि ब्रह्मा ही स्रष्टा हैं।

लेकिन श्रीअरविंद कहते हैं कि 'परम जननी' ब्रह्माकी जननी हैं। यह सभी देवताओंकी जननी हैं।

देवी-देवताओंके लिंग भी क्या मानव रचनाएं हैं?

नहीं, नहीं! वे भला मानव रचनाएं क्यों हों? मैंने यह कभी नहीं कहा कि वे मानव रचनाएं हैं। 'अधिमानस' के देवी-देवता अपने रूपमें भिन्नता रखनेवाले देवी-देवता हैं। 'अधिमानस' के देवताओंकी सृष्टि मनुष्यने नहीं की है, 'अधिमानस' के देवताओंकी सृष्टि साक्षात् सृष्टि है। पता नहीं ये मनुष्योंसे पहलेके हैं या नहीं, लेकिन मेरा ऐसा ख्याल है। मेरा ख्याल है कि पार्थिव सृष्टि, पार्थिव रूप, आकार 'अधिमानसिक' देवताओं-ने बनाये थे, और सचमुच 'अधिमानस' के कई देवता हैं जो पृथ्वीपर रचनाकार थे — जिन्होंने पृथ्वीपर अवतार नहीं लिया, लेकिन पृथ्वीपर जो कुछ हो रहा था उसे गढ़ा, जिन्होंने विचार दिये, आकार दिये। श्री-अरविंद हमेशा कहा करते थे पहले जिसे "भगवान्" कहा जाता था वह 'अधिमानस' की सत्ता थी, कि परम देव 'अधिमानस' की सत्ता थे।

माताजी, अगर देवी-देवताओंके आकारोंमें फर्क हैं तो क्या उनके लिये भी वही समस्या उठती है?

ओह! यह, मेरे बच्चे, इसे तुम उन्हींसे पूछ सकते हो; लेकिन अगर तुम उन कहानियोंपर विश्वास करो जो तुम्हें सुनायी गयी हैं, तो उनमें परस्पर झगड़े होते हैं, कठिनाइयां आती हैं और सभी तरहके लड़ाई-झगड़े और इसी तरहकी चीजें होती हैं, इस तरहकी चीजें, यहांतक कि उनमें ईर्ष्या भी होती है। अतः कभी-कभी तो वे मनुष्योंसे अधिक समझदार नहीं होते।

मधुर मां, देवी-देवताओंका जन्म कैसे हुआ था?

लेकिन यह यथार्थ रूपमें . . . यह सर्जनका एक अंग है। जिसे हम यहां "अदिति" कहते हैं, अर्थात्, सर्जक चेतना; हां, तो 'सर्जक चेतना' . . .

मैं तुम्हें यह चीज बिलकुल बचकाने ढंगसे सुनाती हूं:

पहले उन्होंने (अदितिने) चार सत्ताओंकी रचना की; जब उन्हें सर्जन-का कार्य सौंपा गया तो उन्होंने अपनी सत्तासे चार अंश प्रकट किये, और ये चार अंश विश्वको विकसित करनेके लिये बनाये गये थे, उन्हें इसका भार सौंप दिया गया। और फिर, — मेरा ख्याल है, मैं इसके बारेमें पहले भी तुम्हें एक बार बता चुकी हूं — हम कह सकते हैं कि मामला बिगड़ गया; तो जब चीजें बिगड़ गयीं तो उन्होंने फिरसे ऐसी सत्ताओं-की सृष्टि की जो देव बन गयीं; और पहले चार अंशोंद्वारा रची गयी व्यवस्थाके समानांतर, व्यवस्थित विकास भी हुआ, अर्थात्, परम प्रभुके निर्देशनमें, क्रमशः 'जड़-भौतिक' की ओर उतरते हुए सभी लोकोंकी सृष्टि हुई। देवता इसी वंशके हैं जिनकी अभिव्यक्ति बादमें हुई। श्रीअरविंद जिसे अधिमानस-क्षेत्र कहते हैं उसमें इनकी अधिकाधिक स्थूल रचना हुई। और वहांसे वे भौतिक जगत् और धरतीके सर्जनके अधिष्ठाता बने। और इन कारवाइयोंमेंसे एक थी, प्रतीकात्मक ढंगसे सारे विश्वके प्रतिनिधिके रूपमें, पृथ्वीकी रचना, ताकि समस्याको अधिक घना और एकाग्र किया जाय जिससे वह अधिक आसानीसे सुलझायी जा सके। और यह पृथ्वी, ज्योतिष-शास्त्रकी दृष्टिसे भले अत्यणु और यथासंभव कम-से-कम महत्त्व-पूर्ण क्यों न हो, पर वैश्व सर्जनके ज्ञानके दृष्टिकोणसे यह ऐसा प्रतीक है जो विश्वका इस पूर्णताके साथ प्रतिनिधित्व करता है कि पृथ्वीको रूपां-तरित करके, संसर्ग या अनुरूपताके द्वारा विश्वका रूपांतर किया जा सकता है, क्योंकि पृथ्वी विश्वका प्रतीक है। यही वह प्रक्रिया है जिसे देवताओं-

ने अपनाया था। और जिस जगह इन देवताओंकी सत्ताका आसन है उसे श्रीअरविंद 'अधिमानस' कहते हैं।

किंतु स्वभावतः चीजें ऐसी नहीं हैं। यह मत समझ बैठना कि मैंने तुम्हें ज्यों-की-त्यों घटना सुना दी है। चीजें इस तरह नहीं हैं, लेकिन यह कहनेका एक तरीका है, उन्हें मस्तिष्कसे समझने योग्य बनानेका एक तरीका है। ऐसा लगता है कि ऐसा ही हुआ था।

वे चार सत्ताएं जिनके बारेमें मैंने शुरूमें कहा था, वे अलैंगिक थीं, वे न नर थीं न नारी; प्राणमय जगत्‌में प्राणमय सर्जनका एक पूरा भाग है जो इन सत्ताओंका परिणाम है, एक ऐसा भाग जिसका कोई लिंग नहीं है। इसके अलावा, देवताओंने भी एक ऐसा जगत् बनाया जो अलैंगिक था। वह देवदूतोंका जगत् है, जिन्हें फरिश्ते कहा जाता है, जो गुह्यविद्यामें रचनाकार कहाते है। लेकिन वे अलैंगिक जीव हैं; हम उनका पंखोंके साथ चित्रण करते हैं, है न, वे अलैंगिक जीव हैं।

विश्वमें ऐसी सत्ताएं हैं जिनका कोई लिंग नहीं है, जो न नर हैं, न नारी, और प्राणमय जगतमें तो ऐसे बहुत-से हैं। प्राणमय जगत्‌में लैंगिक सत्ताएं भी हैं लेकिन हैं उसके अत्यधिक भौतिक भागमें, जो पृथ्वीके सबसे अधिक निकट है, उसके सबसे महत्त्वपूर्ण भागमें नहीं; सबसे महत्त्वपूर्ण भाग अलैंगिक है। बहरहाल, यह बात उन्हें अधिक अच्छा नहीं बनाती, क्योंकि ये सभी सत्ताएं भागवत 'इच्छा' और भागवत उपलब्धिके विरुद्ध होती हैं, लेकिन यह उन्हें अद्‌भुत शक्ति प्रदान करती है। फिर दूसरी तरफ देवताओंने भी ऐसी सत्ताओंका एक समूह रचा जो अलैंगिक थीं और जिन्हें मनुष्य फरिश्ता कहते हैं; क्या कहते हैं? "तुम्हारा संरक्षक देवदूत", और क्या? वह मुख्य रूपसे "फरिश्ता" ही होता है।

(पवित्र) : **"चेरब", "सेराफीम"**।[1]

हां, हां, वही। बहुत-से नाम दे रखे हैं। हां, तो बस।

मधुर मां, प्राचीन परंपरामें हमेशा देवताओंकी पत्नियोंकी बात आती है जिन्हें असुर तंग किया करते थे।

क्या, देवताओंकी पत्नियां जिन्हे असुर तंग किया करते थे? हां!

---

[1]फरिश्तोंके भिन्न प्रकार।

क्या वे भी भौतिक जगत्के बहुत निकट हैं? यह प्राणमय जगतमें हैं या...

यह प्राणमय जगत्में है।

(पवित्र): **माताजी, मनमें भी, मनकी सत्ताएं होती हैं...**

मनोमय लोककी सत्ताएं भी अलैंगिक होती हैं, सब नहीं, लेकिन बहुत-सी। ऐसी बहुत-सी हैं। उनमेंसे कई मनकी ऐसी रचनाएं हैं जो बहुत आग्रही होती हैं, जो सुगठित होती हैं, सुसामंजस्यपूर्ण होती हैं, अटल होती हैं, इस तरहके मानसिक निर्माण, मानसिक रचनाएं जीवित सत्ताएं होती हैं, लेकिन जब वे शरीर धारण करती हैं तो तटस्थ-भावसे नर शरीरसे नारी शरीरमें आती-जाती हैं। उनके लिये सब एक समान होता है, उनके लिये इसमें कोई अन्तर नहीं होता।

बस, इतना ही, या तुम्हारे पास और भी प्रश्न हैं?

माताजी, लिंग (सेक्स) के प्रकट होनेका सच्चा कारण क्या है? क्योंकि जीवशास्त्रका अध्ययन करनेपर हम देखते हैं कि शुरू-शुरूमें एककोषीय प्राणी अलैंगिक थे, लिंग बादमें प्रकट हुआ।

यह — वत्स, यह 'प्रकृति' है जिसने हर तरहकी विधियोंका परीक्षण किया है। ये सब 'प्रकृति' के द्वारा प्रयुक्त तरीके हैं; उसने चाहा...। ऐसा लगता है कि भौतिक क्रमविकासको दृष्टिमें रखते हुए जातियोंकी पूर्णताके लिये विभाजन आवश्यक था; बात ऐसी लगती है क्योंकि निश्चय ही इसे बादमें अपनाया गया था। यह... प्रकृति... मेरा ख्याल है उसने सभी संभव संभावनाओंका परीक्षण किया, सभीका।

लेकिन आपने तो कहा कि देवताओंमें भी लिंग होता है।

हां। शायद उनकी प्रेरणासे ही 'प्रकृति' ने ऐसा किया हो। निश्चय ही ऐसी बात नहीं कि चूंकि पृथ्वीपर यह प्रकट हुआ इसलिये देवताओंमें भी ऐसा ही है। तब तो हम तर्कसंगत रूपमें यह सोच सकते हैं कि चूंकि देवताओंमें ऐसा था इसलिये पृथ्वीपर भी ऐसा ही हुआ। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि 'प्रकृति' को सीधी प्रेरणाएं मिलीं; ऐसा लगता है

कि उसने अपने ढंगसे अपना रास्ता खुद बनाया। उसने सभी संभव चीजोंके परीक्षण किये; मेरा ख्याल है कि ऐसी कोई चीज नहीं है जिसके लिये उसने परीक्षण न किया हो, और उसका काम जारी है। लेकिन 'प्रकृति' ने भी अलैंगिक सत्ताओंकी रचना की, मानव आकारमें भी; ऐसा हुआ है। मैंने एक ऐसी यूनानी मूर्ति भी देखी है। यूनानवाले इसे जानते थे।

हम जिस किसी चीजकी कल्पना कर सकते हैं उससे कहीं अधिककी कल्पना 'प्रकृति' कर चुकी है। केवल, वह जल्दबाजी करना नहीं चाहती। मेरा ख्याल है कि इसमें उसे मजा आता है। इसलिये वह अपने ही ढंगसे चलना चाहती है: परीक्षण करती, नष्ट करती, दोबारा शुरू करती और फिरसे दोबारा नष्ट करती है। वह यूं करके (संकेत) किसी संपूर्ण जातिको नष्ट कर सकती है, उसके लिये यह एक ही बात है; वह बस, इतना कह देगी: "नहीं, यह अच्छा न था।" बस, फिर, बात खतम। और वह यह भी नहीं चाहती कि कोई उससे जल्दबाजी कराये। अगर उससे कहा जाय कि हमें लगता है कि चीज इस तरह काफी लंबी खिंच चुकी है, इसके लये किसी अधिक सामंजस्यपूर्ण परिणामको लाया जा सकता है, तो वह विद्रोह कर बैठती है, वह जरा भी खुश नहीं होती। वह हमेशा यही कहती है: "लेकिन तुम्हें इतनी भी क्या जल्दी है? तुम जो कुछ करना चाहते हो वह सब होगा, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह इतनी जल्दी हो। तुम्हें ऐसी भी क्या जल्दी है भला?" वह हमेशा यही जवाब देती है। उसे भटकना अच्छा लगता है।

'प्रकृति' क्या है? अर्थात्, 'परम जननी'के साथ उसका क्या संबंध है?

मैं सोचती हूं कि 'प्रकृति' उस सर्जन-शक्तिका सबसे अधिक भौतिक भाग है जो सर्जनमें लगी है, विशेष रूपसे पृथ्वीके सर्जनमें, जिसे हम पृथ्वीपर भौतिक जगत्के रूपमें जानते हैं उसके सर्जनमें लगी है।

मैं ज्योतिर्विज्ञानकी अद्यतन खोजोंके बारेमें कुछ जानकारी चाहती हूं..

(पवित्रसे) क्या पृथ्वीपर जैसा भौतिक पदार्थ है वैसा अन्य जगतोंमें भी पाया गया है?

(पवित्र) **: हर जगह, माताजी। केवल सौर मंडलमें ही नहीं,**

बल्कि उससे भिन्न लोकोंमें भी, अबतक, जड़-भौतिक पदार्थोंमें किसी भी प्रकारका कोई अंतर नहीं पाया गया है।

हर जगह एक-सा है। फिर, यह कैसे कहा जाता है कि मनुष्य दूसरे ग्रहोंमें नहीं जी सकते, बृहस्पति और शुक्रमें भी नहीं?

(पवित्र) : **तत्त्व वे-के-वे ही हैं, उदाहरणके लिये, रासायनिक तत्त्व एक समान हैं। वर्तमान कालमें जिन चीजोंकी रचना हो गयी है उनमें — उदाहरणके लिये, बृहस्पतिमें अमोनिया और कार्बोनिक गैसका वातावरण होगा...**

हां। इस सबके बावजूद रचना एक ही नहीं है?

(पवित्र) : **भौतिक शरीर, स्पष्टतः, जैव द्रव्य एक नहीं हो सकता।**

हां, साधारणतः जिसे मनुष्य जानते हैं...

(पवित्र) : **...वह एक नहीं हो सकता।**

एक नहीं हो सकता, है न।

क्या वहां भी चैत्य सत्ताएं हैं या ये केवल 'जड़-भौतिक'में ही होते हैं?

मैंने सुना है कि चैत्य सत्ताएं केवल पृथ्वीपर ही होती हैं, इसका ठीक-ठीक कारण यही है कि पृथ्वीकी रचना समस्याको केंद्रित करनेके लिये प्रतीकके रूपमें की गयी थी, और चैत्य सत्ताकी रचना जो 'परम प्रभु' के सीधे हस्तक्षेपका परिणाम है, इस प्रतीकात्मक क्रियाकी आवश्यकताओंकी दृष्टिसे ही की गयी है।

क्या सचमुच बृहस्पति और मंगलमें सत्ताएं हैं?

अगर तुम मुझसे पूछो, तो मेरे लिये, सत्ताएं सब जगह हैं। सभी जगह।

तुम उन्हें देख नहीं सकते, बस यही। लेकिन वे हैं सब जगह। लेकिन निश्चय ही मैं नहीं समझती कि वे वैसी होती हैं जैसी हम चित्रोंमें देखते हैं—जैसे भद्दे, हास्यास्पद आकारोंवाले मंगलवासी तुम्हें चित्रोंमें दिखाये गये थे। इसपर विश्वास करनेका मुझे कोई कारण नही दीखता कि वे वैसे ही होंगे।

क्या आपने उड़न-तश्तरीकी कहानी सुनी है?

ओह, हां! मैंने उसका अध्ययन भी किया है। फिर भी, मैं भौतिक अनुभव पानेकी प्रतीक्षा कर रही हूं। वास्तवमें मैंने युद्धके दिनोंमें एक उड़न-तश्तरीको पांडिचेरीके ऊपरसे गुजरते देखा था, मैंने उसे स्पष्ट रूप-से, खुली आंखों देखा, और काफी धीरे-धीरे चलते हुए, समुद्रसे होते हुए धरतीकी ओर आते देखा। वह हल्के नीले रंगकी थी और उसका आकार कुछ इस तरह गोल-सा था। मैंने उसे गुजरते देखा और अपने-आपसे कहा: "अरे, मुझे अंतर्दर्शन हो रहा है!" मैंने अपनी आंखें मलीं, लेकिन मेरी आंखें खुली थीं, पूरी तरह खुली थीं...। अचानक, मैंने आकाशमें किसी आकारको यूं गुजरते देखा; मैं अपने-आपसे कह उठी: "कैसी अजीब बात है!" लेकिन चूंकि तबतक इसके विषयमें कोई कुछ न बोला था, इसलिये मैंने सोचा कि मुझे कोई अंतर्दर्शन हुआ है। मैं ऐसी बहुत-सी चीजें देखती हूं जो आदमी साधारणतः नहीं देखते; लेकिन जब लोगोंने इसके बारेमें कहना शुरू किया, तो मैंने स्वयंसे कहा: "लो, मैंने एक उड़न-तश्तरीको गुजरते देखा है।" लेकिन मेरा ख्याल है कि उदारने भी एक उड़न-तश्तरी देखी थी।

(उदार): **जी हां, माताजी।** (हंसी)

उसका अस्तित्व है, इस बारेमें कोई प्रश्न ही नहीं। वह क्या है? सब-की अपनी-अपनी राय है। लेकिन मैं चाहूंगी कि उन सत्ताओंसे आमना-सामना कर पाऊं जिनका वर्णन किया गया है। कोई आदमी है जिस-ने कहा है, कम-से-कम वह ऐसा मानता है...कि उसने उड़न-तश्तरी-की किसी सत्तासे बातचीत की है। हां तो, ऐसी किसी सत्तासे मिलकर मैं बहुत खुश होऊंगी। उसके बाद मैं तुम्हें बतलाऊंगी कि वह क्या है —जब मैं उससे मिल लूंगी।

माताजी, कहा जाता है कि अन्य सौर-मंडल भी हैं जहां शायद पृथ्वी जैसी अवस्थाको पाया जा सकता है। लेकिन क्या वहां हमारे जैसे मनुष्य पाये जाते हैं?

तुम्हें वहां जाकर देखना पड़ेगा। (हंसी)

माताजी, क्या हम गुह्य उपायोंसे दूसरे ग्रहोंमें जा सकते हैं?

ओह! हां, तुम सब जगह जा सकते हो। तुम्हें जानेसे भला कौन-सी चीज रोकती है? तुम सब जगह जाते हो। केवल, तुम्हें यह जानना चाहिये कि भौतिक शरीर नहीं जाता; वह तो अधिक-से-अधिक भौतिक वस्तु है,...अधिक-से-अधिक भौतिक प्राण; और यह अपने-आपमें बहुत कठिन है।

साधारणतः प्राणका मानसिक भाग बाहर जाता है; मन या प्राण नहीं। थोड़ी-बहुत दूरियोंके लिये तुम सूक्ष्म-भौतिकके साथ अपने शरीर-से निकल सकते हो, और ऐसी स्थितिमें तुम वस्तुओंको उनके भौतिक रूपमें उसी तरह देखते हो जैसी कि वे हैं। लेकिन तुम बहुत दूर नहीं जा सकते। इसके व्यावहारिक कारण हैं, लेकिन सबसे बढ़कर है सुरक्षा-का कारण; क्योंकि अगर तुम सूक्ष्म-भौतिकके साथ बहुत दूर चले जाओ, तो शरीर केवल समाधिमें ही नहीं रहता, बल्कि मांसपेशियां अकड़ जाती हैं, और फिर, यदि उसकी हिफाजत कोई ऐसा व्यक्ति न कर रहा हो जिसमें गंभीर ज्ञान और बहुत शक्ति हो, तो चीज दुष्परिणाम ला सकती है। अतः, इन लंबी यात्राओंके लिये साधारणतः प्राणका सबसे सूक्ष्म भाग जाया करता है जो एक प्रकारसे प्राणकी मानसिक चेतनासे मिलता-जुलता है।

अतः तुम सभी समान गुणवाली चीजोंको देखते हो। लेकिन मान लो कोई बहुत भौतिक वस्तु है, तो तुम उसे जैसी वह है वैसी नहीं देखते। अतः तुम विश्वास के साथ यह नहीं कह सकते: "यह ऐसी है या वैसी है।" तुम कह सकते हो: "मैंने यह देखा," बस, इतना ही। लेकिन तुम चांद या बृहस्पति या शुक्रमें जो हो रहा है उसे अखबारोंमें छपी कहानियोंकी तरह नहीं सुना सकते। तुम्हें अनुभूति हो सकती है और तुम कुछ चीजोंको जान सकते हो लेकिन साधारणतः ये चीजें अधिक मनो-वैज्ञानिक प्रकारकी होती हैं।

फिर भी, अगर यही जानना हो कि वहां सत्ताएं हैं या नहीं, तो मुझे

नहीं लगता कि विश्वमें कोई स्थान ऐसा भी है जहां सत्ताएं न हों, क्योंकि विश्वका यही तो सिद्धांत है: व्यक्तिगत सर्जन। हर जगह व्यक्तिगत सर्जन है, लेकिन उनका घनत्व भिन्न-भिन्न होता है। उनमेंसे अधिकतर समान घनतावालोंके सिवा औरोंके लिये अदृश्य होते हैं, और केवल वही लोग इन्हें देख सकते हैं जो अपने शरीरसे बाहर आकर घूमने-फिरनेकी क्षमता रखते हैं। लेकिन जबतक तुम इन आंखोंका उपयोग करते हो तबतक तुम बहुत कुछ नहीं देख सकते।

इतना सीमित दृष्टिक्षेत्र! वस्तुतः, तुम इसके बारेमें सोचो तो यह बिलकुल हास्यास्पद सीमा-बंधन लगता है! तुम्हारी इंद्रियानुभूतिकी सीमा एकदम हास्यास्पद होती है; जब कि मनके क्षेत्रमें, अगर तुम किसी व्यक्ति या किसी वस्तु, किसी शहर या किसी स्थानके बारेमें सोचो, तो तुम उसी क्षण, तत्काल वहां जा पहुंचते हो, ऐसा होता है न। और तुम वहां होते हो — ऐसा नहीं है कि तुम वहां नहीं होते, तुम वहां होते हो, और तुम इतना निश्चित मानसिक संबन्ध जोड़ सकते हो कि वार्तालाप भी कर सकते हो, प्रश्न पूछ सकते हो और उनके उत्तर पा सकते हो, शर्त यही है कि दूसरा व्यक्ति काफी संवेदनशील हो। यह तो एक ऐसी चीज है जो निरंतर होती रहती है, निरंतर! केवल, स्वभावतः, तुम्हें थोड़ा-सा ज्ञान होना चाहिये, वरना तुम यह भी नहीं समझ पाते कि क्या हो रहा है।

भौतिक रूपमें भी, इसके द्वारा आंखों, नाक, उंगलियों, मुंह, कानोंके द्वारा, ओह, यह हास्यास्पद है; अगर तुम चाहो तो इन्हें विकसित कर सकते हो। उदाहरणके लिये, तुम काफी दूर होनेवाली चीजको भी भौतिक रूपमें सुननेमें सफल हो सकते हो, भौतिक तरीकेके सिवाय और किसी तरीकेसे नहीं, लेकिन तुम्हारा अपनी इंद्रियोंपर नियंत्रण होना चाहिये और तुम्हें उनके स्पंदनोंको काफी दूरतक फैला सकना चाहिये। तुम दूरतक देख भी सकते हो, किसी गुह्य दृष्टिद्वारा नहीं, तुम अपनी दृष्टिको विस्तृत कर सकते हो और अगर तुम्हें अपनी स्नायुओंके स्पंदनको अवयवसे बाहर फैलाना आता हो, तो तुम संपर्कको विस्तृत कर सकते हो, मैं कई किलोमीटरकी बात नहीं कर रही, नहीं, लेकिन किसी क्षेत्रमें बढ़ा सकते हो। उदाहरणके लिये, किसी दीवारके आर-पार फैला सकते हो जिसे असंभव चीज माना जाता है; एक कमरेसे दूसरे कमरेको अलग करती हुई दीवारके आर-पार तुम यह देख सकते हो कि उस कमरेमें क्या हो रहा है। लेकिन इसके लिये बहुत विधिवत् अभ्यासकी जरूरत है। फिर भी यह संभव है, देखना, अनुभव करना, सुनना। अगर तुम कष्ट

उठानेको तैयार हो, तो तुम अपने क्षेत्रको काफी हदतक विस्तृत कर सकते हो। लेकिन यह कामकी, अध्यवसायकी, एक तरहके कर्मठ अभ्यासकी मांग करता है। और तो और, यह भी पाया गया है कि व्यक्ति आंख-के अलावा अन्य दृष्टि-केंद्रोंको भी विकसित कर सकता है। किसी-न-किसी कारण, जिन व्यक्तियोंकी आंखमें दृष्टि नहीं थी, ऐसे व्यक्तियोंके साथ परीक्षण किया गया है। व्यवस्थित और निरंतर प्रयासके द्वारा अन्य केंद्रों या एक और दृष्टि-केंद्रको विकसित किया जा सकता है। जूल रोमैं ने इस विषयपर एक किताब लिखी है। उसने स्वयं कुछ प्रयोग किये थे और उसे सुनिश्चित परिणाम मिले थे।

इसका अर्थ यह है कि हमारे अन्दर बहुत-सी संभावनाएं हैं जिन्हें हम अपने अन्दर सोता छोड़ देते हैं, क्योंकि हम उन्हें अधिक विकसित करने-के लिये कष्ट नहीं उठाते। हम जितना करते हैं उससे अनंत गुना अधिक कर सकते हैं। लेकिन हम चीजोंको यूं ही, जैसे वे आती हैं, स्वीकार कर लेते हैं।

२५ मई, १९५५

माताजी श्रीअरविन्दकी पुस्तक 'मानव विकास-चक्र' अध्याय १४: 'अति बौद्धिक सुंदरता' मेंसे पढ़ती हैं।

मैं देख सकती हूं कि तुम तीन-चौथाई चीज भी नहीं समझे। चलो, हम धीरे-धीरे, एक-एक कदम चलेंगे।

(एक बालकसे) जहांसे शुरू होता है वहींसे एक प्रश्न पूछो; केवल इतना ही कह दो: "यहां, इसका मतलब क्या है?"

> **मधुर मां, यहां लिखा है: "...बौद्धिक तर्क-बुद्धि एक अपर्याप्त सहायता हो सकती है और केवल अंतमें ही नहीं, बल्कि शुरू-से ही उसे ऐसा लग सकता है कि वह अपने क्षेत्रसे बाहर है और संकोचके साथ चलनेके लिये बाधित की गयी है..."**

तो?

तो, अगर बुद्धिसे न करें तो हम किस चीजसे आरंभ करें ?

किस चीजसे शुरू करें ?

जी, किसकी सहायतासे ?

देखो, श्रीअरविन्द धर्मकी परिभाषा करते है अध्यात्मकी, यानी, 'अतिमानस'-की खोज, ऐसी चीजकी खोज जो साधारण मानव चेतनाके परे है, और जिसे ऊंचे क्षेत्र से जीवनपर प्रभाव डालना चाहिये। तो, चूंकि धर्म इसे खोजता है इसलिये वह तर्क-बुद्धिके परे है, क्योंकि वह अनिर्वचनीयकी ओर जाता है। तो फिर तर्क-बुद्धि धर्मके क्षेत्रमें कैसे सहायता कर सकती है ? उनके कहनेका मतलब यह है कि अगर तुम धर्मके क्षेत्र और उसमें प्रगतिके बारेमें तर्क-बुद्धिका उपयोग करो, तो निश्चय ही भूलें करोगे, क्योंकि वहांपर तर्क-बुद्धि मालिक नहीं है, उसमें बोध देनेकी क्षमता नहीं है। अगर तुम किसी धर्मका मूल्यांकन अपनी तर्क-बुद्धिसे करना चाहो, तो निश्चय ही भूलें करोगे, क्योंकि वह तर्क-बुद्धिके क्षेत्रके बाहर और उससे परे है। तर्क-बुद्धि उन्हीं चीजोंका मूल्यांकन कर सकती है जो सामान्य जीवनके बौद्धिक क्षेत्रकी है। और जैसा कि उन्होंने बादमें कहा है, तर्क-बुद्धिकी सच्ची भूमिका है मानव जीवनमें मन और प्राणकी गतिविधियोंमें व्यवस्था और नियंत्रण लानेकी।

उदाहरणके लिये, हर बार जब तुम्हारे अंदर कुछ प्राणकी गड़बड़ हो, आवेगों, कामनाओं, मनोवेगों और इस तरहकी चीजोंकी गड़बड़ हो, तो अगर तुम तर्क-बुद्धिको बुलाओ और इन चीजोंको तर्क-बुद्धिके दृष्टिकोणसे देखो, तो तुम उन्हें फिरसे व्यवस्थित कर सकते हो। वास्तवमें तर्क-बुद्धिकी भूमिका यही है कि वह मन और प्राणकी सभी गतिविधियोंको व्यवस्थित और नियंत्रित करे। उदाहरणके लिये, तुम तर्क-बुद्धिको यह जाननेके लिये बुला सकते हो कि दो विचार आपसमें मेल खाते हैं या नहीं, कि वे एक दूसरेका विरोध करते हैं या नहीं, कि दो सिद्धांत तुम्हारी मानसिक रचनाके साथ खड़े हो सकते हैं या एक-दूसरेको ढा देता है। इन सब बातोंका निर्णय करना और इन्हें व्यवस्थित करना तर्क-बुद्धिका क्षेत्र है, और शायद इससे भी बढ़कर तर्क-बुद्धिका यह काम है कि आवेश तर्कसंगत हैं या नहीं, कि वे किसी अनर्थकी ओर ले जायेंगे या उन्हें सहा जा सकता है और वे जीवनमें किसी चीजको अस्तव्यस्त नहीं करेंगे। तो, यह उसका पूरा क्षेत्र है; श्रीअरविन्द यही कहते हैं।

लेकिन धर्मका मूल्य जाननेके लिये, यह जाननेके लिये कि वह भगवान्के

साथ, आध्यात्मिक जीवनके साथ तुम्हारा संपर्क स्थापित कर सकनेकी शक्ति रखता है या नहीं, तुम्हें उसकी ओर ले जाता है, या नहीं, तर्क-बुद्धि कैसे निर्णय कर सकती है, जब कि यह उसके क्षेत्रसे परेकी चीज है? यह उसके बारेमें कुछ नहीं जानती। यह उसका क्षेत्र नहीं है, वहां यह कुछ भी नहीं समझती। हमें अन्य साधनोंका उपयोग करना चाहिये। स्वभावतः, वे इस तरह शुरू करते हैं, अंतमें वे बतायेंगे कि हम कौन-से साधनोंका उपयोग कर सकते हैं; मुझे पता नहीं कि यह इन अध्यायोंके अंतमें है या नहीं, लेकिन हर हालमें वे हमेशा संकेत तो देते ही हैं। इसका यही अर्थ है; वे कहते हैं: तर्क-बुद्धिका उपयोग न करो, उससे निर्णय नहीं कर सकते — बस।

क्या तर्क-बुद्धि अपने क्षेत्रमें हमेशा ठीक होती है?

तर्क-बुद्धि? हां। अगर वह सचमुच तर्क-बुद्धि है, तो वह ठीक है। अगर तुम चीजोंको आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे देखो तो वह पूरी तरह ठीक नहीं होती, क्योंकि वह इन क्षेत्रोंमें कुछ नहीं समझती, लेकिन बौद्धिक दृष्टिकोणसे स्वभावतः वही परम निर्णायक है।

जैसा कि मैं कहती हूं, एक पूर्णतः समझदार व्यक्ति, जो सामान्य जीवनसे संबंध रखनेवाली सभी बातोंमें, मनुष्यके मानसिक, प्राणिक और भौतिक जीवनमें, अपनी तर्क-बुद्धिके अनुसार जीता है वह इस दृष्टिसे भूल नहीं कर सकता। हां, अगर तुम कहो: "इन्हीं स्तरोंतक सीमित जीवन पूरा नहीं होता, इन तीन स्तरोंमें जीवन पूर्ण नहीं होता, इनमें एक और, चौथे स्तरको लाना जरूरी है, वह है आध्यात्मिक या अति-बौद्धिक स्तर", तो हम इस दृष्टि-बिंदुसे कहना शुरू करते हैं: "तर्क-बुद्धि इस बारेमें कुछ नहीं समझती, यहां उसे चुप रहना और अति-बौद्धिक प्रभावको काम करने देना चाहिये।" लेकिन सामान्य जीवनके दृष्टि-बिंदुसे, उन लोगोंके लिये जो सामान्य जीवन बिताते हैं, जो योग करना या आध्यात्मिक रूपसे विकसित होना नहीं चाहते, तर्क-बुद्धि निश्चय ही निरपेक्ष और बहुत अधिक वांछनीय स्वामी है। जो लोग तर्क-बुद्धिके अनुसार जीवन यापन करते हैं वे प्रायः बहुत सात्विक होते हैं और किसी प्रकारकी अति नहीं करते और गंभीर भूलें नहीं करते, वे संतुलित रूपसे जीते हैं। केवल जब तुम साधारण जीवनसे बाहर आओ, जब तुम आध्यात्मिक सिद्धिकी ओर ले जानेवाले जीवनमें प्रवेश चाहो, तभी तर्क-बुद्धिको अपनी गद्दी छोड़नी पड़ती है। फिर भी जबतक तुम अपने मन और प्राणकी गतिविधियोंके पूर्ण स्वामी नहीं बन जाते, तबतक वह सहायता कर सकती है। जबतक ये दो चीजें रूपांत-

रित नहीं होतीं, तबतक अपनी तर्क-बुद्धिका उपयोग करना बिलकुल उचित है, क्योंकि वह इन गतिविधियोंपर प्रभुत्व पानेमें सहायता देगी।

और कोई प्रश्न?

(और एक बालकसे) तुम समझ गये, है न? — कम-से-कम कुछ तो समझ ही गये। नहीं? तो फिर पूछो कोई प्रश्न।

मधुर मां, अति-बौद्धिक सुंदरता क्या है?

ओह! वह, मेरे वत्स, जब हम यह अध्याय पढ़ चुकेंगे तब तुम जान लोगे, क्योंकि इस अध्यायका यही तो विषय है। अतः वे सारे अध्यायमें तुम्हें यही बात समझानेवाले हैं। अगर मैं तुम्हें अभीसे बता दूं तो फिर अध्याय पढ़नेका कष्ट करनेकी जरूरत न रहेगी। (हंसी)

क्या तर्क-बुद्धि मनका उच्चतम व्यापार है?

मनका, ठीक तरहसे कहा जाय तो मानव मनका, हां, निश्चय ही। यानी, जबतक तुम शुद्ध रूपसे मनुष्य रहते हो और शुद्ध रूपसे मनोमय लोकमें रहते हो, तबतक यदि तर्क-बुद्धि साथ हो तो भूलें करनेका खतरा नहीं रहता।

तर्क-बुद्धि आध्यात्मिक जीवनमें बाधा किस तरह बनती है?

क्योंकि वह उसके बारेमें कुछ भी नहीं समझती। आध्यात्मिक जीवन उसके परे जाता है, वह उसका क्षेत्र नहीं है, और यह वहांकी कोई बात नहीं समझती। वह समस्त नैतिकता, सदाचार और आत्म-संयमके लिये बहुत अच्छा यंत्र है, लेकिन आध्यात्मिक जीवन इन चीजोंसे परे जाता है और बुद्धि इसके बारेमें कुछ नहीं समझती।

लेकिन अगर किसीमें सचमुच तर्क-बुद्धि हो, तो तर्क-बुद्धिको यह स्वीकारना होगा कि आध्यात्मिक जीवन ज्यादा ऊंचा है!

हां।

तो फिर वह बाधा क्यों बन जाती है?

इस शर्तपर कि वह चुप रहे, और आगे हस्तक्षेप न करे. . . अगर वह हस्त-क्षेप करनेकी कोशिश करे तो बाधा बन जाती है, अगर वह व्यवस्थित रूप-से अपने-आपको पीछे हटा ले और चुपचाप रहे, तो बहुत अच्छा हो।

अगर तुम निर्णायक या स्वामीके रूपमें उसका उपयोग करना चाहो तो वह बाधा है। लेकिन, सत्ताके सभी भागोंकी तरह, अगर तुम यंत्रके रूपमें उसका उपयोग करो तो वह बाधा नहीं है। वह एक बहुत अच्छा यंत्र है, लेकिन इस शर्तपर कि वह यंत्र बनी रहे, निर्णय और निश्चय करनेवाला स्वामी बननेकी कोशिश न करे। वह निर्णयकी ऐसी शक्ति है जो, अपने क्षेत्रमें, बिलकुल ठीक है। लेकिन जैसे ही वह अपने क्षेत्रके बाहर जाती है, वह समझ नहीं सकती, उसमें विवेक नहीं रहता।

तो अगर तर्क-बुद्धि यह समझ ले और स्वामी तथा निर्णायक बननेकी जगह, यंत्रकी मनोवृत्तिके साथ चुपचाप रहे, तो सबसे अच्छा। लेकिन इस-के लिये विकसनशील चेतनाको अति-बौद्धिक क्षेत्रमें इतने पर्याप्त रूपमें विक-सित होना चाहिये कि वह ऊपरसे बुद्धिपर क्रिया करे और उसे यह बात समझा दे, क्योंकि यह क्षेत्र बुद्धिका भाग नहीं है। अतः स्वाभाविक रूपसे वह उसे अस्वीकार करती है जबतक कि चेतनाका एक भाग इतना विकसित न हो कि उसके ऊपर ऐसा कुछ रख सके जो उसे समझा दे। सब कुछ व्यक्तिकी चेतनाके विकासपर निर्भर है। यह शुद्ध रूपसे व्यक्तिगत प्रश्न है।

माताजी, जब आप अति-बौद्धिक क्षेत्रकी बात कहती हैं, तो क्या वह तर्क-बुद्धिसे ऊंचा कोई क्षेत्र है या वह कोई क्षेत्र-विशेष है?

यह कोई क्षेत्र होनेके बजाय, अवस्था है। भौतिकमें एक अति-बौद्धिक क्षेत्र हो सकता है, प्राणमें एक अति-बौद्धिक क्षेत्र हो सकता है, मनमें भी एक अति-बौद्धिक क्षेत्र हो सकता है और ऐसे अति-बौद्धिक क्षेत्र भी हैं जो इन सबके परे हैं। यह चेतनाके और जीवनके किसी भागमें क्षेत्रके बजाय, अवस्था है। यह सत्ताका एक रूप है। यह एक ऐसी चीज है जो सामान्य चेतनाकी अवस्थाके परे है। लेकिन भौतिक रूपसे भी इसका अनुभव किया जा सकता है, प्राणिक रूपमें भी। अचानक तुम्हें यह अनु-भव हो सकता है कि तुम्हारा किसी ऐसी चीजके साथ संपर्क है जो समस्त तर्क-बुद्धिके क्षेत्रोंके परे है और वहां वह है, वह स्वयं प्राणमें है, एक प्रभाव है जो ऊपरसे कार्य कर रहा है। अन्यथा सत्ताके निचले भागोंके रूपांतरकी

आशा करना भी सर्वथा असंभव होता — फिर चाहे वह मन हो, प्राण हो या शरीर हो; अगर वे अपने अंदर अति-बौद्धिक प्रभाव ग्रहण कर सकनेके योग्य न होते तो वे कभी रूपांतरित न हो पाते; और वह यहां मौजूद है, उसे पाना, उसे खोजना होगा।

मधुर मां, यहां श्रीअरविंदने लिखा है: "एक दिशामें वह (तर्क बुद्धि) प्रबोध प्रदान करनेवाली है — परंतु हमेशा प्रधान प्रबोध देनेवाली नहीं ...."

हां, यही तो हमने कहा है, कि तर्क-बुद्धिके क्षेत्रमें यही सच्चा निर्णय देती है, सच्चा निर्देशन करती है। इसीको प्रबोधक कहते हैं: जो प्रबोध या प्रकाश प्रदान करता है। जब तुम्हें किसी चीजके बारेमें विश्वास न हो, जब तुम अंधकारमें हो, अस्तव्यस्ततामें हो, उस समय अगर तुम तर्क-बुद्धिको बुलाओ, तो वह निश्चय ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर सकती है, जहां तुम अंधकारमें थे वहां स्पष्ट दिखा सकती है; इसीलिये यह प्रकाशदाता है। तो, "आत्माके पुरोहित"का ठीक वही अर्थ है जो वह पूछ रहा था, यानी, उसे सत्ताके निचले भागोंमें आध्यात्मिक परमार्थ तत्त्वको प्रकट करनेवाले यंत्रमें बदला जा सकता है; "आत्माके पुरोहित"का यही मतलब है; पुरोहित किसी चीजका यंत्र होता है, इसका मतलब है 'आत्मा'का यंत्र। और यह (बुद्धि) 'आत्मा'के राजके आनेके लिये मार्ग तैयार कर सकती है, यथार्थतः सत्ताको संतुलित और शांत, अपने निर्णयोंमें ठीक, क्रियामें ठीक बना सकती है, ताकि प्रकाशमय संतुलनकी अवस्थामें रहते हुए वह 'आत्मा'को ग्रहण करनेके योग्य बन सके।

स्पष्ट है कि जो सत्ता अंधकारके बवण्डरमें हो वह 'आत्मा'को ग्रहण करनेके लिये तैयार नहीं होती। परंतु जब तर्क-बुद्धिका उपयोग करनेसे तुम अपनी सत्ताकी तर्क-संगत, बुद्धि-संगत और संतुलित और बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवस्था कर लो — तर्क-बुद्धि अनिवार्य रूपसे बुद्धिका यंत्र है — तो, यह परे जानेकी एक बहुत अच्छी तैयारी है, बशर्ते कि तुम यह जानो कि यही पूर्ति नहीं है, यह केवल तैयारी है। यह एक आधारकी तरह है, है ना; जिन लोगोंको आध्यात्मिक अनुभूतियां होती हैं, जिनका ऊपरके लोकोंके साथ संपर्क है पर जो निम्न क्षेत्रोंमें तैयार नहीं हैं, उन्हें बहुत कष्ट होता है, क्योंकि उन्हें हमेशा ऐसे तत्त्वोंके ढेरसे लड़ना पड़ता है जो न तो व्यवस्थित हैं, न शुद्ध, जिनका वर्गीकरण भी नहीं हुआ है; और उनमेंसे हर एक अपनी ओर खींचता है, उनमें आवेश, अभिरुचियां और कामनाएं

होती है। तो यह प्रकाश जो ऊपरसे आता है उसे इस सबकी व्यवस्था करनी होती है; जब कि अगर आरंभमें तर्क-बुद्धिने काम किया होता और इस जगहको कम-से-कम रहने योग्य बना दिया होता, तो 'आत्मा' के आने पर उसकी ज्यादा आसानीसे प्रतिष्ठा हो सकती।

तर्क-बुद्धिको कैसे विकसित किया जा सकता है?

ओह! उपयोग द्वारा। तर्क-बुद्धि भी मांसपेशियोंकी तरह, इच्छा-शक्तिकी तरह विकसित होती है। ये सभी चीजें समझदारीके साथ उपयोग करनेसे विकसित होती है। तर्क-बुद्धि! हर एकके अंदर तर्क-बुद्धि होती है, केवल वह उसका उपयोग नहीं करता। कुछ लोग तर्क-बुद्धिसे बहुत डरते हैं क्योंकि वह उनके आवेशोंके प्रतिकूल जाती है। इसलिये वे उसकी बात न सुनना ज्यादा पसंद करते हैं। तो, स्वभावतः, यदि कोई तर्क-बुद्धिकी बात न सुननेकी आदत ही डाल ले, तो विकसित होनेकी जगह, वह प्रकाश अधिकाधिक खोने लगता है।

तर्क-बुद्धिको विकसित करनेके लिये पहले तुम्हें सचाईके साथ उसकी चाह करनी चाहिये; अगर तुम एक ओर तो अपने-आपसे कहो: "मैं अपनी तर्क-बुद्धिको विकसित करना चाहता हूं," और दूसरी ओर तर्क-बुद्धि तुमसे जो करनेके लिये कहे उसपर कान न दो, तो परिणाम कुछ नहीं आता, क्योंकि स्वभावतः, वह जब-जब तुमसे कहे: "यह मत करो" या "यह करो", तब-तब तुम उससे उल्टा करो, तो उसकी कुछ भी कहनेकी आदत छूट जायगी।

माताजी, साधारण जीवनमें भी, उदाहरणके लिये, सौंदर्य सराहनेमें तर्क-बुद्धि किस तरह सहायता दे सकती है?

वह सहायता नहीं कर सकती। श्रीअरविंद यहांपर ठीक यही बात कहने वाले हैं: कि तर्क-बुद्धि सौंदर्यका रसास्वादन करनेके लिये बिलकुल बेकार है। अंतिम विश्लेषणमें, यह बेकार है, क्योंकि सौंदर्य भी धर्मके सदृश चीज है और तर्क-बुद्धिके परे है। यह सारा अध्याय तुम्हें यही समझायेगा। इसीलिये वे उसे अति-बौद्धिक सौंदर्य कहते हैं। सौंदर्यका उच्चतर तत्त्व अति-बौद्धिक तत्त्व है और इसलिये तर्क-बुद्धि उसके बारेमें कुछ भी नहीं समझती। अगर तुम तर्क-बुद्धिके द्वारा कलाका मूल्यांकन करना चाहो तो तुम निश्चय ही मूर्खता-भरी चीजें कहोगे।

यहां (मेरा ख्याल है, इसी अध्यायमें), वे बतलाते हैं कि सौंदर्य भी उतने ही ऊंचे क्षेत्रकी चीज है जितना धर्म; कि सौंदर्यके द्वारा भी मनुष्य भगवान्‌के साथ उसी तरह संपर्कमें आ सकता है जैसे धर्मके द्वारा। और अगला अध्याय है "अति-बौद्धिक शुभ", वहां वे बतलाएंगे कि शुभ और अशुभमें भी तर्क-बुद्धि अंतिम निर्णायक नहीं हो सकती; कि अंतिम निर्णायक अति-बौद्धिक निर्णायक है। हां, उसी तरह, यह एक तैयारी हो सकती है, यह वहांतक जानेके लिये रास्ता तैयार कर सकती है; लेकिन यह केवल तैयारी है। निश्चय ही, वे हमको जो बात बताना चाहते हैं उसे पूरी तरह समझनेके लिये, हमें पूरी पुस्तक पढ़नी होगी। लेकिन उसमें हमें दस साल लग जायेंगे, इसलिये मैं उसकी कोशिश नहीं कर रही। मैंने केवल ये ही अध्याय लिये हैं क्योंकि, अन्य विषयोंसे अलग, —सौंदर्य और शुभ—यह दोनों विषय बहुत मजेदार हैं।

सौंदर्य मनुष्यकी सौंदर्य-बोधी वृत्ति है, और शुभ उसकी नैतिक वृत्ति है, और यह दोनों चीजें मानव शिक्षा और विकासमें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं; और इसीलिये मैंने इन दो अध्यायोंको तुम्हारे लिये चुना है। लेकिन विचारका पूरा विकास जाननेके लिये तुम्हें पूरी पुस्तक पढ़नी चाहिये। तुम उसे बादमें पढ़ोगे . . . शायद तुममेंसे कुछमें उसे पढ़नेकी उत्सुकता हो।

मधुर मां, सौंदर्य-बोधी और नैतिक का क्या मतलब है?

सौंदर्य-बोधी वह है जिसका सौंदर्यके साथ संबन्ध हो, और नैतिक वह जिसका शुभके साथ संबन्ध हो।

देखो, मेरे बच्चो, अगर ऐसे शब्द आयें जिन्हें तुम नहीं समझते, तो शब्द-कोश उठाओ और उसमें देख लो। क्योंकि उससे तुम भाषा सीखोगे और साथ ही तुम जरा-सी फ्रेंच सीखोगे। लेकिन, अंगरेजीमें भी यही शब्द हैं; ये तुम्हें आने चाहिये। ये जरा अलग ढंगसे लिखे जाते हैं, इनका उच्चारण जरा अलग है, पर ये हैं ठीक वह-के-वही।

माताजी, यहां श्रीअरविंद कहते हैं: "तुम सोच सकते हो कि अपने ज्ञानके सीमित क्षेत्रमें, ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, उपयोगी कला-कौशलमें, उसका (तर्क-बुद्धिका) अधिकार निर्विवाद है। लेकिन अंतमें यह बात सच नहीं निकलती . . ." तो विज्ञान, दर्शन, और उपयोगी कला-कौशलके अध्ययनमें तर्क-बुद्धिका क्या काम होना चाहिये?

जैसा कि मैंने कहा, तैयारीका काम; किसी ऐसी उच्चतर चीजके लिये तैयार करना जो अति-बौद्धिक है और जिसे यहां आना चाहिये। यह एक तैयारी है। देखो, उन्होंने कहा है "तुम सोचोगे", यानी, यह केवल एक छाप है कि उसका निर्विवाद अधिकार है। यह निर्विवाद नहीं है। वे कहते हैं कि इसका विशाल क्षेत्र है, कि इसके पास काफी शक्तियां हैं, कि इसकी क्रिया अधिक आत्म-विश्वासपूर्ण होती है, लेकिन वह हमेशा अपने-आपको हमारी सत्ताकी अन्य दो शक्तियोंके बीचमें खड़ा पाती है, यह दो हैं: अति-बौद्धिक और अव-बौद्धिक। यह हमें अव-बौद्धिक प्रभावसे बचानेके लिये — समस्त सहज-वृत्तियों, समस्त कामनाओं, समस्त आवेगों, समस्त आवेशोंसे बचानेके लिये, हमें इस प्रदेशसे मुक्त करने और आनेवाले अति-बौद्धिकके लिये तैयार करनेके लिये एक माध्यम है। अतः यह मध्यस्थताका, संक्रमणका यंत्र है, और इस बीचके . . . इस प्रदेशमें, यह सबसे अच्छा स्वामी है। लेकिन यह इससे आगे नहीं जा सकता। एक ऐसा बिंदु आता है जहां वह अपनी सारी शक्ति खो बैठता है। जब आदमी अति-बौद्धिक हस्तक्षेपके लिये तैयार हो, तो इसे चुप हो जाना पड़ता है; और अगर, उदाहरणके लिये, एक आंतरिक विकास द्वारा, किसी योगकी क्रियाद्वारा तुम भागवत चेतनाके संपर्कमें आ पाये हो और इस भागवत चेतनासे प्रेरणाएं पाते हो, उस समय यदि तुम तर्क-बुद्धिद्वारा इन प्रेरणाओंके बारेमें निर्णय करना चाहो, तो निश्चय ही तुम मूढ़ताभरी भूलें करोगे, क्योंकि तर्क-बुद्धि इस विषयमें कुछ नहीं समझती, और उसे पदच्युत हो जाना चाहिये। लेकिन तुम्हें विश्वास होना चाहिये कि यह सचमुच भागवत 'शक्ति' के साथ संपर्क है; और इसके बारेमें निश्चित होने . . . हां तो, जबतक तुम्हें इसका विश्वास न हो, तर्क-बुद्धि तुम्हें अपने-आपको धोखा देनेसे बचानेके लिये बहुत अच्छी है।

साधारणतः जिन लोगोंमें ऐसी अनुभूतियोंकी ओर प्रवृत्ति होती है जो एकदम साधारण नहीं है, उन्हें तर्क-बुद्धि बहुत कष्टप्रद मालूम होती है; और वे उसकी क्रियाके परे जानेके लिये तैयार होनेसे पहले ही उसे अस्वीकार कर देते हैं, और साधारणतः वे इस तरह बिलकुल असंतुलित हो जाते हैं और अंतमें अर्द्ध-विक्षिप्त होकर रहते हैं। इसलिये, जबतक तुम्हें पूरा-पूरा विश्वास न हो जाय कि तुम जहां पहुंचना चाहते थे वहां पहुंच गये, तबतक अपने अंदर तर्क-बुद्धिको बहुत सक्रिय रखो ताकि तुम पथभ्रष्ट होनेसे बच सको। यह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। तुम तर्क-बुद्धिको तबतक पदच्युत नहीं कर सकते जबतक कि उच्चतर क्षेत्रोंसे आने वाली अनुभूति इतनी निरपेक्ष, इतनी सच्ची, इतनी पूर्ण न हो कि तुम्हें

वह मान्यताके लिये बाधित करे। यह बहुधा होनेवाली चीज नहीं है। इसलिये मैं हमेशा लोगोंको अपनी तर्क-बुद्धि बनाये रखनेकी सलाह देती हूं। लेकिन एक ऐसा बिंदु है जहां उसे अपने उच्चतर अधिकारोंसे हाथ खींच लेना चाहिये — अर्थात्, आध्यात्मिक अनुभवका मूल्यांकन न करना चाहिये, क्योंकि वह उसका मूल्यांकन नहीं कर सकती, वह उसे समझती नहीं; लेकिन वह सचमुच आध्यात्मिक अनुभूति होनी चाहिये, ऐसी कोई चीज नहीं जो उसकी नकल करनेकी कोशिश करे; यहां एक निरपेक्ष सचाई आवश्यक है। महत्त्वाकांक्षाके कारण अपनेको धोखा नहीं देना चाहिये, या असाधारण कहानियां सुनाकर अपनी महानताका विश्वास दिलानेवाले धोखेबाजोंकी बातोंमें आकर धोखा नहीं खाना चाहिये।

बस, इतना ही?

रास्ता तैयार करनेका अर्थ है...?

ओह! इसका अर्थ क्या है, रास्ता तैयार करनेका?

क्या तुम्हें जीवनमें ऐसा अनुभव कभी नहीं हुआ कि तुम किसी वस्तुकी ओर बढ़ रहे हो? नहीं? क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि जब तुम जन्म लेते हो तो एक ऐसे मार्गपर पांव रखते हो जो तुम्हें एक घुमावके द्वारा सारे जीवन आगे बढ़ाता रहेगा? यही चित्र है। अतः अगर तुम वह रास्ता पकड़ो जो तुम्हें निश्चित रूपसे किसी आध्यात्मिक सिद्धिकी ओर ले जायगा, तो, इसका यह अर्थ है कि तुम्हारी सारी क्रियाएं सोद्देश्य इसी लक्ष्यकी ओर ले जायी जायेंगी। और इसलिये वे कहते हैं कि मार्गका कुछ हिस्सा तर्क-बुद्धिके अधिकारमें रहता है और, अगर तुम तर्क-बुद्धिका अनुसरण करो, तो वह तुम्हें बहुधा भूलें किये बिना आगे बढ़नेमें सहायता देती है। क्योंकि यह काफी विलक्षण बात है कि जीवनमें तुम बिना कुछ जाने चल पड़ते हो, और हर कदमपर तुम्हें सीखना पड़ता है, और साधारणतः तुम बहुत अधिक सीखे बिना, अंततक जा पहुंचते हो, रास्तेके अंततक, क्योंकि तुम बहुधा भूलें करते हो और तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करनेवाला कोई नहीं होता।

साधारणतः लोग जीना क्या है यह जाने बिना ही जीवनमें प्रवेश करते हैं और कदम-कदमपर उन्हें जीना सीखना पड़ता है। और यह जाननेसे पहले कि वे क्या सिद्ध करना चाहते हैं, उन्हें कम-से-कम चलना तो आना ही चाहिये; जिस तरह किसी छोटे बच्चेको चलना सिखाया जाता है, उसी तरह व्यक्तिको भी अपने जीवनमें जीना सीखना पड़ता

है। ऐसे कौन हैं जो जीना जानते हैं? और व्यक्ति अनुभवोंद्वारा, गलतियोंद्वारा, हर तरहके दुर्भाग्यों और हर प्रकारकी अड़चनद्वारा धीरे-धीरे ऐसा बनता है जिसे विवेकशील कहते है, अर्थात्, जब वह किसी गलतीको अमुक बार कर लेता है और जब उसे उस गलतीके दुःखदायी परिणाम मिलते है, तो वह यह सीख जाता है कि उसे फिरसे न करे। लेकिन एक क्षण ऐसा आता है, जब मस्तिष्क काफी विकसित हो जाता है और तुम तर्क-बुद्धिका उपयोग कर सकते हो, फिर, तर्क-बुद्धि उन गलतियोंकी संख्याको कम करनेमें सहायता करती है, बहुत बार लड़खड़ाये बिना मार्गपर चलना सिखाती है।

मनुष्योंमें बहुत अधिक संख्यामें ऐसे लोग हैं जो यह जाने बिना कि ऐसा क्यों हुआ, जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं। वे यूं लेते हैं... यह ऐसा ही है; वे जन्म लेते हैं, वे जीते हैं, उन्हें वह मिलता है जिसे वे अपना सुख और अपना दुःख कहते हैं, और वे अंततक जा पहुंचते हैं और फिर चले जाते हैं। उन्होंने प्रवेश किया और बिना कुछ सीखे बाहर चले गये। ऐसे लोग बहुत अधिक संख्यामें हैं।

ऐसे लोगोंमें एक छोटी संख्या उन लोगोंकी होती है जो कुलीन कहलाते हैं, ऐसे व्यक्ति हैं जो यह जाननेकी कोशिश करते हैं कि उन्हें क्या हुआ है, पृथ्वीपर वे किसलिये हैं और जो कुछ उनके साथ होता है वह क्यों होता है। और इन लोगोंमें कुछ हैं जो अपनी तर्क-बुद्धिका उपयोग करते हैं और वे पथपर चलनेका एक सुविधाजनक तरीका ढूंढ निकालते हैं, जो औरोंसे अधिक तेज होता है। ये विवेकपूर्ण व्यक्ति होते हैं।

अब चुटकी-भर — या यूं कहें, मुट्ठी-भर — ऐसे लोग हैं जो इस भावके साथ जन्म लेते हैं कि जीवनमें कुछ और ढूंढना है, कि जीवनका कोई उच्चतर ध्येय है, एक लक्ष्य है, और वे उसे ढूंढनेका अधिक प्रयास करते हैं। तो ऐसे लोगोंका पथ तर्क-बुद्धिके परे जाता है, ऐसे क्षेत्रोंकी ओर जाता है जिनमें उन लोगोंको सहायताके साथ या सहायताके बिना, संयोगके अनुसार, छान-बीन करनी पड़ती है, और तब उन्हें उच्चतर जगतोंकी खोज करनी पड़ती है। लेकिन ऐसे व्यक्ति बहुत नहीं हैं। मैं नहीं जानती कि अभी दुनियामें ऐसे व्यक्ति कितने हैं, लेकिन मेरा ख्याल है कि वे अभीतक गिने जा सकते हैं। तो ऐसे लोगोंके लिये यह इस बातपर निर्भर है कि वे ढूंढना कब आरंभ करते हैं।

मेरा ख्याल है कि ऐसी सत्ताओंने जन्म लिया है जिनमें तर्क-बुद्धिका काल बहुत जल्दी, बहुत छोटी अवस्थामें शुरू हो जाता है, और हो सकता है कि वह बहुत कम समय रहे; और वे लगभग उसी समय उच्चतर सत्योंकी ओर जानेके लिये, नये और अज्ञात मार्गोंपर कदम रखनेके लिये

प्रस्तुत रहते हैं। लेकिन बिना भय और बिना संकटके यात्रा आरंभ करनेके लिये, तुम्हें तर्क-बुद्धिकी सहायतासे अपनी सत्ताको उस उच्चतम केंद्रके चारों ओर व्यवस्थित करना चाहिये जो सचेतन रूपसे तुम्हारे अधिकारमें हो, और उसे इस तरह, व्यवस्थित करना चाहिये कि आंतरिक रूपमें तुम्हारे अधिकारमें हो और तुम्हें हर क्षण यह न कहना पड़े : "ओह मैंने ऐसा किया, मुझे नहीं मालूम क्यों। ओह! मेरे साथ ऐसा हुआ, मुझे नहीं मालूम क्यों"—और हमेशा "मुझे नहीं मालूम, मुझे नहीं मालूम" की रट लगी रहती है, और जबतक ऐसा रहे, रास्ता कुछ खतरनाक बना रहता है। जब तुम जो करना चाहते हो करते हो, जो जानना चाहते हो जानते हो, जो चाहते हो करते हो और अपने-आपको निश्चयके साथ जीवनके संकटोंसे थपेड़े खाये बिना दिशा दे सकते हो, केवल तभी तुम बिना भय, बिना संकोच और रंचमात्र संकटके बिना अति-बौद्धिक मार्गोंपर आगे बढ़ सकते हो। लेकिन इसके लिये व्यक्तिको बहुत अधिक प्रौढ़ होनेकी आवश्यकता नहीं होती। तुम इसे बहुत छोटी उमरमें शुरू कर सकते हो; पांच वर्षका बालक भी अपने-आपको वशमें करनेके लिये तर्क-बुद्धिका उपयोग कर सकता है; मैं यह जानती हूं। इन नन्हें शिशुओंमें भी, जो इतने स्वाभाविक, इतने लापरवाह-से दीखते हैं, इनकी सत्तामें भी पर्याप्त मानसिक व्यवस्था होती है; अपने-आपको अपने जीवन, अपने स्वभाव, अपनी गतियों, अपनी क्रियाओं और तर्कबुद्धिद्वारा अपने विचारोंको व्यवस्थित कर सकनेके लिये उनके मस्तिष्कमें काफी व्यवस्था होती है।

यहां भी इस तरहके नन्हें-मुन्ने हैं। सब ऐसे नहीं हैं लेकिन कुछ ऐसे हैं। कुछ यहां ऐसे हैं, मैं उन्हें जानती हूं। तो अगर ऐसे बच्चोंको अपनी तर्क-बुद्धिका भली-भांति उपयोग करना सिखाया जाय, तो वे बहुत छोटी उमरमें ही महान् साहस-कार्यका श्रीगणेश करनेके लिये तैयार हो जायेंगे। उन्हें बहुत समय मिल जायगा। मार्गपर आवेगों और इच्छाओंकी गठरी लिये कदम नहीं रखना चाहिये, क्योंकि वह हर तरहके गंभीर विघ्नोंको निमंत्रण देती है।

तो, मेरे बच्चो, इतना काफी है?

कोई एक शब्द भी नहीं बोल रहा?

(एक बालकसे) तुम्हें अब भी कुछ कहना है?

क्या 'प्रकृति' के विधान मानव तर्क-बुद्धिके विधानका अनुसरण करते हैं?

ओह, नहीं !

फिर मानव तर्क-बुद्धिके द्वारा व्यक्ति इतने सारे 'प्रकृति' के विधानोंको कैसे समझा सकता है ?

क्योंकि मानव तर्क-बुद्धि 'प्रकृति' से उच्चतर है।

'प्रकृति' अव-बौद्धिक है। 'प्रकृति' के विधान अव-बौद्धिक विधान हैं। तो जब व्यक्ति तुमसे आकर कहते हैं: "लेकिन तुम चाहते क्या हो, यह तो 'प्रकृति' का विधान है," मुझे तो यह सुनकर हंसी आती है। तब मनुष्य होनेका लाभ ही क्या, तुम्हारे लिये ज्यादा अच्छा होता कि तुम बंदर, हाथी या शेर होते। 'प्रकृति' के विधान अव-बौद्धिक हैं।

मनुष्यकी एकमात्र श्रेष्ठता यही है कि उसमें तर्क-बुद्धि होती है, और जब वह उसका उपयोग नहीं करता तो वह बिलकुल पशु बन जाता है।

यह तो अंतिम बहाना होता है: "तुम चाहते क्या हो, यह तो 'प्रकृति' का विधान है !"

काफी देर हो चुकी है, वरना मैं तुम्हें कुछ कहानियां सुनाती।

अब समाप्त करना होगा।

१ जून, १९५५

माताजी 'मानव विकास-चक्र', अध्याय १४: 'अति-बौद्धिक सौंदर्य' — दूसरा अनुच्छेद पढ़ती हैं।

तुम इसके बारेमें क्या पूछना चाहते हो ?

मधुर मां, सौंदर्य-बोध (एस्थेटिक) की चेतना क्या है ?

यह सौंदर्यकी चेतना है। "एस्थेटिक" का अर्थ है वह जो सौंदर्य, कलाके साथ संबन्ध रखता हो। उदाहरणके लिये, ऐसे लोग हैं जो जीवनमें घूमते-फिरते हैं, भूदृश्य देखते हैं, मनुष्यों और वस्तुओंको देखते हैं,

लेकिन उन्हें इस बातका जरा भी ख्याल नहीं होता कि वे सुन्दर हैं या नहीं; और इसके अतिरिक्त, उससे उनके लिये कोई फर्क नहीं पड़ता। उदाहरणके लिये, वे आकाशको देखते हैं, वे देखते हैं कि बादल हैं या नहीं, वर्षा होगी या आकाश साफ रहेगा; तपती धूप है या ठंडी हवा बह रही है। जब कि कुछ और लोग हैं——, जब वे अपनी आंखें उठाते हैं और सुन्दर आकाशको देखते हैं, तो इससे उन्हें प्रसन्नता होती है, वे कहते हैं: "ओह! आज सुहावना दिन है, आजका सूर्योदय बड़ा मनोहर है, आजका सूर्यास्त बड़ा सुन्दर है, बादलोंके आकार बड़े अच्छे हैं।" तो, पहले प्रकारके लोगोंमें सौंदर्य-बोधकी चेतना नहीं है, दूसरे प्रकारमें है।

"हमारी शक्तियोंका सामान्य सोपान" का मतलब क्या है?

"सोपान" (माप-क्रम) निम्नतमसे लेकर उच्चतम शक्तियोंतकके अनुक्रम-का ख्याल देता है; जैसे, उदाहरणके लिये, चलनेकी क्षमता और सोचने-की क्षमता: इन दोनोंके बीच एक अनुक्रम है; चलनेकी क्षमता एक बिल-कुल भौतिक चीज है, सोचनेकी क्षमता बौद्धिक चीज है। तो ये चेतना-के विभिन्न अनुक्रम हैं जिनके बारेमें श्रीअरविंद यहां कह रहे हैं: "हमारी शक्तियोंका सामान्य सोपान"; वे आध्यात्मिक या यौगिक चीजोंकी बात नहीं कह रहे; यह समान्य जीवनका सोपान है, यानी, सभीके लिये ऐसा ही है। क्योंकि वे कहते हैं कि बर्बरोंमें, जंगलियोंमें भी कोई चीज ऐसी होती है जो एकदम जंगली नहीं होती, और उसके अन्दर भी यह अनु-क्रम, अवश्य होता है; यह अधिक प्रारंभिक, अधिक अनगढ़ होता है, पर होता जरूर है, अधिक-से-अधिक जड़ वस्तुसे लेकर विचार और चिंतनके अंकुरतक। जैसा कि वे कहते हैं, संसारके बारेमें और संसार क्या है इस बारेमें उसकी अपनी राय है, इन चीजोंके बारेमें उसका अपना विचार है; उसका विचार शायद कुछ बचकाना है पर इन चीजोंके बारेमें उसका विचार तो है। तो उसके अंदर भी यह सोपान है। निश्चय ही विचारसे ऊंची क्षमताएं भी हैं, परंतु वे प्रायिक नहीं हैं, अर्थात्, हम उन्हें बहुधा नहीं देखते।

तो बस? अब हम क्या करेंगे?

मुझे दूसरे, अगले अनुच्छेदमें कुछ पूछना है। मैं बहुत कुछ नहीं समझा।

अगला? लेकिन अगला अनुच्छेद अगले बुधवारके लिये है, या तुम चाहते हो कि मैं वह भी पढ़ दूं?

नहीं, मधुर मां, औरोंको पूछना है।

तुम्हें कुछ पूछना है? तुम्हें पूछना है? तुम्हें, उधर, पूछना है? कोई प्रश्न नहीं है?

क्या सौंदर्य आकारके बाहर रह सकता है?

भावनाओंका सौंदर्य है; तुम समझते हो कि भावनाओंका भी एक आकार होता है, तो और बात है। तुम्हारा मतलब है: "क्या भौतिक आकार-के बाहर भी सौंदर्य है?"

जी हां।

हां, अवश्य, विचारोंका सौंदर्य, भावोंका सौंदर्य होता है। यह ऐसी चीज है जिसे हम प्रायः देखते हैं; जब किसीने कोई बहुत उदात्त, बहुत उदारता-पूर्ण, बहुत निःस्वार्थ काम किया हो, तो बिलकुल सहज रूपसे हम कहते हैं: "यह सुन्दर है!" और यह सच है, यह सौंदर्यका भाव देता है।

सौंदर्य शुद्ध रूपसे भौतिक चीज नहीं है। फिर भी, हमने कहा है कि भौतिक जगत्में भगवान्की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है सौंदर्य; लेकिन यह ऐकांतिक नहीं है, इसका यह मतलब नहीं है कि यह केवल भौतिक जगत्में ही है।

(मौन)

यह ठीक है न?

मधुर मां, श्रीअरविंद यहां कहते हैं: "...सौंदर्यकी यह खोज ...हमारे जीवनके मूलसे आती है..."

वह हमारे जीवनके मूलसे आती है—तो?

हमारे जीवनका मूल क्या है ?

उनका मतलब है कि यह सहज-वृत्तिकी चीज है, यह बौद्धिक नहीं है, यह तर्क-बुद्धिके क्षेत्रपर निर्भर नहीं है, यह कोई सहज-वृत्तिकी चीज है। हमारे अन्दर सौंदर्य-बोध होता है और यह जाने बिना कि हम ऐसा क्यों कर रहे हैं हम सौंदर्यसे प्रेम करते हैं, और ऐसी चीजें हैं जो हमारे कारण जाने बिना, तर्क किये बिना सौंदर्यका भाव देती हैं। यह सहज-वृत्ति-की चीज है। श्रीअरविंद कहते हैं कि यह सौंदर्य-बोधकी अव-बौद्धिक अवस्था है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि जो बच्चा एक सुन्दर फूलको देखता है और जिसके अन्दर उसके कारण जाने बिना ही सौंदर्य-भाव आता है, वह तुम्हें कभी यह न बता सकेगा कि यह इस कारण है कि उसका आकार संतुलित है और उसके रंग मोहक; वह व्याख्या नहीं कर सकता इसलिये यह बौद्धिक नहीं है, यह पूरी तरह सहज-वृत्तिकी चीज है, यह एक आकर्षण है, एक आवेग है जो तुम्हें किसी चीजकी ओर खींचता है, तुम सामंजस्यका अनुभव करते हो, पर उसकी व्याख्या नहीं कर सकते। लेकिन बहुधा ऐसा होता है। यह बहुत ही कम होता है कि कोई कह सके : "यह चीज इस कारण या उस कारणसे सुन्दर है," और किसी चीज-की सुन्दरताके बारेमें पूरा भाषण दे सके। स्वभावतः, तुम्हें केवल ऐसा लगता है कि यह चीज सुन्दर है; बादमें यदि तुम्हें यह आश्चर्य हो : "मुझे यह चीज क्यों सुन्दर लगती है ?" तो, अपनी बुद्धिसे प्रयास करके तुम इस बातको समझनेमें सफल हो सकते हो; लेकिन शुरूमें तुम उसके कारणमें व्यस्त नहीं रहते, तुम अनुभव करते हो कि चीज सुन्दर है, और बस, तुम उससे संतुष्ट हो जाते हो।

उदाहरणके लिये, तुम एक ऐतिहासिक भवनमें प्रवेश करते हो, और अचानक तुम एक महान् सौंदर्यके भावसे अभिभूत हो जाते हो; इसे तुम कैसे समझाओगे ? अगर कोई तुमसे उसके बारेमें पूछे तो तुम कहोगे : "हां, मुझे लगता है कि यह सुन्दर है।" लेकिन अगर कोई स्थपति किसी भवनमें प्रवेश करे और सौंदर्यके उसी भावका अनुभव करे, तो वह तुम्हें तुरंत बता देगा : "क्योंकि इसकी रेखाएं सामंजस्यके साथ मिलती हैं, इसके आयतनके परिमाणमें सामंजस्य है, सारी रचना सुन्दरता, सुव्यवस्था और लयके नियमोंका अनुसरण करती है, और वह यह सब बातें तुम्हें समझा देगा। लेकिन वह इसलिये कि वह स्थपति है, लेकिन फिर भी तुम उसके समान ही सौंदर्यको अनुभव कर सकते थे, भले उसे समझा न पाते। हां तो, तुम्हारा सौंदर्य-बोध वैसा है जिसे श्रीअरविंद अव-बौद्धिक

कहते हैं, और उसका (स्थपतिका) सौंदर्य-बोध वैसा है जिसे श्रीअरविंद बौद्धिक कहते हैं, क्योंकि वह अपनी बुद्धिद्वारा यह समझा सकता है कि उसे वह चीज सुन्दर क्यों लगती है।

लेकिन अगर तुम किसीको देखो, किसी व्यक्तिको देखो, और तुम्हें लगे कि वह सुन्दर है, तो क्या तुम अपने-आपको बता सकोगे कि ऐसा क्यों है? प्रायः नहीं। अगर तुम प्रयास करो, ध्यानसे देखो, सोचो, तो हो सकता है कि तुम अपने-आपसे कहने लगो: "हां, अरे! यह इस कारणसे है, यह उस कारणसे है," और यह बिलकुल निश्चित नहीं है कि तुम्हारी बात ठीक हो।

वस्तुतः, सौंदर्य दुर्ग्राह्य वस्तु है (आसानीसे पकड़में आनेवाली चीज नहीं है)। यह एक प्रकारका सामंजस्य है जिसे तुम सोचनेसे कहीं अधिक अनुभव करते हो, और सौंदर्यके साथ सच्चा अति-बौद्धिक संबन्ध जरा भी "बौद्धिक" संबन्ध नहीं है (श्रीअरविंद यह बात अंतमें कहेंगे), वह बुद्धिको एकदम पार कर जाता है, वह एक उच्चतर क्षेत्रमें संपर्क है। लेकिन इस अनुच्छेदमें वे ठीक यह बात कह रहे हैं कि जब सौंदर्यकी सहज-वृत्ति होती है तो उसमें प्रायः अज्ञानकी गतिविधियां और संस्कृति और सुरुचिके अभावका मिश्रण पाया जाता है। अतः यह सहज-वृत्ति कभी-कभी अपनी अभिव्यक्तिमें बहुत अनगढ़ और अपूर्ण होती है। तुम किसी सचमुच सुन्दर चीजको देखकर एक सौंदर्यात्मक आनन्द अनुभव कर सकते हो (हम उसे यही नाम दे सकते हैं) और साथ ही एक ऐसी चीज भी हो सकती है जो सुन्दर तो नहीं है, लेकिन एक प्रकारका आनन्द देती है, क्योंकि वह मिश्रित है, क्योंकि तुम्हारी सौंदर्य-वृत्ति शुद्ध नहीं है, वह सब प्रकारके ऐसे संवेदनोंसे मिली है जो बहुत अनगढ़ और अप्रशिक्षित होते हैं। तो श्रीअरविंद कहते हैं, यहीं तर्क-बुद्धिकी भूमिका है, वह यह समझानेके लिये आती है कि चीज सुन्दर क्यों है, वह सुरुचिको प्रशिक्षण देने आती है; लेकिन यह अंतिम नहीं है, और तर्क-बुद्धि अंतिम निर्णायक नहीं है; वह भी भूलें कर सकती है, वह उस अव-बौद्धिक व्यक्तिके निर्णयकी अपेक्षा, जिसमें चीजोंकी समझ नहीं है, जिसमें तर्क-बुद्धिका अभाव है, जरा ज्यादा ऊंची है। यह एक अवस्था है। यह एक अवस्था है, वह यही कहते हैं; यह एक अवस्था है। लेकिन अगर तुम सच्चे सौंदर्यको पाना चाहते हो, तो तुम्हें इसके परे, इस अवस्थाके बहुत परे जाना चाहिये। आगे जो पाठ आयेगा उसमें वे यह समझायेंगे। लेकिन उन्होंने इस अनुच्छेदमें जो कहा है उस-का यह संक्षिप्त सार है। पहले तुम्हारी सौंदर्य भावना सहज-वृत्तिके रूप-

मत न होते थे, वे उससे कहते थे : "तब फिर यह कैसे है कि जहां केवल 'प्रकृति' के विधानका राज चलता है — उदाहरणके लिये, पशु जगत्‌तक गये बिना, वनस्पति जगत्‌में — पौधोंके बीच हत्याकांड मचा रहता है और जीवनके लिये सदा संघर्ष होता रहता है? क्या इसीको तुम सामंजस्य कहते हो?" तो वह आदमी कुछ भी न समझा पाता था।

वस्तुतः, जिन लोगोंको सामान्य प्रश्नोंमें रस होता है, जो लोग पैदा होने, जीने और मरने, यथासंभव अच्छे-से-अच्छा जीनेकी अपनी तुच्छ दैनिक व्यस्ततासे बाहर निकल आते हैं — ऐसे लोग हैं जो इन चीजोंसे संतुष्ट नहीं हैं, जो व्यापक रूपसे विचार करने और संसारकी समस्याओंको देखनेका प्रयास करना चाहते हैं — ये लोग एक आंतरिक या मानसिक प्रयास करते हैं, और एक-न-एक तरीकेसे शक्तियोंकी बड़ी लहरोंके संपर्कमें आते हैं, इनमें पहले मानसिक शक्तिकी, उच्चतर प्रकाशकी, और कभी-कभी आध्यात्मिक शक्तिकी लहरें होती हैं। तब वे अपनी चेतनामें उसकी एक बूंद-सी पा लेते हैं, और इससे उनके अंदर अंतःप्रकाशकी एक रोशनी पैदा होती है, और वे अनुभव करते हैं कि उन्होंने सत्यको ग्रहण कर लिया है। उन्हें अंतःप्रकाश मिलता है और स्वभावतः वे बहुत खुश होते हैं और तुरंत सोचने लगते हैं : "मैं अपनी प्रसन्नता औरोंको भी दूंगा;" चूंकि वे बहुत अच्छे लोग होते हैं और उनके इरादे भी बहुत अच्छे होते हैं। फिर, अपना सुख औरोंमें बांटनेके लिये वे अपने अंतःप्रकाशके चारों ओर एक रचना बनाना शुरू करते हैं; उन्हें उसका एक वाद बनाना पड़ता है; अन्यथा दूसरोंके आगे प्रचार कैसे करें? इसलिये इस आदमीकी तरह, वे एक वाद खड़ा करते हैं। मैंने दुनियामें ऐसे सैंकड़ों देखे हैं। तो, इनमेंसे हर एकने एक अंतःप्रकाश प्राप्त किया था और उसके चारों ओर एक रचना की थी जो उसे सभी समस्याओंका समाधान मालूम होती थी। वे उसे हर चीजपर लागू करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने अपने चारों ओर लोग इकट्ठे किये; उन्होंने अपनी शक्ति या अपने प्रभावके बलके अनुसार कम या अधिक, तीन-चारसे लेकर, सैंकड़ोंतक, लोग इकट्ठे किये; कभी-कभी उनके समुदाय होते थे और वे कहते थे : "हम यह रहे, अगर सभी उस तरह करें जैसे हम करते हैं, तो, दुनिया बदल जायगी।" दुर्भाग्यवश वह प्रकाशकी एक चिनगारी मात्र थी, और उनकी रचना शुद्ध रूपसे मानसिक थी और जीवनके सामान्य नियमोंसे मुक्त न थी। तो इन समुदायोंके लोग, जो संसारमें सामंजस्य, सुन्दरता, प्रसन्नता, आनन्द, शांति, आदि, का प्रचार करनेवाले थे, वे आपसमें ही झगड़ पड़े। इस चीजने उनकी शिक्षासे

सारी शक्ति हर ली। तो बात ऐसी है, और वस्तुतः सत्य है।

केवल तभी जब कोई पूरी तरह नयी और पूर्णतः श्रेष्ठ चीज धरतीके वातावरणमें आती है और एक प्रकारके आध्यात्मिक दबावद्वारा उसे बदलती है, केवल उस क्षण ही मानव चेतना इतनी काफी बदलेगी कि परिस्थितियां भी बदलें।

जहांतक मेरा सवाल है, मुझे इस विषयमें कोई भ्रम नहीं है, क्योंकि मैं जानती हूं कि श्रीअरविंदने वस्तुओंका सत्य देखा था और अतः, अगर मानवजाति केवल वस्तुओंके सत्यके दर्शनसे ही बदलनेको तैयार होती, तो कम-से-कम वे सब जिनका इस सत्यके साथ संपर्क है रूपांतरित हो जाते। लेकिन, वे हुए नहीं।

तुम्हारे अंदर, व्यक्तिगत और सामूहिक रूपसे, जो दोष हैं तुम उन सबको जानते हो, और तुम जानते हो कि सद्भावनाके बावजूद, जो बिलकुल स्पष्ट है, अभी बहुत कुछ करना बाकी है ताकि संसार वैसा हो जाय जिसकी कल्पना मनुष्य सामान्य धारणाओंसे निकलकर करता है — बस, हम उसे सामंजस्य, शांति, समझ, उदारता, सद्भावना, निःस्वार्थता, किसी उच्चतर आदर्शके प्रति निष्काम निवेदन, आत्म-विस्मृति . . . आदि-का संसार कह सकते हैं। तुम ऐसी और अधिक चीजें चाहते हो, इन-के सिवा और भी बहुत-सी हैं। तुम्हें आरंभमें जरा-सी चीजसे शुरू करना चाहिये, बस, इतनी ही : जरा-से महत्तर विचार, जरा ज्यादा विशाल समझदारी हों, मतवाद नहीं हों।

यथार्थवादी और अतियथार्थवादी कलाकार जो इतने घटिया होते हैं, उनका मार्ग-दर्शन किस प्रकारकी बुद्धि करती है?

किस प्रकारकी बुद्धि! लेकिन तुम यह क्यों मान लेते हो कि वह बुद्धि है? वे जो कुछ करते हैं उसकी व्याख्याको ही तुम बुद्धि मान लो तो और बात है! अन्यथा तुम यह मानते ही क्यों हो कि वह बुद्धि है?

जी नहीं, क्योंकि श्रीअरविंद इस अनुच्छेदमें कहते हैं कि इस स्थलपर बुद्धि पथ-प्रदर्शन करती है।

लेकिन शायद वह पथ-प्रदर्शन नहीं करती इसलिये वे (कलाकार) जो करते हैं और जैसा करते हैं करते रहते हैं, है न ऐसा ही?

लेकिन यह कैसी बात है कि चित्रकला इतनी ऊंची उठनेके बाद इतनी भद्दी और बचकानी हो गयी है?

लेकिन क्या तुमने कभी देखा है कि मानव आरोहण इस तरह होता हो, यूं, बिलकुल सीधी चढ़ाई, रज्जुरेलकी तरह? वह सारे समय मुड़ता रहता है। इसलिये अगर तुम यह मान लो कि सीधी रेखाएं एक प्रकारकी मान प्रगतिकी रेखाएं हैं, तो जब चीजें वहां पहुंचती हैं, तो प्रगति करती हैं, लेकिन जब वे दूर चली जाती हैं तो उनका ह्रास होता है।

शायद मैं दस वर्षमें तुमसे कह सकूंगी ... पता नहीं, मैं दस सालमें तुम्हें बताऊंगी कि आधुनिक चित्रकलामें कुछ है या नहीं। क्योंकि मैं तुम्हें कुछ विचित्र बात बताती हूं: अभी तो मैं उसे पूर्णतया कुरूप पाती हूं, केवल कुरूप ही नहीं बल्कि मूर्खतापूर्ण; पर जो चीज भयानक है वह यह है कि यह तुम्हें अन्य सभी चित्रोंसे एकदम उबा देती है। जब तुम उन चित्रोंको देखो जो आज बनाये जाते हैं ... हमारे पास हमेशा ऐसी कलाकी पत्रिकाएं रहती हैं जिनमें, बड़ी बुद्धिमत्तासे, प्राचीन और अर्वाचीन चित्रोंकी प्रतिकृतियां दी जाती हैं, और वे साथ-साथ दी जाती हैं, जिससे चीज बड़ी मजेदार बन जाती है, तुम दोनोंको देखकर तुलना कर सकते हो। मैं स्वीकार करती हूं कि आधुनिक कलाकार जो करते हैं उसमें मैं अभीतक सौंदर्यकी कोई स्पष्ट धारणा नहीं देख पायी, मैं अभीतक नहीं समझ पायी; लेकिन विचित्र बात यह है कि वे सभी पुरानी चीजोंसे मेरी रुचिको हटानेमें सफल हो गयी हैं; कुछ विरल चीजोंको छोड़कर, अन्य वस्तुएं मुझे आडंबरपूर्ण, कृत्रिम, हास्यास्पद, असह्य प्रतीत होती हैं।

इसका मतलब है कि इस सारे अंड-बंड और अव्यवस्थाके पीछे निश्चय ही कोई ऐसा सर्जक भाव है, होना चाहिये जो अभिव्यक्त होनेकी कोशिश कर रहा है।

हम एक जगत्-विशेषसे पार हो चुके हैं जो अपनी पूर्णताको प्राप्त कर चुका था और ह्रासोन्मुख था, यह बिलकुल स्पष्ट है। तो उस सर्जनसे एक नये सर्जनकी ओर जानेके लिये (क्योंकि ... हां, मान लो सामान्य 'प्रकृति' की शक्ति काम कर रही है), एक लगातार आरोहणद्वारा जानेकी जगह, स्पष्ट रूपसे अव्यवस्थामें पतन हो गया, यानी, नव सर्जनके लिये अव्यवस्था जरूरी है।

'प्रकृति' के तरीके ऐसे होते हैं। हमारे सौर मंडलके अस्तित्वसे पहले अव्यवस्था थी। हां तो, मुझे लगता है कि एक तरहसे शिखरतक पहुंचे हुए इस कलात्मक सर्जनसे नव सर्जनकी ओर जानेसे पहले मुझे अब भी

वही चीज दिखायी देती है, स्पष्ट रूपसे अव्यवस्था। और इन चीजों-को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि ये सच्ची और निष्कपट नहीं हैं, और यही कष्टकर है। इनमें सचाई नहीं है: या तो किसीने जितना संभव हो उतना पागल बनकर अपना मनोरंजन किया है, या शायद कोई ऐसा व्यक्ति है जो दूसरोंको या अपने-आपको भी छलना चाहता था, या फिर, एक प्रकारकी असंगत सनक जिसमें व्यक्ति एक जगह रंगका धब्बा डालता है और तुरंत कहता है: "इसे यहां डालना मनोरंजक होगा, और अगर इधर डालें यूं, और फिर अगर उस तरफ डालें, और फिर..." अभी तो इसे देखकर मेरे ऊपर यही छाप पड़ती है, और मुझे नहीं लगता कि यह कला सच्ची और निष्कपट है।

लेकिन एक सच्ची सर्जन-शक्ति पीछे है, जो अभिव्यक्त होनेकी कोशिश कर रही है, जो, अभीके लिये, अभिव्यक्त तो नहीं होती, पर इतनी सशक्त अवश्य है कि अतीतको नष्ट कर दे। यानी, एक समय था जब मैं रैम्ब्रां, टिश्यन या टिनटोरेटोके चित्रों, रनुआर और मोनेके चित्रोंको देख बड़े कलात्मक आनन्दका अनुभव करती थी। उस कलात्मक आनंद-का अब मुझे अनुभव नहीं होता। मैंने प्रगति की है क्योंकि मैं समस्त पार्थिव विकासकी गतिविधिका अनुसरण करती हूं; इसलिये, मुझे इस चक्रको पार करना पड़ा, मैं और एक चक्रपर आ पहुंची हूं; और मुझे लगता है कि यह कलात्मक आनन्दसे शून्य है। तर्क-बुद्धिकी दृष्टिसे इस-का प्रतिवाद किया जा सकता है, जितनी सुन्दर और अच्छी चीजें की गयी हैं उनकी गिनती की जा सकती है, यह और ही बात है। लेकिन वह सूक्ष्म 'कुछ' जो यथार्थ रूपमें कलात्मक आनन्द है, वह चला गया, अब मुझे उसका अनुभव नहीं होता। आजकल जो चीजें की जा रही हैं उन्हें देखकर तो लगता है कि मैं उससे निश्चय ही सौ मील दूर हूं। फिर भी वह ऐसी चीज है जो इसके पीछे है जिसने पुरानेको गायब कर दिया है। तो शायद भविष्यकी ओर जरा-सा प्रयास करनेसे हम नवीन सौंदर्यका सूत्र पा लें। वह मजेदार होगा। अभी हालमें ही मुझे ऐसा लगा; यह पुरानी छाप नहीं है। मैंने पूर्ण सद्भावनाके साथ सब प्रकार की पसंदों, पूर्वनिर्धारित विचारों, आदतों, पूर्व-अभिरुचियों, वह सब छोड़-कर कोशिश की है; उस सबको निकालकर, मैं उनके चित्रोंको देखती हूं लेकिन मैं उनमें आनन्द पानेमें सफल नहीं होती; उनसे मुझे कोई आनन्द नहीं मिलता, कभी-कभी विरक्ति होती है, लेकिन सबसे बढ़कर यही छाप रहती है कि कोई ऐसी चीज है जो सच्ची नहीं है, असत्यता और कपटकी कष्टप्रद छाप।

लेकिन फिर अभी हालमें, मुझे अचानक ऐसा लगा, किसी बहुत नयी चीजका संवेदन, किसी ऐसे भविष्यका जो आगे बढ़ता, बढ़ता, बढ़ता चला जाता है, जो अभिव्यक्त होनेकी कोशिश करता है, अपने-आपको प्रकट करनेकी कोशिश करता है पर सफल नहीं हो रहा, लेकिन कोई ऐसी चीज जो अभीतक जो कुछ अनुभव या अभिव्यक्त किया गया है उन सबसे बढ़कर एक जबरदस्त प्रगति होगी; और फिर, साथ ही चेतनाकी वह क्रिया जन्मी है जो इस नयी चीजकी ओर मुड़ती है और उसे ग्रहण करनेकी कोशिश करती है। शायद यह मजेदार हो। इसीलिये मैंने तुमसे दस साल कहे। शायद दस सालोंमें ऐसे लोग हों जिन्होंने किसी नयी अभिव्यक्तिको खोज लिया हो। बड़ी प्रगतिकी आवश्यकता होगी, तकनीकीमें महान् प्रगतिकी आवश्यकता होगी; पुरानी तकनीकी गंवारु लगती है। और अब तो नयी वैज्ञानिक खोजोंके द्वारा शायद तकनीकीके कार्य-संपादन में परिवर्तन आ जाय और व्यक्ति ऐसी तकनीकीको ढूंढ सकेगा जो फिर इस नये सौंदर्यको अभिव्यक्त कर सके जो अवतरित होना चाहता है। हम इसके बारेमें दस सालके बाद बात करेंगे।

फिर मिलेंगे !

८ जून, १९५५

माताजी श्रीअरविंदकी पुस्तक 'योग-प्रदीप' ("लाइट्स आन योग") मेंसे 'लक्ष्य' पढ़ती हैं।

हां तो ! हम तात्कालिक, बिना तैयारीके प्रश्न सुनेंगे, तैयार किये हुए नहीं। (एक बालकसे) तुम्हें कुछ कहना है ?

मधुर मां, यहां लिखा है : "इस मुक्ति, पूर्णता, समग्रताकी खोज भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान्के लिये होनी चाहिये।" लेकिन क्या हम अपने लिये साधना नहीं करते ?

वे ठीक इसी चीजपर जोर दे रहे हैं। यह सिर्फ इसी बातपर जोर देने-

के लिये है। इसका मतलब है कि वह समस्त पूर्णता जिसे हम प्राप्त करनेवाले हैं यह व्यक्तिगत या स्वार्थपूर्ण उद्देश्यके लिये नहीं है, यह भगवान्को अभिव्यक्त करनेके लिये, उनकी सेवामें निवेदित की जाती है। हम इस विकासकी खोज व्यक्तिगत पूर्णताके स्वार्थपूर्ण इरादेसे नहीं करते; हम यह खोज इसलिये करते हैं क्योंकि भगवान्का काम पूरा करना है।

लेकिन हम यह भागवत 'कार्य' करते ही क्यों हैं? अपने-आप को . . .

नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं! हम इसलिये करते हैं क्योंकि यह भगवान्की 'इच्छा' है। यह व्यक्तिगत कारणसे हर्गिज नहीं है, ऐसा नहीं होना चाहिये। यह इसलिये करते हैं क्योंकि यह भगवान्की 'इच्छा' है और यह भगवान्का 'कार्य' है।

जबतक निजी अभीप्सा या कामना, एक स्वार्थपूर्ण इच्छा उसमें मिलती रहें वह हमेशा एक मिश्रण पैदा करती हैं और यथार्थ रूपमें भागवत 'इच्छा' की अभिव्यक्ति नहीं होतीं। गिनती बस एक ही चीजकी होनी चाहिये, वह है भगवान्, 'उनकी' 'इच्छा', 'उनकी' अभिव्यक्ति, 'उनकी' अभिव्यंजना। हम यहांपर उसीके लिये हैं, हम वही हैं, और कुछ भी नहीं। और जबतक स्वकी, अहंकी, व्यक्तिकी भावना आती रहे, हां तो, यह इस बातका प्रमाण है कि तुम अभीतक वह नहीं हो जो तुम्हें होना चाहिये, बस। मैं यह नहीं कहती कि यह रातोंरात हो सकता है लेकिन वस्तुतः सत्य यही है।

यह है क्योंकि इस क्षेत्रमें, आध्यात्मिक क्षेत्रमें, बहुत अधिक लोग ऐसे होते हैं (मैं कह सकती हूं कि बहुसंख्यक लोग हैं) जो आध्यात्मिक जीवन-को अपनाते और योग करते हैं), इनमेंसे बहुत अधिक लोग निजी कारणों-से अपनाते हैं, सब तरहके व्यक्तिगत कारणोंसे अपनाते हैं: कुछ इसलिये कि वे जीवनसे उकता गये हैं, कुछ इसलिये कि वे दुःखी हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो ज्यादा जानना चाहते हैं, कुछ इसलिये कि वे आध्यात्मिक दृष्टिसे महान् बनना चाहते हैं, कुछ इसलिये कि वे ऐसी चीजें सीखना चाहते हैं जिन्हें वे दूसरोंको सिखा सकें; वस्तुतः योग-साधना करनेके लिये हजारों व्यक्तिगत कारण होते हैं। लेकिन अपनी सारी पवित्रता और निरंतरतामें यह सरल-सा तथ्य कि तुम अपने-आपको भगवान्को दे दो ताकि भगवान् तुम्हें लेकर अपनी इच्छाके अनुसार गढ़ सकें; हां तो, इसके करनेवाले बहुत नहीं हैं पर फिर भी वास्तविक सत्य यही है; और

इसके साथ तुम सीधे लक्ष्यकी ओर जाते हो और कभी भूल करनेका भय नहीं रहता। अन्य सभी हेतु हमेशा मिश्रित होते हैं, अहंसे दूषित होते हैं; और स्वभावतः वे तुम्हें लक्ष्यसे बहुत दूर, इधर-उधर ले जाते हैं।

पर इस प्रकारकी अनुभूति कि तुम्हारे जीवनका बस, एकमात्र हेतु, एकमात्र लक्ष्य, एकमात्र अभिप्राय है भगवान्‌के प्रति पूरा-पूरा, संपूर्ण, समग्र, इस हदतक समर्पण कि तुम अपने-आपको उनसे अलग न जान सको, पूरी तरहसे, संपूर्ण भावसे, समग्र रूपसे, सर्वभावेन वही बन जाओ, किसी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाके हस्तक्षेपके बिना वही बन जाओ — यही आदर्श मनोवृत्ति है; और इसके अतिरिक्त, यही एक चीज है जो तुम्हारे लिये जीवन और कार्यमें आगे बढ़ना संभव बनाती है। तब तुम हर चीजसे सुरक्षित होगे और अपने-आपसे सुरक्षित होगे — यह "अपने-आप" ही तुम्हारे लिये सबसे बड़ा संकट है — अपने-आपसे बढ़कर और कोई संकट नहीं है (यहां "अपने-आप" से मेरा मतलब अहंकारमय स्वसे है)।

वहां श्रीअरविंदका यही मतलब था, और कुछ नहीं।

अच्छा, अब किसीको कोई प्रश्न मिला है?

तुम्हें पुस्तकके शब्दोंमें नहीं, मैंने जो पढ़कर सुनाया उसपर अपनी प्रतिक्रियामें प्रश्न ढूंढना चाहिये। अगर तुमने सुना है, तो तुमपर कुछ प्रभाव हुआ होगा, तुम्हारे अंदर प्रतिक्रियाएं हुई होंगी : यही है, यही हैं वे प्रतिक्रियाएं जिन्हें तुम्हें अपने अंदर स्पष्ट करना चाहिये और अगर तुम मुझसे एक दिन कह सको : "अरे! मुझे ऐसा लगा था, इसका क्या मतलब है? इस संवेदनका क्या अर्थ है? मैंने ऐसा क्यों सोचा?" तो ये निश्चय ही प्रश्न हैं! क्योंकि तब यह तुम्हारी चेतनाके अन्दर किसी चीजको स्पष्ट करनेका अवसर होगा। जब मैं पढ़ती हूं तो निश्चय ही तुम्हारे अन्दर कहीं कोई प्रतिक्रिया होती होगी, चाहे वह तुम्हारे सिरमें ही क्यों न हो। हां तो, तुम्हें इस चीजकी ओर ध्यान देना चाहिये और पूछना चाहिये : "जब मैंने वह वाक्य सुना, तो अचानक मुझे ऐसा क्यों लगा? जब वह कहा गया, तो मैंने इसके बारेमें क्यों सोचा?" ये मजेदार प्रश्न होंगे।

माताजी, अभी आपने कहा कि हमें सब कुछ भगवान्‌के लिये करना चाहिये।

हां।

लेकिन भगवान् इस अव्यवस्थाके बीच धरतीपर अपने-आपको

क्यों अभिव्यक्त करना चाहते हैं?

क्योंकि उन्होंने धरतीको किसी और हेतुसे नहीं, इसी उद्देश्यसे बनाया है; धरती स्वयं भगवान् ही है लेकिन है विकृत रूपमें और वे उसे फिरसे उसके सत्यमें स्थापित करना चाहते हैं। धरती 'उनसे' पृथक् और पराई वस्तु नहीं है। यह भगवान्का ही एक विकार है जिसे फिरसे वही बन जाना चाहिये जो वह सार तत्त्वमें था, यानी, भगवान् बन जाना है।

तो फिर वे हमारे लिये अजनबी क्यों हैं?

लेकिन, मेरे बच्चे, वे अजनबी नहीं हैं। तुम कल्पना करते हो कि वे अजनबी हैं, लेकिन वे अजनबी नहीं हैं, बिलकुल नहीं। वे तुम्हारी सत्ताके सार तत्त्व हैं—पराये बिलकुल नहीं हैं। तुम उन्हें भले न जानते हो, पर वे अजनबी नहीं हैं; वे तुम्हारी सत्ताका सार तत्त्व हैं। भगवान्के बिना तुम्हारा अस्तित्व ही न होगा। भगवान्के बिना तुम एक सेकेंडके दस लाखवें हिस्सेके लिये भी न रह सकोगे। केवल, चूंकि तुम एक मिथ्या भ्रांतिमें और विकृतिमें रहते हो, इसलिये, तुम सचेतन नहीं हो। तुम अपने बारेमें सचेतन नहीं हो, तुम किसी ऐसी चीजके बारेमें सचेतन हो जिसे तुम अपना स्व समझते हो, लेकिन वह तुम नहीं हो।

तब मैं क्या हूं, मधुर मां?

भगवान्!

मधुर मां, जब आप अपने पढ़नेपर मेरी प्रतिक्रियाके बारेमें पूछती हैं, तो व्यक्तिगत रूपसे मुझे तो लगता है कि मैं जो कुछ करती हूं वह हास्यास्पद होता है! ऊपरसे नीचेतक हर चीजकी पुनर्व्यवस्था करनी होगी।

मैं तुम्हारे वाक्यका अंतिम हिस्सा नहीं पकड़ पायी।

(पवित्र): हर चीजकी पुनर्व्यवस्था करनी होगी।

हां। क्यों?

(पवित्र) : हर चीज हास्यास्पद है। "मैं जो कुछ करती हूं वह हास्यास्पद है।"

हास्यास्पद! ओ हो! तभी मैं नहीं समझ पायी। हास्यास्पद, हां; लेकिन किसी विशेष दृष्टिकोणसे यह सत्य है; हर आदमी जो कुछ करता है, वह किसी दृष्टि-बिंदुसे, हास्यास्पद है।

बहुत अधिक अपव्यय है। मैं आपसे जो कुछ पाती हूं वह सारे समय खोती जाती हूं। देखनेमें सब कुछ ठीक-ठीक है, और यह जारी रहता है, यह अनंत कालतक चल सकता है। लेकिन अगर इसे बदलना हो तो, तुरंत, एक क्रांति हो जायगी, और इसीलिये हम यह खतरा नहीं मोल लेना चाहते। यह कपट है : हर चीज ठीक-ठीक है, परंतु वह सत्य नहीं है, इसमें चेतनाकी बहुत बड़ी क्षति होती है।

क्या इसे एकदम बदल देना संभव है, इस चेतनाको बदलना?

बदलना? . . .

(पवित्र) : इसे बदलना, इस चेतनाको एकदम बदलना?

तुरंत?

(पवित्र) : कुछ मिनटोंमें। ऐसा लगता है कि इसे बदलना क्रांति होगी।

हां, लेकिन क्रांति एक क्षणमें भी हो सकती है; उसमें अनेक वर्ष लग सकते हैं, शताब्दियां भी, और कई जीवन भी लग सकते हैं। यह एक क्षणमें की जा सकती है।

ऐसा किया जा सकता है। यथार्थतः, जब तुम्हारे अन्दर चेतनाका यह आंतरिक उलटाव होता है, तो एक सेकेंडमें सब कुछ, सब कुछ बदल जाता है . . . यथार्थतः यह सोचकर आदमी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है कि वह जो कुछ है, जिसे वह अपना स्व समझता है वह सत्य नहीं है और उसकी सत्ताका जो सत्य है, वह ऐसी चीज है जिसे वह नहीं जानता। यह, है न, सामान्य प्रतिक्रिया होनी चाहिये थी, जो इसके अन्दर हुई, यह

कहनेकी प्रतिक्रिया : "तब फिर मेरा स्व क्या है? अगर जिसे मैं स्व मानती हूं वह एक भ्रांत रचना है और मेरी सत्ताका सत्य नहीं है, तो फिर मैं क्या हूं?" क्यों उसे वह नहीं जानती। तो जब तुम इस तरहका प्रश्न करो कि...

एक ऐसा क्षण होता है—क्योंकि यह एक ऐसा प्रश्न है जो अधिक-से-अधिक प्रखर, अधिक-से-अधिक तीव्र होता जाता है—जब तुम्हें ऐसा भी लगता है, यथार्थ रूपमें ऐसा लगता है कि चीजें विचित्र हैं, यानी, वे वास्तविक नहीं हैं; एक क्षण आता है जब तुम्हारे अंदर अपने बारेमें जो संवेदन है, कि तुम तुम हो, यह अजीब हो जाता है, एक प्रकारकी अवास्तविकताका संवेदन हो जाता है। और यह प्रश्न उठता ही रहता है: "तो फिर मैं क्या हू?" हां, तो एक ऐसा मुहूर्त होता है जब यह प्रश्न इतनी एकाग्रता और इतनी तीव्रतासे आता है कि इस एकाग्रताकी तीव्रतासे अचानक उलटाव हो जाता है, और तब, इस ओर होनेकी जगह, तुम उस ओर होते हो, और जब तुम उस ओर हो तो सब कुछ बहुत आसान हो जाता है; तुम समझते हो, तुम जानते हो, तुम होते हो, तुम जीते हो, और तब तुम स्पष्ट रूपसे बाकी सबकी अवास्तविकता देखते हो, और इतना पर्याप्त है।

इस क्षणके आनेके लिये तुम्हें दिनों, महीनों, वर्षों, शताब्दियों, जीवनोंतक प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। लेकिन अगर तुम अपनी अभीप्सा-को तीव्र करो, तो ऐसा क्षण होता है जब दबाव इतना बढ़ जाता है, प्रश्नकी तीव्रता इतनी प्रबल हो उठती है कि चेतनाके अंदर कुछ चीज उलट जाती है, और तब आदमी ठीक ऐसा अनुभव करता है: यहां होनेकी जगह, तुम वहां हो, बाहरसे देखने और अंदर देखनेकी कोशिश करनेकी जगह, तुम अंदर होते हो; और जिस क्षण तुम अंदर हो, उसी क्षण सब कुछ बदल जाता है, पूरी तरहसे बदल जाता है, और तुम्हें जो कुछ सत्य, स्वाभाविक, सामान्य, वास्तविक, सुनिश्चित, वह सब, प्रतीत होता था, वह तुरंत—हां, बहुत भद्दा, बहुत अजीब, बहुत अवास्तविक, बिलकुल बेतुका लगता है; लेकिन तुमने किसी ऐसी चीजको छू लिया है जो परम सत्य और शाश्वत सुंदर है, और इसे तुम फिर कभी नहीं खोते।

एक बार यह उलटाव हो जाय, तो तुम बाह्य चेतनामें रह सकते हो, जीवनकी वस्तुओंके साथ सामान्य संपर्क रख सकते हो, फिर भी वह चीज बनी रहती है और कभी नहीं हिलती। तुम, औरोंके साथ व्यवहारमें, थोड़ा-बहुत उनके अज्ञान और उनके अंधेपनमें गिर सकते हो, लेकिन हमेशा अंदर जीती-जागती चीज खड़ी रहती है जो अब हिलती तक नहीं जबतक

कि वह हर चीजमें प्रवेश नहीं पा लेती, यहां तक कि वह अज्ञान समाप्त न हो जाय और अंधापन हमेशाके लिये गायब न हो जाय। और यह पूरी तरह ठोस अनुभूति है जो अधिक-से-अधिक ठोस चीजोंसे ज्यादा ठोस है, तुम्हारे सिरपर पड़नेवाले आघातसे भी ज्यादा ठोस, अन्य किसी भी चीजसे ज्यादा ठोस।

इसीलिये मैं हमेशा कहती हूं . . . जब लोग मुझसे पूछते है कि हम यह कैसे जान सकते हैं कि हम अपने चैत्य पुरुषके संपर्कमें हैं या नहीं या हम यह कैसे जानें कि हमने भगवान्‌को पा लिया है या नहीं, तो, मुझे हंसी आती है; क्योंकि जब तुम्हें यह अनुभव हो तो बस, उसके बाद तुम कोई प्रश्न नहीं पूछ सकते, यह हो जाता है; तुम यह नहीं पूछते कि यह कैसे होता है, बस हो जाता है।

मैं इस विषयपर पूछना चाहता हूं: सामान्य चेतनामें वापिस जा गिरना, व्यक्तिगत रूपसे, यह चीज मेरे अन्दर ज्यादा-ज्यादा दुराग्रही होती जा रही है; मैं यह अनुभव करता हूं।

यह शुद्ध रूपसे व्यक्तिगत प्रश्न है।

लेकिन ऐसा क्यों होता है, जब कि मैं जानता हूं कि यह वाहियात है?

मेरा ख्याल है कि यह इसलिये है कि तुमने अपनी सत्तामें विभाजन रखा है, यानी, तुम्हारी सत्तामें एक भाग है जिसने बाकीके साथ जानेसे इंकार किया है। साधारणतः ऐसा ही होता है। एक भाग है जिसने प्रगति कर ली है, एक भाग है जो डटा हुआ है और हिलना भी नहीं चाहता; इसलिये तुम इसे अधिकाधिक इस रूपमें अनुभव करते हो कि कोई चीज है जो जैसी है वैसी ही बनी रहनेके लिये हठ करती है। इसका कारण यह है कि तुमने अपना कुछ असबाब रास्तेपर ही गिरा दिया है और उसे अपने साथ ले जानेकी जगह, सड़कके किनारे ही छोड़ दिया है। वह तुम्हें हमेशा पीछे खींचेगा। कभी-कभी, दुर्भाग्यवश, तुम्हें पीछे मुड़ना पड़ता है, जाकर उसे उठा लाना पड़ता है; इस तरह तुम बहुत समय खोते हो तुम अपना समय, वास्तवमें, इसी तरह खोते हो। यह इसलिये है कि तुम अपनी सत्ताके अन्दरकी बहुत-सी चीजोंकी ओरसे आंखें बन्द कर लेते हो। तुम उन्हें देखना नहीं चाहते, क्योंकि वे देखनेमें सुन्दर नहीं हैं।

इसलिये तुम उन्हें न जानना ज्यादा पसंद करते हो। लेकिन क्योंकि तुम किसी चीजके बारेमें नहीं जानते इसका यह मतलब नहीं है कि उसका अस्तित्व ही नहीं रहा। तुम यह करते हो: तुम सब चीज रास्तेपर छोड़ देते हो और आगे बढ़नेकी कोशिश करते हो, लेकिन वह धागोंसे बंधी है, वह तुम्हें चक्कीके पाटकी तरह पीछेको खींचती है, और इसलिये तुम्हें साहसके साथ उसे उठाकर इस तरह पकड़ना चाहिये (संकेत) और उससे कहना चाहिये: "अब तुम मेरे साथ चलोगे!" शुतुरमुर्गकी तरह सिर छिपानेसे कोई लाभ नहीं। है न, तुम आंखें मूंद लेते हो और यह नहीं देखना चाहते कि तुम्हारे अंदर यह दोष या वह कठिनाई, या वह अज्ञान और मूर्खता है, तुम देखना नहीं चाहते, नहीं चाहते, दूसरी ओर देखते हो, लेकिन फिर भी वह चीज तो बनी ही रहती है।

एक दिन तुम्हें चीजका सामना करना पड़ता है, करना ही पड़ता है। अन्यथा तुम कभी लक्ष्यतक नहीं पहुंच सकते, वह चीज तुम्हें हमेशा पीछे खींचती रहेगी। तुम्हें अनुभव हो सकता है कि तुम आगे हो, तुम लक्ष्यको नजदीक आते देख सकते हो, अधिकाधिक देख सकते हो, तुम्हें कोई ऐसी चीज मिल सकती है जो आगे जाती है, ऐसा लग सकता है कि बस अब तुम उसे छूने-छूनेको हो, लेकिन अगर ये चक्कीके पाट तुम्हें पीछे खींचते रहें तो तुम उसे कभी न छू पाओगे। एक दिन तुम्हें हर चीजको बुहार देना होगा। कभी-कभी इसमें बहुत समय लगता है पर तुम्हें अपनी सभी नौकाएं जला देनी होंगी, घर फूंककर आगे बढ़ना होगा; अन्यथा तुम गोल-गोल चक्कर लगाओगे, जीवनके अन्ततक जरा-जरा-सी प्रगति करोगे, और फिर, जब चलनेका समय आ जायगा तो अचानक लगेगा: "अरे, लेकिन... अच्छा, शायद यह अगले जन्मके लिये होगा।" यह सुखद नहीं है, यह तो भयावह होना चाहिये; क्योंकि अगर तुमने कुछ नहीं जाना, कुछ नहीं समझा, अगर तुमने कभी प्रयास नहीं किया हो...। लोग पैदा होते हैं, जीते हैं, मर जाते हैं, फिरसे जन्म लेते, और जीते और फिरसे मर जाते हैं, और यह चलता रहता है, अनन्तकालतक चलता रहता है, वे कभी समस्याको अपने सामने नहीं रखते। लेकिन एक बार रस मिल जाय, जीवन क्या है इसका स्वाद मिल जाय, और यह पता लग जाय कि व्यक्ति यहां क्यों है, और उसे यहां क्या करना है, और फिर उसके अतिरिक्त उसने कुछ प्रयास किया हो और उपलब्धिके लिये प्रयत्न किया हो, अगर वह उस तमाम असबाबसे पिंड नहीं छुड़ाता जो उसका साथ नहीं दे रहा, तो यह जरूरी होगा कि वह एक बार फिरसे शुरू करे। ऐसा न हो तो अच्छा। अपना काम तभी

करना ज्यादा अच्छा है जब तुम उसे सचेतन रूपसे कर सको, और "काल करे सो आज कर" का वास्तवमें यही मतलब है। इस "आज" का मतलब है इस जीवनमें, क्योंकि यहां अवसर है, सुयोग है; और शायद ऐसा अवसर फिर एक बार पानेके लिये तुम्हें हजारों वर्ष प्रतीक्षा करनी होगी। ज्यादा अच्छा है कि अपना काम किसी भी कीमतपर करो; लो! ...यथासंभव कम-से-कम समय नष्ट करते हुए करो।

हर बार जब तुम अपना सामना करनेसे डरते हो और अपने-आपसे सावधानीके साथ छिपते हो, यह ऐसी चीज है जो तुम्हें आगे बढ़नेसे रोकती है, हां तो, मानों तुम अपने रास्तेमें एक दीवार खड़ी कर रहे हो; बादमें आगे बढ़नेके लिये तुम्हें इसे ढाना होगा। ज्यादा अच्छा यही है कि अपना काम तुरंत करो, अपने-आपको सीधा देखो, **सीधा अपनी आंखोंमें देखो**, कड़वी गोलीपर चाशनी चढ़ानेकी कोशिश न करो। वह बहुत कड़वी है: समस्त दुर्बलताएं, कुरूपताएं, सब प्रकारकी छोटी-छोटी घिनौनी चीजें जो तुम्हारे अन्दर हैं — ओह, ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, बहुत-सी हैं, बहुत-सी हैं। तो तुम कोई सिद्धि पानेके बिंदुपर होते हो, एक प्रकाश-को छूनेवाले, एक ज्योतिको पानेवाले ही होते हो कि अचानक तुम्हें ऐसा अनुभव होता है कि कोई चीज तुम्हें इस तरह (संकेत) पीछेकी ओर खींच रही है, और तुम्हारा दम घुटने लगता है, तुम और आगे नहीं बढ़ सकते। हां तो, ऐसे क्षणोंमें कुछ लोग रोते हैं, कुछ विलाप करते हैं, कुछ कहते हैं: "ओह, बेचारा मैं, यह फिरसे आ गया!" यह सब हास्या-स्पद दुर्बलता है। तुम्हें बस अपनी ओर इस तरह देखना चाहिये और कहना चाहिये: "कौन-सी तुच्छ हीनता, क्षुद्र मूर्खता, क्षुद्र मिथ्याभिमान, अज्ञान, दुर्भावना अभीतक वहां कोनेमें छिपी हुई है जो मुझे देहली पार होनेसे रोकती है, इस नवीन आविष्कारकी देहली पार करनेसे रोकती है? मेरे अन्दर कौन है जो इतना क्षुद्र, इतना नीच और दुराग्रही है, फलमें कीड़े-की तरह छिपा है ताकि मैं उसे देख न पाऊं?" अगर तुम सच्चे हो तो तुम उसे पा लेते हो; लेकिन सबसे बढ़कर बात यह है, बिलकुल पक्की बात यह है: तुम गोलीपर चाशनी चढ़ा देते हो। यह चाशनी चढ़ाना एक ऐसी चीज है जिसे अपने-आपको मानसिक तौरपर समझना कहते हैं। इसलिये तुम वहां जो चीज है, फलके कीड़ेको छिपानेके लिये चाशनी-की मोटी तह चढ़ा देते हो; और तुम हमेशा ऐसा करते हो, हमेशा अपने-आपको कोई बहाना बता देते हो, हमेशा, हमेशा।

मुझे अपने-आपको भागवत प्रभावके सामने खोलनेसे जो चीज

रोकती है वह यह सुझाव है: "जल्दी क्या है, इतनी जल्दी क्यों, और लोग तो नहीं कर रहे?"

यह एक भयंकर घिसी-पिटी बात है!

जिन बहानोंकी कल्पना की जा सकती है उनमेंसे यह सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण है। नहीं, और भी बहाने हैं जो इससे बहुत अधिक सूक्ष्म और बहुत अधिक भयंकर हैं।

लेकिन अगर सारी सृष्टिमें तुम ही एकमात्र सत्ता हो जो अपने-आपको पूर्ण रूपसे भगवान्‌को पूरी तरह, शुद्ध रूपमें देना चाहे, और एकमात्र होनेके कारण, हर एक तुम्हें स्वभावतया ही गलत समझता है, ताने देता है, मजाक उड़ाता है, घृणा करता है, अगर ऐसा है भी, तो भी इसे न करनेका कोई कारण नहीं। या तो तुम बहुरूपिया हो या मूर्ख। क्योंकि दूसरे नहीं करते? लेकिन वे करते हैं या नहीं, इसका क्या मूल्य है?" भले सारा संसार इसके विपरीत करे, उसके साथ मेरा कोई संबन्ध नहीं। केवल एक ही चीज है जिसकी मुझे परवाह है, वह है सीधा चलते जाना। और लोग जो करते हैं, उससे मेरा क्या संबन्ध? यह उनका मामला है, मेरा नहीं।"

यह सबसे बुरी दासता है!

यहां कहा गया है: "जबतक तुम्हें चैत्यकी पुकार और अंततक जानेके लिये अपनी तैयारीका विश्वास न हो, तबतक तुम्हें इस मार्गपर पांव न रखना चाहिये। यह योगके अधिकतर मार्गोंसे अधिक विशाल और कठिन है।" तो क्या इसका यह मतलब है माताजी, कि जिन लोगोंको यहां स्वीकार कर लिया गया है और जो यहां आश्रममें हैं वे निश्चय ही पार हो जायेंगे और सफल होंगे?

क्षमा करना! लेकिन यहां... मैं ठीक अनुपात नहीं जानती, लेकिन निश्चय ही यहां रहनेवाले अधिकतर लोग योग नहीं कर रहे। वे यहां बहुत-से कारणोंसे आ पहुंचे हैं; लेकिन ऐसे लोग बहुत संख्यामें नहीं हैं, जिन्होंने, सचाईके साथ, योग करनेका निश्चय किया हो। और जैसा कि मैंने तुमसे कहा, तुम बच्चोंके लिये, तुममेंसे जो बचपनमें ही यहां आये थे, तुम्हें उस समय जरा-सा भी ख्याल कैसे हो सकता था कि योग क्या है, तुम योगके लिये आ ही कैसे सकते थे? यह असंभव है। तुम सबके

लिये जो बहुत छोटी अवस्थामें आये थे, एक उम्र होती है जब यह समस्या सिर उठाती है; तभी तुम्हें सोच-विचार करना चाहिये, और तब उस समय मैं उनसे पूछती हूं। अच्छा, क्या मैंने तुमसे बहुत बार इस विषय-में पूछा है? चूंकि मैं ये पाठ पढ़ा रही हूं, इसलिये मैं उसके बारेमें बोलती हूं, लेकिन यह बहुत ही विरल है कि मैंने तुमसे व्यक्तिगत रूप-से पूछा हो: "तुम योग करना चाहते हो या नहीं?" — केवल जिनके अन्दर, जिनमें एक तरहका आवेग हो, एक तरहकी सहज-वृत्ति हो, उन्हों-ने आकर मुझसे कहा है: "जी, मैं योग करना चाहता हूं।" तब बस खतम। मैं उनसे कहती हूं: "अच्छा, ये शर्तें हैं, चीज ऐसी है और पता है, यह कोई आसान चीज नहीं है। तुम्हें एक आंतरिक निश्चिति-से आरंभ करना चाहिये कि तुम यहां इसीके लिये हो और तुम यही चाहते हो; इतना काफी है।" तुम्हारे अन्दर बहुत सद्‌भावना हो सकती है, है न, जीवन दिव्य उपलब्धिकी ओर अभिमुख हो सकता है, किसी हालतमें, न्यूनाधिक रूपसे भागवत कार्यके प्रति ऊपरी समर्पण हो सकता है, फिर भी हो सकता है कि **तुम योग न कर रहे हो।**

श्रीअरविंदका योग करनेका अर्थ है अपने-आपको पूर्णतया रूपांतरित करनेकी चाह करना, उसका अर्थ है जीवनमें बस, एक ही लक्ष्यका होना, ऐसा कि फिर और किसी चीजका अस्तित्व ही न हो, केवल उसीका अस्तित्व हो। तो तुम स्पष्ट रूपसे अपने अंदर यह अनुभव कर सकते हो कि तुम योग करना चाहते हो या नहीं; लेकिन अगर तुम नहीं चाहते, तो भी तुम सद्‌भावनाका जीवन, सेवाका जीवन, सहानुभूतिका जीवन पा सकते हो; तुम 'कार्य' को ज्यादा आसानीसे सिद्ध करनेके लिये मेहनत कर सकते हो — यह सब — और भी बहुत-सी चीजें कर सकते हो। लेकिन इसमें और योग करनेमें बहुत अंतर है।

और योग करनेके लिये, तुम्हें उसे सचेतन रूपसे चाहना चाहिये, सब-से पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि वह क्या है। तुम्हें जानना चाहिये कि वह क्या है, उसके लिये दृढ़ निश्चय करना चाहिये; लेकिन एक बार दृढ़ निश्चय कर लो, तो फिर तुम्हें पीछे हटना न चाहिये। इसीलिये तुम्हें पूर्ण ज्ञानके साथ उसे अपनाना चाहिये। तुम जब कहो: "मैं योग करना चाहता हूं" तो तुम्हें पता होना चाहिये कि तुम किस चीजके लिये संकल्प कर रहे हो; और इसी कारण मुझे ख्याल नहीं कि मैंने कभी इस दृष्टिसे तुम्हारे ऊपर जोर डाला हो। मैं इसके बारेमें तुमसे कह सकती हूं। ओह! मैं इसके बारेमें बहुत कुछ कहती हूं; तुम यहां इसी लिये हो कि मैं तुमसे इस बारेमें कहूं; लेकिन व्यक्तिगत रूपसे मैं उन्हीं-

से कहती हूं जो यह कहते हुए आते हैं: "जी, बहरहाल योगके बारेमें मेरे अपने विचार हैं और मैं उसे करना चाहता हूं;" यह अच्छा है।

और तब उनके लिये यह कुछ भिन्न चीज होती है, और जीवनकी अवस्था भिन्न होती है, विशेष रूपसे आंतरिक। विशेष रूपसे अन्दर चीजें बदलती हैं।

वहां हमेशा एक चेतना निरंतर स्थितिका सुधार करनेके लिये काम करती रहती है, जो तुम्हें सारे समय ऐसी बाधाओंके सामने रखती है जो तुम्हें आगे बढ़नेसे रोकती है, तुम्हें अपनी ही भूलों और अपने ही अंधेपनसे टकराती हैं। और यह केवल उन्हीं लोगोंके लिये काम करती है जिन्होंने योग करनेका निश्चय किया है। औरोंके लिये 'चेतना' प्रकाशका, ज्ञानका, संरक्षणका, प्रगतिकी शक्तिका काम करती है, ताकि वे अपनी अधिक-से-अधिक क्षमतातक पहुंच सकें और जहांतक हो सके, यथासंभव अनुकूल वातावरणमें विकसित हो सकें, — लेकिन वह उन्हें अपने चुनावके लिये बिलकुल स्वतंत्र छोड़ देती है।

निश्चय अन्दरसे आना चाहिये। जो सचेतन रूपसे योगके लिये आते हैं, यह जानते हुए कि योग क्या है, हां, उनके यहां रहनेकी अवस्थासे . . . बाहरी तौरपर कोई अंतर नहीं होता लेकिन आंतरिक रूपमें बहुत बड़ा अन्तर होता है। उनकी चेतनामें एक प्रकारकी दृढ़ता होती है, जो उन्हें पथभ्रष्ट नहीं होने देती: तुम जो भूलें करते हो वे तुरंत इतने पर्याप्त परिणामोंके साथ दिखायी देती हैं कि तुम उनके बारेमें कोई गलती नहीं कर सकते, और चीजें बहुत गंभीर हो जाती हैं। लेकिन ऐसा बहुधा नहीं होता।

तुम सभी, मेरे बच्चो, मैं तुमसे यह कह सकती हूं, मैंने यह कई बार दोहराया है और एक बार फिर दोहरा रही हूं — तुम लोग एक असाधारण स्वतंत्रतामें जी रहे हो। बाहरी रूपमें छोटी-मोटी सीमाएं हैं, क्योंकि, तुम लोग काफी संख्यामें हो और सारी पृथ्वी तुम्हारे सुपुर्द नहीं की गयी है, इसलिये एक हदतक किसी अनुशासनका अधिकार मानना पड़ता है, ताकि बहुत अव्यवस्था न फैलने पाये; लेकिन आंतरिक रूपमें तुम लोग एक अनूठी स्वतंत्रतामें जी रहे हो : न सामाजिक बंधन, न नैतिक बंधन, न कोई बौद्धिक बंधन, कोई नियम नहीं, कुछ नहीं, केवल वहां एक रोशनीके सिवाय और कुछ नहीं। अगर तुम उससे लाभ उठाना चाहते हो तो तुम लाभ उठाते हो; अगर नहीं उठाना चाहते तो उसके लिये भी तुम स्वतंत्र हो।

लेकिन जिस दिन तुम चुनाव कर लो — जब तुमने वह (चुनाव) अपनी

पूरी सचाईके साथ किया हो, और अपने अंदर एक मौलिक संकल्पका अनुभव किया हो — तब बात अलग है। अनुसरण करनेके लिये तब एक बिलकुल सीधा पथ और एक रौशनी होती है, और उससे तुम्हें भटकना नहीं चाहिये। जानते हो, वह किसीको धोखा नहीं देता; योग कोई मजाक नहीं है। जब तुम चुनाव करो, तो तुम्हें मालूम होना चाहिये कि तुम क्या कर रहो हो। लेकिन एक बार चुन लो तो तुम्हें उसपर डटे रहना चाहिये। तब तुम्हें आगा-पीछा करनेका कोई अधिकार नहीं रहता। तुम्हें बिलकुल सीधे जाना चाहिये। लो!

मैं जिस चीजकी मांग कर रही हूं वह है भली-भांति करनेकी इच्छा, प्रगतिके लिये प्रयास और साधारण मनुष्योंसे कुछ अधिक अच्छे जीवनमें जीनेकी इच्छा। तुम बड़े हुए हो, तुम्हारा विकास असाधारण रूपसे प्रकाशमान, सचेतन, सामंजस्यपूर्ण और सद्भावनापूर्ण अवस्थाओंमें हुआ है; और इन अवस्थाओंके उत्तरमें तुम्हें जगत्में इसी प्रकाश, इसी सामंजस्य, इसी सद्भावनाकी अभिव्यक्ति बनना चाहिये। यह अपने-आपमें बहुत अच्छा होगा, बहुत अच्छा।

इस योगको, रूपांतरणके इस योगको, जो सभी चीजोंमें सबसे अधिक दुःसाध्य है, केवल तभी करो जब तुम यह अनुभव करो कि तुम यहां इसीलिये आये हो (यहांसे मेरा मतलब है पृथ्वीपर) और इसके सिवाय तुम्हारा कोई काम नहीं है, कि तुम्हारे अस्तित्वका यही एकमात्र कारण है — चाहे इसके लिये तुम्हें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़े, कष्ट उठाने पड़ें, संघर्ष करने पड़ें, उसका कोई महत्त्व नहीं — "मैं यही चाहता हूं, और कुछ नहीं" —तब और बात है। वरना मैं कहूंगी : "खुश रहो और नेक बनो, केवल इसीकी मैं तुमसे मांग करती हूं। नेक होनेका अर्थ समझदार होनेसे है, यह जानना कि जिन अवस्थाओंमें तुम पले वे असाधारण हैं, और साधारण जीवनसे अधिक ऊंचा, अधिक श्रेष्ठ, अधिक सच्चा जीवन जीनेकी कोशिश करो, ताकि इसके द्वारा इस चेतनाका, इस प्रकाशका और इसकी नेकीका कुछ हिस्सा धरतीपर अभिव्यक्त हो सके। यह बहुत अच्छा होगा।" लो।

लेकिन एक बार योग-मार्गपर कदम रख लिया, तो तुम्हारे अंदर इस्पातका संकल्प होना चाहिये और, किसी भी कीमतपर, तुम्हें सीधे लक्ष्यकी ओर बढ़ना चाहिये।

बस!

१५ जून, १९५५

माताजी 'योग प्रदीप' में से 'लक्ष्य' पढ़ती है।

मधुर मां, "सक्रिय सिद्धि" का क्या अर्थ है?

यह कर्ममें प्रकट होनेवाली सिद्धि है। अकर्ममें एक सिद्धि होती है, ऐसे लोगोंकी सिद्धि जो लोग ध्यानमें प्रवेश कर वहांसे नहीं निकलते, और हिलते-डुलते भी नहीं हैं; और एक सक्रिय सिद्धि भी होती है जो तुम्हारे सारे कर्म, तुम्हारी सभी गतिविधियों, तुम्हारे रहन-सहन, तुम्हारे चरित्र, सबको परिवर्तित कर देती है। पहली अवस्थामें तुम्हारी बाहरी सत्ता वह-की-वही रहती है, कुछ भी नहीं बदलता, और साधारणतः यह कर्मकी सभी संभावनाको नष्ट कर देती है, तुम कुछ भी नहीं कर सकते, तुम बैठे ही रहते हो...। दूसरी अवस्थामें, वह सब कुछ बदल डालती है, तुम्हारा चरित्र, तुम्हारा रहन-सहन, तुम्हारा कर्म करनेका तरीका, तुम्हारे सभी कर्म और यहांतक कि तुम्हारा परिवेश, और अंतमें तुम्हारा संपूर्ण अस्तित्व, तुम्हारी संपूर्ण सत्तातक परिवर्तित हो जाती है: यही सक्रिय सिद्धि होती है, जिसकी पराकाष्ठा है शरीरका रूपांतरण।

कई ऐसे लोग हैं जो अपनी प्रज्ञाको रूपांतरित करनेसे पहले ही अपने शरीरको रूपांतरित करनेकी कोशिश करते हैं, और इससे एक पूर्ण अव्यवस्था पैदा हो जाती है, वह उन्हें पूरी तरह असंतुलित बना देती है। पहले-पहल व्यक्तिको अपने विचार, अपने संपूर्ण मन, अपने सब मानसिक क्रिया-कलापोंको बदलना होगा, इसे उच्चतर ज्ञानके साथ व्यवस्थित करना होगा; और इसके साथ-ही-साथ अपने चरित्र, प्राणकी सभी क्रियाओं, सभी आवेगों, सभी प्रतिक्रियाओंको बदलना होगा। और अंतमें, जब ये दोनों चीजें हो जायें, बहरहाल किसी हदतक हो जायें, तो व्यक्ति अपने शरीरके कोषाणुओंका रूपांतर करनेके बारेमें सोचना शुरू कर सकता है, लेकिन अंतसे शुरू नहीं करना चाहिये; आरंभसे शुरू करना चाहिये।

तुम कर सकते हो...श्रीअरविंद कहते हैं, हैं न, कि तुम सभी चीजें एक साथ कर सकते हो, लेकिन अपने शरीरका रूपांतर करनेकी बात सोच सकनेसे पहले, केंद्र, सबसे महत्त्वपूर्ण अंग, को पर्याप्त रूपसे परिवर्तित करना होगा...जैसा कि, उदाहरणके लिये, कुछ लोग हैं जो तुरंत ही अपना आहार बदलना चाहते हैं या फिर खाना ही बन्द कर देना चाहते

हैं, क्योंकि उनका कहना है कि अंतमें जब 'अतिमानस' का अवतरण होगा, तो फिर हमें खानेकी जरूरत न रहेगी। तो 'अतिमानस' के आनेसे पहले वे उस चीजसे शुरू करना चाहते हैं जो होनेवाली है; वे खाना बंद कर देते हैं, सोना बंद कर देते हैं, और परिणाम यही होता है कि वे बहुत बीमार पड़ जाते हैं।

ज्यादा अच्छा यह है कि पहले पर्याप्त ज्ञानके द्वारा अपने मनमें 'अतिमानस' को ग्रहण करना शुरू किया जाय, और धीरे-धीरे बाकी सबके रूपांतरकी ओर बढ़ा जाय।

मधुर मां, "सक्रिय पक्ष" क्या है ?

वह वही चीज है। वह योगका यह पक्ष है।

दो पहलू हैं : एक पहलू है जो अचल है और एक तैयारी है, और एक सक्रिय पहलू है जो रूपांतरणका कर्मका पहलू है। सक्रियका अर्थ है स्फूर्तिवान्; अर्थात्, अनुप्राणान (परिचालन), कर्म।

किसी "अनुभूतिके नकारात्मक पक्ष" और "सकारात्मक पक्ष" का क्या अर्थ है ?

आह, मेरे बच्चे, तुममें कुछ दोष होते हैं, है न, ऐसी चीजें जो प्रगति करनेमें बाधा देती हैं। तो, नकारात्मक पक्ष है कोशिश करके उन दोषों-से पिंड छुड़ाना। कुछ ऐसी चीजें हैं, तुम्हें कुछ होना, कुछ बनना चाहिये, ऐसे गुण जिन्हें चरितार्थ करनेके लिये तुम्हें अपने अन्दर गढ़ना है; गढ़ने-का यह पक्ष सकारात्मक पक्ष होता है।

तुम्हारे अन्दर कोई दोष है, उदाहरणके लिये, सच न बोलनेकी वृत्ति है। अब, मिथ्यात्वकी इस आदतसे, सत्यको न देखने और सत्य न बोलनेकी आदतसे, तुम अपनी चेतनासे मिथ्यात्वके बहिष्कारद्वारा, लड़ते हो और सत्य न बोलनेकी उस आदतको निकाल बाहर करनेकी कोशिश करते हो। इस चीजको बनाये रखनेके लिये, तुम्हें अपने अन्दर केवल सच बोलनेकी आदत डालनी चाहिये। इस चीजको बनाये रखनेके लिये, तुम्हें अपने अन्दर सचको देखने और हमेशा सच बोलनेकी आदत डालनी चाहिये। एक नकारात्मक है : तुम दोषको दूर करते हो। दूसरी सकारात्मक है : तुम गुणकी स्थापना करते हो। यह इस तरह है।

सभी चीजोंके लिये यही बात है। उदाहरणके लिये, तुम्हारी सत्ताके

किसी भागमें एक तरहके विद्रोहकी आदत होती है, अज्ञान-दृप्त अंधकारमय विद्रोहकी, ऊपरसे जो कुछ आता है उसे अस्वीकारनेकी आदत होती है। अतः, नकारात्मक पक्ष है उसके विरुद्ध लड़ना, उसे अभिव्यक्त होनेसे रोकना और अपने स्वभावसे उसे दूर फेंकना; और दूसरी तरफ तुम्हें निश्चित रूपसे समर्पण, अवबोधन, उत्सर्ग, आत्मसमर्पण और भागवत शक्तियोंके साथ पूर्ण सहयोगके भावकी स्थापना करनी चाहिये। यह सकारात्मक पक्ष है। तुम समझ रहे हो?

वही बात फिरसे: ऐसे व्यक्ति होते हैं जो क्रुद्ध हो जाते हैं... जिन्हें क्रोध के ताव आते हैं, जिन्हें गुस्सेकी आदत होती है... व्यक्ति उस आदतके विरुद्ध लड़ता है, वह क्रुद्ध होना अस्वीकार कर देता है, अपनी सत्तासे क्रोधके उन स्पंदनोंको निकाल बाहर करता है, लेकिन इसके स्थान पर आनी चाहिये निर्विकार शांति, पूर्ण सहिष्णुता, दूसरोंके दृष्टिकोणकी समझ, स्पष्ट और शांत दृष्टि, शांत निर्णय — यह सकारात्मक पक्ष है।

"सूखे नारियलका रूपक" क्या है?

कहा जाता है कि जब व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेता है (इस बातको वे यहां कहते हैं), तो वह एक सूखे नारियलकी तरह बन जाता है जो खोपड़ीमें हिलता है, जो अन्दर मुक्त रहता है, अपने आवरणसे चिपका नहीं रहता और अन्दर स्वतंत्रतासे हिलता है। मैंने यही सुना है, यह किसी भी आसक्तिके न रहनेका रूपक है। तुमने यह देखा होगा, जब नारियल बिलकुल सूख जाता है, तो अन्दरकी गरी खोपड़ीसे जुड़ी नहीं रहती; और इसलिये जब तुम उसे हिलाते हो, तो वह अन्दर हिलती है; वह पूरी तरहसे स्वतंत्र रहती है, वह खोपड़ीसे बिलकुल मुक्त रहती है। अतः सत्ताका रूपक दिया जाता है: साधारण भौतिक चेतना नारियलकी खोपड़ी है; और जबतक आत्मा पूरा रूप नहीं लेती तबतक वह चिपकी रहती है, वह लगी रहती है, वह खोपड़ीके साथ चिपकी रहती है, और उसे अलग नहीं किया जा सकता; लेकिन जब वह अपना पूरा-पूरा रूप ले लेती है तो वह अन्दर पूरी तरह मुक्त होती है, वह खोपड़ीके साथ चिपकी न रहकर उसके अंदर आजादीसे घूमती-फिरती है। यही रूपक होगा।

मधुर मां, इसका क्या अर्थ है: "...तुम्हें पुरुषकी निष्ठाको निम्न प्रकृतिसे स्थानांतरित कर देना चाहिये..."

तुम्हें पता नहीं कि इसका क्या अर्थ है?

सामान्य स्थितिमें, साधारण सत्ता और साधारण जीवनमें, पुरुष प्रकृति-के, बाह्य प्रकृतिके अधीन होता है, वह उसका गुलाम होता है। तो श्री-अरविंद कहते हैं कि उसकी गुलामीसे अपने-आपको मुक्त कर लेना काफी नहीं है। वे इस तरह शुरू करते हैं: अपने-आपको इस दासतासे मुक्त कर लेना काफी नहीं है; उसे अपनी निष्ठा बनाये रखनी चाहिये, लेकिन प्रकृतिकी आज्ञाका पालन करनेकी जगह, उसे दिव्य जननीकी आज्ञा माननी चाहिये; यानी, अपनेसे किसी नीची चीजका हुकुम माननेकी जगह, उसे उच्चतर चीजका हुकुम मानना चाहिये। वाक्य यही है: अपनी निष्ठा इससे उसकी ओर बदल दो।

समझे तुम? नहीं? आह, शायद किसीने उनको लिखा होगा कि मेरा पुरुष प्रकृतिके प्रति निष्ठासे पूरी तरह छुटकारा पाना चाहता है। तो उन्होंने उत्तर दिया: नहीं, यह काफी नहीं है; अगर तुम उसे मुक्त कर लो, तो यह केवल आधा काम होगा; तुम्हारी निष्ठा तो होनी ही चाहिये परंतु उसका प्रकृतिके साथ संबन्ध होनेके बजाय दिव्य जननीके लिये अस्तित्व होना चाहिये। और फिर आगे चलकर वे भेद समझाते हैं। एक पूरा अनुच्छेद है जिसमें वे बताते हैं कि दिव्य जननीको प्रकृतिके साथ एक न मान लेना चाहिये। स्वभावतः उसमें दिव्य जननीका कुछ अंश है, क्योंकि हर चीजके पीछे दिव्य जननीका कुछ अंश है। लेकिन तुम्हें यह न मान लेना चाहिये कि प्रकृति ही दिव्य जननी है।

(नलिनी): यह नकारात्मक और सकारात्मक पक्ष है—जैसा कि ताराने पूछा था—ये प्रकृतिके प्रति निष्ठाके नकारात्मक और सकारात्मक पक्ष हैं।

प्रकृतिके प्रति निष्ठा, हां, यह सच है। प्रकृतिके प्रति इस निष्ठासे छुटकारा पाना विकासका नकारात्मक पक्ष है; तुम प्रकृतिके प्रति अपनी निष्ठासे छुटकारा पा लेते हो, लेकिन तुम्हें एक कदम और आगे बढ़ना चाहिये और दिव्य जननीके प्रति समर्पणके सकारात्मक पक्षको पाना चाहिये।

अंतिम वाक्य: "...'सत्य-सृजन' में विधान यह है कि प्रलय-के बिना सतत उन्मीलन होता रहे।" यह सतत उन्मीलन क्या है?

'सत्य-सृजन' . . . यह अंतिम पंक्ति है? (माताजी पुस्तक देखती हैं) मेरा ख्याल है कि हम इसके बारेमें कई बार बातचीत कर चुके हैं। कहा गया है कि सृष्टि-सृजनकी प्रक्रियामें सृजनकी क्रियाके बाद रक्षणकी गति होती है और अंतमें विघटन या विनाशकी गति होती है; और यह भी बहुत बार कहा गया है: "जो कुछ आरंभ होता है उसे समाप्त होना चाहिये," आदि, आदि।

वस्तुतः हमारे विश्वके इतिहासमें एकके बाद एक छः काल आ चुके हैं जो सृष्टिसे शुरू हुए, रक्षणकी शक्तिद्वारा टिके, बढ़े और विघटन, विनाश-द्वारा समाप्त होकर फिरसे 'आदि स्रोत'की ओर चले गये, इसीको प्रलय कहते हैं; और इसीके कारण यह मान्यता है। लेकिन यह कहा गया है कि सातवीं सृष्टि उत्तरोत्तर प्रगति करनेवाली सृष्टि होगी, यानी, सर्जन-के आरंभबिन्दुके बाद केवल रक्षण ही नहीं आयेगा, बल्कि क्रमशः अभि-व्यक्ति आयेगी जो भगवान्को अधिकाधिक पूर्ण रूपमें प्रकट करेगी, ताकि विघटन और 'आदि स्रोत'की ओर लौटनेकी जरूरत ही न रह जाय। और इसकी घोषणा की गयी है कि जिस कालमें हम हैं वह ठीक सातवां है, अर्थात्, जिसका अंत प्रलय, 'आदि स्रोत' की ओर लौटने, विनाश और विलोपसे न होगा, बल्कि उसकी जगह ले लेगी सतत प्रगति, क्योंकि यह अपनी सृष्टिमें भागवत 'मूल स्रोत' का अधिकाधिक उन्मीलन होगा।

श्रीअरविंद यही कहते हैं। वे सतत उन्मीलनकी बात करते हैं, यानी, भगवान् अधिकाधिक पूर्ण रूपसे उत्तरोत्तर संपूर्ण भावसे प्रगतिशील सृष्टिमें अभिव्यक्त होते हैं। इस उत्तरोत्तर प्रगतिका स्वभाव ही 'आदि स्रोत' तक लौटनेको, विनाशको अनावश्यक बना देता है। जो कुछ प्रगति नहीं करता गायब हो जाता है, और यही कारण है कि भौतिक शरीर मरते हैं, इसका कारण यह है कि वे प्रगतिशील नहीं हैं; वे अमुक समयतक प्रगति करते हैं, फिर वहां जाकर रुक जाते हैं और बहुधा कुछ समयके लिये वहांपर स्थिर रहते हैं, और फिर उनका ह्रास शुरू हो जाता है, और वे गायब हो जाते हैं। यह इस कारण है कि भौतिक शरीर, भौतिक पदार्थ अपनी वर्तमान अवस्थामें इतना लचीला नहीं है कि सतत प्रगति कर सके। लेकिन यह असंभव नहीं है कि उसे इतना पर्याप्त लचीला बनाया जा सके कि वह शरीरको इतना पूर्ण बना दे कि फिर उसे विघटन, अर्थात्, मृत्यु-की आवश्यकता न रहे।

केवल, यह उपलब्धि 'अतिमानस'के अवतरणके बिना नहीं हो सकती। अभीतक जितनी भी शक्तियां अभिव्यक्त हुई हैं, उनसे यह उच्चतर है। यह शरीरको ऐसा लचीलापन प्रदान करेगी कि वह सतत प्रगति कर पायेगा,

अर्थात्, उन्मीलनमें दिव्य गतिका अनुसरण कर सकेगा।

> **मधुर मां, मैं चीजोंमें घपला कर रहा हूं। यहां लिखा है: "जो 'अधिमानस' के सत्योंमें नहीं जिया है और जिसने उनपर प्रभुत्व नहीं पाया है वह अतिमानसिक 'सत्य' तक नहीं पहुंच सकता।"**

हां।

> **यहींपर मुझे घपला हो रहा है। आपने प्रायः कहा है कि 'अधिमानस' का शासन समाप्त हो गया और 'अतिमानस' का शासन आनेवाला है, और अब व्यक्तिको 'अधिमानस' की उन्हीं अनुभूतियोंमेंसे गुजरनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि वह पहले ही हो चुका।**

यह क्या कह रहा है? पवित्र, क्या तुम समझे कि यह क्या कह रहा है?

> (पवित्र) **: माताजी, आपने कई बार कहा है कि 'अधिमानस' का राज्य समाप्त हो गया है और अब 'अतिमानस' का राज्य है।**

हां, एक तरहसे, हां।

> **अतः अब 'अतिमानस' तक पहुंचनेके लिये 'अधिमानस' की अनुभूतियोंमेंसे गुजरना जरूरी नहीं है।**

मैंने कहा है कि 'अतिमानस' की अनुभूतियां पानेके लिये 'अधिमानस' की अनुभूतियोंमेंसे गुजरना जरूरी नहीं है? क्या मैंने ऐसी चीज कभी कही है?

> **मैं यह नहीं कहता कि आपने ऐसा कहा था। शायद मैंने इस तरह समझा है।**

अच्छा! बहरहाल मुझे ऐसा नहीं लगता। पता नहीं मैंने यह कहा है या नहीं, पर मुझे ऐसा नहीं लगता, क्योंकि हम संक्रमण कालमें हैं। सामान्य रूपसे, यह एकदम निश्चित है कि अब भी 'अधिमानस' का ही

शासन है और अगर 'अतिमानस' आये तो वह केवल आना और एक प्रकारका प्रभाव डालना शुरू करेगा, और संक्रमण कालमें श्रीअरविंद यहां जो कहते हैं, वह बिलकुल स्पष्ट है : अगर तुम 'अधिमानस' के बारेमें कुछ नहीं समझते तो 'अतिमानस' के बारेमें और भी कम समझोगे, और उन्होंने दोहराया, मुझे पता नहीं कितनी बार दोहराया है, कि तुम्हें सभी सीढ़ियां चढ़े बिना उच्चतम शिखरपर कूदनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये ! फिर एक बार . . . मैंने कब पढ़ा . . . अभी बहुत समय नहीं हुआ . . .कि चोटी-तक पहुंचनेके लिये सभी सीढ़ियोंपर चढ़ना जरूरी है ? तुम एक छलांग मारकर बाकी सबकी उपेक्षा नहीं कर सकते। यह संभव नहीं है। तुम तेजी कर सकते हो। यह हो सकता है कि जिसे करनेमें कई-कई जीवन लगें वह कुछ ही वर्षोंमें, या हो सकता है, कुछ ही महीनोंमें हो जाय; लेकिन उसे करना तो होगा ही।

जब हमारे सबके शरीर अतिमानसिक बन जायं और हम अपने भीतर अतिमानसिक चेतनामें हों तो शायद हम ऐसी छोटी-छोटी अतिमानसिक सत्ताओंका निर्माण कर सकें जिन्हें इन अनुभवोंमेंसे गुजरनेकी जरूरत न हो ! लेकिन यह वर्तमानकी बात नहीं, "जब" की बात है। (हंसी)

चीजोंके किये जानेसे पहले हमें उनकी आस न लगानी चाहिये। वे की जायंगी लेकिन कुछ समय बाद।

२२ जून, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप' में से 'सत्ताके स्तर और भाग' पढ़ती हैं।

हम अपनी 'योग-शक्ति' को कैसे जगा सकते हैं ?

यह इसपर निर्भर है : जब तुम यह सोचते हो कि तुम्हारे जीवनमें यही सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण चीज है। बस।

कुछ लोग ध्यानमें बैठते हैं, रीढ़की हड्डीके निचले भागपर एकाग्र होते हैं और उसे जगानेकी बहुत इच्छा करते हैं, लेकिन यह काफी नहीं है। जब यह सचमुच तुम्हारे जीवनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज बन जाय,

जब ऐसा लगे कि बाकी सबमें कोई रस नहीं रहा, कोई रुचि नहीं रही, कोई महत्त्व नहीं रहा, जब तुम्हें अंदरसे लगे कि तुम इसीके लिये पैदा हुए हो, तुम केवल इसीलिये धरतीपर हो, और यही एकमात्र चीज है जिस-का महत्त्व है, तो इतना पर्याप्त है।

तुम विभिन्न चक्रोंपर एकाग्र हो सकते हो; लेकिन कभी-कभी तुम लंबे अरसेतक, बड़े प्रयासके साथ एकाग्र होनेपर भी कोई परिणाम नहीं पाते। और तब एक दिन कोई चीज तुम्हें झकझोर देती है, तुम्हें लगता है कि तुम्हारे पैरों तलेकी जमीन खिसक रही है, तुम्हें किसी चीजसे चिपकना चाहिये; तब तुम अपने भीतर भगवान्‌के साथ एकत्वके विचारसे चिपट जाते हो, भागवत 'उपस्थिति' के विचार, चेतनाके रूपांतरके विचारसे चिपट जाते हो, और तुम अभीप्सा करते हो, तुम चाहते हो, तुम अपने संवेदनों, गतिविधियों और आवेगोंको इसके चारों ओर व्यवस्थित करने-की कोशिश करते हो। और वह (परिणाम) आ जाता है।

कुछ लोगोंने नाना प्रकारके उपायोंकी सलाह दी है; शायद ये ऐसे उपाय थे जो उनके मामलेमें सफल हुए थे; लेकिन सच बात तो यह है कि तुम्हें अपना उपाय अपने-आप खोजना चाहिये, काम कर लेनेपर ही तुम्हें पता लगता है कि उसे कैसे किया जाय, उससे पहले नहीं।

अगर तुम उसे पहलेसे जानो, तो तुम एक मानसिक रचना खड़ी कर लेते हो और तब यह खतरा रहता है कि तुम अधिकतर उसी मानसिक रचनामें, जो एक भ्रांति है, रहते रहोगे; क्योंकि जब मन कोई विशेष परिस्थितियां बनाता है और जब वे चरितार्थ होती हैं, अधिक संभावना यही होती है कि वे शुद्ध रूपसे मानसिक रचनाएं होंगी जो स्वयं अनुभूति न होकर उसका बिंब होंगी। तो मेरा ख्याल है कि इन सब आध्यात्मिक अनुभूतियोंके बारेमें जाननेसे पहले उन्हें पानेमें ही बुद्धिमत्ता है। अगर तुम उन्हें जानते हो, तो उनकी नकल करते हो, तुम अनु-भूतियोंको पाते नहीं, यह कल्पना करते हो कि तुम उन्हें पा रहे हो; जब कि अगर तुम कुछ भी नहीं जानते — तुम नहीं जानते कि चीजें कैसी हैं और कैसी होनी चाहियें, क्या होना चाहिये और वह कैसे होगा — अगर तुम्हें इसके बारेमें कुछ भी नहीं मालूम, तो बिलकुल चुपचाप रहनेसे और अपनी सत्ताके अंदर एक तरहकी आंतरिक छंटायी करके तुम्हें अचानक एक अनुभूति हो सकती है, और बादमें तुम्हें पता लगता है कि क्या हुआ। वह खतम हो जाती है, और उसके हो जानेके बाद तुम्हें पता लगता है कि इसे कैसे किया जाता है — बादमें। इस तरह यह निश्चित है।

स्पष्ट है कि तुम अपनी कल्पनाका उपयोग कर सकते हो, कुण्डलिनी-की कल्पना करो और उसे ऊपरकी ओर खींचनेकी कोशिश करो। लेकिन साथ ही तुम अपने-आपको ऐसी मन-गढ़ंत कहानियां भी सुना सकते हो। मेरे सामने लोगोंके ऐसे बहुत सारे उदाहरण हैं जो अपनी अनुभूतियोंका ठीक वैसा ही वर्णन करते थे जैसी वे किताबमें लिखी हैं, वे सभी शब्दोंसे परिचित थे और उनका बड़े विस्तारसे वर्णन करते थे, और तब मैंने यूं ही, उनसे एक छोटा-सा प्रश्न कर लिया: कि अगर उन्हें यह अनुभूति हुई है तो उन्हें अमुक चीजका पता होना चाहिये या उसका अनुभव होना चाहिये, और क्योंकि वह किताबोंमें नहीं था, वे उत्तर न दे सके।

मधुर मां, सहस्रदल कमलका क्या अर्थ है?

उसका इसी तरह वर्णन किया जाता है, क्योंकि उसमें एक केंद्र है जो बहुत, बहुत जटिल है। मेरा ख्याल है उसका मतलब है विचारकी अनगिनत शक्तियां, यह सभी रूपोंमें ज्ञानकी बहुलता है। यही होना चाहिये। लो, यह एक और उदाहरण है: जिन्होंने पढ़ा है, अध्ययन किया है, और बादमें अनुभूति प्राप्त की है, हां तो, वे उसका हमेशा इसी तरह वर्णन करते हैं, वे पुस्तकोंमेंसे शब्द चुन लेते हैं और पुस्तकोंमें दिये हुए कमलोंके वर्णन सुनाते हैं; परंतु जिन्हें पढ़े बिना या पहलेसे सीखे बिना सहज अनुभूति होती है, वे मानों वैयक्तिक सचाईके साथ, एकदम सजीव वर्णन करते हैं। हर एक अनुभूतिको अपने ही ढंगसे लेता है। जब ये चक्र जागते हैं... यह एक तथ्य है कि चक्र हैं, और यह भी एक तथ्य है कि वे जागते हैं, और यह भी एक तथ्य है कि इससे चेतना और ऊर्जाकी समस्त क्रियामें बहुत परिवर्तन आ जाता है, लेकिन उसका वर्णन, अगर वह सच्चा और सहज हो, तो हर एकके लिये अलग होता है। तुम्हें किसी चीजके साथ साम्यताका बोध हो सकता है, लेकिन जो होता है उसका सुनिश्चित और यथार्थ वर्णन हमेशा मनका हस्तक्षेप होता है।

यह तथ्य बहुत वास्तविक और ठोस होता है, इसके अनुभवोंमें भौतिक तथ्यकी वास्तविकता और तीव्रतातक होती है। लेकिन हर आदमी उसका वर्णन ऐसे रूपमें करता है जो उसके लिये विशेष होता है, लेकिन जैसा मैंने कहा, अगर उसने पढ़ा और अध्ययन किया हो, तो उसका दिमाग किताबोंमें लिखी हुई सब प्रकारकी चीजोंसे भरा होता है; तब उसने जो

कुछ पढ़ा है वही अपने-आप उसकी अनुभूतिको रूप देता है, और इससे उसकी वह सहजता कुछ कम हो जाती है जो उसपर सच्चे और निष्कपट होनेकी मोहर लगाती है; वह एक मानसिक रचना बन जाती है। अगर तुमने पढ़ा है और बहुत पढ़ा है कि वह कुण्डलित सांपकी तरह है, तो, स्वभावतः, जब तुम एकाग्र होकर उसे जगानेकी कोशिश करते हो, तो तुम्हें कुण्डल मारे सांप दिखायी देता है, क्योंकि तुम उसके बारेमें इसी तरह सोचते हो। अगर तुम्हें सहस्रदल कमलके बारेमें बताया गया है, तो तुम सहस्रदल कमल देखते हो। परंतु यह स्वयं अनुभूतिके तथ्यपर एक मानसिक अध्यारोपण है। लेकिन एक ऐसी चीजकी अनुभूति जो अनगिनत है, जो एक ही साथ एक और अनगिनत है, और ऐसा लगना कि कोई चीज खुल रही है, जाग रही है, स्पंदन करना शुरू कर रही है, जो शक्तियोंको प्रत्युत्तर देती और तुम्हें प्रकाशकी, विवेककी, उच्चतर क्षेत्रोंकी ओर खुलनेकी तीव्रता प्रदान करती है, यह . . . इस अनुभूतिका सार-तत्त्व है। फिर भी जब तुम किताबोंमें पाये जानेवाले रूपकोंके-द्वारा वर्णन करने लगते हो, तो ऐसा लगता है मानों तुम अचानक उसे बनावटी — या यूं कहें, पथराया हुआ — या कृत्रिम या कपटपूर्णतक बना देते हो।

मेरे लिये हमेशा ऐसे लोगोंके उदाहरण ज्यादा मजेदार रहे हैं जिन्होंने कुछ भी नहीं पढ़ा था लेकिन जिनके अन्दर तीव्र अभीप्सा थी। और जो मेरे पास यह कहते हुए आये : "मेरे साथ कुछ अजीब-सी चीज हुई है, मुझे यह असाधारण अनुभूति हुई, सचमुच इसका क्या मतलब हो सकता है?" और तब वे गति, स्पंदन, शक्ति, प्रकाश, जो कुछ भी हो उसका वर्णन करते हैं, वह क्या है यह हर एकके ऊपर निर्भर है, और वे इसका वर्णन करते हैं, कि यह यूं हुआ और इस तरह आया, और फिर यह हुआ और फिर वह हुआ, और इस सबका, इन सब चीजोंका क्या मतलब है? तो यहां आदमी ठीक दिशामें है। उससे पता लगता है कि यह एक कल्पित अनुभूति नहीं है, यह सच्ची और सहज है, और इसमें हमेशा मानसिक ज्ञानद्वारा लायी गयी अनुभूतिकी अपेक्षा, बहुत अधिक रूपांतरकी शक्ति होती है।

तो माताजी, इसका यह अर्थ हुआ कि न पढ़ना ज्यादा अच्छा है?

बशर्ते कि तुम्हारे अन्दर सचमुच अभीप्साका उत्साह हो। अगर तुम इसी-के लिये, योगके लिये जन्मे हो, और यही वह चीज है जो तुम्हारे सारे

अस्तित्वपर छायी हुई है, तुम यह अनुभव करते हो, हां, कि कुछ जानने-से पहले, तुम्हें एक ऐसी चीज खोजनेकी जरूरत है जो तुम्हारे अन्दर है, तो कभी-कभी एक शब्द ही काफी होता है, एक बातचीत जो बस तुम्हें दिशा देती है — इतना काफी होता है। लेकिन जो लोग खोज रहे हैं, जो टटोल रहे हैं, जिन्हें पूरा विश्वास नहीं है, जो इस ओर और उस ओर खिंचते हैं, जिनके जीवनमें अनेक रस हैं, जो स्थिर नहीं हैं, उपलब्धिके लिये संकल्पमें स्थिर नहीं हैं, उनके लिये पढ़ना बहुत अच्छा है, क्योंकि यह उन्हें विषयके संपर्कमें लाता है, यह उन्हें चीजमें कुछ रस प्रदान करता है।

मेरे कहनेका मतलब यह है कि हर निश्चित मानसिक रचना हमेशा अनुभूतिको एक विशेष रंग देती है। उदाहरणके लिये, किसी धर्म-विशेष-में पले हुए सभी लोगोंकी अनुभूति हमेशा उस धर्मके रंगमें रंगी होगी; और वस्तुतः, चीजके आदि-स्रोततक पहुंचनेके लिये तुम्हें अपने-आपको बाहरी रचनासे मुक्त कर लेना चाहिये।

लेकिन एक ऐसे प्रकारका पढ़ना है जो तुम्हारे अन्दर इस चीजके लिये रस जगाता है और पहली खोजमें मदद कर सकता है। साधारणतः, अगर तुम्हें अनुभूतियां हुई भी हैं तो भी तुम्हें विचार या भावके संपर्क-की जरूरत होती है ताकि तुम्हारा प्रयास ज्यादा सचेतन रूपसे निश्चित रूप धारण कर सके। लेकिन तुम जितना अधिक जानते हो उतना ही अधिक तुम्हें अपनी अनुभूतिमें पूर्ण रूपसे सच्चा और निष्कपट होना चाहिये, यानी, तुम्हें कल्पना करनेके लिये अपने मनकी रचना-शक्तिका उपयोग न करना चाहिये और इस तरह अपने अन्दर अनुभूतिकी रचना नहीं करनी चाहिये। दिशा देनेकी दृष्टिसे यह उपयोगी हो सकता है; लेकिन स्वयं अनुभूतिकी दृष्टिसे, यह उसके सक्रिय मूल्यको हर लेता है, उसके अन्दर अनुभूतिकी वह तीव्रता नहीं होती जो उसके होनेके लिये आवश्यक नैतिक और आध्यात्मिक शर्तोंके पूरा करनेसे आती है। उसमें पूरा मान-सिक अनुकूलन जुड़ जाता है और वह उसकी सहजताका कुछ अंश ले लेता है। यह सारी अनुपातकी बात है। हर एकको यह पता लगाना होगा कि उसे ठीक कितनी मात्राकी, कितना पढ़नेकी, कितने ध्यान और कितनी एकाग्रताकी जरूरत है, कितने . . .। यह हर एकके लिये अलग-अलग है।

मधुर मां, यहां लिखा है: "अपनी प्रकृतिकी महान् जटिलताके बारेमें सचेतन होना, उसे परिचालित करनेवाली विभिन्न शक्तियों-

को देखना और उसपर निर्देशन करनेवाले ज्ञानका प्रभुत्व पाना योगके आधारका एक अंग है।" क्या ये शक्तियां हर एकके लिये अलग-अलग होती हैं?

हां। संयोजन बिलकुल अलग-अलग होता है, वरना हर आदमी समान ही होता। एक जैसे संयोजनकी दो सत्ताएं भी नहीं हैं; सत्ताके भागों-में और इन भागोंके संयोजनमें हर व्यक्तिमें अलग-अलग अनुपात हैं। ऐसे लोग हैं, आदिम मानव, अभीतक अविकसित जातियों या अपविकसित जातियोंके लोग जिनके संयोजन काफी सरल होते हुए भी जटिल हैं; लेकिन फिर भी हैं अपेक्षाकृत सरल। और फिर ऐसे लोग हैं जो मानव सोपानके शीर्षस्थ, मानवजातिके कुलीन या श्रेष्ठ लोग हैं; उनका संयो-जन इतना जटिल होता है कि इन सब चीजोंके बीच संबन्धको जान सकनेके लिये बहुत विशेष विवेककी जरूरत होती है।

ऐसी सत्ताएं हैं जो अपने अंदर हजारों विभिन्न व्यक्तित्व लिये रहती हैं, और उनमेंसे हर एककी अपनी लय और अपना एकांतरण होता है, और एक प्रकारका संयोजन होता है; कभी-कभी आंतरिक संघर्ष होते हैं, और उनकी क्रियाओंका लयबद्ध खेल होता है और कुछ भागोंमें एकां-तरण होता है जो सामने आते हैं फिर पीछे चले जाते हैं और फिरसे सामने आते हैं। लेकिन जब हम इन सबको देख लेते हैं, तो इनसे इतने जटिल संयोजन बन जाते हैं कि कुछ लोगोंको सचमुच यह समझनेमें कठिनाई होती है कि उनके अन्दर क्या हो रहा है; और फिर भी यही लोग हैं जो संपूर्ण, ताल-मेलवाले, सचेतन, सुव्यवस्थित क्रियाके लिये सब-से अधिक योग्य हैं; लेकिन उनकी व्यवस्था आदिम मानव या अविकसित मनुष्योंकी अपेक्षा कहीं अधिक जटिल है जिनमें बस दो-तीन आवेश और चार-पांच भाव होते हैं, और जो इन्हें बड़ी आसानीसे अपने अंदर व्यव-स्थित कर लेते हैं और बहुत युक्तियुक्त और समन्वित मालूम होते हैं क्योंकि उनमें व्यवस्थित करनेके लिये बहुत कुछ नहीं होता। लेकिन ऐसे लोग भी होते हैं जो सचमुच भीड़ जैसे होते हैं, और इससे उनके अन्दर लचीलापन आ जाता है, क्रियामें तरलता और बोधमें असाधारण जटिलता आ जाती है, और ये लोग बहुत-सारी चीजें समझनेमें सूक्ष्म होते हैं, मानों सचमुच उनके अधिकारमें एक सेना हो जिसे वे परिस्थितियों और आवश्यकताओंके अनुसार भेज सकते हैं; और यह सब उनके अंदर है। तो जब ये लोग, योगकी सहायतासे, योगके अनुशासनसे, इन सत्ता-ओंको भागवत 'सत्ता' के केंद्रीय प्रकाशके चारों ओर केंद्रित करनेमें सफल

हो जाते हैं तो वे ठीक अपनी जटिलताके कारण, शक्तिशाली सत्ता बन जाते हैं। जबतक यह व्यवस्था नहीं हो जाती वे अंड-बंड मालूम होते हैं, वे प्रायः अबोधगम्य होते हैं, तुम समझ नहीं पाते कि वे ऐसे क्यों हैं, वे इतने जटिल होते हैं। लेकिन जब वे इन सब सत्ताओंको व्यवस्थित कर लेते हैं, यानी, हर एकको भागवत केंद्रके चारों ओर उचित स्थान-पर बिठा दिया जाता है, तो वे सचमुच आश्चर्यजनक होते हैं, क्योंकि उनमें प्रायः हर चीज समझनेकी और प्रायः हर चीज करनेकी क्षमता होती है क्योंकि उनके अन्दर उन सत्ताओंकी भीड़ होती है जिनके संयोग-से वे बने होते हैं। और तुम सीढ़ी के शिखरके जितने ही नजदीक होते हो, जटिलता उतनी ही अधिक होती है, और परिणामस्वरूप अपनी सत्ताको व्यवस्थित करना उतना ही कठिन होता है; क्योंकि जब तुम्हारे अंदर एक दरजन तत्त्व होते हैं, तो तुम उन्हें आसानीसे घेरकर व्यवस्थित कर सकते हो, लेकिन जब हजारों तत्त्व हों, तो यह ज्यादा कठिन होता है।

२९ जून, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप' में से 'सत्ताके स्तर और भाग' पढ़ती हैं।

मधुर मां, क्या मनुष्यकी प्राणिक प्रकृति उसकी सच्ची प्राणिक सत्तासे प्रकट हुई है।

प्रकट हुई है? प्रकट होनेसे तुम्हारा क्या मतलब है? क्या तुम यह कहना चाहते हो कि पहले एक सत्य प्राणिक सत्ता थी और वह स्वयंको भौतिक प्रकृतिमें, पार्थिव प्रकृतिमें, उस प्राणके रूपमें अभिव्यक्त करती है जिसे हम देखते हैं? यही!

माताजी, वह इतनी परस्पर उलटी क्यों है?

बाहरी जगत् भागवत जगत्से पूरी तरह उलटा क्यों है? यह ठीक ऐसा ही है। यह ऐसा ही है।

प्राणिक सत्ता, वह सच्ची प्राणिक सत्ता जिसका श्रीअरविंद वर्णन करते हैं, वह प्राणिक सत्ता है जिसका भगवान्‌के साथ संपर्क है, जो पूरी तरह भगवान् और उनके यंत्रको समर्पित है; जब कि साधारण पार्थिव चेतना-में, प्राणिक सत्ता और भौतिक सत्ता भी भगवान्‌की बिलकुल नहीं-होतीं, वे सोचती हैं कि वे स्वयं अपनी हैं, और एकमात्र चीज जो महत्त्व रखती है वह है उनका क्षुद्र व्यक्तित्व; और इसी कारण सब कुछ ऐसा है। सृष्टिकी सारी अव्यवस्था इसी कारण है।

मधुर मां, यहां लिखा है: "...एक सच्ची भौतिक सत्ता होती है।" इसका क्या अर्थ है?

एक ऐसी भौतिक प्रकृति है जो पूरी तरह सामंजस्यपूर्ण है, जिसमें पूरी तरह...कैसे कहा जाय...हां, एक सामंजस्यपूर्ण क्रिया होती है, बिना अव्यवस्थाके, बिना असंतुलन, बिना किसी सामंजस्य-भंगके कार्य होता है, अगर धरतीपर उसका अस्तित्व होता तो वह पूर्ण स्वास्थ्य, बढ़ती हुई शक्ति, निरंतर प्रगतिके रूपमें अभिव्यक्त होती; और तब तुम अपने शरीरसे जो कुछ प्राप्त करना चाहते, प्राप्त कर लेते; और यह चीज पूर्णताकी लगभग अकल्पनीय प्रगतितक जा सकती है।

हम जिस भौतिक स्थितिको अपने सभी असामंजस्यों, अपनी सभी दुर्बलताओं, अपनी कुरूपताओंके साथ देखते हैं यह वही विकार है जिसने उच्चतर प्राणको, सत्य प्राणको बदलकर उस प्रकारका प्राण बना दिया है जिसे हम देखते हैं। और इसका कारण यही है: यह विच्छेदके तीव्र भावके साथ अपने 'मूल' से कट गया है जिसके फलस्वरूप निरंतर अपने 'स्रोत' की चेतनामें जीनेके बदले, मनुष्य एक ऐसी पूर्ण रूपसे अंधकार-मय चेतनामें जीता है जो पूरी तरह अज्ञानमय बन गयी है। अब, यह पूछना कि ऐसा क्यों है बहुत अधिक पूछना है।

बस?

मैं भली-भांति समझ नहीं पाया, मधुर मां?

तुम यह नहीं समझे कि सच्चा भौतिक क्या है, क्योंकि यह समझनेका प्रश्न नहीं है। तुम उसके बारेमें सचेतन नहीं हो क्योंकि तुम उसके भीतर नहीं हो, तुम उसके अन्दर नहीं जीते। लेकिन क्या तुम ऐसे शरीरकी कल्पना नहीं कर सकते जो पूरी तरह सुन्दर, पूरी तरहसे साम-

जस्यपूर्ण हो, जो एकदम अच्छी तरह कार्य करे और कभी बीमार न पड़े, और जो निरंतर प्रगतिकी स्थितिमें हो? पहले वह ज्यादा-से-ज्यादा लंबा होता जायगा जबतक कि वह अपनी अधिकतम ऊंचाईको न पा ले, और फिर वह अधिक-से-अधिक बलवान, अधिक-से-अधिक कुशल, अधिक-से-अधिक सचेतन होगा, और हमेशा पूर्ण सामंजस्यमें रहेगा: न कभी कोई बीमारी और न कभी कोई थकावट, कभी कोई भ्रांति न होगी, कभी कोई गलती न करेगा, उसे हर क्षण ठीक-ठीक पता होगा कि क्या करना और क्यों करना चाहिये।

माताजी, कहा जाता है कि एक सच्ची सत्ता है... लेकिन साधारणतः जब हम भौतिकके बारेमें बात करते हैं तो इसका-अर्थ होता है जड़-भौतिक, शरीरके साथ संबन्ध रखनेवाला, यही होता है न?

अभी तो भौतिकतम क्षेत्रमें कोई भी सच्ची सत्ता नहीं है। केवल एक तरहका सूक्ष्म प्रारूप है जो जड़-भौतिक रूपमें चरितार्थ नहीं हुआ है।

(किसी दूसरे बच्चेसे) तुम्हें कुछ पूछना है?

माताजी, क्या 'देश' और 'काल' केवल भौतिक जगत्की ही विशेषताएं हैं या दूसरे जगतोंमें भी हैं?

चूंकि रूप और आकार हैं, अतः अवश्यक रूपसे 'देश' और 'काल' भी हैं, लेकिन वे भौतिक 'देश' और 'काल'के जैसे बिलकुल नहीं हैं। न तो वह-का-वही 'देश' होता है न वही 'काल'।

उदाहरणके लिये, जैसे ही तुम प्राणमें प्रवेश करते हो तो वहां ऐसे 'देश' और 'काल' होते हैं जो भौतिक 'देश' और 'काल' के समान होते हैं लेकिन उनमें वह स्थिरता और कठोरता और असाध्यता नहीं होतीं जो यहां हैं। अर्थात्, उदाहरणके लिये, प्राणमें एक बलवान्, समझदार इच्छा-शक्तिकी क्रिया तुरंत होती है; यहां, भौतिक रूपसे उसके सिद्ध होनेमें कभी-कभी बहुत अधिक समय लगता है, एक पूरी प्रक्रियाका अनुसरण करना पड़ता है। प्राणमें वह सीधी होती है, इच्छा-शक्ति परिस्थितियों-पर सीधा कार्य करती है, और अगर वह सचमुच बहुत प्रबल प्रकार-की हो, तो (क्रिया) तात्कालिक होती है। लेकिन फिर भी 'देश' तो है ही, अर्थात्, एक स्थानसे दूसरे स्थानतक जानेके लिये तुम्हें गति-शील

होनेका आभास होता है, और अनिवार्य रूपसे जब तुम गति करते हो, तो समयका कुछ व्यवधान पड़ता है; लेकिन भौतिक समयकी तुलनामें यह बहुत अल्प समय होता है।

मानसिक स्तरपर 'काल' की धारणा करीब-करीब पूरी तरह गायब हो जाती है। उदाहरणके लिये, तुम अपनी मानसिक चेतनामें हो, तुम किसी व्यक्ति या किसी वस्तु या किसी स्थानके बारेमें सोचते हो, और तुरंत वहां जा पहुंचते हो। सोचने और प्राप्त करनेके बीच कालकी कोई आवश्यकता नहीं। कालकी भावनाका प्रवेश तभी होता है जब मन प्राणके साथ घुला-मिला हो; और अगर वह भौतिकतक उतर आये, तो किसी मानसिक धारणाके चरितार्थ होनेसे पहले एक पूरी प्रक्रियाकी आवश्यकता होती है। जड़-भौतिकपर तुम्हारी मानसिक क्रिया सीधी नहीं होती। उदाहरणके लिये, अगर तुम कलकत्तेके रहनेवाले किसी मनुष्यके बारेमें सोचते हो, हां तो, भौतिक रूपसे तुम्हें हवाई जहाज पकड़ना पड़ता है और तुम्हारे वहां पहुंचनेसे पहले कई घंटे बीत जाते हैं; जब कि मानसिक रूपसे यहां रहते हुए तुम किसी कलकत्तेवालेके बारेमें सोचो, तो तुम तुरंत उसके पास, वहां जा पहुंचते हो। तुरंत, है न। लेकिन अगर तुम अपने शरीरसे प्राणिक रूपमें निकलो और कहीं जाना चाहो, हां तो, तुम्हें गति करनेका भान होता है, और तुम जहां जा रहे हो वहांतक पहुंचनेमें जो समय लगता है उसका भान होता है। लेकिन यह भौतिककी तुलनामें, भौतिक रूपसे चीजें करनेमें जितना समय लगता है, उसकी तुलनामें बहुत अधिक तेज होता है।

केवल सोपानके उच्चतर शिखरपर, अगर तुम उस जगह पहुंच जाओ जिसे विश्वका केंद्र, विश्वका केंद्र और स्रोत कहा जा सकता है, वहां सब कुछ तात्कालिक होता है। भूत, वर्तमान और भविष्य, सब एक पूर्ण और समकालिक चेतनामें समाये रहते हैं, अर्थात्, जो हमेशा रहा है और जो होगा, यह सब मानों केवल एक क्षणमें, विश्वके एक तालमें जुड़ गये हैं, और केवल वहीं तुम 'देश' और 'काल' से बाहर चले जाते हो।

माताजी, आपने कहा है कि मानसिक रूपमें अगर हम किसी चीजके बारेमें सोचें तो हम तुरंत उस चीजकी उपस्थितिमें होते हैं, लेकिन, उदाहरणके लिये, अगर हम मानसिक रूपसे किसी उच्चतर चीजके बारेमें सोचें, उदाहरणके लिये, भगवान्‌के बारेमें...

हां।

तो क्या हम तुरंत 'उनकी उपस्थिति' में जा पहुंचते हैं?

हां, लेकिन केवल विचारका वह भाग, तुम्हारा शरीर नहीं। मैंने ठीक यही कहा था। मानसिक क्षेत्रमें ऐसा ही है; अगर तुम भगवान्‌पर एकाग्र होओ और भगवान्‌के बारेमें सोचो, तो वह भाग... मैं यह नहीं कहती कि पूरा विचार, क्योंकि विचार बहुविध और विभक्त होता है, लेकिन वह भाग जो सचाईके साथ भगवान्‌पर एकाग्र होता है, वह उनके साथ होता है। इससे कुछ लाभ होता है लेकिन बहुत ज्यादा नहीं। जब यह भाग दूसरे भागोंके साथ मिल जाता है जो एक ही साथ सैंकड़ों विभिन्न चीजोंके बारेमें सोचते हैं, या जब यह शरीरमें उतर आता है, यथार्थतः भौतिक वस्तुओंकी भयंकर सुस्तीसे बंध जाता है, और यहांसे उस दरवाजेतक जानेमें ही कितने कदम चलना पड़ता है।

प्राणिक रूपसे एक छलांगमें ही तुम वहां पहुंच सकते हो; मानसिक रूपमें छलांगकी भी आवश्यकता नहीं होती।

क्या चैत्य स्तरपर भूत, वर्तमान और भविष्य होते हैं?

चैत्यमें? हां, यहांतक कि तुम जितने जीवन जी चुके हो उन सबकी चेतना भी तुम्हारे अंदर रहती है। जब तुम चैत्यके संपर्कमें आते हो तो तुम जितने जीवन जी चुके हो उन सबके बारेमें सचेतन हो जाते हो, वह उन सब घटनाओंकी पूर्णतः जाग्रत स्मृति रखता है जिनमें चैत्यने भाग लिया था — सारे जीवनकी नहीं, ऐसी नहीं कि तुम स्वयंको छोटी-छोटी कहानियां सुना सको: कि पहले तुम बन्दर थे और फिर कुछ अधिक ऊंची योनिमें आये, और इसी तरह, गुहावासी मनुष्य... नहीं, इस तरहकी कहानियां नहीं। लेकिन पूर्व जन्मोंकी वे सभी घटनाएं सुरक्षित रहती हैं जिनमें चैत्यने भाग लिया था, और जब तुम अपनी चैत्य सत्ताके साथ सचेतन संपर्कमें आओ तो इसे एक प्रकारके चलचित्रकी तरह याद किया जा सकता है। लेकिन उसमें कोई निरंतरता नहीं होती सिवाय उन जीवनोंके जिनमें चैत्य पूरी तरह सचेतन, सक्रिय, स्थायी रूपसे सक्रिय रहा हो, यानी, चेतनाके साथ निरंतर संयुक्त रहा हो; तो स्वभावतः, चेतनाके साथ सतत संयुक्त होनेके कारण वह सचेतन रूपसे व्यक्तिके वास्तविक जीवनमें घटी हर चीजको याद रखता है, और स्मृतियां — जब तुम इन चीजोंका अनुसरण करते हो तो चैत्य पुरुषकी स्मृतियां ज्यादा-ज्यादा समन्वित होती हैं और यदि यह संभव हो तो जिसे भौतिक स्मृति

कह सकते हैं उसके अधिकाधिक निकट होती, जीवनके सभी बौद्धिक और भावात्मक तत्त्वोंमेंसे किसी एक भी स्थितिकी, तथा कुछ उन भौतिक घटनाओंकी स्मृति रहती है जिनमें इस सत्ताके लिये बाह्य चेतनामें अभिव्यक्त होना संभव था; तब, उन क्षणोंमें, समस्त भौतिक परिप्रेक्ष्य चेतनामें पूरी तरह, समूचा सुरक्षित रह जाता है।

माताजी, यहां श्रीअरविंद "पीछेसे सबको सहारा देनेवाले चैत्य पुरुष" के बारेमें कहते हैं। इसका क्या अर्थ है?

हां, चैत्य पुरुष समस्त संगठनके पीछे है, चैत्य पुरुष मानव जीवन और चेतनाके इस त्रिविध संगठनके पीछे और अपनी चेतनाद्वारा, जो अमर है, उन्हें सहारा देता है। चैत्यके कारण ही हमारे अन्दर निरंतरताका इतना स्पष्ट भाव रहता है। अन्यथा यदि आज जो हो उसकी तुलना उस अवस्थासे करो जब तुम तीन वर्षके थे, तो स्पष्ट है कि तुम अपने-आपको किसी प्रकार न पहचान सकोगे, न भौतिक रूपसे, न प्राणिक रूपसे और न मानसिक रूपसे। कोई किसी प्रकारका सादृश्य नहीं है। लेकिन पीछे चैत्य मौजूद है जो विकासको, सत्ताकी वृद्धिको सहारा देता है और चेतनाकी निरंतरताका भाव देता है, तुम्हें यह अनुभव कराता है कि एकदम भिन्न, एकदम भिन्न होनेके बावजूद तुम वही सत्ता हो। बादमें अगर तुम अपना पर्याप्त अवलोकन करो, तो तुम देख सकोगे कि जो चीजें तुम तब समझ और कर सकते थे वे ऐसी चीजें हैं जो आज बिलकुल कल्पनातीत मालूम होती हैं, और आज तुम उस तरहकी चीजें कभी न कर पाओगे क्योंकि तुम वही व्यक्ति बिलकुल नहीं हो। फिर भी, चूंकि भीतर चैत्य चेतना थी जो अमर है, इसलिये तुम्हें ऐसा लगता है कि हमेशा वही सत्ता रहती है जो पहले थी और जो अब भी बनी हुई है और आगे भी न्यूनाधिक क्रमिक और न्यूनाधिक सचेतन परिवर्तनोंके साथ बनी रहेगी।

माताजी, क्या चैत्य ही किसी व्यक्तिके जीवनको दिशा देता है?

हां, व्यक्तिके लिये प्रायः सारे समय बिलकुल अचेतन रूपमें; लेकिन चैत्य ही उसके अस्तित्वकी व्यवस्था करता है — केवल उनमें जिन्हें हम मुख्य धाराएं कह सकते हैं, क्योंकि ब्यौरेमें हस्तक्षेप करनेके लिये बाहरी सत्ता,

अर्थात्, प्राणिक और भौतिक सत्ता, तथा चैत्य सत्ताके बीच एक सचेतन ऐक्य होना चाहिये, लेकिन साधारणतः यह होता नहीं है। इसलिये बाहरी तौरपर, ब्यौरेके लिये... उदाहरणके लिये, किसीने मुझसे बहुत ही परेशानीके साथ कहा था : "अच्छा, अगर चैत्य सत्ता या चैत्यमें स्थित ईश्वर ही हमारे जीवनका पथ-प्रदर्शन करते हैं, तो क्या वही यह निश्चय करते हैं कि मेरी चायके प्यालेमें चीनीके कितने टुकड़े डाले जाएं?" यही प्रश्न था, शब्दशः। तो इसका उत्तर यही था : "नहीं, क्योंकि यह इस प्रकारका ब्यौरेका हस्तक्षेप नहीं है।"

यह ऐसा है जैसे तुम अपनी मुट्ठी लोहे या लकड़ीके बुरादोंके ढेरमें घुसाओ, तो लोहे या लकड़ीके बुरादेके सभी अत्यंत सूक्ष्म कण तुम्हारी मुट्ठीका रूप लेनेके लिये व्यवस्थित हो जाते हैं, लेकिन वे यह चीज जान-बूझकर या सचेतन रूपसे नहीं करते। इस प्रकारकी चीज ठेलनेवाली चेतनाके परिणामके द्वारा होती है। ऐसा कोई निर्णय नहीं होता कि हर तत्त्व ठीक इस जगह होगा, यूं होगा; यह मुट्ठीको ठेलनेवाली ऊर्जाका प्रभाव है जो तत्त्वोंको व्यवस्थित करता है। लेकिन चीज है ऐसी ही। जीवनमें चैत्य चेतना काममें लगी है, तुम्हारे जीवनकी सब परिस्थितियोंको व्यवस्थित करती है लेकिन ब्यौरेके सुविवेचित चुनावके साथ नहीं; और वस्तुतः मनुष्योंके भौतिक जीवनकी व्यवस्थामें बहुत ही कम चीजें सुवि-विवेचित और सचेतन रूपसे होती हैं। बहुधा ऐसा ही होता है। अगर तुम किसीसे पूछो। "तुमने ऐसा क्यों किया?" — "ऐसा ही हो गया।" हमेशा ऐसा ही होता है : "ऐसा ही हो गया।" कम-से-कम सौमेंसे पचहत्तर बार। बात यह है, मनुष्य चलने, फिरने, और वस्तुओंको अमुक तरहसे करनेका इतना आदी हो जाता है कि वह इसे देखतातक नहीं। लेकिन अगर आदमी अपना अवलोकन करने लगे, तो वह देखता है कि यह सच है। बहुत कम चीजें होती हैं जो किसी स्पष्ट और इच्छित निर्णयका परिणाम होती हैं, बहुत ही कम, केवल वही चीजें जिन्हें मनुष्य महत्त्वपूर्ण समझता है, वहां भी बहुत बड़ा हाशिया होता है। भौतिक चेतनाके साथ मिली हुई अचेतनाकी राशि बहुत अधिक होती है, लेकिन चूंकि तुम उसके आदी हो अतः उसका ख्यालतक नहीं करते। लेकिन जैसे ही तुम विश्लेषण करना शुरू करते हो, देखते हो, अध्ययन करते हो, तुम आतंकित हो उठते हो। कितनी बार तुम्हें एक प्रश्नका सामना करना पड़ता है। है न, तुम यंत्रवत्, अभ्यासके कारण चीजें करते हो, कभी-कभी पसंदके कारण — कभी-कभी, लेकिन अचानक तुम्हारे आगे एक ब्योरेका एकदम नगण्य-सा प्रश्न आता है : "मैं यह करूं या वह करूं?" बस यही। तुम

एक मामूली-सी चीज ले सकते हो जैसे . . . तुम खा रहे हो और तुम अपने-आपसे पूछते हो : "मैं खाता चलूं या खाना बंद कर दूं ?" जबतक कि तुम्हारे अंदर मानसिक रचनाएं न हों, तुम कितनी बार एक सप्रयोजन और सचेतन फैसला कर सकते हो ? और तुम अचानक अनुभव करते हो : "अरे, मैं तो इस बारेमें कुछ भी नहीं जानता," और : "मुझे नहीं मालूम; मैं यह कर सकता हूं, मैं वह कर सकता हूं; मैं वह और वह और वह कर सकता हूं। लेकिन मेरे अंदर कौन चुनाव करेगा ?" लेकिन फिर अगर मानसिक रचनाएं तुम्हारे जीवनपर शासन कर रही हैं, तो तुम अपने-आपसे ये प्रश्न भी नहीं करते, तुम एक यंत्रकी तरह जीते हो, अपने लिये बनायी हुई अभ्यासगत दिनचर्याके अनुसार जीते हो। यह एक-आध बार नहीं, दिनमें हजारों बार होता है।

उदाहरणके लिये, तुम्हारा किसीके साथ संपर्क है, उस व्यक्तिके लिये तुम्हारे अंदर बहुत सद्‌भावना है; तुम अपने-आपको जरा कठिन स्थितिमें पाते हो और यथासंभव अच्छे-से-अच्छा करना चाहते हो। अगर तुम सहज भावसे काम करो तो तुम्हारे सामने कोई प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि तुम यूं काम करते हो, एक चीज दूसरीको खींचती चली जाती है, और तुम सोचे बिना चलते जाते हो। तुम सचेतन रूपसे अच्छे-से-अच्छा करना चाहते हो . . .। तुम अपना निर्णय किसपर आधारित रखोगे ? कौन-सा ज्ञान तुम्हें यह निश्चय करने देगा : मुझे यह करना चहिये या मुझे वह करना चाहिये, मुझे यह कहना चाहिये या मुझे वह कहना चाहिये या मुझे कुछ भी न कहना चाहिये" — ये अनगिनत संभावनाएं जो तुम्हारे आगे आती हैं ? और तुम अपने निर्णयको किसपर आधारित करोगे ? अगर तुम सचाईके साथ इसे देखो तो तुम्हें हर पगपर पता लगेगा कि तुम्हें पता नहीं है।

तुम निश्चितिके साथ, बिना हिचकिचाये, बिना प्रश्न किये, बिना किसी चीजके तभी कुछ कर सकते हो जब तुम्हारे अंदर अपनेमें पैठनेकी, अपनी आंतरिक चैत्य चेतनाकी राय लेने और तुम जो चाहते हो उसके बारेमें उसीके द्वारा निर्णय करानेकी आदत हो। तुम्हें पता होता है कि यही है जिसे करना चाहिये और उसके बारेमें कोई प्रश्न ही नहीं होता; लेकिन यही एकमात्र अवस्था है। अतः केवल तभी जब तुम सचेतन रूपसे, निरंतर अपने चैत्यको पथ-प्रदर्शन करने दो, तभी तुम सचेतन रूपसे हमेशा उचित चीज कर पाते हो; लेकिन यही एकमात्र अवस्था है।

दूसरी अवस्थामें, यदि तुमने अध्ययन और अवलोकन करनेकी आदत डाल ली है, तो जीवनकी सभी छोटी-छोटी चीजें तुम्हारे सामने रहती हैं

जिनकी निरंतर पुनरावृत्ति होती रहती है। तुम एक प्रकारकी आदतसे यंत्रवत् जीना नहीं चाहते, तुम अपनी इच्छाका उपयोग करते हुए, सचेतन रूपमें जीना चाहते हो। हां तो, हर क्षण तुम किसी ऐसी समस्याके सामने होते हो जिसका समाधान तुम नहीं कर पाते, मेरा मतलब है शुद्ध भौतिक रूपसे। किसी ऐसी कठिनाईको ले लो जो तुम्हारे शरीरमें है — जिसे हम विकार कहते हैं — जो किसी बेचैनी या अस्वस्थताके रूपमें प्रकट होता है; वह कोई बीमारी नहीं होती, वह अस्वस्थता होती है, एक बेचैनी होती है, कोई ऐसी चीज जो भली-भांति काम नहीं कर रही। तब अगर तुम्हारे अन्दर चैत्य ज्ञान न हो जो बिना किसी तर्क-वितर्कके सीधी वही चीज करवाता है जो करनी चाहिये, अगर तुम उस चीजके बारेमें मनसे या उस चीजसे सलाह लो जिसे तुम वह ज्ञान समझते हो जो तुम्हारे अंदर है, तो...। ऐसा उदाहरण लो जो चिकित्साके क्षेत्रका है, यानी : "मुझे यह करना चाहिये या वह, यह दवाई लेनी चाहिये या वह, भोजन बदलना चाहिये, यह खाना चाहिये या वह ?" ...फिर तुम देखो। अगर तुमने अमुक संख्यामें बहुत प्रारंभिक नियमोंके सिवाय और कभी कुछ नहीं जाना, तो तुम्हारा चुनाव बहुत सरल होगा, लेकिन अगर संयोगसे तुमने कुछ पढ़ रखा हो और जानते हो, चाहे वे केवल विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियां ही हों...विभिन्न देशोंकी पद्धतियां हों, विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियां, तुम जानते ही हो, ऐलोपैथी, होमियोपैथी, फलानी और ढिमाकी; तो एक तुम्हें कुछ बताती है, दूसरी कुछ और। तुम ऐसे लोगोंको जानते हो जिन्होंने तुमसे कहा है : "यह मत करो, वह करो", दूसरे कहते हैं : "इसे तो हर्गिज मत करो, उसे करो," इत्यादि और इस तरह तुम स्वयंको समस्याके सामने पाते हो और तुम स्वयंसे पूछते हो : "लो, इन सबको लेकर मैं स्वयं क्या जानता हूं, मैं क्या निश्चय करनेवाला हूं ? मैं कुछ नहीं जानता।"

तुम्हारे अन्दर केवल एक ही चीज है जो जानती है, वह है तुम्हारी चैत्य सत्ता; वह कोई गलती नहीं करती, वह तुरंत, तत्काल तुम्हें बता देगी, अगर तुम एक शब्द बोले बिना, अपने विचारों और तर्कोंके बिना उसका कहा मानो, तो वह तुमसे उचित चीज करायेगी। लेकिन बाकीके सब...तुम भटक जाते हो। और हर चीजके लिये : तुम किसका अध्ययन करनेवाले हो, किसका अध्ययन नहीं करनेवाले, क्या काम करनेवाले हो, कौन-सा पथ चुननेवाले हो। लेकिन तब हर तरहकी संभावनाएं आ जाती हैं, वह सब जो तुमने अध्ययन किया है, या जीवनमें देखा है, तुमने सभी ओरसे जो सुझाव पाये हैं, ये सब चीजें मौजूद रहती हैं, यूं, तुम्हारे

चारों ओर नाचती रहती हैं। और तुम किस चीजसे निश्चय करोगे? मैं ऐसे लोगोंकी बात कर रही हूं जो पूरी तरहसे सच्चे होते हैं और जिनमें पहलेसे कल्पित भाव, पक्षपात और स्थापित नियम नहीं होते जिनका वे यांत्रिक दिनचर्याकी तरह अनुसरण करते हों, यह जाननेका प्रयास भी न करते हों कि सत्य क्या है और जिनके लिये अपनी मानसिक रचना ही सत्य है। तब चीज बहुत सरल होती है, व्यक्ति पथपर सीधा चलता जाता है, दीवारसे अपनी नाक टकराता है लेकिन उसे तबतक भान नहीं होता जबतक कि नाक कुचल नहीं जाती। लेकिन अन्यथा यह बहुत अधिक कठिन है।

श्रीअरविंदका यही मतलब था जब उन्होंने कहा कि मनुष्य हमेशा अज्ञानमें रहता है और जबतक अज्ञानके मनका स्थान प्रकाशका मन नहीं लेता तबतक व्यक्ति सच्चे रास्तेका अनुसरण नहीं कर सकता, और यह कि किसी भी सर्वांगीण रूपांतरके पहले यह तैयारी अनिवार्य है।

बस, इतना ही? (एक बालकसे) तुम्हें कुछ कहना है? नहीं?

तो फिर, बहुत देर हो गयी है।

६ जुलाई, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप' मेंसे 'सत्ताके स्तर और भाग' पढ़ती हैं।

मधुर मां, यहां लिखा है: "अंततः चैत्य पुरुष या अंतरात्मा चैत्य जगत्‌में चली जाती है, अगले जन्मके निकट आनेतक वहीं विश्राम करती है।" तो, माताजी, तब केंद्रीय सत्ताका क्या होता है?

यह पूरी तरह अलग-अलग व्यक्तियोंपर निर्भर है। हमने कहा था कि केंद्रीय सत्ता और चैत्य सत्ता एक ही हैं लेकिन जो भाग भगवान्‌में निवास करता और उनके अन्दर है वह उनके अन्दर निवास करता और उनमें है। पार्थिव जीवनमें, पृथ्वीपर विकासके लिये चैत्य भगवान्‌का प्रतिनिधि है। लेकिन केंद्रीय सत्ताका वह भाग जो भगवान्‌के साथ

अभिन्न है, वह भगवान्‌के साथ अभिन्न ही बना रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। जीवन-कालमें भी वह भगवान्‌के साथ एक होता है, और मृत्युके बाद भी वह वही बना रहता है जो जीवन-कालमें था, उसके लिये इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चैत्य सत्तामें बारी-बारीसे अनभूति और आत्मसात्-करण, अनुभूति आत्मसात्-करण होता रहता है। लेकिन जीवात्मा भगवान्‌में है और भगवान्‌में ही बनी रहती है, और वहांसे हिलतीतक नहीं; और वह प्रगतिशील नहीं है। वह भगवान्‌में है, वह भगवान्‌के साथ अभिन्न है, वह भगवान्‌के साथ अभिन्न बनी रहती है, अलग नहीं होती। उसके लिये इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि भौतिक शरीर है या नहीं।

तो, मधुर मां, क्या हर एककी केंद्रीय सत्ता एक-सी ही है?

नहीं, हमें बताया गया है कि वह बहुलतामें अभिन्न है। वह हर एक सत्ताका शाश्वत सत्य है। एक दृष्टिकोणसे वे अभिन्न हैं, एक और से विभिन्न हैं; क्योंकि प्रत्येक सत्ताका सत्य व्यक्तिगत सत्य है, परंतु वह भगवान्‌के साथ अभिन्न है। वह अभिव्यक्तिसे परे है पर वही अभिव्यक्तिका मूल है। वह ऐसी एकता है जो एकरूपता नहीं है।

वस्तुतः, यह वही चीज है जो मैं पिछली बार समझा रही थी; हर एक भिन्न है और फिर भी हर एक अभिन्न (एक-सा) है। अगर तुम भगवान्‌की ओर विभिन्न कोणोंसे जाओ, तो तुम जिस कोणसे जाओगे उसके कारण भगवान् भिन्न प्रतीत होंगे। अभिव्यक्तिके लिये भी यही बात है। लेकिन मैं कह सकती हूं कि उस कोणके द्वारा तुम भी भगवान्‌के पूर्ण ऐक्यको प्राप्त करते हो। मिलन-बिंदु भिन्न होता है लेकिन मिलन-बिंदुके परे है एकमात्र समग्रता।

इसे शब्दोंमें रखना बहुत कठिन है। लेकिन यह एक ऐसी अनुभूति है जिसे तुम पा सकते हो। यह ऐसा है मानों असंख्य द्वार या मार्ग हैं जिनके द्वारा तुम भगवान्‌तक पहुंच सकते हो। तो जब तुम भगवान्‌की ओर जाते हो तो एक कोण-विशेषसे जाते हो, एक विशेष द्वारसे होकर जाते हो, लेकिन जैसे ही तुम अन्दर पहुंच जाते हो, तो तुम्हें अनुभव होता है कि यह एक और अभिन्न इकाई है, उसतक जानेके मार्ग या विशेष पहुंचके तरीकोंमें ही भेद है।

मधुर मां, "जीवात्मा . . . जिस क्षण वह अभिव्यक्तिकी सक्रियता

की व्यवस्था करती है, वह अपने-आपको बहुमुख भगवान्‌के एक केंद्र के रूपमें जानती है, परमेश्वरके रूपमें नहीं।"

मैंने अभी-अभी ठीक यही तो कहा है। मैं सारी चीजको फिरसे नहीं शुरू करनेवाली।

क्या ?

मधुर मां, जब श्रीअरविंद अलीपुर[1] जेलमें थे, तो पंद्रह दिन तक विवेकानन्द उनके पास आते और उन्हें कोई खास चीज समझाते रहे। यह विवेकानन्दका कौन-सा भाग था, चैत्य या आत्मा ?

बहुत संभव है कि वह उनका मन हो। वह उनका मन जरूर हो सकता था क्योंकि उन्होंने अपने मनको अपने चैत्य पुरुषके चारों ओर एकत्रित किया था। इसलिये हो सकता है कि उनका मन अनिश्चित कालतक बना रहा हो। वह चैत्य सत्ताकी अमरतामें भाग लेता है। बहुत संभव है कि वह उनका मन हो।

माताजी, क्या हम अहंके विलीन हुए बिना जीवात्माके साथ संपर्क साध सकते हैं ?

यही तो श्रीअरविंद कह रहे हैं। वे कहते हैं कि अहं भौतिक जीवन, शारीरिक जीवनके बाद भी बना रहता है; यह बिलकुल ठीक है। एक प्राणिक अहं होता है और एक मानसिक अहं होता है, ये बहुत लंबे समय तक बने रह सकते हैं। लेकिन तुम अहंके विलीन हुए बिना भी अनुभूतियां पा सकते हो। अन्यथा कौन अनुभूतियां पाता ? ऐसे कितने

---

[1]श्रीअरविंद राजद्रोहके अपराधमें १ मई, १९०८ को पकड़े गये थे और एक वर्षके लिये अलीपुर जेलमें रखे गये थे। अंगरेज सरकारका कहना था कि अपने भाषणों और लेखोंके कारण वे ही सारे क्रांतिकारी आंदोलनके लिये जिम्मेदार थे। १९०२ में विवेकानन्दका देहांत हो गया था। श्रीअरविंदने बातचीतमें बताया था कि जेलमें विवेकानन्द उनके पास आया करते थे। यह प्रश्न उसीके बारेमें है। —अनु०

लोग हैं जिन्होंने अपने अहंको विलीन कर दिया है? मेरा ख्याल है, बहुत अधिक नहीं हो सकते।

जब तुम्हें अनुभूति होती है तो यह ऐसा होता है मानों अनुभूतिके लिये तुम अपने अहंमेंसे होकर गये, और अगर तुम जारी रख सको, तो अंततः अहंकी कठोरता — धुंधलापन और कठोरता — को कम करके, अनुभूति-योंको बढ़ाकर उसे ज्यादा लचीला और भेद्य बना लोगे। तुम इस चीज-को बहुत स्पष्टताके साथ अनुभव करते हो, कि तुम किसी ऐसी चीजमेंसे गुजरते हो जो सख्त छिलकेकी तरह है, जो तुम्हें अनुभूति पानेसे रोकती है; तुम पार होते हो, अनुभूति पाते हो, और जब वापिस आते हो, तो फिरसे तुम्हें यही लगता है कि तुम उस छिलकेमेंसे गुजर रहे हो जो तुम्हें अन्दर बन्द कर लेता है, यह तुम्हें लंबे समयके लिये बन्दी बना लेता है। चीज ऐसी है। लेकिन जो सचेतन रूपसे अपने चैत्यके साथ संपर्क स्था-पित करनेमें सफल हो गये हैं और इस संपर्कको बनाये रखते हैं...

पूरी तरहसे अहंके उस पार चले जानेमें ताकि वह आगेसे हस्तक्षेप न करे, काफी लंबा समय लगता है, यह तत्काल कभी नहीं होता। और तब तुम अनुभव करते हो कि जो चीज, अन्दरसे देखनेपर, तुम्हारा दम घोटती है; और बाहरसे देखनेपर नगण्य-सी घनतावाली होती है, वह सत्ताको पूर्ण रूपसे अनुभूतिकी तीव्रताका अनुभव करनेसे रोकती है; यह एक परतकी तरह है जो स्पन्दनोंकी तीव्रता और चेतनाकी तीव्रताको कम कर देती है, और तुम उसे अनुभव करते हो। तुम्हें लगता है कि यह बहुत ही स्थिर और बहुत अपार-दर्शक चीज है। निश्चय ही बहुत-से लोगोंको अनुभूतियां होती हैं लेकिन वे उन्हें याद नहीं रहतीं; यह इसलिये है क्योंकि जब वे अहंकी इस परतमेंसे गुजरते हैं, तो वे सब कुछ भूल जाते हैं, सब कुछ खो देते हैं, अपनी अनुभूतिकी स्मृति खो देते हैं। लेकिन एक बार आदत डाल लो, तो शायद स्मृति थोड़ी मद्धिम भले हो जाय, उसमें वही तीव्रता और यथार्थता न रहे, पर वह बनी रहती है।

बस इतना ही? और कुछ नहीं?

माताजी, उस दिन आपने कहा था कि जब हम किसी व्यक्ति या वस्तुके बारेमें सोचते हैं, तो इस विचारका एक भाग वहां तुरंत चला जाता है।

हां।

उदाहरणके लिये, मैं किसी ऐसेके बारेमें सोचता हूं, जो कलकत्तेमें है, तो अगर मेरा विचार वहां जाता है, तो मुझे कुछ तो ज्ञान होना चाहिये . . .

विचार केवल मानसिक जगत्के विचारके बारेमें सचेतन होता है। तो तुम कलकत्तेके मानसिक वातावरणके बारेमें, जिसके पास तुम जाते हो उसके विचारोंके बारेमें सचेतन हो सकते हो, लेकिन और किसी चीजके बारेमें नहीं, ऐसी किसी चीजके बारेमें बिलकुल कुछ भी नहीं जान सकते जो प्राण और शरीरके साथ संबन्ध रखती है।

प्राणके बारेमें सचेतन होनेके लिये तुम्हें वहां प्राणमें जाना होगा, और यह इस प्रकारका बाहर जाना है जो शरीरको तीन-चौथाईसे अधिक समाधिमें छोड़ जाता है। और अगर तुम भौतिक रूपसे चीजें देखना चाहो, तो तुम्हें अपने सूक्ष्म जड़तम भौतिकसे बाहर जाना होगा और तब यहांपर तुम अपना शरीर पेशी-स्तंभकी अवस्थामें छोड़ जाते हो; और ये चीजें किसी ऐसेके साथ रहे बिना नहीं की जा सकतीं जो उन्हें समझता हो और तुम्हारी रक्षा कर सकता हो।

लेकिन मानसिक बहिर्गमन हमेशा चलता रहता है। वह केवल मानसिक जगत्के साथ तुम्हारा संपर्क जोड़ता है। शायद अगर तुम बहुत ज्यादा सचेतन हो और तुम जिस व्यक्तिसे मिलनेके लिये जाते हो वह भी बहुत सचेतन हो, और अगर उस क्षण उसने कलकत्तेमें होनेवाली किसी घटनाके बारेमें मत या विचार बनाये हों, तो तुम परोक्ष रूपसे वहां जो हो रहा है उससे इस व्यक्तिके विचारोंके द्वारा अवगत होते हो, लेकिन तुम प्रत्यक्ष रूपसे उस चीजको नहीं जानते।

माताजी, जब हम किसी चीजकी कल्पना करते हैं, तो क्या उसका अस्तित्व नहीं होता?

जब तुम किसी चीजकी कल्पना करते हो, तो उसका मतलब होता है कि तुम एक मानसिक रचना बनाते हो जो सत्यके निकट हो सकती है या सत्यसे दूर हो सकती है — यह तुम्हारी रचनाके गुणपर भी निर्भर है। तुम एक मानसिक रचना बनाते हो, और ऐसे लोग हैं जिनमें ऐसी रचना-शक्ति होती है कि वे जिस चीजको चरितार्थ करने-योग्य समझते हैं उसे बनानेमें सफल होते हैं। ऐसे लोग बहुत नहीं हैं पर कुछ हैं जरूर। वे किसी चीजकी कल्पना करते हैं और उनकी रचना इतनी अच्छी तरह

बनी होती है और इतनी सशक्त होती है कि वह चरितार्थ होनेमें सफल हो जाती है। ये सर्जक होते हैं; ये बहुत नहीं हैं पर कुछ हैं जरूर।

अगर हम किसी ऐसेके बारेमें सोचें जिसका अस्तित्व नहीं है या जो मर चुका हो?

ओह! तुम्हारा मतलब क्या है? तुमने अभी-अभी क्या कहा? कोई ऐसा जिसका अस्तित्व नहीं है या जो मर चुका है? ये दोनों एकदम भिन्न चीजें हैं।

मेरा मतलब जो मर चुका हो।

जो मर चुका हो!

अगर यह व्यक्ति मानसिक क्षेत्रमें बना रहे तो तुम उसे तुरंत पा सकते हो। स्वभावतः अगर वह मानसिक क्षेत्रमें नहीं है, अगर वह चैत्य क्षेत्रमें है, तो उसके बारेमें सोचना काफी नहीं है। तुम्हें यह जानना चाहिये कि उसे खोजनेके लिये चैत्य क्षेत्रमें किस तरह जाया जाय लेकिन अगर वह मानसिक क्षेत्रमें ही रह गया है और तुम उसके बारेमें सोचते हो, तो तुम उसे तुरंत पा सकते हो, और इतना ही नहीं, बल्कि तुम उसके साथ मानसिक संपर्क बना सकते हो और उसकी सत्ताका एक प्रकारका मानसिक अंतर्दर्शन पा सकते हो।

मनके अन्दर अंतर्दर्शनकी अपनी ही क्षमता होती है और वह वही दर्शन नहीं होता जो इन आंखोंसे दीखता है, परंतु वह अंतर्दर्शन होता है, वह रूपोंका बोध होता है। लेकिन यह कल्पना नहीं है। उसका कल्पना-से कोई संबन्ध नहीं होता।

उदाहरणके लिये, कल्पना तब होती है जब तुम अपने आगे एक आदर्श सत्ताका चित्रण करना शुरू करते हो जिसपर तुम अपनी सभी धारणाओं-को लगा देते हो, और तुम अपने-आपसे कहते हो: "इसे ऐसा होना चाहिये, वैसा होना चाहिये, इसका रूप ऐसा होना चाहिये, इसका विचार वैसा, इसका चरित्र ऐसा", जब तुम ब्योरेकी सभी चीजें देखते हो और सत्ताका निर्माण करते हो। लेखक सारे समय यही करते रहते हैं क्यों-कि जब वे कोई उपन्यास लिखते हैं, तो वे कल्पना करते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो चीजें जीवनसे लेते हैं परंतु कुछ कल्पनाशील, सर्जक होते हैं; वे एक चरित्र, एक पात्रका निर्माण करते हैं और फिर बादमें उसे अपनी

किताबमें जगह देते हैं। यह कल्पना करना है। उदाहरणके लिये, परिस्थितियोंके एक पूरे सम्मिलन, घटनाओंकी एक मालाकी कल्पना करना —मैं इसे अपने-आपको कहानी सुनाना कहती हूं। लेकिन इसे कागज-पर लिपिबद्ध किया जा सकता है, और तब आदमी उपन्यासकार बन जाता है। बहुत भिन्न-भिन्न प्रकारके लेखक होते हैं। कुछ हर चीजकी कल्पना करते हैं, कुछ जीवनसे सब प्रकारके अवलोकन इकट्ठे करके उन-से अपनी किताब बना लेते हैं। किताब लिखनेके हजारों तरीके हैं। लेकिन निश्चय ही कुछ लेखक शुरूसे अंततक हर चीजकी कल्पना करते हैं। सब कुछ उनके लिये सिरमेंसे आता है और वे अपनी सारी कहानी भौतिक रूपसे देखी हुई किसी भी चीजके सहारेके बिना गढ़ लेते हैं। यह सचमुच कल्पना है। लेकिन जैसा कि मैं कहती हूं, अगर वे बहुत सशक्त हैं और उनके अंदर सृजनकी काफी क्षमता है, तो यह संभव है कि एक-न-एक दिन एक ऐसा भौतिक मनुष्य आयेगा जो उनके सृजनको चरितार्थ करेगा। यह भी सच है।

कल्पनासे तुम्हारा क्या अभिप्राय है? क्या तुमने कभी किसी चीजकी कल्पना नहीं की?

और क्या होता है?

वह सब जिसकी हम कल्पना करते हैं।

तुम्हारा मतलब है कि तुम किसी चीजकी कल्पना करते हो और चीज उस तरह हो जाती है, एं? या फिर सपनेमें...

कल्पनाका कार्य, उसका उपयोग क्या है?

जैसा कि मैंने कहा, अगर तुम उसका उपयोग करना जानो, तो तुम अपने लिये अपना ही आंतरिक और बाह्य जीवन बना सकते हो; तुम अपनी कल्पनाद्वारा अपना अस्तित्व बना सकते हो, यदि तुम उसका उपयोग करना जानो और तुम्हारे अंदर शक्ति हो। वास्तवमें यह सर्जन करनेका, दुनिया-में चीजोंको आकार देनेका प्रारंभिक तरीका है। मुझे हमेशा ऐसा लगता है कि अगर तुम्हारे अंदर कल्पनाकी क्षमता न हो तो तुम कोई प्रगति नहीं कर सकते। तुम्हारी कल्पना हमेशा तुम्हारे जीवनके आगे बढ़ती है। जब तुम अपने बारेमें सोचते हो, तो प्रायः तुम यह कल्पना करते हो कि तुम क्या बनना चाहते हो, है न, और यह चीज आगे बढ़ती है, फिर तुम अनु-

सरण करते हो, फिर वह आगे बढ़ती जाती है और तुम पीछे-पीछे चलते जाते हो। कल्पना तुम्हारे लिये उपलब्धिका मार्ग खोल देती है। जो लोग कल्पनाशील नहीं हैं — उन्हें आगे बढ़ाना बहुत मुश्किल होता है; वे बस उतना ही देखते हैं जो उनकी नाककी सीधमें हो, वे बस वही अनुभव करते हैं जो वे क्षण-क्षण होते हैं और वे आगे नहीं बढ़ सकते क्योंकि वे तात्कालिक चीजसे जकड़े रहते हैं। बहुत कुछ इसपर निर्भर है कि तुम कल्पना कहते किसे हो। फिर भी . . .

वैज्ञानिकोंमें कल्पना होती होगी!

बहुत-सी। अन्यथा वे किसी चीजकी खोज न कर पाएंगे। वस्तुतः, जिसे कल्पना कहते हैं वह अपने-आपको उपलब्ध वस्तुसे बाहर, उपलब्ध की जा सकनेवाली चीजोंकी ओर प्रक्षिप्त करनेकी क्षमता है, और फिर प्रक्षेपणके द्वारा उन्हें खींच लेना है। स्पष्ट है कि तुम्हारे अंदर प्रगतिशील और प्रतिगामी कल्पनाएं होती हैं। ऐसे लोग हैं जो हमेशा सभी संभव अनर्थोंकी कल्पना करते हैं, और दुर्भाग्यवश उनके पास उन्हें लानेकी शक्ति भी होती है। वह एक प्रकारका ऐण्टिना है जो किसी ऐसे जगत्‌में जाता है जिसका अभीतक अनुभव नहीं किया गया है, वहांसे किसी चीजको पकड़कर यहां खींच लाता है। तब स्वभावतः पृथ्वीके वातावरणमें यह एक वृद्धि होती है और ये चीजें अभिव्यक्तिकी ओर मुड़ती हैं। यह एक ऐसा यंत्र है जिसे अनुशासनमें रखा जा सकता है मर्जीके अनुसार जिसका उपयोग किया जा सकता है; व्यक्ति उसे अनुशासनमें रख सकता है, उसका निर्देशन कर सकता है, उसे निश्चित दिशा दे सकता है। यह एक ऐसी योग्यता है जिसे व्यक्ति अपने अंदर विकसित कर सकता है और उसे उपयोगी बना सकता है, यानी, उसका उपयोग निश्चित अभिप्रायके लिये कर सकता है।

मधुर मां, क्या व्यक्ति ईश्वरकी कल्पना करके उनके साथ संपर्क बना सकता है?

निश्चय ही, अगर तुम ईश्वरकी कल्पना करनेमें सफल हो जाओ तो तुम्हारा संपर्क बन जाता है, और बहरहाल, तुम जिस चीजकी कल्पना करते हो उसके साथ संपर्क बना सकते हो। वास्तवमें किसी ऐसी चीजकी कल्पना करना जिसका कहीं अस्तित्व नहीं है असंभव है। तुम ऐसी किसी भी चीजकी कल्पना नहीं कर सकते जिसका कहीं अस्तित्व नहीं है। यह संभव है कि

पृथ्वीपर उसका अस्तित्व न हो, हो सकता है वह कहीं और हो, लेकिन तुम्हारे लिये किसी ऐसी चीजकी कल्पना करना असंभव है जो तत्वतः विश्व-में कहीं-न-कहीं मौजूद न हो; अन्यथा वह सूझती ही नहीं।

तब, मधुर मां, इसका यह अर्थ है कि सर्जित विश्वमें किसी भी नयी वस्तुकी वृद्धि नहीं होती ?

सर्जित विश्वमें ? हां। विश्व प्रगतिशील है; हमने कहा कि निरंतर, अधि-काधिक वस्तुओंकी अभिव्यक्ति होती है। लेकिन तुम्हारी कल्पना इस योग्य हो कि अभिव्यक्तिके परे जाकर किसी ऐसी चीजको खोजे जो अभिव्यक्ति होनेवाली है, हां तो, यह हो सकता है, वास्तवमें ऐसा होता है — मैं तुमसे यही कहनेवाली थी कि कई सत्ताएं हैं जो इसी तरह संसारमें बहुत अधिक प्रगति करवा सकती हैं, क्योंकि जिस वस्तुकी अभिव्यक्ति नहीं हुई है उस वस्तुकी कल्पना करनेकी क्षमता उनमें होती है। लेकिन ऐसी अधिक नहीं हैं। किसी ऐसी चीजकी कल्पना कर सकनेके लिये जो विश्वमें नहीं है पहले मनुष्यको अभिव्यक्त विश्वके परे जा सकना चाहिये। कई ऐसी चीजें पहलेसे ही हैं जिनकी कल्पना की जा सकती है।

विश्वमें हमारा पार्थिव संसार भला क्या है ? एक बहुत ही छोटी चीज। पार्थिव अभिव्यक्तिमें जिस चीजका अस्तित्व नहीं है उसकी कल्पना कर सकनेकी क्षमता भी अपने-आपमें बहुत कठिन है, बहुत ही कठिन। कितने करोड़ों वर्षोंसे यह छोटी-सी पृथ्वी अपना अस्तित्व रखती आयी है ? और यहां कोई भी दो चीजें एक समान नहीं हुई। यह अपने-आपमें एक बड़ी बात है। अपने मनद्वारा पार्थिव वातावरणके बाहर चले जाना बहुत कठिन है; व्यक्ति जा तो सकता है, लेकिन यह है बहुत कठिन। और फिर अगर व्यक्ति केवल पार्थिव वातावरणके बाहर नहीं बल्कि वैश्व जीवनके बाहर जाना चाहे तो!

पृथ्वीकी रचनासे लेकर अबके पार्थिव जीवनके साथ उसकी समग्रतामें केवल संपर्क साध सकना, इसका क्या अर्थ हो सकता है ? और फिर इसके भी परे जाकर शुरूसे लेकर अबतकके वैश्व जीवनके साथ संपर्क साधना... और फिर विश्वमें किसी नयी वस्तुको ला सकना, व्यक्तिको और भी अधिक परे जाना होगा।

सरल नहीं है !

बस, काफी है ?

(बालकसे) मान गये ?

१३ जुलाई, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप'मेंसे 'सत्ताके स्तर और भाग' पढ़ती हैं।

अब फिर!

> **मधुर मां, "सार्वभौम आत्मा और सार्वभौम प्रकृति" का क्या अर्थ है?**

वैश्व। सार्वभौम वैश्वका पर्याय है।

> **लेकिन "सार्वभौम आत्मा" का क्या अर्थ है?**

सार्वभौम आत्मा? वह सार्वभौम आत्मा है, वह वैश्वात्मा है, वह, वह आत्मा है जो सारे संसारमें है। एक विश्व है। तुम जानते हो विश्व क्या है? हां तो, इस विश्वकी एक आत्मा है, और वह आत्मा सार्वभौम आत्मा है; इस विश्वकी एक चेतना है और उसकी वह चेतना सार्वभौम है, वैश्व चेतना है।

व्यक्ति अच्छी तरह कल्पना कर सकता है कि विश्व किसी अधिक विशाल वस्तुके अंदर अस्तित्वमात्र है, जिस तरह व्यक्ति बहुत अधिक विशाल समग्रतामें एक अस्तित्वमात्र है। अब, प्रत्येक इकाईकी अपनी चेतना और अपनी आत्मा होती है जो अन्य सभीको अपने अंदर लिये रहती है, वैसे ही जिस तरह सामूहिक चेतना उसका निर्माण करनेवाली सभी व्यक्तिगत चेतनाओंसे मिलकर बनती है और जैसे राष्ट्रीय चेतना उसका निर्माण करनेवाली सभी व्यक्तिगत चेतनाओंसे, और उनसे भी अधिकसे बनती है। व्यष्टि समष्टिमें एक तत्त्व मात्र होता है, जैसे पृथ्वी सौर-मंडलोंका एक भाग। अतः जैसे व्यष्टि चेतना है, एक समूह चेतना है और एक संस्थानकी चेतना है, एक वैश्व चेतना है जो उसे बनानेवाली सभी चेतनाओंके संग्रहसे बनी है, कुछ और भी है, कुछ और — कुछ और सूक्ष्मतर। ठीक तुम्हारी तरह: तुम्हारे शरीरमें बहुत-से कोषाणु हैं; प्रत्येक कोषाणुकी अपनी ही चेतना है और तुम्हारी चेतना है जो तुम्हारे समग्र व्यक्तित्वकी चेतना है, यद्यपि वह इन समस्त छोटी-छोटी कोषाणु-चेतनाओंसे मिलकर बनी है।

माताजी, यहां लिखा है : ...व्यष्टिगत और वैश्व चेतना "के बीच पृथक् करनेवाली अज्ञानकी दीवार है।" तो इस दीवारको कैसे तोड़ा जाय ?

अज्ञानसे पिंड छुड़ा लो, ज्ञानमें प्रवेश करो।

सबसे पहले तुम्हें वह जानना चाहिये जो मैंने अभी बतलाया, कि तुम एक समग्रके भाग हो, कि यह समग्र एक और बड़े समग्रका भाग है, और यह बड़ा समग्र उससे अधिक बड़े समग्रका भाग है, यहांतक कि ये सब मिलकर एकमात्र समग्रता बनते हैं। एक बार तुम यह जान लो, तो तुम्हें इस बातका भान होने लगता है कि वास्तवमें तुम्हारी और तुम-से बड़ेके बीच, जिसका तुम भाग हो, कोई पृथकता नहीं हो सकती। यह प्रारंभ है। अब, तुम्हें केवल इसे सोचनेके ही नहीं, बल्कि इसे अनुभव करने और इसे जीनेके बिंदुतक पहुंचना चाहिये, और तब अज्ञान-की दीवार ढह जाती है : तब आदमी इस एकताका अनुभव हर जगह करता है और यह जान लेता है कि वह अपनेसे बहुत अधिक विशाल समग्रका, जो यह विश्व है, न्यूनाधिक रूपसे एक आंशिक भाग है। तब वह अधिक वैश्व चेतना प्राप्त करने लगता है।

(मौन).

बस ?

मधुर मां, भगवान्‌के अधिकारमें होनेका क्या मतलब है ?

तुम्हें पता नहीं है ? तुम्हारा क्या ख्याल है, तुम्हारा भगवान्‌पर अधिकार है या भगवान्‌का तुमपर अधिकार है ?

इसका मतलब क्या है ?

इसका मतलब यह है कि भगवान् तुम्हारे अन्दर प्रवेश करते और तुमपर शासन करते हैं, तुम्हारी चेतना और गतिविधियोंके स्वामी बन जाते हैं। सचमुच इसीका अर्थ है भगवान्‌के अधिकारमें होना।

मधुर मां, सत्, चित् और आनन्दका अलगाव ही अज्ञान, दुःख ले आया है। फिर...

वे अलग क्यों हुए? (हंसी)

शायद उनमें नैतिक धारणाएं नहीं थीं! (हंसी)

(लंबा मौन)

संभव तो यह है कि अगर वे अलग न हुए होते तो ऐसा विश्व न होता जैसा कि है। यह शायद एक आवश्यकता थी। लेकिन तुम जो पूछ रहे हो वह यह है कि यह कैसे हुआ कि पहलेसे यह देखा नहीं गया कि चीजें ऐसा रूप लेंगी। शायद यह देखा जा चुका था। यह अच्छा मोड़ ले सकता था, लेकिन उसने बुरा मोड़ ले लिया। तो लो! दुर्घटनाएं होती ही हैं।

जानते हो, जबतक तुम विश्वके सृजनके बारेमें अपनी नैतिक और मानसिक धारणाएं बनाना चाहोगे, तबतक तुम उसके बारेमें कुछ भी न समझ पाओगे, कभी नहीं। क्योंकि सब ओरसे और सब तरहसे वह शुभ और अशुभकी, तथा ऐसी चीजोंकी धारणाओंसे परे जाता है। हमारी जितनी भी मानसिक, नैतिक धारणाएं हैं वे विश्वकी व्याख्या नहीं कर सकतीं। और हमारे उस भागके लिये जो वस्तुतः पूर्ण अज्ञानमें रहता है, केवल यही कहा जा सकता है: "चीजें ऐसी हैं क्योंकि वे ऐसी हैं", उनकी व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि जो भी व्याख्याएं दी जाती हैं वे अज्ञानकी होती हैं और वे किसी भी चीजकी व्याख्या नहीं कर सकतीं।

मन एक चीजसे दूसरी चीजकी व्याख्या करता है, इस दूसरी चीजकी जिसकी व्याख्याकी जरूरत होती है, उसकी व्याख्या किसी और चीजसे की जाती है, और उस तीसरी चीजको जिसकी व्याख्याकी जरूरत होती है, उसे किसी औरसे समझाया जाता है, और अगर तुम इस तरह जारी रखो तो तुम सारे विश्वका चक्कर लगाकर, किसी भी चीजकी जरा भी व्याख्या किये बिना, फिरसे आरंभ-बिंदुपर आ पहुंचोगे। (हंसी) इसलिये तुम्हें एक छेद करना होगा, हवामें उठकर चीजोंको एक और ढंगसे देखना होगा। इस तरह तुम समझना शुरू कर सकते हो।

यह कैसे किया जाय?

यह कैसे किया जाय? (हंसी)

अभीप्सा बाणकी तरह है, यूं (संकेत)। तो तुम अभीप्सा करो, बहुत गंभीरतापूर्वक समझना चाहो, जानना चाहो, सत्यमें प्रवेश करना चाहो। हां? और फिर उस अभीप्साके साथ तुम यह करो (संकेत)। तुम्हारी अभीप्सा उठती है, उठती है, उठती है, सीधी ऊपर उठती है, बहुत प्रबल, और फिर वह जोरसे टकराती है और एक प्रकारके . . . कैसा कहा जाय? . . . ढक्कनसे जो लगा हुआ है, लोहे जैसा सख्त और बहुत अधिक मोटा और वह आर-पार नहीं हो पाती। और तब तुम कहते हो: "लो, अभीप्सा करनेका फायदा क्या? उससे कुछ भी तो नहीं आता। मेरा किसी सख्त चीजसे सामना होता है और मैं उसके पार नहीं जा सकता।" लेकिन तुम पानीकी उस बूंदके बारेमें जानते हो जो चट्टानपर गिरती है, अंतमें वह दरार बनाकर रहती है: वह चट्टानको ऊपरसे नीचेतक काट देती है। तुम्हारी अभीप्सा पानीकी एक बूंद है जो, गिरनेकी जगह, उठती है। तो, चढ़नेके बलपर, वह चोट करती है, चोट करती है, चोट करती है, और एक दिन छेद बना लेती है, चढ़नेके बलपर; और जब वह छेद बना लेती है तो वह अचानक इस ढक्कनमेंसे उछल पड़ती है, और ज्योतिकी अनंततामें प्रवेश करती है, और तुम कहते हो: "ओ हो, अब मैं समझा।"

बात ऐसी है।

तो तुम्हें बहुत आग्रही होना चाहिये, बहुत हठीला होना चाहिये और तुम्हारे अन्दर ऐसी अभीप्सा होनी चाहिये जो सीधी ऊपर उठे, यानी, जो सब तरहकी चीजें ढूंढती, इधर-उधर घूमती न फिरे।

केवल यही: समझ सकना, समझ सकना, समझ सकना, जानना सीखना, होना सीखना।

जब तुम एकदम चोटीपर पहुंच जाते हो, तो समझनेके लिये कुछ नहीं बच रहता, जाननेके लिये कुछ नहीं होता, तुम **होते हो** और जब तुम **होते हो** तो समझते और जानते हो।

माताजी, जब हम समझते हैं, तो हमारे अन्दर वह कौन-सी चीज है जो समझती है?

समान ही समानको जानता है। तो चूंकि तुम किसी चीजको अपने अन्दर लिये होते हो, इसीलिये तुम उसे खोज पाते हो। चूंकि तुम भली भांति समझते हो कि मेरी कहानी एक रूपक है, समझते हो न, कि यह

सारा एक रूपक है; यह किसी चीजके साथ भली-भांति मेल खाता है, लेकिन फिर भी यह है रूपक ही, क्योंकि तुम इसे भीतर और ऊपर, दोनों जगह पा सकते हो, समझे। यह केवल इसलिये कि विभिन्न भौतिक स्तरों और भौतिक आयामोंके बारेमें हमारी भौतिक धारणाएं हैं; क्योंकि जब हम समझते हैं, तो आयामोंके और ही क्रममें समझते हैं, बिलकुल अलग। अब यह दूसरा आयाम-क्रम देशके साथ मेल नहीं खाता।

लेकिन तुम किसी चीजको तबतक नहीं समझ सकते, और वह नहीं हो सकते जबतक कि वह तुम्हारे अन्दर न हो या तुम उसके अन्दर न हो — यह एक ही बात है, है न? फिर भी, तुम्हें ज्यादा आसानीसे समझानेके लिये मैं कह सकती हूं कि चूंकि यह तुम्हारे अन्दर है, चूंकि यह कहींपर, तुम्हारी चेतनाका एक भाग है इसलिये तुम इसे समझ सकते हो, नहीं तो तुम्हें कभी उसका भानतक न होता। अगर तुम भगवान्‌को अपने अन्दर न लिये होते, अपनी सत्ताके सार-तत्त्वमें न लिये होते, तो तुम्हें कभी भगवान्‌का भान न होता; यह एक असंभव साहसिक कार्य होता। और फिर अगर तुम समस्याको उलट दो, जिस क्षण तुम यह कल्पना करते और किसी-न-किसी तरह अनुभव करते हो, या, प्रारंभमें, इतना मान भी लेते हो कि भगवान् तुम्हारे अन्दर हैं और साथ ही तुम भगवान्‌के अन्दर हो, उसी क्षण उपलब्धिका दरवाजा खुल जाता है, जरा-सा, बहुत नहीं — बस, थोड़ा-सा। उसके बाद यदि अभीप्सा आती है, जानने और होनेकी तीव्र आवश्यकता अनुभव होती है, तो वह तीव्र आवश्यकता खुले भागको चौड़ा कर देती है, यहांतक कि तुम उसमें रेंगकर जा सकते हो। जब तुम उसमें घुस जाओ, तो तुम्हें पता लगता है कि तुम क्या हो। और श्रीअरविंद ठीक यही कहते हैं, कि आदमी भूल गया है, कि सत्, चित्, आनन्दके अलगावके कारण विस्मृति आती है, तुम क्या हो उसकी विस्मृति; आदमी मान लेता है कि वह कोई है, है न, कोई भी, लड़का, लड़की, पुरुष, स्त्री, कुत्ता, घोड़ा, कोई भी चीज, पत्थर, समुद्र, सूर्य, कुछ भी; यह सोचनेकी जगह कि मैं भगवान् हूं, वह अपने-आपको ये सब मान लेता है — क्योंकि, वस्तुतः, अगर हम अपने-आपको एकमेव भगवान् ही मानते रहते, तो विश्व बिलकुल भी न होता।

मैं उससे (एक बालककी ओर संकेत करके) यही कहना चाहती थी, कि अलगाव का यह तथ्य विश्वके होनेके लिये अनिवार्य मालूम होता है, अन्यथा वह हमेशा वैसा ही बना रहता जैसा था। लेकिन अगर हम इस मोड़मेंसे गुजर चुकनेके बाद, फिरसे एकता स्थापित करें, विभिन्नता, विभाजनसे लाभ उठानेके बाद, फिरसे एकता स्थापित करें,

तो यह उच्चतर गुणकी एकता प्राप्त होगी, वह एक ऐसी एकता होगी जो अपने-आपको जानती होगी, यह उस एकताकी जगह होगी जो अपने-आपको नहीं जान सकती क्योंकि वहां ऐसी कोई और चीज ही नहीं जो दूसरीको जान सके। जब 'एकता' निरपेक्ष हो, तो 'एकमेव' को जान ही कौन सकता है? वह क्या है यह समझनेके लिये हमारे पास कम-से-कम कोई ऐसा बिंब या आभास तो होना ही चाहिये जो वह नहीं है। मेरा ख्याल है कि विश्वका रहस्य यही है। शायद भगवान् अपने-आपको वास्तवमें जानना चाहते थे, इसलिये उन्होंने अपने-आपको प्रक्षिप्त किया और फिर अपने-आपको देखा, और अब वे अपने पूर्ण ज्ञानके साथ अपने-आप होनेकी संभावनाका आनन्द लेना चाहते हैं। यह बहुत ज्यादा मजेदार हो जाता है।

तो ऐसी बात है। और कोई प्रश्न?

मधुर मां, पिछली बार आपने कल्पनाके बारेमें कहा था, है ना?

हां।

तो! क्या कल्पनाके द्वारा हम अपनी कामनाओं या अभीप्साओंको चरितार्थ कर सकते हैं?

इसका मतलब? तुम ठीक-ठीक क्या कहना चाहते हो? कल्पना करना कि कामना चरितार्थ हो गयी और इस तरह उसके चरितार्थ होनेमें सहायता करना?

जी।

निश्चय ही, बिलकुल निश्चित रूपसे।

और आदर्शोंको भी?

केवल सामान्यतः, हां, लगभग पूरी तरहसे जो चीज लोगोंके अधिकारमें नहीं होती वह है उसमें लगनेवाला समय। लेकिन उदाहरणके लिये, अगर तुम्हारे अन्दर बहुत प्रबल कल्पना है और तुम अपनी कामनाकी

सिद्धिका निर्माण कर लो, पूरे व्यौरेके साथ, किसी शानदार रचनाकी तरह जो अपने-आपमें पूरी तरह अस्तित्व रखती हो, उसे पूरी तरह बना लो, है न, तो, विश्वास रखो कि अगर तुम काफी समयतक जी सको तो वह चीज चरितार्थ हो जायगी! वह अगले दिन ही चरितार्थ हो सकती है, अगले क्षण चरितार्थ हो सकती है, उसमें बरसों लग सकते हैं, उसमें शताब्दियां लग सकती हैं। लेकिन उसका चरितार्थ होना अवश्यंभावी है। और फिर, अगर तुम इस कल्पना-शक्तिमें एक तरहकी सर्जनशील प्राण-शक्ति जोड़ दो, तो तुम उसे एक बहुत सजीव शक्ति बना देते हो; और चूंकि सभी जीवंत शक्तियां चरितार्थ होनेके लिये अभिमुख होती हैं, वह पार्थिव घटनाओंपर अपने-आपको ज्यादा जल्दी चरितार्थ करनेके लिये दबाव डालती हैं, और वह चरितार्थ हो जाती है।

केवल, जैसा मैंने कहा, दो चीजें हैं। पहली, कामनाओंके बारेमें, व्यक्तिगत परिस्थितियोंके बारेमें, व्यक्ति बहुत . . . आग्रही या बहुत स्थिर नहीं होता, और कुछ समयके बाद जिस चीजमें तुम्हारी बहुत अधिक रुचि थी वह रुचिकर नहीं रह जाती। तुम किसी और वस्तुके बारेमें सोचते हो, कोई और ही इच्छा करते हो, तथा तुम कोई और ही रचना बना लेते हो। लेकिन तुमने जिस पहली चीजकी कल्पना की थी वह भली-भांति रूप ले चुकती है; वह देशमें अपना मोड़ पूरा करके चरितार्थ हो जाती है। लेकिन तबतक तुम दूसरी कोई रचना शुरू कर देते हो क्योंकि किसी-न-किसी कारणसे उस चीजमें तुम्हारी रुचि नहीं रह जाती, और जब तुम अपनी पहली इच्छाकी उपलब्धिके आमने-सामने होते हो, तबतक तुम दूसरी, तीसरी या चौथीका भी लंगर उठा चुके होते हो। तो इस बातसे सचेतन हुए बिना कि सहज रूपसे यह तो पूर्व क्रियाका फल है, तुम खीज उठते हो: "लेकिन भला क्यों, मैं इसे और नहीं चाहता, यह क्यों आयी?" लेकिन इच्छाओंके होनेके बदले अगर वे आध्यात्मिक वस्तुओंके लिये अभीप्साएं हों और तुम नियमित प्रगति करते हुए लीकपर बढ़ते चलो, तो तुमने जिसकी कल्पना की थी उसे एक दिन प्राप्त करना पूरी तरहसे निश्चित है। अगर पथपर बहुत-सी बाधाएं हों तो वह दिन कुछ दूर हो सकता है, उदाहरणके लिये अगर तुम्हारी बनायी हुई रचना धरतीके वातावरणकी अवस्थाके लिये अबतक असंगत हो तो, उसके आविर्भावके लिये परिस्थितियोंको तैयार करनेमें कुछ समय लगता है। लेकिन अगर वह कोई ऐसी वस्तु है जो पृथ्वीपर कई बार चरितार्थ हो चुकी है और जिसमें बहुत सुस्पष्ट रूपांतरकी आवश्यकता नहीं है, तो तुम उसे काफी जल्दी पा सकते हो, बशर्ते कि तुम उस लकीरका लगा-

तार अनुसरण करते रहो। और अगर तुम इसके साथ श्रद्धाकी उत्कटता और भागवत 'कृपा' पर विश्वास और 'कृपा' के प्रति उस तरहका आत्म-समर्पण जोड़ दो जो तुमसे हर चीजकी आशा 'उसी' से करवाता है, तो चीज आश्चर्यजनक हो सकती है; तुम चीजोंको अधिकाधिक चरितार्थ होते देख सकते हो, और सबसे अधिक आश्चर्यजनक चीजें भी एकके-बाद-एक चरितार्थ हो सकती हैं। लेकिन इसके लिये शर्तें हैं जिन्हें पूरा करना होगा।

तुम्हारे आत्म-समर्पणमें बहुत अधिक पवित्रता और बहुत अधिक तीव्रता होनी चाहिये, और भागवत 'कृपा' की परम प्रज्ञामें यह निरपेक्ष विश्वास होना चाहिये कि तुम्हारे लिये क्या अच्छा है, और ये सब बातें 'वह' तुमसे अधिक अच्छी तरह जानती है। तब अगर व्यक्ति अपनी अभीप्सा-को 'उसे' समर्पित करे, सचमुच पर्याप्त तीव्रताके साथ दे, तो परिणाम अद्भुत होते हैं। लेकिन व्यक्तिको उन्हें देखना आना चाहिये, क्योंकि जब चीजें चरितार्थ होती हैं तो अधिकतर लोगोंको वह बिलकुल स्वाभा-विक लगती है, वे यह भी नहीं देखते कि यह कैसे और क्यों हुआ, और वे स्वयंसे कहते हैं: "हां, स्वभावतः ऐसा होना ही था।" तो वे उस आनन्दको खो बैठते हैं... कृतज्ञताके उस आनन्दको, क्योंकि अंतिम विश्ले-षणमें, भागवत 'कृपा' के प्रति अगर व्यक्ति कृतज्ञता और धन्यवाद प्रका-शनसे भरपूर हो, तो इससे सोनेपर सुहागा लग जाता है, और हर कदम पर व्यक्ति देखता है कि चीजें अच्छी-से-अच्छी और ठीक जैसी होनी चाहिये वैसी ही हो रही हैं।

लो।

और फिरसे अपना ऐक्य साधित करनेके लिये सत्-चित्-आनन्द एक साथ आने लगता है।

लो, मेरे बच्चो। काफी है?

खतम।

२० जुलाई, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप' मेंसे "समर्पण और उद्घाटन" पढ़ती हैं।

"'निर्गुण' को ढूंढने" का क्या अर्थ है?

ओहो, मेरे बालक, आजकल पश्चिममें इसका बहुत फैशन है। ऐसे सब लोग जो कैल्डियन धर्मों और विशेषकर ईसाइयतद्वारा बताये गये भगवान्से ऊब गये हैं या उससे घृणा करने लगे हैं, जो एकमेव भगवान् है, ईर्ष्यालु, कठोर, निरंकुश और इस हदतक मनुष्यकी प्रतिमा-रूप है कि संदेह होता है कहीं यह अनातोल फ्रांसके शब्दोंमें स्रष्टा तो नहीं — तो ये लोग जब आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहते हैं तो सगुण भगवान्को नहीं चाहते, क्योंकि उन्हें इसका बड़ा डर रहता है कि सगुण भगवान् कहीं वैसा ही न हो जिसके बारेमें उन्हें सिखाया गया था; वे निर्गुण भगवान् चाहते हैं, कोई ऐसी चीज जो **जरा भी** मनुष्यसे मिलती-जुलती न हो — या यथासंभव कम-से-कम मिलती-जुलती हो; वे यही चाहते हैं।

लेकिन श्रीअरविंद कहते हैं — यह ऐसी चीज है जो उन्होंने हमेशा कही है — कि 'अधिमानस' के देवता वास्तवमें बहुत ज्यादा मनुष्य जैसे हैं — हम यह बात कई बार कर चुके हैं — वे बहुत ज्यादा मनुष्यके सदृश होते हैं, वे बहुत ज्यादा बड़े, बहुत शक्तिशाली होते हैं परंतु सादृश्य भी जरा ज्यादा ही आंखोंमें खुबनेवाला होता है। इनके परे है निर्गुण भगवान्, निर्गुण ब्रह्म; लेकिन निर्गुण ब्रह्मके भी परे हैं वे भगवान् जो स्वयं परम पुरुष हैं; और परात्पर परम पुरुषतक पहुंचनेके लिये हमें 'निर्गुण' से होकर जाना पड़ता है।

लेकिन जैसा कि मैंने कहा, यह निर्गुण भगवान्की खोज उन लोगोंके लिये अच्छी है जो अपनी शिक्षाद्वारा ऐसे भगवान्के संपर्कमें रखे गये हैं जो बहुत ज्यादा व्यक्तिगत, बहुत निजी भगवान् हैं क्योंकि यह खोज उन्हें बहुत-से अंध विश्वासोंसे मुक्त कर देती है। इसके बाद अगर वे योग्य हैं तो वे और आगे बढ़ेंगे और फिरसे ऐसे भगवान्के साथ वैयक्तिक संपर्क बना सकेंगे जो वस्तुतः इन सब देवोंसे परे है।

तो बात ऐसी है।

मधुर मां, हम और लोगोंके प्रभावसे कैसे बच सकते हैं?

अधिकाधिक समग्र रूपसे और पूर्णतया भगवान्‌पर एकाग्र होकर। अगर तुम पूरे उत्साहके साथ अभीप्सा करो, अगर तुम केवल भगवान्‌का प्रभाव ग्रहण करना चाहो, अगर तुम्हारा जो अंश दूसरे प्रभावोंने ले लिया, पकड़ लिया हो उसे तुम सारे समय अपनी ओर खींचो और उसे अपने संकल्प-द्वारा भगवान्‌के प्रभाव-तले रखो, तो तुम्हें यह करनेमें सफलता मिलेगी। यह ऐसा काम है जो एक दिनमें, एक मिनटमें, नहीं किया जा सकता; तुम्हें लंबे अरसेतक, बरसोंतक जागरूक रहना चाहिये; लेकिन तुम सफल हो सकते हो।

सबसे पहले तुम्हें इच्छा करनी चाहिये।

सभी चीजोंके लिये, पहले तुम्हें समझना चाहिये, इच्छा करनी चाहिये, और फिर अभ्यास शुरू करना चाहिये — बहुत थोड़ेसे आरंभ करो। जब तुम अपने-आपको कुछ ऐसा काम करते हुए पकड़ो जो तुम इसलिये कर रहे हो क्योंकि किसी औरकी इच्छा थी या इसलिये कर रहे हो कि तुम्हें पूरा विश्वास नहीं है कि तुम क्या करना चाहते हो और तुम्हें इस-की या उसकी इच्छाके अनुसार या जो प्रथा परिपाटी तुमसे करवाती है वह करनेकी आदत है — क्योंकि, तुम जिन प्रभावोंके अधीन रहते हो, उनमें सामूहिक सुझाव होते हैं, सामाजिक प्रथाएं होती हैं, बहुतेरे! ... सामाजिक आदतें भयंकर चीज होती है; बहुत छोटी अवस्थासे ही तुम्हारी चेतना उनसे भरी होती है; शिशु-अवस्थामें ही तुमसे कहा जाता है: "यह करना चाहिये, वह नहीं करना चाहिये, तुम्हें यह इस तरह करना चाहिये, तुम्हें यह उस तरह न करना चाहिये", आदि; ये ऐसे विचार हैं जिन्हें साधारणतः मां-बाप या अध्यापकोंने इसी तरह तब पाया था जब वे बहुत छोटे थे और वे उनके लिये अभ्यस्त हैं और आदतके कारण उनके प्रति झुक जाते हैं; ये सबसे ज्यादा खतरनाक प्रभाव होते हैं क्योंकि वे सूक्ष्म होते हैं, वे बाहरी शब्दोंके द्वारा व्यक्त नहीं किये जाते; जब तुम बहुत छोटे थे तभी तुम्हारे सिरको, तुम्हारी भावनाओं, तुम्हारी प्रति-क्रियाओंको उनसे भर दिया गया था, और केवल बादमें, बहुत बाद, जब तुम सोचना आरंभ करते हो और सत्य क्या है इसे जाननेकी कोशिश करते हो ... जैसे ही तुम यह समझ लेते हो कि कोई ऐसी चीज है जिसे बाकी सभी चीजोंसे ऊपर रखना चाहिये, कोई ऐसी चीज है जो सचमुच तुम्हें जीना सिखा सकती है, जिसे तुम्हारे चरित्रको गढ़ना है, जिसे तुम्हारे क्रिया-कलापोंपर शासन करना है ... जब तुम यह समझ जाते हो, तो

तुम स्वयंको कार्य करते देख सकते हो, अपने-आपको वस्तुनिष्ठ दृष्टिसे देख सकते हो, आदतके छोटे-मोटे बहुतेरे बंधनों, प्रथाओं, और तुमने जो शिक्षा पायी है, इन सब चीजोंपर हंस सकते हो, और फिर तुम प्रकाश, चेतना, भगवान्‌के प्रति समर्पणके लिये अभीप्साको इन चीजोंपर डालते हो। आदतके अनुसार नहीं, अपने प्राणोंके आवेशके अनुसार नहीं, दूसरोंसे प्राप्त होनेवाले सभी प्राणिक आवेशों और व्यक्तिगत संकल्पोंके अनुसार नहीं जो तुम्हें ऐसी चीजें करनेके लिये उकसाते हैं जो तुम उन सबके बिना न करते, तुम भागवत प्रेरणा पानेके लिये कोशिश करते हो ताकि चीजोंको ऐसे कर सको जैसे करना जरूरी हो।

इन सभी चीजोंका अवलोकन करना चाहियें, उन्हें गौरसे देखना चाहिये, उन्हें एकके-बाद-एक करके भागवत 'सत्य'के सामने तुम उसे जिस रूपमें पा सको रखते चलो — यह प्रगतिशील होता है, तुम उसे अधिकाधिक पवित्र, अधिकाधिक शक्तिशाली, अधिकाधिक स्पष्ट दृष्टिसे पाते हो — उन सभी चीजोंको उसके (भागवत 'सत्य' के) संमुख रख दो और एक संपूर्ण निष्कपटताके साथ यह संकल्प करो कि **वही** तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करे और कुछ भी नहीं। तुम इसे एक बार, सौ बार, हजार बार,. लाखों बार करो और कुछ बरसोंके सतत प्रयासके बाद तुम धीरे-धीरे इस बातसे अवगत हो सकोगे कि आखिर तुम एक स्वतंत्र सत्ता हो — क्योंकि असाधारण चीज यह है : कि जब तुम भगवान्‌के प्रति पूरी तरह समर्पित होते हो तभी तुम पूरी तरह स्वतंत्र होते हो, और स्वतंत्र होनेकी **यही** परम अवस्था है, केवल भगवान्‌का ही होना; तुम संपूर्ण विश्वसे मुक्त होते हो क्योंकि तुम केवल उन्हींके होते हो। और यह समर्पण उच्चतम मुक्ति है, तुम अपने तुच्छ व्यक्तिगत अहंसे भी मुक्त हो जाते हो और सभी चीजोंमें यह सबसे अधिक कठिन है — और सबसे अधिक सुखद भी, यही एकमात्र वस्तु है जो तुम्हें सतत शांति, अविच्छिन्न आनन्द दे सकती है। जो तुम्हें कष्ट पहुंचाती, तुम्हें बौना बना देती हैं, तुम्हारा ह्रास करती हैं, तुम्हें निर्बल बनाती हैं, और जो चीजें तुम्हारे अन्दर जरा भी व्याकुलता, जरा भी भय उत्पन्न कर सकती हैं, उन सभीसे यह **अनन्त** मुक्तिका बोध कराती है। फिर तुम किसी चीजसे नहीं डरते, तुम किसी चीजसे भय नहीं खाते, तुम अपनी नियतिके परम स्वामी हो क्योंकि भगवान् ही तुम्हारे अन्दर इच्छा करते हैं और वही हर चीजका पथ-प्रदर्शन करते हैं। लेकिन यह रातोंरात नहीं हो जाता : इसके लिये जरा-से समय और संकल्पमें **बहुत-से** उत्साहकी जरूरत होती है, प्रयास करते हुए भय न हो और सफल न होनेपर हिम्मत न हारो, यह जानो कि विजय निश्चित

है और उसके आनेतक तुम्हें डटे रहना चाहिये। लो, बस।

मधुर मां, "भगवान् अपने-आपको देते हैं" का क्या अर्थ है?

इसका ठीक-ठीक अर्थ यह है: कि तुम अपने-आपको जितना अधिक देते हो उतनी अधिक तुम्हें यह अनुभूति होती है — यह केवल कोई भाव या आभास या संवेदन नहीं है, यह एक संपूर्ण अनुभूति है — कि तुम जितना अधिक स्वयंको भगवान्‌को देते हो उतने अधिक पूर्ण रूपसे, निरंतर, प्रत्येक क्षण, वे तुम्हारे सभी विचारोंमें, तुम्हारी सभी आवश्यकताओंमें तुम्हारे साथ रहते हैं, और ऐसी कोई अभीप्सा नहीं है जिसका उत्तर तुरंत न मिलता हो; और तुम्हारे अन्दर पूर्ण, सतत घनिष्ठता, पूर्ण निकटताका भाव रहता है। यह ऐसा है मानों तुम साथ लिये हो... मानों भगवान् हर वक्त तुम्हारे साथ हों; तुम चलो और वे तुम्हारे साथ-साथ चलते हैं, तुम सोओ और वे तुम्हारे साथ-साथ सोते हैं, तुम खाओ और वे तुम्हारे साथ-साथ खाते हैं, तुम सोचो और वे तुम्हारे साथ-साथ सोचते हैं, तुम प्रेम करो और वे वही प्रेम हैं जो तुम प्राप्त करते हो। लेकिन इसके लिये तुम्हें स्वयंको पूरा-पूरा, समग्र-भावसे, अनन्य भावसे देना चाहिये, कुछ भी बचाकर न रखो, अपने लिये कुछ भी न रखो और अपने पास कुछ भी न रखो, और न कोई चीज बिखेरो ही: तुम्हारी सत्तामें छोटी-से-छोटी चीज भी जो भगवान्‌को नहीं दी गयी है अपव्यय है; यह तुम्हारे आनन्दका अपव्यय है, यह ऐसी चीज है, जो तुम्हारे सुखको उतनी मात्रामें कम कर देती है, और जो कुछ तुम भगवान्‌को नहीं देते उसे मानों तुम भगवान् अपने-आपको तुम्हें दे सकें इस संभावनाके मार्गमें खड़ा कर देते हो। तुम उन्हें अपने नजदीक, हमेशा अपने साथ अनुभव नहीं करते क्योंकि तुम उनके नहीं हो, क्योंकि तुम सैंकड़ों अन्य वस्तुओं और व्यक्तियोंके हो; तुम्हारे विचारमें, तुम्हारी क्रियामें, तुम्हारी भावनाओंमें, तुम्हारे आवेशोंमें... लाखों ऐसी चीजें हैं जो तुम उन्हें नहीं देते, और इसीलिये तुम उन्हें हमेशा अपने निकट अनुभव नहीं करते, क्योंकि ये सब चीजें तुम्हारे और उनके बीच इतने सारे परदे और दीवारें हैं। लेकिन अगर तुम उन्हें सब कुछ दे दो, अगर तुम कुछ भी बचाकर न रखो, तो वे हमेशा पूरी तरह, तुम जो कुछ भी करते हो, जो कुछ भी सोचते हो, जो कुछ भी अनुभव करते हो, उसमें हमेशा, हर क्षण, तुम्हारे साथ होंगे। लेकिन इसके लिये तुम्हें अपने-आपको पूरी तरह देना होगा, कुछ भी बचाकर न रखना होगा; हर छोटी-सी चीज जिसे तुम बचाकर रखते हो

एक ऐसा पत्थर है जिसे तुम अपने और भगवान्के बीच दीवार खड़ी करनेके लिये रखते हो। और फिर बादमें तुम शिकायत करते हो: "ओह, मैं उनका (भगवान्का) अनुभव नहीं करता!" आश्चर्यकी बात तो तब होती अगर तुम उन्हें अनुभव कर पाते।

बस?

"निर्गुण भगवान्"का ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

यह वही है जिसे कुछ दर्शनों और धर्मोंमें 'निराकार' कहते हैं; ऐसी चीज जो सभी आकारोंसे परे हो, विचारके आकारोंसे भी परे हो, समझे, यह जरूरी नहीं है कि वह केवल भौतिक आकारोंसे परे हो: विचारके आकारोंसे, गतिके आकारोंसे भी परे। हम निर्गुण भगवान्की परिभाषा कुछ इस तरह करते हैं: यह एक ऐसी चीजकी धारणा है जो केवल उसीके परे नहीं है जिसके बारेमें विचार या धारणा बन सके, या जिसे अत्यंत सूक्ष्म आंखोंसे देखा जा सके, बल्कि उस सबसे परे जो किसी भी प्रकारका रूप या आकार ग्रहण कर सकता है, उन स्पंदनोंसे भी परे जो सत्ताकी उच्चतम अवस्थाओंमें भी सारे मानव अवबोधनसे कहीं ऊपरसे गुजरने वाले स्पंदनोंसे भी ज्यादा सूक्ष्म हैं, कोई ऐसी चीज जो किसी भी स्तरकी अभिव्यक्तिसे परे है। निर्गुण भगवान्में कुछ भी नहीं है, हम जिन गुणोंके बारेमें सोच सकते हैं उनमेंसे कोई भी नहीं, वे सभी गुणोंसे परे हैं। स्पष्ट है कि यह किसी ऐसी चीजकी खोज है जो सृष्टिके एकदम विपरीत है, और इसीलिये कुछ धर्म उस विचारको लाये हैं जिसे वे निर्वाण कहते हैं, यानी, ऐसी चीज जो कुछ नहीं है; यह वही खोज है, ऐसी चीज पानेका वही प्रयास है जो उस सबसे उल्टी हो जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं। तो अंततः हम 'उसकी' परिभाषा करते हैं, क्योंकि हम उसके बारेमें बोल ही कैसे सकते हैं? लेकिन अनुभूतिमें हम उस सबके परे जाते हैं जो इस अभिव्यक्त जगत्का है, और उसीको हम निर्गुण भगवान् कहते हैं।

हां, तो ऐसा होता है—और यह बहुत मजेदार है—इस तरहका क्षेत्र है, एक ऐसा क्षेत्र जो . . . कैसे कहा जाय? . . . जो, जो कुछ अस्तित्व रखता है उस सबका निषेध है। सत्ताके सभी स्तरोंके पीछे, भौतिकके भी पीछे, एक निर्वाण है। हम निर्वाण शब्दका उपयोग इसलिये करते हैं क्योंकि यह सरल है, लेकिन हम कह सकते हैं: "भौतिकके पीछे, मनके पीछे, प्राणके पीछे, सत्ताके सभी स्तरोंके पीछे निर्गुण भगवान्

हैं; पीछे, परे।" (हम किसी-न-किसी तरहसे अपने-आपको व्यक्त करनेके लिये बाधित हैं।) यह आवश्यक नहीं है कि वह अधिक सूक्ष्म हो, वह कुछ और है, कुछ ऐसी चीज है जो बिलकुल भिन्न है; यानी, ध्यानमें, अगर तुम उदाहरणके लिये, निर्वाणका ध्यान करो तो तुम अपने मनके क्षेत्रमें रह सकते हो और एक तरहकी एकाग्रताके द्वारा अपनी चेतनाका उलटाव ला सकते हो और अचानक अपने-आपको ऐसी जगह पा सकते हो जो निर्वाण है, असत् है; और फिर भी अपनी चेतनाके आरोहणमें तुम मनके परे नहीं जाते।

अगर तुम्हें आयामोंकी विविधताका ज्ञान हो, अगर तुमने इस सिद्धांतको समझा हो, तो तुम इन चीजोंको थोड़ा-बहुत समझ सकते हो। सबसे पहले तुम्हें चौथा आयाम सिखाया जाता है। अगर तुम आयामोंके उस सिद्धांतको समझ गये हो, तो तुम इसे समझ सकते हो। उदाहरणके लिये, जैसा मैंने कहा, एक स्तरसे दूसरे स्तरतक जानेके लिये, अधिक सूक्ष्म स्तरोंमेंसे होते हुए अंतिम सूक्ष्मतम स्तरतक पहुंचनेके लिये, जिसे हम निर्वाण कहते हैं, तुम्हें बहिर्मुख होनेकी जरूरत नहीं है — इसे किसी-न-किसी तरह कहना तो होगा ही। अपने-आपको बहिर्मुख करनेकी जरूरत नहीं है। तुम एक तरह अंतर्मुख होकर तथा किसी और आयाम या आयामोंसे गुजर कर... तुम अपनी सत्ताके किसी भी क्षेत्रमें इस असत्को पा सकते हो। और सचमुच, इसका अनुभव किये बिना भी तुम इसे थोड़ा-बहुत समझ सकते हो। यह बहुत कठिन है, लेकिन फिर भी, अनुभूतिके बिना भी, अगर तुम आंतरिक आयामोंके इस सिद्धांतको समझते हो, तो इसे बस, जरा-सा समझ पाओगे।

(मौन)

इसे यूं कहा जा सकता है (यह कहनेका एक तरीका है, समझे), कि तुम एक ही साथ अपने अन्दर सत् और असत्, निर्गुण और सगुण, और ...हां... व्यक्त और अव्यक्त... अनंत और सांत... काल और शाश्वतता, सभीको लिये रहते हो। और यह सब इस नन्हें-से छोटे शरीरमें है।

ऐसे लोग हैं जो परे चले जाते हैं — मानसिक रूपमें भी, समझे... उनका मानसिक वातावरण शरीरके परे चला जाता है, प्राणिक वातावरणतक उनके शरीरके परे चला जाता है — ऐसे लोग हैं जिनकी चेतना इतनी विशाल है कि महाद्वीपोंपर, और अन्य धरतियों और अन्य लोकों-

पर भी, फैल जाती है, परंतु यह एक विशेष धारणा है। फिर भी दूसरे आयामोंमें अंतर्मुख होकर, चौथे तथा अन्य आयामोंमें जाकर, तुम इस सबको अपने ही अन्दर पा सकते हो, एक बिन्दुमें . . . अनंत।

तो, माताजी, क्या अनंत, देशका विस्तार नहीं है ?

नहीं, नहीं ! वह अनन्त नहीं, अपरिमित है।

अनन्त सान्तका उल्टा है। तुम्हारे अन्दर अत्यंत ससीम ससीम और अत्यंत असीम असीम निवास कर सकते हैं; वस्तुतः यह अन्दर रहते ही हैं, शायद मस्तिष्कके एक-एक कोषाणुतकमें।

(मौन)

माताजी, जब आदमी अपने निजी प्रयाससे निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त करता है और जब वह माताजीके प्रति समर्पणके द्वारा प्राप्त करता है, तो क्या अनुभूतिमें कुछ फर्क होता है ?

हां, फर्क होता है।

(मौन)

अगर निर्गुण ब्रह्म ही लक्ष्य होता और अगर व्यक्ति उसके साथ तादात्म होकर, निर्गुण ब्रह्मके साथ एक होकर उसीमें विलीन हो जाना चाहता तो, शायद, कोई फर्क न होता। मेरा ख्याल है कि इस हालतमें कोई फर्क नहीं होगा। लेकिन अगर उससे परेकी चीजको चरितार्थ करनेकी अभीप्सा हो, जिसे श्रीअरविंद अतिमानसिक 'सद्वस्तु' कहते हैं, तो यहां फर्क होता है, केवल मार्गमें ही फर्क नहीं होता, क्योंकि वह तो बिलकुल स्पष्ट ही है (इसके अलावा, वह विभिन्न स्वभावोंपर निर्भर है), लेकिन अगर कोई सचमुच जान सके कि समर्पण और समग्र विश्वास क्या है, तो यह **अनन्तगुना** आसान हो जाता है, तीन-चौथाई चिन्ता और कठिनाइयां समाप्त हो जाती हैं।

अब यह सच है कि यह कहा जा सकता है कि इस समर्पणमें बहुत विशेष कठिनाई होती है। यह सच है, इसीलिये मैंने कहा कि यह पूरी तरह स्वभावपर निर्भर है। लेकिन केवल यही नहीं है। अगर तुम चाहो तो इस भेदकी तुलना किसी बिन्दुपर समाप्त होनेवाले रेखाकार पथ और

गोलाकार पथसे की जा सकती है जिसका अन्त समग्रतामें होता है; ऐसी समग्रतामें जिसमेंसे किसी भी चीजको अलग नहीं किया जायगा। हर एक, व्यक्तिगत रूपसे, 'मूल' तक और अपनी सत्ताके उच्चतम रूपतक पहुंच सकता है; उसका मूल और उसकी सत्ताका उच्चतम रूप 'अनन्त', 'शाश्वत' और 'परम' के साथ तदात्म है। इसलिये, अगर तुम इस मूल-तक पहुंच जाओ, तो तुम 'परम पुरुष' तक पहुंच जाते हो। लेकिन तुम वहां एक रेखाकारमें जाते हो (मेरे शब्दोंको विशद वर्णनके रूपमें न लो, समझे, इनका उपयोग केवल अपनी बात समझानेके लिये किया जा रहा है)। यह एक रेखागत उपलब्धि है जो एक बिन्दुपर समाप्त होती है, और यह बिन्दु 'परम पुरुष' से संयुक्त होता है — जो तुम्हारी उच्चतम संभावना है। दूसरे मार्गसे ऐसी सिद्धि होती जिसे गोलाकार कह सकते हैं, क्योंकि यह शब्द ऐसी चीजका सबसे अच्छा चित्र देता है जो सबको समाये हुए हो, और वहां सिद्धि एक बिन्दु नहीं रहती बल्कि एक समग्रता होती है जिसमेंसे कोई चीज अलग नहीं की जाती।

मैं "पूर्ण" और "अंश" की बात नहीं कर सकती, क्योंकि अब कोई विभाजन नहीं बचा रहता। यह ऐसा नहीं होता, यह ऐसा नहीं होता। लेकिन, कह सकते हैं, उस ओर जानेका ढंग, उसका स्वरूप भिन्न होता है। यह ऐसा है जैसे हम कहें, जलकी एक बूंदके साथ पूर्ण तादात्म्य तुम्हें यह बता देगा कि सागर क्या है — और वह केवल एक सागर नहीं बल्कि सभी संभव सागरोंके साथ पूर्ण तादात्म्य करा देगा। और फिर भी एक बूंद जलके साथ पूर्ण तादात्म्यद्वारा तुम समुद्रको उसके तत्त्वमें जान सकते हो, और दूसरे तरीकेसे तुम समुद्रको केवल तत्त्वमें नहीं बल्कि उसकी समग्रतामें जान सकोगे। कुछ ऐसी ही चीज है... जिसे मैं समझानेकी कोशिश कर रही हूं...। यह बहुत कठिन है लेकिन है कुछ ऐसी ही, उसमें कुछ है, कुछ भेद है। यह कहा जा सकता है कि जब तुम अपने निजी बल-बूतेपर आश्रित होते हो, तो व्यक्ति-भाव अपनाने वाली हर चीज अपने अंदर व्यक्तित्वके गुणको बनाये रखती है और साथ ही जिन्हें हम एक अर्थमें व्यक्तित्वके लिये आवश्यक सीमाएं कह सकते हैं उन्हें भी बनाये रखती है। दूसरी अवस्थामें तुम व्यक्तित्वकी सीमाओं-में आये बिना उसके गुणोंसे लाभ उठा सकते हो। यह लगभग दर्शन शास्त्र है, इसलिये यह ज्यादा स्पष्ट नहीं रहा। लेकिन (हंसते हुए) बस, मैं इतना ही कह सकती हूं।

और कुछ नहीं? नहीं?

मेरा ख्याल है इतना काफी है!

२७ जुलाई, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप' मेंसे 'समर्पण और उद्‌घाटन' पढ़ती हैं।

उन्होंने सब कुछ कह दिया, मुझे और कुछ नहीं जोड़ना।

मधुर मां, यहां लिखा है: "इस योगमें जबतक चेतना ऊपर न उठ जाय वस्तुतः हृदयको ही एकाग्रताका मुख्य केंद्र होना चाहिये।" लेकिन हर एककी चेतना अलग-अलग स्तरपर होती है!

हां, बिलकुल अलग-अलग। हमेशा यह कहा गया है: "यहां एकाग्र होओ, सौर चक्रपर, केंद्रमें, यहां, क्योंकि तुम यहांपर सबसे ज्यादा आसानीसे चैत्य पुरुषको पा सकते हो, चैत्यके साथ संपर्क साध सकते हो।" इसी-लिये। इसका यही मतलब है।

एक बार चेतना उठ जाय तो हम उसे कहां पाते हैं?

सिरके ऊपर, मनके ऊपर। श्रीअरविंदका मतलब है: जबतक कि तुम मनसे परे और एकदम उच्चतर स्तरोंमें न पहुंच जाओ, जबतक कि तुम मानव चेतनामें, मन, प्राण, शरीरकी चेतनामें रहो, तबतक चैत्यको पाने-के लिये तुम्हें एकाग्र होना पड़ता है। केवल तभी जब तुम मानव चेतनासे बहुत ऊपर उठ जाओ और सचेतन रूपसे मनसे ऊपरके क्षेत्रों-में प्रवेश करो, मनसे बहुत ऊपर, तभी तुम्हें चैत्यमें एकाग्र होनेकी जरू-रत नहीं रहती क्योंकि तुम उसे स्वभावतः पा लोगे।

लेकिन मानसिक चेतनासे ऊपर उठना, उच्चतर चिन्तनात्मक मनमें नहीं, बल्कि सभी मानसिक गतिविधियोंसे ऊपर उठना आसान काम नहीं है। शुरू करनेके लिये, मनको पूर्णतया नीरव और स्थिर होना चाहिये, अन्यथा तुम यह नहीं कर सकते। केवल तभी जब मन पूर्ण नीरवतामें, पूर्ण स्थिरतामें प्रवेश करता है, तभी जो ऊपर है उसे प्रतिबिम्बित करने-के लिये वह बस, एक दर्पण बन जाता है; तब तुम ऊपर उठ सकते हो। लेकिन जबतक वह चलता रहे, तबतक कोई आशा नहीं।

लेकिन तुम्हें भावनाओंको चैत्य न समझ बैठना चाहिये, समझे! — ये दोनों एकदम अलग चीजें हैं। लोग हमेशा यह समझते हैं कि जब उनके अन्दर भाव हों, भावनाएं हों, तो वे चैत्यमें प्रवेश कर रहे हैं। इन चीजोंका चैत्यके साथ कोई संबन्ध नहीं, ये शुद्ध रूपसे प्राणिक हैं। तुम चाहो तो कह सकते हो कि ये प्राणका सबसे सूक्ष्म भाग है, फिर भी है तो प्राण ही। तुम भावनाओंके द्वारा नहीं, बल्कि बहुत तीव्र अभीप्सा और अनासक्तिके द्वारा चैत्यकी ओर जाते हो।

मधुर मां, "हृदयको सुखा देने"का क्या अर्थ है?

हृदयको सुखा देनेका! जब तुम्हारे अन्दर कोई प्राणिक भावुकता न रहे तो लोग कहते हैं कि तुम्हारा हृदय सूख गया है। जब किसीके अन्दर प्राणिक भावुकता न रहे, तो उसे ही शुष्क हृदय कहा जाता है। सच-मुच सूखे हृदयवाला व्यक्ति वह है जो . . . जो किसी भी भलाईके लिये, किसी भी उदारता, किसी भी सद्‌भावनाके लिये अक्षम हो; लेकिन सौभाग्यवश ऐसा बहुत ही कम होता है।

कुछ विरल व्यक्ति चैत्य पुरुषके बिना जन्म लेते हैं जो दुष्ट होते हैं; लेकिन वे बहुत विरल होते हैं। हर एकके लिये हमेशा आशा है; उन-के लिये भी जो यह कल्पना करते हैं कि वे दुष्टतामें बहुत मजबूत हैं, उनके लिये भी आशा है; वह अचानक जाग सकती है। लेकिन लोग ऐसा नहीं सोचते। लोग क्या सोचते हैं यह मैं तुम्हें बताती हूं; जब तुम्हारे अन्दर भावुकतामय दुर्बलता न हो, प्राणिक भाव न हो तो लोग तुमसे कहते हैं: "तुम्हारा हृदय सूख गया है।" पर यह उनकी राय है, यह सत्य नहीं है। सूखे हृदयवाला वह होगा जो दया-करुणाके लिये एकदम अक्षम हो; यह बहुत विरल है। जिन लोगोंकी कुख्याति थी कि वे बहुत अधिक दुष्ट हैं, उनकी सत्ताके अंदर भी एक छोटा-सा कोना करुणाके प्रति खुला रहता था। कभी-कभी वह बहुत ही बेतुके और हास्यास्पद ढंगसे छोटा होता था, फिर भी उनमें भी था जरूर।

मधुर मां, जब आप कहती हैं: "हृदयमें एकाग्र होओ", तो क्या इसका मतलब यह होता है कि मनद्वारा एकाग्र होओ?

चेतनाको एकाग्र करो, मनको नहीं, चेतनाको!

मैं यह नहीं कहती कि हृदयमें सोचो, मैं कहती हूं एकाग्र होओ, ऊर्जा-

को एकाग्र करो, चेतनाको एकाग्र करो, अभीप्साको एकाग्र करो, संकल्प-को एकाग्र करो। **एकाग्र करो।** तुम एक भी विचारके बिना बहुत तीव्र एकाग्रता पा सकते हो, और वास्तवमें, साधारणतः जब हम नहीं सोचते तब वह ज्यादा तीव्र होती है। (मौन) अगर तुम आत्म-संयम या फिर सीमित-सा आत्म-ज्ञान पानेमें सफल होना चाहते हो, तो यह अनिवार्य बातोंमेंसे एक है कि तुम अपनी चेतनाका स्थान निर्धारित कर सको और उसे अपनी सत्ताके विभिन्न भागोंपर इस तरह घुमा-फिरा सको कि तुम अपने विचारों, भावनाओं, आवेशोंमें भेद कर सको और यह जान सको कि चेतना अपने-आपमें है क्या। और इस तरह तुम उसे एक जगहसे दूसरी जगह हटाना सीख सकते हो: तुम अपनी चेतनाको शरीर-में रख सकते हो, प्राणमें रख सकते हो, चैत्यमें रख सकते हो (उसे रखनेके लिये यही सबसे अच्छा स्थान है); तुम अपनी चेतनाको मनमें रख सकते हो, उसे मनसे ऊपर उठा सकते हो, और अपनी चेतनाद्वारा तुम विश्वके सभी क्षेत्रोंमें जा सकते हो।

लेकिन सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि चेतना है क्या, यानी, अपनी चेतनाके बारेमें सचेतन होना चाहिये, उसका स्थान निर्धारित करना चाहिये। और इसके लिये बहुत-से अभ्यास हैं। उनमेंसे एक बहुत प्रसिद्ध है, वह है पहले अपना अवलोकन करना और अपने-आपको जीते हुए देखना, और फिर देखना कि क्या वास्तवमें शरीर ही सत्ताकी चेतना है, जिसे तुम "मैं" कहते हो; और फिर जब तुम्हें यह अनुभव हो जाय कि वह (चेतना) शरीर बिलकुल नहीं है, कि शरीर किसी और चीज-को व्यक्त करता है, तब तुम अपने आवेगों, भावनाओंमें ढूंढते हो कि क्या चेतना वह है या नहीं, और फिरसे तुम्हें पता लगता है कि यह वह भी नहीं है; और तब तुम अपने विचारोंमें खोजते हो कि क्या सचमुच विचार ही सच्चे तुम हो, जिसे तुम "मैं" कहते हो, और थोड़े ही समय-के बाद तुम्हें पता लगता है: "नहीं, मैं सोच रहा हूं, इसलिये "मैं" अपने विचारोंसे भिन्न हूं।" और इस तरह, क्रमशः अलग कर-करके तुम ऐसी चीजके साथ संपर्कमें आते हो जो तुम्हें सत्ताका भान देती है— "हां, यह "मैं" हूं। और इस चीजको मैं घुमा-फिरा सकता हूं, मैं इसे अपने शरीरसे अपने प्राणमें, अपने मनमें ले जा सकता हूं, यहांतक कि मैं, अगर मैं बहुत.... कैसे कहूं? ... उसे हिलाने-डुलानेमें बहुत अभ्यस्त हो जाऊं, तो मैं उसे दूसरे लोगोंमें ले जा सकता हूं, और इसी तरह मैं अपने-आपको चीजों और लोगोंके साथ एक कर सकता हूं। मैं इसे अपनी अभीप्साकी सहायतासे बाहर ला सकता हूं, उन क्षेत्रोंकी ओर ऊपर

उठ सकता हूं जो यह छोटा-सा शरीर और इसमें समायी चीजें बिलकुल नहीं हैं।" और इस तरह तुम समझना शुरू करते हो कि तुम्हारी चेतना क्या है; और उसके बाद ही तुम कह सकते हो: "अच्छा, मैं अपनी चेतनाको अपने चैत्यके साथ एक करूंगा और उसे वहीं रहने दूंगा, ताकि वह भगवान्‌के साथ सामंजस्यमें रह सके और पूरी तरह भगवान्‌को अर्पित हो सके।" या फिर: "अगर मैं अपनी विचार-शक्ति और बुद्धिसे ऊपर उठनेके इस प्रयोगसे शुद्ध प्रकाश और शुद्ध ज्ञानके क्षेत्रमें प्रवेश पाऊं..." तो तुम अपनी चेतना वहां रख सकते हो और एक ज्योतिर्मय भव्यतामें निवास कर सकते हो जो भौतिक रूपसे ऊपर है।

परंतु पहले इस चेतनाको गतिशील होना चाहिये, और तुम्हें इसे सत्ताके अन्य भागोंसे अलग करना आना चाहिये जो वास्तवमें इसके यंत्र, इसकी अभिव्यक्तिकी प्रणालियां हैं। चेतनाको इन चीजोंका उपयोग करना चाहिये, यह नहीं कि तुम इन चीजोंको चेतना समझ बैठो। तुम इन चीजोंमें चेतना डालो, इस तरह तुम तादात्म्यके लिये संकल्पद्वारा अपने शरीरके बारेमें सचेतन होगे, अपने प्राणके बारेमें सचेतन होगे, अपने मनके बारेमें सचेतन होगे, अपने क्रिया-कलापके बारेमें सचेतन होगे; लेकिन इसके लिये, पहले तो तुम्हारी चेतनाको इन चीजोंके साथ पूरी तरह उलझना, घुल-मिल जाना या कह सकते हैं जुड़ नहीं जाना चाहिये, इसे उन्हें अपना रूप नहीं समझ लेना चाहिये, यह भूल नहीं होनी चाहिये।

जब आदमी अपने बारेमें सोचता है (यह तो स्पष्ट ही है कि लाखों-करोड़ोंमें शायद दस भी नहीं होते जो इससे भिन्न करते हों), तो वह सोचता है: "मैं... यानी, मेरा शरीर, यही तो वह चीज है जिसे मैं अपना "मैं" कहता हूं जो कि ऐसा है। तो, मैं ऐसा हूं, और फिर मेरा पड़ोसी, वह भी शरीर है। जब मैं किसी और व्यक्तिकी बात करता हूं, तो मैं उसके शरीरकी बात करता हूं।" और इस तरह, जबतक आदमी मनकी इस अवस्थामें रहता है तबतक वह सभी गतिविधियोंका खिलौना होता है और उसमें आत्म-संयम नहीं होता।

शरीर अंतिम यंत्र है और फिर भी जबतक उसने चिन्तन न शुरू कर दिया हो, आदमी प्रायः सारे समय इसीको अपना "मैं" कहता है।

प्रश्न? और प्रश्न नहीं हैं?

क्या आदमी आत्मसात् करनेके कालमें प्रायः छितरा हुआ रहता है?

हां, यह प्रायः ही होता है : अपने सभी विचारोंमें, सभी कामनाओंमें, सभी क्रिया-कलापमें छितराव; इससे बहुत अधिक, बहुत अधिक छितराव होता है। और इस तरह आदमी चारों ओरसे खिंचता है और उसके जीवनमें कोई तालमेल नहीं रहता।

लेकिन आत्मसात् करनेके समय ही क्यों?

आत्मसात् करनेके समय? छितराव?

आवश्यक नहीं है! आवश्यक नहीं है। इसके विपरीत, ऐसे लोग हैं जो आत्मसात् करनेके समय बहुत अधिक एकाग्र होते हैं, अपने-आपमें बंद रहते हैं...। आवश्यक नहीं है! साधारणतः आदमी क्रिया-कलापके समय ज्यादा छितरा हुआ होता है — अभीप्साके समय नहीं — मैं साधारण क्रिया-कलापकी बात कह रही हूं।

हमेशा आदमी न्यूनाधिक रूपसे उन सब चीजोंके साथ एक होता है जिन्हें वह करता है और उन सब चीजोंके साथ जिनके साथ उसका संपर्क होता है। मनुष्योंकी साधारण अवस्था यही है कि जो कुछ करें, जो कुछ देखें, जिनके साथ प्रायः मिलें-जुलें उन सबके अंदर हों। लोग ऐसे ही होते हैं। उनके अंदर कोई ऐसी चीज होती है जो वस्तुतः बहुत अस्पष्ट और बहुत अस्थिर होती है, जो इधर-उधर घूमती रहती है। और अगर वे केवल इतना जानना चाहें कि वे क्या हैं, तो वे इसके लिये बाधित होते हैं कि हर जगह छितरी हुई चीजोंके ढेरको अपनी ओर खींचें। लोगोंके बीच एक तरहकी अचेतना, तरलता होती है, मैं पता नहीं कितनी बार इसके बारेमें तुम्हें बतला चुकी हूं; जैसे ही वह एकदमसे भौतिक नहीं रहता, वैसे ही यह सब एक मिश्रण तैयार करता है...। चूंकि तुम्हारे त्वचा है इसलिये तुम एक-दूसरेके अंदर यूं ही नहीं घुस जाते; अन्यथा सूक्ष्म भौतिक भी, है न... एक लगभग दिखायी देनेवाली भापकी तरह जो शरीरोंसे निकलती है, जो सूक्ष्म भौतिक है, वह भयंकर रूपसे आपसमें मिलती है, और वह सारे समय, एक-दूसरेपर, सब प्रकारकी प्रतिक्रियाएं पैदा करती रहती है।

हो सकता है कि यह जाने बिना कि ऐसा क्यों हो रहा है, कारणके बारेमें कुछ भी जाने बिना, तुम यथार्थतः अच्छे स्वास्थ्यके सामंजस्यसे असंतुलन और बड़ी बेचैनीमें चले जाओ। तुम्हें पता नहीं होता कि क्यों, कोई बाहरी कारण नहीं होता, अचानक ऐसा हो जाता है; हो सकता है कि तुम शांत, संतुष्ट, कम-से-कम सुखद और सह्य दशामें रहे हो, तब

अचानक तुम गुस्सेसे भर जाते हो, असंतुष्ट, बेचैन हो जाते हो! तुम्हें पता नहीं होता कि क्यों, कोई बाहरी कारण नहीं होता। हो सकता है कि तुम आनंद, उल्लास, उत्साहसे भरे हो, और तब, बिना किसी प्रकट कारणके, तुम दुःखी, उदास, खिन्न, हतोत्साह हो जाते हो! कभी-कभी ऐसा होता है कि तुम खिन्नताकी अवस्थामें हो, और फिर तुम कहींसे गुजरते हो और सब कुछ चमक उठता है: एक प्रकाश, एक आनंद होता है, क्यों! तुम अचानक आशावादी बन जाते हो; स्वभावतः यह विरल है — यह भी हो सकता है, यह एक ही चीज है, यह संक्रामक भी है; पर फिर भी तुम रचनात्मक चीजोंको पकड़नेकी जगह विनाशात्मक चीजें पकड़नेका ज्यादा खतरा मोल लेते हो।

ऐसे लोग बहुत कम हैं जो ऐसा वातावरण लिये रहते हैं जो आनंद, शांति, विश्वास फैलाता हो; यह बहुत विरल है। परंतु ये मानवजातिके सच्चे हितकारी हैं। उन्हें अपना मुंह खोलनेकी जरूरत नहीं होती।

(मौन)

बस, खतम?

मधुर मां, हम लोग हर रोज "बाल्कनी दर्शन"के लिये जाते हैं, और यहां 'क्रीड़ांगण'में "मार्च पास्ट" तथा "एकाग्रता"के लिये आते हैं।[1] इनमेंसे हर एकके प्रति हमारी क्या वृत्ति होनी चाहिये?

हर दशामें सबसे अधिक अनिवार्य चीज है ग्रहणशीलता।

उदाहरणके लिये, "बाल्कनी"के समय। जब मैं बाल्कनीपर आती हूं तो मैं एक विशेष प्रकारकी एकाग्रता करती हूं, तुमने देखा है कि मैं हर एक-को देखती हूं, देखा है न? मैं दृष्टि डालती हूं, हर एकपर नजर डालती हूं, मैं सबको जानती हूं जो वहां होते हैं, और मैं जानती हूं वे कहां हैं, और मैं हर एकको ठीक वही देती हूं जिसकी उसे जरूरत है; मैं उसकी

---

[1]उन दिनों माताजी सवेरे आश्रमके छज्जेपर दर्शन देने आया करती थीं। इसे लोग "बाल्कनी दर्शन" कहा करते थे। शामको 'क्रीड़ांगणमें "मार्च पास्ट"के समय सलामी लेती थीं और "मार्चिंग"के अंतमें "एकाग्रता" के समय भी उपस्थित रहती थीं।

स्थिति देखती हूं और जो आवश्यक हो वह उसे देती हूं। मैं तेजीसे कर सकती हूं, वरना मैं तुम्हें आधे घंटेतक खड़ा रखूंगी, लेकिन मैं यह करती हूं, मैं यही करती हूं। मेरे बाहर आनेका यही एकमात्र कारण है, अन्यथा मैं तुम्हें अपनी चेतनामें लिये रहती हूं। मैं हमेशा तुम्हें अपनी चेतनामें लिये रहती हूं, तुम्हें देखे बिना भी, जो जरूरी है वह करती हूं। लेकिन यहां एक ऐसा क्षण होता है जब मैं भौतिकको छूकर उसपर सीधी क्रिया कर सकती हूं, है न; अन्यथा वह क्रिया मनके द्वारा होती है, मनके या प्राणके द्वारा। लेकिन यहां मैं दृष्टिद्वारा सीधा भौतिकको छूती हूं, यह दृष्टि-संपर्क होता है; और मैं यही करती हूं — हर बार करती हूं।

तो अगर जो भी आये, एक प्रकारके विश्वासके साथ, आंतरिक उद्‌घाटन-के साथ आये, और जो कुछ दिया जाय उसे ग्रहण करनेके लिये तैयार हो, और स्वभावतः छितरा हुआ न हो... ऐसे लोग हैं जो अपना समय यही देखनेमें बिताते हैं कि क्या हो रहा है, दूसरे लोग क्या कर रहे हैं; और इस तरह उन्हें बहुत कुछ पानेका अधिक अवसर नहीं मिलता... लेकिन अगर तुम जो मिल सकता है उसपर एकाग्र होकर आओ और जितना अधिक शांत रहा जा सकता है उतने शांत रहो, मानों किसी चीजको ग्रहण करनेके लिये खुले हुए हो, मानों कुछ ग्रहण करनेके लिये तुम अपनी चेतना इस तरह (संकेत) खोल रहे हो — अगर तुम्हारी कोई विशेष कठिनाई या समस्या है, तो तुम उसे अभीप्सामें रख सकते हो, लेकिन यह बहुत जरूरी नहीं है, क्योंकि साधारणतः लोग अपने बारेमें जो सोचते हैं और वे जिस स्थितिमें होते हैं, इन दोनोंमें थोड़ा अंतर हमेशा ही रहता है, इस अर्थमें कि वह ठीक वही चीज नहीं होती; उनके अनुभव करने या देखने-का तरीका जरा-सी विकृति पैदा कर देता है, इसलिये मुझे उनकी विकृति-को लांघना पड़ता है; जब कि अगर वे किसी चीजके बारेमें न सोचें, अगर वे सिर्फ यूं रहें (संकेत), खुले हुए और 'शक्ति'के लिये प्रतीक्षामें रहें — तो मैं सीधी अंदर चली जाती हूं और जो करना होता है करती हूं। और वही क्षण है जब मैं ठीक-ठीक जानती हूं, समझे, मैं यूं करती हूं (संकेत), बिलकुल धीरे-से — ऊपरसे मैं बहुत अच्छी तरह, बहुत अच्छी तरह देखती हूं कि हर एक ठीक किस अवस्थामें है। यह हुआ सवेरेका काम।

एकाग्रता एकदमसे अलग चीज है। पहले, मैं वातावरणको जितना संभव हो शांत-स्थिर, अचंचल, एकीकृत करनेकी कोशिश करती हूं, मानों मैं चेतनाको इस तरह (संकेत) विस्तारमें फैला रही हूं; और तब बहुत ऊंचाई से जितनी अधिक 'शक्ति' नीचे लायी जा सके उतनी लाती हूं और तुम्हारे ऊपर जितनी मजबूतीसे हो सके, उसे रखती हूं। तो यह ऐकांतिक रूपसे

इसपर निर्भर है कि तुम बिलकुल शांत और भली भांति एकाग्र हो या नहीं; यहां एकाग्र होना चाहिये, छितरा हुआ नहीं, तुम्हें एकाग्र होना चाहिये, लेकिन बहुत . . . कैसे कहा जाय? . . . सीधा-सादा, बहुत समस्तर। इस तरह (संकेत)। तब 'शक्ति' दबाव डालती है। और वह, सबसे बढ़कर, एक करनेके लिये, समस्तके अंदर प्रवेश करनेके लिये और यह प्रयास करनेके लिये दबाव डालती है कि उसमेंसे कुछ सुसंबद्ध चीज बना सके जो ऊपरकी 'शक्ति'को दलके द्वारा प्रकट कर सके।

सवेरे वैयक्तिक काम होता है, शामको सामूहिक काम। लेकिन स्वभावतः उसके अंदर, हर एक व्यक्तिगत रूपसे अनुभव कर सकता है, लेकिन, मैं जो काम करती हूं वह एकीकरणका काम है। हर एक अपनी ग्रहणशीलता और उस अवस्थाके अनुसार प्राप्त करता है जिसमें वह हो।

और "मार्च पास्ट"के समय, मधुर मां?

वह, "मार्च पास्ट", वह . . . वह अधिक भौतिक क्रिया है — अपने-आपको भौतिक क्रियाके लिये तैयार करना। यह अधिकांशमें कार्यकी तैयारीके लिये ऊर्जा, वैश्व ऊर्जाके प्रति अपने-आपको खोलनेका तरीका है। यह ऊर्जाके साथ संपर्क है, उस वैश्व ऊर्जाके साथ जो वहां है, यह कर्ममें भाग लेनेके लिये शरीरकी सहायता करनेके लिये है। अभी यह बहुत भौतिक चीज है। सचमुच यह शारीरिक शिक्षणका आधार है : कार्य-सिद्धिके लिये शरीरको क्रिया तथा ऊर्जाओंकी ग्रहणशीलताके लिये तैयार करना। और "मार्चिंग"का भी यही आधार है, जब मैं वहां नहीं होती तब भी। लेकिन "मार्च पास्ट" सिद्धिके लिये ऊर्जाओंके प्रति शरीरकी ग्रहणशीलताको उत्तेजित करनेके लिये है। यह किसी ऐसी वस्तुपर आधारित है जो विभिन्न तरीकोंसे अभिव्यक्त होती है; लेकिन यह एक तरहकी सराहना है. . . इसे कैसे कहा जाय? . . . वह अत्यधिक जड़ भौतिक चेतनामें (स्थित) शूरताके लिये सहज और मोहक सराहना है।

यह तमस् और भौतिक जड़तापर विजय पानेके लिये एक जबरदस्त शक्ति है। इसके अतिरिक्त युद्धोंमें सेनाओंकी लड़नेकी सभी क्षमताएं इसीपर आधारित होती हैं। अगर मनुष्योंमें यह न होती, तो उन्हें, मूर्खोंकी तरह, ऐसी चीजोंके लिये परस्पर लड़नेके लिये कभी नहीं भेजा जा सकता जिन्हें वे जानते तक नहीं। और चूंकि सत्तामें यह क्षमता है इसलिये मनुष्योंके विशाल समूह उपयोगमें लाये जा सकते हैं, उन्हें इसमें नियुक्त करके कार्यमें लगा सकते हैं।

पहले महायुद्धमें, जो दूसरेकी अपेक्षा व्यक्तिके लिये बहुत ज्यादा कठिन था, इसके बिलकुल आश्चर्यजनक उदाहरण मिलते थे। वह एक भयंकर युद्ध था, क्योंकि मनुष्योंने खाइयां खोद रखी थीं और निरंतर बमबारीके भयसे उनको कीड़े-मकोड़ोंकी तरह जमीनके अंदर धंसा रहना पड़ता था — वे उसके विरुद्ध अपने-आपको यथासंभव बचानेसे बढ़कर और कुछ न कर सकते थे; और कई बार वे कई-कई दिनोंतक वहां बंद रहते थे। कई बार ऐसा भी हुआ कि वे एक ही खंदकमें पंद्रह-पंद्रह दिनसे भी अधिक बंद पड़े रहे, क्योंकि उन्हें वहांसे स्थानांतरित करनेका कोई उपाय न था; यानी, वह निरंतर भयसे पीड़ित छछूंदरका जीवन था, और उसके बारेमें कुछ भी न किया जा सकता था। सभी चीजोंमें वह सबसे बढ़कर भयंकर था। वह भयंकर युद्ध था। हां तो, ऐसे रिसाले थे जिन्हें यूं ही छोड़ दिया गया था, क्योंकि बमबारी और दूसरी चीजोंके कारण कुछ न किया जा सकता था, उन्हें वहांसे छुट्टी न दी जा सकती थी। इसे "रिलीफ" या "छुट्टी देना" कहते थे : कुछ दलोंको बाहर निकालना, नये दलोंको लाना और दूसरोंको विश्रामके लिये वहांसे ले जाना। कुछ ऐसे थे जो इस तरह कई दिन रहे। कुछ ऐसे थे जो दस-दस दिन, बारह-बारह दिन रहे। किसीके भी पागल हो जानेके लिये यह पर्याप्त कारण था। हां तो, इन लोगोंमें कुछ ऐसे थे जिन्होंने अपने जीवनका हाल सुनाया, जो कुछ हुआ उसका वर्णन किया।

मैंने इसके बारेमें किताबें पढ़ी हैं, उपन्यास नहीं, दिन-पर-दिन जो हो रहा था उसका लिखित विवरण। एक है — प्रसंगवश वह एक महान् लेखक है जिसने युद्धके अपने संस्मरण लिखे हैं[1] और उसमें वह कहता है कि वे लोग बमबारीमें इस तरह दस दिनतक अटके रहे। (स्वभावतः बहुत-से वहीं खेत रहे।) और फिर उन्हें पीछे लाया गया और उनके स्थानपर दूसरे आये, नये लोग आये, पुराने लौट गये। और स्वभावतः जब वे लौटे — जरा सोचो, चूंकि उन्होंने जैसा-तैसा खाया था, बड़ी बुरी तरह सोये थे, अंधेरे बिलोंमें रहे थे, सचमुच वह भयंकर जीवन था — जब वे वापस आये, तो उनमेंसे कुछ लोग अपने जूते भी न उतार सकते थे क्योंकि अन्दर उनके पैर इतने सूज गये थे कि वे उन्हें न निकाल सकते थे। ये कल्पनातीत, दिल दहलानेवाले शारीरिक कष्ट हैं। हां तो, वे लोग (तुम जानते ही हो न, उस समय पिछले युद्धकी तरह यांत्रिक याता-

---

[1]माताजी यहां जार्ज दूयआमेल (Georges Duhumel)की 'ला वी दे मारतीर' (la vie des Martyrs) का उल्लेख कर रही हैं।

यातका इतना चलन न था), तो वे पैदल चलकर इस तरह, टूटे हुए अधमरे वापिस आये।

वे डटे रहे थे।

साहसकी दृष्टिसे यह युद्धकी सबसे सुन्दर चीजोंमेंसे एक थी: क्योंकि वे लोग डटे रहे, शत्रु उनकी खन्दकोंको हथिया न सके और वे आगे न बढ़ पाये। स्वभावतः खबर चारों ओर फैल गयी और फिर वे किसी गांवमें पहुंचे और सभी गांववाले उनके स्वागतके लिये बाहर निकल आये और सड़कको फूलों और उत्साहके नारोंसे भर दिया। वे सभी लोग जो अपने-आपको घसीटतक न पा रहे थे, है न, जो यूं थे (ढह जानेका संकेत), लो, अचानक वे सब अपना सिर ऊंचा उठाये, शक्तिसे भरपूर, तनकर सीधे होते हुए दिखाये दिये, और सबने एक साथ गाना शुरू कर दिया और गाते-गाते सारे गांवमेंसे गुजरे। यह पुनरुज्जीवनके जैसा लगता था।

हां तो, मैं इस तरहकी चीजकी बात कर रही हूं। यह कितनी सुंदर चीज है, जो अत्यधिक जड़ भौतिक चेतनामें है! देखो, कैसे अचानक उन्हें अनुभव हुआ कि वे वीर हैं, कि उन्होंने वीरोचित कार्य किया है, और इसलिये वे ऐसे व्यक्तियोंकी तरह न लगना चाहते थे जिनकी शक्ति बिलकुल निचुड़ गयी हो, जो किसी कामके न रह गये हों। "आवश्यकता होनेपर हम लड़ाईपर वापिस जानेको तैयार हैं!" यूं। और वे उसी अदासे गुजरे। ऐसा लगता है कि वह बहुत अद्‌भुत था; मुझे इसपर पूरा विश्वास है कि वह बहुत अद्‌भुत था।[1]

हां तो, अब "मार्च पास्ट" में तुम इसी चीजका विकास कर रहे हो। लो, बस।

३ अगस्त, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप'मेंसे 'समर्पण और उद्‌घाटन' पढ़ती हैं।

"सच्ची जीवन-क्रियाशीलता" क्या है?

---

[1] 'क्रीड़ांगण'से जाते समय पवित्रके साथ बातचीत जारी रखते हुए माताजीने कहा: "यह प्राणिक उत्साहके लिये कोषाणुओंका उत्तर है।"

वह है भगवान्‌को प्रकट करना। यही उसके अस्तित्व और जीवनका एकमात्र कारण, उसका सत्य और उसकी एकमात्र सच्ची क्रियाशीलता है।

मधुर मां, यहां श्रीअरविन्दने कहा है: "यह असंभव है।" क्यों? क्योंकि आपने तो कहा है कि कुछ भी असंभव नहीं है!

सिद्धांतमें कुछ भी असंभव नहीं है। लेकिन अगर तुम जो आवश्यक है उसे करनेसे इंकार करो, तो स्पष्ट है कि तुम सफल नहीं हो सकते।

भौतिक जगत्‌में शर्तें होती हैं, अन्यथा वह जो है वह न होगा। अगर शर्तें और पद्धतियां न होतीं, तो सब कुछ रूपांतरित हो जाता और चमत्कारी रूपसे किया जाता। लेकिन स्पष्ट है कि इस तरह करनेका निश्चय नहीं किया गया था, क्योंकि चीजें चमत्कारिक ढंगसे नहीं होतीं —कम-से-कम, उस तरहके चमत्कार नहीं होते जिनकी मानव मन कल्पना करता है, यानी, सतत मनमाने निर्णय नहीं होते। यह तो स्पष्ट ही है कि जगत्‌में कोई मनमाने निर्णय नहीं हुआ करते।

श्रीअरविंद कहते हैं: अमुक चीज करनेके लिये ये शर्तें हैं। अगर तुम उन शर्तोंको पूरा करनेसे इंकार करो तो तुम वह वस्तु-विशेष नहीं करोगे, तुम कुछ और करोगे; यह तो स्पष्ट ही है कि वही एकमात्र संभव चीज नहीं है। लेकिन अगर तुम वही चीज करना चाहते हो, तो तुम्हें शर्तें पूरी करनी होंगी . . .। तुम कुछ और कर सकते हो!

मुझे लगता है कि अगर तुम जगत्‌को उसकी समग्रतामें, 'देश', और 'काल' में लो, तो स्पष्टतः तुम कह सकते हो: "कुछ भी असंभव नहीं है," और संभवतः सब कुछ होगा; परंतु यह समग्रतामें है और 'देश' और 'काल' में है, यानी, कालकी शाश्वतताओं और देशकी अनंतताओंमें सब कुछ संभव है। परंतु निर्दिष्ट समयपर, निर्दिष्ट स्थानपर, सब-की-सब नहीं, कुछ संख्यामें "संभावनाएं" होती हैं, और इन संभावनाओंके चरितार्थ होनेके लिये कुछ शर्तें पूरी करनी होती हैं। संसार इसी तरह बना है। हम इसके बारेमें कुछ नहीं कर सकते। मेरा मतलब है यह कहना बेकार है: "यह और तरहसे होना चाहिये था।" यह ऐसा है, हमें इसे इसी तरहसे स्वीकार कर लेना चाहिये, उसमें यथासंभव अच्छे-से-अच्छा बनानेकी कोशिश करनी चाहिये।

मधुर मां, यहां श्रीअरविन्दने कहा है: "अगर अंतरतम आत्मा जाग जाय, जब निरे मन, प्राण और शरीरमेंसे चैत्य चेतनामें

नव जन्म हो, तो यह योग किया जा सकता है . . .।" उन्होंने "अंतरतम आत्मा" क्यों कहा है ? क्या कोई सतही आत्मा भी होती है ?

क्योंकि यह अन्तरतम आत्मा, यानी, केंद्रीय चैत्य सत्ता, अपनी तुलनामें चेतनाके ऊपरी भागों, यानी, मानसिक भागों और प्राणिक भागोंको प्रभावित करती है। अन्तरात्मा शुद्धतम मन, उच्चतम प्राण, भावमय सत्ताको प्रभावित करती है, इस हदतक प्रभावित करती है कि व्यक्तिको ऐसा लगता है कि वह सत्ताके इन भागोंके द्वारा अन्तरात्माके साथ संपर्कमें आया है। इसलिये लोग इन भागोंको अन्तरात्मा मान लेते हैं और इसीलिये श्रीअरविंदने "अंतरतम आत्मा", यानी, केंद्रीय आत्मा, वास्तविक आत्मा कहा।

क्योंकि बहुत बार, जब तुम मनके कुछ ऐसे भागोंको छूते हो जो चैत्य प्रभावमें हैं और प्रकाश तथा उस प्रकाशके आनन्दसे भरपूर हैं, या जब तुम भावात्मक सत्ताके किन्हीं बहुत शुद्ध और बहुत ऊंचे भागोंको छूते हो जिसमें बहुत अधिक उदार, बहुत अधिक निःस्वार्थ भाव होते हैं, तब भी तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम अपनी अंतरात्माके संपर्कमें हो। परंतु यह सच्ची अंतरात्मा नहीं होती, यह अपने सार-तत्त्वमें अंतरात्मा नहीं होती। सत्ताके वे भाग होते हैं जो उसके प्रभाव तले हैं और उसके कुछ अंशको अभिव्यक्त करते हैं। तो, बहुत बार लोग इन भागोंके संपर्कमें आते हैं और इससे उन्हें ज्योति, महान् आनन्द, अंतःप्रकाशकी प्राप्ति होती है, और उन्हें लगता है कि उन्होंने अपनी अंतरात्मा पा ली। लेकिन यह तो सत्ताका एक हिस्सा ही होता है जो उसके प्रभावमें रहता है, एक-न-एक हिस्सा, क्योंकि . . .। यथार्थतः जो चीज होती है वह यह है कि तुम उन चीजोंको छूते हो, अनुभूतियां पाते हो, और फिर वह पर्देके पीछे छिप जाती है, और तुम्हें आश्चर्य होता है : "यह कैसे हुआ, मैंने अपनी अंतरात्माको छू लिया था और अब फिरसे अज्ञान और निश्चेतनाकी इस अवस्थामें आ गिरा!" लेकिन इसका कारण यह है कि तुमने अपनी अंतरात्माको नहीं छुआ था, तुमने सत्ताके उन भागोंको छुआ था जो अंतरात्माके प्रभावमें हैं और उसके कुछ अंशको अभिव्यक्त करते हैं, परंतु वे अंतरात्मा नहीं हैं।

मैं पहले भी कई बार कह चुकी हूं कि जब तुम सचेतन रूपसे अपनी अंतरात्माके संपर्कमें आते हो और एकता स्थापित हो जाती है तो बस, खतम, यह कभी बिगाड़ी नहीं जा सकती, यह स्थायी होती है, निरंतर

बनी रहती है, हर चीजका प्रतिरोध कर सकती है, और किसी भी क्षण, संबन्ध जोड़नेपर पायी जा सकती है; जब कि दूसरी चीजोंमें — तुम्हें बहुत अच्छी अनुभूतियां हो सकती हैं, और फिर उनपर परदा दुबारा पड़ जाता है, और तुम अपने-आपसे कहते हो : "यह कैसे होता है? मैंने अपनी अंतरात्माको देखा था लेकिन अब वह मुझे नहीं मिल रही!" वह अंतरात्मा नहीं थी जिसे तुमने देखा था। और ये चीजें बहुत सुंदर होती हैं और बहुत प्रभावशाली अनुभूतियां देती हैं, परंतु यह स्वयं चैत्य पुरुषके साथ संपर्क नहीं है।

चैत्य पुरुषके साथ संपर्क निश्चयात्मक होता है, और इसीके बारेमें जब लोग मुझसे पूछते हैं : "क्या मेरा अपनी चैत्य सत्तासे संपर्क है?" तो मैं कहा करती हूं : "तुम्हारा प्रश्न ही बतलाता है कि नहीं है।"

तो बस, मेरे बच्चो?

मधुर मां, मैंने सुना है कि जो जादूगर अपने कामके लिये गुह्य शक्तियोंका प्रयोग करते हैं उन्हें मौतके बाद बहुत कष्ट होता है। क्या यह सच है?

किस तरहके जादूगरोंकी बात कर रहे हो तुम? किसी भी तरहके?

जिनमें गुह्य शक्तियां होती हैं और जो उनका उपयोग अपने स्वार्थोंके लिये करते हैं? तुम्हारा यही मतलब है?

जी।

मुझे पता नहीं कि वे मृत्युके बाद कष्ट पाते हैं या चेतना खो देते हैं, पर बहरहाल, स्पष्ट रूपसे यह तो बिलकुल निश्चित है कि वे शांति या सुखकी अवस्थामें नहीं होते। क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टिसे यह निरपेक्ष नियम है : आंतरिक अनुशासन और भगवान्‌के प्रति समर्पणसे तुम्हें शक्तियां मिलती हैं। लेकिन तुम्हारी अभीप्सा, तुम्हारे अनुशासन और समर्पणमें यदि महत्त्वाकांक्षा मिली हुई है, यानी, शक्ति पानेका इरादा है, तो अगर शक्तियां तुम्हारे पास आ भी जायं तो यह प्रायः एक अभिशापके जैसा होगा। सामान्यतः वे तुम्हारे पास नहीं आतीं, तुम्हारे पास कोई ऐसी प्राणिक चीज आती है जो उनकी नकल करनेकी कोशिश करती है, उसके साथ ऐसे विरोधी प्रभाव होते हैं जो तुम्हें पूरी तरह ऐसी सत्ताओंके अधिकारमें रख देते हैं जो तुम्हें केवल इस इरादेसे शक्तियां देती हैं कि

वे तुम्हारा उपयोग करेंगी, वे जिन-जिन कामोंको करनेका इरादा रखती हैं, जो-जो उपद्रव पैदा करना चाहती हैं उन सबमें तुम्हारा उपयोग करेंगी। और जब उन्हें पता लगेगा कि तुम उनकी काफी सेवा कर चुके और अब किसी कामके नहीं रहे, तो वे बस, तुम्हें नष्ट कर देती हैं। हो सकता है कि वे तुम्हें भौतिक रूपसे नष्ट न कर सकें क्योंकि उनमें हमेशा यह करनेकी शक्ति नहीं होती, लेकिन वे तुम्हें मानसिक रूपसे, प्राणिक रूपसे और चेतनामें बिलकुल नष्ट कर देती हैं, और उसके बाद तुम, मरनेसे पहले भी, किसी कामके नहीं रहते। और मौतके बाद, चूंकि तुम पूरी तरह उनके प्रभावमें होते हो, वे सबसे पहले तुम्हें निगल लेते हैं, क्योंकि लोगोंका उपयोग करनेका उनका यही तरीका है — उन्हें निगल जाना। तो यह बहुत सुखद अनुभूति नहीं हो सकती। यह बहुत, बहुत, बहुत खतरनाक खेल है।

लेकिन हर जगह, सभी शिक्षाओंमें, सभी साधनाओंमें, सभी युगोंमें यह बात दोहराई गयी है : तुम्हें साधनाके साथ महत्त्वाकांक्षा और निजी स्वार्थ-को कभी न मिलाना चाहिये, अन्यथा यह मुसीबतको बुलाना होगा। तो यह किसी विशेष मामलेकी ही बात नहीं है, इस तरहके सभी मामलोंमें यही बात है, उनके घातक परिणाम होते हैं।

मधुर मां, क्या ऐसे जादूगर हैं जो जादूका उपयोग अपने निजी हितोंके लिये नहीं करते ?

तुम्हारा मतलब जादूके विधि-विधानसे है ? क्योंकि, देखो, तुम्हें जादूको गुह्य विद्याके साथ न मिला देना चाहिये।

गुह्य विद्या एक विज्ञान है और वह अदृश्य शक्तियोंका ज्ञान और उन-से काम लेनेकी क्षमता है; यह वैसी चीज है जैसी वैज्ञानिक ढंगसे अध्य-यन करनेपर भौतिक चीजोंका व्यवहार करनेकी क्षमता होती है।

जादू : ये विभिन्न प्रकारकी प्रक्रियाएं होती हैं जिन्हें कुछ ऐसे लोगों-ने निश्चित किया था जिनमें कुछ ज्ञान, और उससे भी बढ़कर प्राणिक रचना करनेकी कोई विशेष शक्ति थी। ये चीजें किसी विशेष क्षमता-के बिना भी सीखी जा सकती हैं, यानी, जिसके अन्दर कोई आंतरिक शक्ति न हो वह भी इसे सीख सकता है, उदाहरणके लिये, जैसे वह रसा-यन या गणित सीखता है। यह उन चीजोंमेंसे है जो इस तरह सीखी जाती हैं, यह ऐसी चीज नहीं है जिसे कोई प्राप्त करता हो। तो स्वयं इसमें कोई विशेष गुण नहीं होते, बस, वैसे ही गुण होते हैं जैसे रासाय-

निक क्रियाओंसे व्यक्ति सीखता हो। तुम इन क्रियाओंको फिरसे पैदा कर सकते हो, लेकिन अगर तुम एक समझदार और योग्य व्यक्ति हो, तो तुम इन क्रियाओंकी सहायतासे मजेदार और उपयोगी परिणाम प्राप्त करते हो, और बहरहाल, सब खतरोंसे तो बच ही सकते हो; जब कि अगर तुम मूढ़ हो, तो तुम्हारे ऊपर मुसीबतें आ सकती हैं। यह कुछ इसी तरहकी चीज है।

जादू-मंत्रकी सहायतासे तुम अमुक परिणाम पैदा कर सकते हो, लेकिन अनिवार्य रूपसे वह परिणाम सीमित होता है। जो लोग अपने आंतरिक विकासद्वारा सहज रूपसे ऐसी शक्तियां, पाते हैं जिनका उन्हें यांत्रिक नहीं, बल्कि उच्चतर ज्ञान होता है, उन्हें इसमें कोई विशेष रस नहीं होता। यह (जादू) उसके लिये नहीं होता जो सच्चा योगी हो; उसे उत्सुकता-के सिवाय इसमें कोई रस नहीं होता। इसमें उन्हीं लोगोंको रस होता है जो यथार्थतः योगी नहीं हैं, पर अमुक शक्तियां चाहते हैं और जो वास्तवमें, उन्हें बहुत सीमित रूपमें मिलती हैं — यह हमेशा सीमित होती हैं।

उसके (जादूके) बारेमें विशेष बात यह है कि उसका जड़-पदार्थपर सीधा कार्य होता है; जब कि साधारणतः, कुछ अपवादोंको छोड़कर, जिन लोगोंमें आध्यात्मिक शक्तियां, यौगिक शक्तियां होती हैं, वे सामान्यतः मानसिक शक्तियों — आध्यात्मिक या मानसिक शक्तियों — की मध्यस्थता-से और कभी-कभी प्राणिक शक्तियों (यह ज्यादा विरल है) की मध्यस्थतासे काम करते हैं . . . लेकिन सीधा जड़-पदार्थपर नहीं, स्वभावतः वे अपवाद स्वरूप हैं जिन्होंने भौतिकमें ही योग किया हो, लेकिन यह ऐसे अपवाद रूप हैं जिनके बारेमें बात नहीं की जाती। ये चीजें (जादू) किन्हीं ऐसी छोटी-मोटी सत्ताओंको गतिशील बना देती हैं जो साधारणतः मनुष्योंके विघटनका परिणाम होती हैं और फिर भी जिनका जड़ जगत्-के साथ इतना संपर्क रहता है कि ये उसपर क्रिया कर सकें। बहर-हाल, यदि क्रिया निम्न श्रेणीकी है, तो शक्ति भी निम्न श्रेणीकी है, और यह ऐसे व्यक्तिके लिये, जो सचमुच उच्चतर शक्तियोंके संपर्कमें हो घिनौनी-सी होती है।

किसी कार्यको सम्पादित करनेके लिये आध्यात्मिक उपलब्धिकी सहज शक्तियोंद्वारा कार्य करनेकी बात समझमें आती है। लेकिन तुम कह सकते हो कि ऐसा तो हर एक करता है, क्योंकि सोचनेके तथ्यका अर्थ ही यह है कि तुम अदृश्य रूपमें काम कर रहे हो; और तुम्हारा कार्य तुम्हारी विचार-शक्तिके अनुसार कम या अधिक विस्तृत होता है। लेकिन कोई परिणाम पानेके लिये किसी जादू-मंत्रके उपयोगका सच्चे आध्यात्मिक

जीवनके साथ कोई संबन्ध नहीं। आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे तो यह आश्चर्य-जनक लगता है कि ये चीजें सदा प्रभावशाली सिद्ध होती हैं, क्योंकि हर मामलेकी जरूरत अलग होती है; और यह आश्चर्यजनक लगता है कि कुछ शब्दोंको इकट्ठा करके कुछ संकेत करनेसे हमेशा कैसे असर हो जाता है।

जब तुम आध्यात्मिक रीतिसे काम करना चाहते हो और, उदाहरणके लिये, जब किसी कारणसे शब्दोंको सूत्रमें बांधना जरूरी होता है, तो शब्द सहज रूपमें आ जाते हैं और वे ठीक वही शब्द होते हैं जिनकी अवसर-विशेषपर आवश्यकता होती है। लेकिन यह जानना कठिन है कि पहले-से लिखी हुई चीजें, जिन्हें आदमी अधिकतर यांत्रिक रूपमें यह जाने बिना दोहराता है कि वह क्या कह रहा है और क्यों कह रहा है, कैसे हमेशा काम कर जाती हैं। क्रियामें बहुत अस्पष्टताका होना अनिवार्य है। और एक चीज निश्चित है: यह एक ही सूत्र हमेशा एक ही प्रभाव नहीं ला सकता, और उसके प्रभावशाली होनेके लिये एक चीज अनिवार्य है, वह है भय। पहली चीज है एक प्रकारका भय, जिस व्यक्तिपर जादू किया जा रहा हो उसके अन्दर पैदा किया गया भय; क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि अगर उसके अन्दर भय न हो तो जादूका कोई असर नहीं हो सकता या इतना नगण्य प्रभाव हो कि उसके बारेमें बोलना ही बेकार है।

जो चीज इन शक्तियोंके कार्यके लिये दरवाजा खोल देती है वह है भय, एक प्रकारकी आशंका, यह भाव कि कुछ होनेवाला है; और भयके ये स्पंदन तुम्हारे अन्दरसे अमुक प्रकारकी शक्तियोंको बाहर निकालते हैं, ये शक्तियां इन सत्ताओंको क्रिया करनेकी क्षमता देती हैं।

मधुर मां, कुछ लोग सम्मोहन ("हिप्नोटिज्म") करते हैं। तो, जब वे हमेशा एक ही व्यक्तिपर अभ्यास करते हैं, तो क्या कुछ समयके बाद वह व्यक्ति बीमार पड़ जाता है?

यह जरूरी नहीं है कि बीमार पड़ जाय। यह इसपर निर्भर है कि सम्मो-हन और सम्मोहक किस प्रकारके हैं। यह जरूरी नहीं कि व्यक्ति बीमार पड़ जाय। एक चीज निश्चित है, कि यह व्यक्ति अपनी निजी इच्छा-शक्ति खो बैठता है, कि सम्मोहककी इच्छा-शक्ति उसकी निजी इच्छा-शक्तिका स्थान ले लेती है, वरना वह काम न कर पायेगी। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि वह बीमार पड़ जाय, हां, वह भयानक रूपसे आश्रित होता है! यह लगभग एक प्रकारकी दासता पैदा करती है।

(लंबा मौन)

यह कहना बहुत कठिन है, क्योंकि यह पूरी तरह सम्मोहक और सम्मोहित व्यक्तिपर और इसपर निर्भर है कि सम्मोहन कैसे किया गया। अपने सामान्य बाहरी रूपमें यह ऐसी चीज है जो बहुत गड़बड़ पैदा कर सकती है।

लेकिन एक सहज सम्मोहन भी हो सकता है जो किसी दिव्य शक्तिकी अभिव्यक्ति हो, लेकिन तब वह सामान्य ढंगसे क्रिया नहीं करता।

मेरा ख्याल है जितने लोग उतने रूप हैं। अन्य सभी चीजोंकी तरह यह भी है। अगर तुम अज्ञानी मूर्खोंके हाथमें वैज्ञानिक ज्ञान सौंप दो, तो अनर्थ हो सकता है। और ऊपरसे अगर ये दुर्भावनावाले लोग हों या ऐसे हों जिनके निजी हेतु हों, तो परिणाम इतने बुरे होंगे जितने हो सकते हैं। सम्मोहनके साथ भी यही बात है। यह पूरी तरह इसपर निर्भर है कि कौन उसका अभ्यास कर रहा है और किस तरह अभ्यास कर रहा है।

यह कोई विशुद्ध चीज नहीं है; सारे तथाकथित मानव ज्ञानकी तरह, यह भी सच नहीं है, बल्कि किसी चीजकी विकृति है।

कहा जा सकता है कि अगर भगवान्‌की 'इच्छा' तुम्हारे अंदर काम करती है, तो, चाहे तुम उसे सम्मोहन कह लो, वह परम 'शुभ' होगी, समझे !

लेकिन साधारणतः, जिसे सम्मोहन या "हिप्नोटिज्म" कहते हैं वह बिलकुल अंधी और अज्ञानमय क्रिया है : यह किसी ऐसी क्षमताकी शक्तिका उपयोग है जिसे आदमी भली-भांति जानता भी नहीं। तो स्वभावतः इसके अनिष्टकर परिणाम होते हैं; और फिर, जैसा कि मैंने कहा, यह अगर किसी ऐसेके हाथमें पड़ जाय जो चरित्रहीन या बुरे इरादोंवाला हो, तो वह बिलकुल अनर्थकारी हो जाता है।

१० अगस्त, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप' मेंसे 'समर्पण और उद्घाटन' पढ़ती हैं।

तो यह बात है। कुछ नहीं पूछना ? किसीको कुछ नहीं कहना ?

(मौन)

हम पांच मिनटके लिये ध्यान कर सकते हैं। चलो, हम सामूहिक ध्यानके लिये कोशिश करें! यह जरा कठिन होगा। पर हम कोशिश कर सकते हैं।

हमने जो पढ़ा है तुम उसीपर (ध्यान) करना चाहोगे?

सोचो मत, बस, इस तरह एकाग्र होओ: हमने जो पढ़ा है उसे अपने अन्दर प्रवेश करने दो, और उसे अनुभव करनेकी कोशिश करो; कोशिश करो।

सोचनेकी कोशिश मत करो, विचार उलटने-पलटनेकी, प्रश्नोंके उत्तर पानेकी कोशिश मत करो, यह सब कुछ नहीं। बस, इस तरह रहो (संकेत), खुले हुए।

यह शुरूसे अंततक उद्घाटनके बारेमें था। जो कुछ पढ़ा गया है उसे तुम्हें अपने अन्दर प्रवेश करने देना चाहिये, और फिर, इस तरह, उसे अपने अन्दर अपना काम करने देना चाहिये। जहांतक संभव हो तुम्हें नीरव, स्थिर-शांत रहना चाहिये।

चलो, देखेंगे क्या होता है।

(पांच मिनटसे अधिकका ध्यान)

कुछ कहना है? नहीं? अच्छा है!

लेकिन आरंभके लिये यह बुरा नहीं था। यह काफी अच्छा है।

तो बस? हम और आगे नहीं चलेंगे? किसीको कुछ नहीं कहना?

तो बंद कर देना ज्यादा अच्छा है।

१७ अगस्त, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप' मेंसे 'समर्पण और उद्घाटन' पढ़ती हैं।

मधुर मां, "वैश्व चेतनामें क्षैतिज (समस्तर) उद्घाटन"का क्या मतलब है?

देखो, आदमीको हमेशा या तो 'परम चेतना' की खड़ी ऊंचाइयोंपर चढ़ाई-

का या एक प्रकारकी . . . . कैसे कहा जाय? . . . वैश्व चेतनामें क्षैतिज विस्तारका अनुभव होता है।

वैश्व चेतनाका अर्थ है उन शक्तियोंके बारेमें अवगत होना जो विश्वमें तथा सभी अभिव्यक्त चीजोंमें प्रकट होती हैं। उदाहरणके लिये, बस, यही: यहां बहुत-से लोग हैं; हम यह मान सकते हैं कि ये लोग विश्वके प्रतिनिधि हैं। अब, अगर तुम उनके साथ एक होना चाहो, तो तुम्हारे अन्दर चेतनाकी ऐसी गति होती है जो उन सबके ऊपर फैल जाती है और सबके साथ एक होती है, इस तरह (संकेत)। यह ऐसी गति है जो समस्तर या क्षैतिज दिशामें फैलती है।

लेकिन अगर तुम अतिमानसिक 'शक्ति' के साथ एक होना चाहो, जो नीचे उतरना चाहती है, तो तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम अपनी समस्त अभीप्साको समेटकर जिन उच्चतर शक्तियोंको नीचे उतारना होगा उनकी ओर उसे खड़ी चढ़ाईमें उठा रहे हो। यह केवल गतिका प्रश्न है, है न, यह या तो विस्तारकी गति है या एकाग्रता और आरोहणकी गति है।

चैत्य पुरुषकी मुक्तिका क्या अर्थ है?

चूंकि तुम्हें ऐसा लगता है — साधनाके आरंभमें प्रायः आदमीको यह अनुभव होता है — कि चैत्य पुरुष मानों एक प्रकारके कठोर छिलकेमें, जेलमें बंद है, और यही चीज उसे बाहर प्रकट होनेसे और बाह्य चेतनासे, बाह्य सत्तासे सचेतन और सतत संबन्ध जोड़नेसे रोकती है। तुम्हें बिलकुल ऐसा लगता है कि मानों वह एक बक्सेमें या दीवारोंवाली जेलमें बन्द हो और तुम्हें प्रवेश पानेके लिये दीवारोंको तोड़ना या दरवाजेको जबस्दस्ती खोलना पड़ेगा। तो स्वभावतः अगर तुम दीवारें तोड़ सको या दरवाजा खोल सको, तो अन्दर बन्द चैत्य पुरुष मुक्ति पा जाता है और अब बाह्य रूपसे प्रकट हो सकता है। ये सभी रूपक हैं। लेकिन स्वभावतः, हर एक व्यक्तिका जरा हेर-फेरके साथ, अपना ही बिम्ब, अपना ही तरीका होता है।

जिन लोगोंने अनुभूति पायी है उनमें कुछ बिंब बहुत व्यापक होते हैं। उदाहरणके लिये, जब तुम अपनी चेतनाकी ठीक तलीमें स्थित चैत्य पुरुषको पानेके लिये अपनी चेतनाकी गहराइयोंमें उतरते हो, तो 'गहरे कुएंमें उतरनेका, गहरे, और गहरे जानेका यह बिम्ब है, मानों तुम सचमुच किसी कुएंमें डूब रहे हो।

स्वभावतः यह सब अनुरूपताएं हैं; लेकिन वे ऐसे संयोजन या अनुभूतिके संस्कार हैं जो अनुभूतिको बहुत शक्ति और ठोस वास्तविकता देते हैं।

जैसे जब तुम अपनी आंतरिक सत्ताकी, सत्ताके सभी भिन्न भागोंकी खोजके लिये जाते हो, तो बहुत बार तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम किसी बहुत बड़े हॉल या कमरेमें प्रवेश कर रहे हो, और उसके रंग, उसके वातावरण और उसके अन्दरकी चीजोंसे तुम्हें यह बहुत स्पष्ट बोध हो जाता है कि तुम सत्ताके किस भागमें सैर करनेके लिये गये हो। और फिर, तुम एक कमरेसे दूसरे कमरेमें जा सकते हो, दरवाजे खोलकर ज्यादा-ज्यादा गहरे कमरोंमें जाते हो जिनमेंसे हर एकका अपना-अपना गुण है। और बहुधा, ये आंतरिक सैर रातको की जाती है। तब यह, स्वप्नकी तरह, और भी ज्यादा ठोस रूप ले लेती है, और तुम्हें लगता है कि तुम एक मकानमें घुस रहे हो, और यह मकान तुम्हारे लिये बहुत परिचित है। और समय तथा अवधिके अनुसार, वह अन्दरसे अलग-अलग तरहका होता है, और कभी-कभी वह बहुत ज्यादा अव्यवस्थामें, बहुत अस्त-व्यस्त हो सकता है, जहां सब कुछ घाल-मेलमें होता है; कभी-कभी चीजें टूटी-फूटी भी होती हैं; वह बिलकुल अंधव्यवस्था होती है। किसी और समय चीजें सुव्यवस्थित होती हैं, अपने स्थानपर रखी होती हैं; ऐसा लगता है कि तुमने घर-गिरस्ती सजायी थी, तुम सफाई करते हो, चीजोंको व्यवस्थामें रखते हो, और यह हमेशा वह-का-वही मकान होता है। यह मकान तुम्हारी आंतरिक सत्ताका बिम्ब, एक प्रकारका वस्तुनिष्ठ बिंब होता है। और तुम वहां जो देखते या करते हो उसके अनुसार, तुम्हारे लिये यह अपने मनोवैज्ञानिक कार्यका एक प्रतीकात्मक चित्रण होता है। यह मूर्त रूप देनेके लिये बहुत उपयोगी होता है। यह लोगोंपर निर्भर है।

कुछ लोग केवल बुद्धि-प्रधान होते हैं; उनके लिये हर चीज बिम्बोंके द्वारा नहीं, विचारोंद्वारा अभिव्यक्त होती है। लेकिन अगर उन्हें अधिक जड़ क्षेत्रमें जाना हो, तो, वे चीजोंको उनकी ठोस वास्तविकतामें छूनेका खतरा नहीं उठाते, वे केवल विचारोंके क्षेत्रमें रहते हैं, मनमें रहते हैं और अनिश्चित कालतक वहीं बने रहते हैं। तब आदमीको लगता है कि वह प्रगति कर रहा है, और मानसिक रूपसे कुछ करता भी है, यद्यपि यह बिलकुल अनिश्चित चीज होती है।

मनकी प्रगतिमें हजारों वर्ष लग सकते हैं, क्योंकि यह बहुत विशाल और बहुत अनिश्चित क्षेत्र है जो हमेशा नया होता रहता है। लेकिन

अगर कोई प्राणिक और भौतिक क्षेत्रमें प्रगति करना चाहे, तो, बिम्बों-का यह चित्रण क्रियाको निश्चित रूप देनेके लिये, उसे अधिक ठोस बनाने-के लिये बहुत उपयोगी होता है। स्वभावतः, यह पूरी तरह इच्छाके अनुसार नहीं होता; यह हर एककी प्रकृतिपर निर्भर है। लेकिन जिन-में बिम्बोंको लेकर एकाग्र होनेकी शक्ति होती है, हां तो, उन्हें ज्यादा सुविधा प्राप्त होती है।

एक बंद दरवाजेके आगे ध्यानमें बैठना, मानों वह कांसेका बहुत भारी दरवाजा हो — और तुम उसके सामने इस संकल्पके साथ बैठते हो कि वह खुल जाय — कि तुम उसके पार दूसरी ओर चले जाओ; तो सारी एकाग्रता, सारी अभीप्सा एक किरणके रूपमें इकट्ठी हो जाती है और धक्का देती है, धक्का देती है और दरवाजेको धक्का देती है, अधिकाधिक बढ़ती हुई ऊर्जाके साथ धक्का देती है, यहांतक कि अचानक कपाट खुल जाते हैं, और तुम अन्दर प्रवेश करते हो। इसका बड़ा जबर्दस्त असर पड़ता है और इस-लिये ऐसा लगता है मानों तुमने प्रकाशमें डुबकी लगायी हो और तब तुम्हें चेतनाके सहसा आमूल परिवर्तनका पूरा आनन्द मिलता है, एक ऐसा प्रकाश मिलता है जो तुम्हे पूरी तरह अभिभूत कर लेता है, और तुम्हें लगता है कि तुम एकदम नये ही व्यक्ति बन रहे हो। और यह अपनी चैत्य सत्ताके साथ संपर्क में आनेके लिये बहुत ठोस और बहुत सशक्त मार्ग है।

मधुर मां, यहां श्रीअरविन्द कहते हैं: "चैत्य सत्ता और उच्चतर चेतनाका यह अंतर्बन्धन सिद्धिका मुख्य मार्ग है।" क्या सामा-न्यतः चैत्य सत्ता और उच्चतर चेतनामें अंतर्बन्धन नहीं होता?

सामान्यतः का अर्थ साधारण जीवनसे है? चैत्य सत्ताके साथ कोई संपर्क...

जी हां।

वह करीब-करीब, करीब-करीब, पूरी तरहसे अचेतन होता है।

साधारण जीवनमें लाखोंमेंसे एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं होता जिसका अपनी चैत्य चेतनाके साथ सचेतन संपर्क हो, क्षण-भरके लिये भी। चैत्य सत्ता अन्दरसे कार्य कर सकती है, लेकिन बाहरी सत्ताके लिये वह इतने अदृश्य और अचेतन रूपमें कार्य करती है मानों उसका अस्तित्व ही न हो। और अधिकतर लोगोंमें, बहुत अधिक लोगोंमें, करीब-करीब सभीमें,

वह ऐसी होती है मानों वह सो रही हो, बिलकुल भी सक्रिय नहीं होती, एक तरहकी निष्क्रियतामें रहती है।

केवल साधना और बहुत ही अटल प्रयासके द्वारा व्यक्ति अपनी चैत्य सत्ताके साथ एक सचेतन संपर्क बनानेमें सफल होता है। स्वाभाविक रूपसे, यह संभव है कि कुछ असाधारण मनुष्य हों — लेकिन यह चीज सचमुच असाधारण है, और ऐसे लोग इतने कम होते हैं कि उनको गिन सकते हैं — जहां चैत्य सत्ता पूर्ण विकसित हो, स्वतंत्र और स्वराट् सत्ता हो, जिसने अपना कार्य करनेके लिये किसी मानव शरीरके अन्दर पृथ्वी-पर वापिस आनेका चयन किया हो। और ऐसी अवस्थामें, यदि व्यक्ति सचेतन रूपसे साधना न भी करे, यह संभव है कि चैत्य सत्ता इतनी अधिक शक्तिशाली हो कि वह न्यूनाधिक रूपसे सचेतन संपर्क बना दे। लेकिन ऐसे व्यक्ति कहना चाहिये, असाधारण और अद्वितीय होते हैं जो इस नियमकी परिपुष्टि करते हैं।

अपनी चैत्य सत्ताके प्रति सचेतन होनेके लिये करीब-करीब, करीब-करीब सभी मनुष्योंके लिये, एक बहुत, बहुत ही सतत प्रयासकी आवश्यकता होती है। साधारणतः ऐसा माना जाता है कि अगर मनुष्य उसे तीस सालमें कर ले तो वह बहुत भाग्यशाली होता है — मैं कह रही हूं, तीस सालकी सतत साधना। यह भी हो सकता है कि वह ज्यादा तेज हो। लेकिन यह इतना विरल होता है कि मनुष्य झट बोल उठता है: "यह कोई साधारण मानव नहीं है।" यह ऐसे लोगोंकी बात है जिन्हें न्यूनाधिक रूपसे भागवत सत्ताएं मान लिया गया है, और ये व्यक्ति बहुत बड़े योगी, बहुत बड़े संत थे।

(मौन)

तुम लोगोंको एकाग्र होना है, ध्यान करना है?

मैं बत्ती बुझानेका सुझाव दूंगी... यह बत्ती, यहां, मेरे सिरके ऊपर, क्योंकि कीड़े बहुत अधिक हैं।

(ध्यान)

२४ अगस्त, १९५५

मातजी 'योग-प्रदीप' मेंसे 'समर्पण और उद्‌घाटन' पढ़ती हैं।

तो ?

मधुर मां, आपके बहुत सारे फोटो हैं जिनमेंसे हर एकमें अलग भाव है, तो जब हम इनमेंसे किसी एकपर एकाग्र होते हैं, तो क्या हम जिस फोटोपर एकाग्र हों उससे हमारे लिये कोई फर्क पड़ता है ?

अगर तुम जान-बूझकर करते हो, तो हां, निश्चय ही। अगर तुम इस चित्रको किसी विशेष कारणसे चुनते हो और उसको किसी और कारण-से, तो निश्चय ही। उसका प्रभाव होता है। यह ऐसा है जैसे तुम मांके एक रूपकी जगह दूसरे रूपपर एकाग्र होते हो; उदाहरणके लिये, अगर तुम महाकाली या महालक्ष्मी या महेश्वरीपर एकाग्र हो, तो परि-णाम अलग-अलग होंगे। तुम्हारे अन्दर जो भाग इन गुणोंको उत्तर देता है, वह जागेगा और ग्रहणशील बन जायगा। तो, वही बात है। लेकिन अगर किसीके पास एक ही फोटो है, वह चाहे कोई-सी क्यों न हो, और वह उसपर एकाग्र हो, चूंकि उसके पास एक ही है इसलिये इसमें और उसमें चुनाव न करे, तो इसका कोई महत्त्व नहीं है कि वह कौन-सी है। क्योंकि फोटोपर एकाग्र होनेका तथ्य ही व्यक्तिको 'शक्ति' के संपर्कमें ला देता है, और यही चीज है जो जरूरी है, हर किसीके लिये, जिसमें प्रत्युत्तर देनेकी सहज क्षमता है।

केवल तभी जब एकाग्रता करनेवाला व्यक्ति किसी विशेष संबंधके लिये अपनी कोई विशेष इच्छा अपनी एकाग्रतामें जोड़ देता है तो उसका असर होता है। अन्यथा संबंध अधिक व्यापक होता है, और वह हमेशा एका-ग्रता करनेवालेकी अभीप्सा या आवश्यकताकी अभिव्यक्ति होता है। अगर वह बिलकुल तटस्थ हो, अगर वह चुनाव न करे, किसी वस्तु-विशेषके लिये अभीप्सा न करे, अगर वह यूं हो जाये, कोरे कागजकी तरह, और बिलकुल तटस्थ, तो उसकी एकाग्रताका उत्तर वे शक्तियां और वे रूप देंगे जिनकी उसे जरूरत है और शायद व्यक्ति अपने-आप यह न जानता

होगा कि उसे कौन-सी विशेष वस्तुओंकी जरूरत है, क्योंकि बहुत कम लोग अपने बारेमें सचेतन होते हैं। वे एक बहुत अस्पष्ट-सी भावनामें जीते हैं, उनके अंदर अस्पष्ट अभीप्साएं होती हैं जो मुश्किलसे पकड़में आती हैं; वह कोई व्यवस्थित, समन्वित, संकल्पित चीज नहीं होती जिसमें स्पष्ट दृष्टि हो, उदाहरणके लिये उसमें यह स्पष्टता नहीं होती कि व्यक्ति किन कठिनाइयोंपर विजय पाना चाहता है या कौन-सी क्षमताएं प्राप्त करना चाहता है; साधारणतः, यह भी एक काफी विकसित अनुशासनका परिणाम है। ठीक-ठीक किस चीजकी जरूरत है यह जाननेके लिये जरूरी है कि तुमने बहुत मनन किया हो, बहुत अवलोकन किया हो, बहुत अध्ययन किया हो। वरना यह एक धुंधली-सी छाप होती है, तुम उसे पकड़नेकी कोशिश करते हो और वह भाग निकलती है...। ऐसा ही है न?

तो बस?

प्रश्न पुस्तकसे बाहरका है।

(एक और बालक) **माताजी, यहां कहा है: "तुम एकाग्र होनेकी जगह शिथिल हो सकते और ध्यान कर सकते हो।"**

यह बात कहनेवाली मैं नहीं हूं! (हंसी) अच्छा। तो? ध्यान करने और एकाग्र होनेके बीचका फर्क?

जी हां, माताजी, क्योंकि जब हम ध्यान करते हैं, तो क्या चेतनाकी एकाग्रता नहीं होती?

ध्यान!

सब प्रकारके अलग-अलग ध्यान हैं! साधारणतः लोग जिसे ध्यान कहते हैं वह है, उदाहरणके लिये, कोई विषय या विचार चुनकर उसके विकासका अनुसरण करना या उसका अर्थ समझनेकी कोशिश करना। उसमें एकाग्रता तो होती है परंतु उतनी पूरी नहीं जितनी स्वयं एकाग्रतामें होती है, जिसमें केवल वही बिन्दु रहना चाहिये जिसपर तुम एकाग्र हो रहे हो, उसके सिवा कुछ नहीं। ध्यान ज्यादा विश्रांतिमय क्रिया है, इसमें एकाग्रतासे कम तनाव होता है।

जब तुम किसी ऐसी समस्याको समझनेकी कोशिश करते हो जो तुम्हारे सामने आती है, वह चाहे मनोवैज्ञानिक समस्या हो या परिस्थितिगत, और बैठकर उसे देखते हो, समस्त संभावनाओंको देखते हो, उनकी तुलना करते

हो, उनका अध्ययन करते हो, तो यह एक प्रकारका ध्यान है; और जब भी ऐसी कोई चीज होती है तो तुम इसे सहज रूपसे करते हो। उदाहरणके लिये, जब तुम्हें कोई निर्णय करना होता है और तुम्हें पता नहीं होता कि कौन-सा निर्णय हो, तो, साधारणतः तुम मनन करते हो, अपनी तर्क-बुद्धिकी सलाह लेते हो, सभी संभावनाओंकी तुलना करते हो और फिर अपना चुनाव करते हो... न्यूनाधिक रूपसे, हां तो, यह एक प्रकारका ध्यान है।

अब, ध्यानका एक और रूप होता है जिसमें हम किसी विचारपर एकाग्र होते हैं, अपने सारे मनोयोगको उसपर इस हदतक केंद्रित करते हैं मानों बस उसीका अस्तित्व है; तब यह एकाग्रताके समान है, परंतु समग्र होने की जगह यह केवल मानसिक होती है।

समग्र एकाग्रताके अंदर प्राण और भौतिककी समस्त गतियोंकी एकाग्रता भी आ जाती है। एक बिन्दुपर ताकनेकी विधि (त्राटक) बहुत प्रसिद्ध है। तो देखो, यह भौतिक भी है, तुम्हारी आंखें इस बिन्दुपर लगी रहती हैं, तुम जरा भी हिलते-डुलते नहीं... कुछ भी नहीं... तुम कुछ भी नहीं देखते, उस बिन्दुसे अपनी नजर नहीं हटाते, और सामान्यतः परिणाम यह होता है कि अंतमें तुम वही बिन्दु बनकर रह जाते हो। और मैं एक ऐसे व्यक्तिको जानती थी जो कहा करता था कि तुम्हें इस बिन्दुके पार हो जाना चाहिये, यह बिन्दु बन जाना चाहिये, यहांतक कि उस बिन्दुको पार कर उसकी दूसरी ओर निकल जाना चाहिये, और तब तुम उच्चतर स्तरोंकी ओर खुलोगे। लेकिन यह सच है कि अगर तुम एक बिन्दुपर पूरी तरहसे एकाग्र होनेमें सफल हो जाओ, तो एक ऐसा क्षण आता है जब पूरा-पूरा तादात्म्य हो जाता है, और एकाग्रता करनेवाले और जिसपर एकाग्रता की जा रही है, उन दोनोंमें कोई अलगाव नहीं रहता। पूर्ण तादात्म्य हो जाता है। तुम अपने और बिन्दुके बीच फर्क नहीं कर सकते। यह समग्र एकाग्रता है, जब कि ध्यान विचारकी विशेष एकाग्रता है, एकांगी है।

•

मधुर मां, बिलकुल न सोचनेके लिये उद्घाटन!

बिलकुल न सोचना आसान नहीं है; लेकिन अगर तुम पूर्ण एकाग्रता चाहते हो तो यह जरूरी है कि बिलकुल कोई विचार न रहे।

•

मधुर मां, क्या एकाग्रता और निदिध्यासन ("कान्टेम्प्लेशन") में कोई संबंध है?

सभी चीजोंमें हमेशा कोई संबंध हो सकता है, लेकिन सामान्यतः निदि-ध्यासनका अर्थ होता है, ऊपरकी ओर एक प्रकारका उद्घाटन। यह ऊपरकी ओर एक प्रकारकी निष्क्रिय उद्घाटनकी अवस्था है। यह अभीप्साका काफी निष्क्रिय रूप है। बल्कि यूं कहें, तुम यह क्रिया, तुम किसी चीजके खुलनेकी, अभीप्सामें खुलनेकी क्रिया करते हो; लेकिन अगर निदिध्यासन काफी पूर्ण हो, तो वह एकाग्रता बन जाता है। फिर भी यह जरूरी नहीं कि वह एकाग्रता हो।

जब एकाग्रता होती है, तो जो भाग एकाग्र होता है... एकाग्रता सीमित होती है या फिर...

एकाग्रता सीमित अवश्य होती है। तुम एक साथ बहुत-से बिन्दुओंपर एकाग्र नहीं हो सकते, तब वह एकाग्रता नहीं रह जाती।

जी नहीं, मेरा मतलब है निदिध्यासनके समय।

नहीं, तुमने बस यही कहा था कि यह एक सीमित एकाग्रता है; एकाग्रता अनिवार्यतः सीमित होती है।

मधुर मां, आपने 'बुलेटिन'में लिखा है: "कविता आत्माका ऐंद्रिय विलास है।" इसका क्या अर्थ है?

इसका क्या अर्थ है?...चूंकि कविताका संबंध विचारोंके रूपों और बिम्बोंसे है: रूप, बिम्ब, संवेदन, संस्कार, विचारोंके भाव, यह सब वस्तुओंका इन्द्रियनिष्ठ पहलू है। रूपों, संवेदनों, बिम्बों, और संस्कारोंके सभी संबंध, यह सब वस्तुओंका ऐंद्रिय विलास है। और कविता विचारका यही पहलू है; यह जगत्की ओर उपगमनका, विचारोंके जगत्की ओर उपगमनका तरीका है। इन विचारोंके बिम्बों, रूपों, रंग-रूपों, भावों, संवेदनों और इन चीजोंकी लीला, रंग-रूपोंकी, विचारोंकी लीला है कविता। यह दर्शन या तत्त्वज्ञानकी तरह बिलकुल नहीं है जो विचारके हृदयकी, विचारके तत्त्वकी खोज करते हैं। कविता तबतक कविता नहीं होती जब-तक वह आह्वान न करे। वह रूप और संवेदनका जगत् है। इसलिये हम एक ऐसा मुहावरा लेते हैं जो जरा...कैसे कहा जाय?..विनो-दात्मक है, और हम कह सकते हैं: "कविता आत्माका ऐंद्रिय विलास है।"

ठीक उन लोगोंके जैसे जो ऐकांतिक रूपसे उन संवेदनोंमें व्यस्त रहते हैं जिन्हें भौतिक जगत् अपने रूपोंके द्वारा प्रकट करता है, वे भौतिक जीवनके संवेदनोंके रूपोंकी समस्त दिशामें व्यस्त रहते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जो अपनी इंद्रियोंमें निवास करते हैं, और जब वे इन सब चीजोंमें आनंद लेते हैं, तो हम उन्हें ऐंद्रिय विलासी कहते हैं।

तो यहां, इसे बाहरी भौतिक जीवनपर लागू करनेकी जगह, आत्माके जीवनपर, विचारों और जो चीज विचारोंके परे है उसपर लागू किया जाता है। और उस सारी सृष्टिको उसके रूपके सौंदर्य-पक्षद्वारा देखना —यह है कविता। यह भावोंके सौंदर्य, विचारोंके सामंजस्यको प्रकट करती है, और इस सबको एक ऐसा रूप प्रदान करती है जो बिम्बों, बिम्बोंकी लीला, ध्वनियोंकी लीला, शब्दोंकी लीलाको साकार बना देती है।

तो, यह भौतिककी ऐंद्रिय विलासिता न होकर आत्माकी ऐंद्रिय विलासिता है। इसे निन्दात्मक या नैतिक अर्थमें बिलकुल नहीं लिया गया है, यह केवल वर्णनात्मक है।

लेकिन भावोंके रूप और सौंदर्यपर एकाग्र होनेमें यह खतरा नहीं रहता कि आदमी सत्यको खो बैठेगा?

लेकिन मैंने यही तो कहा था। यह निंदात्मक नहीं है, मैंने यह नहीं कहा कि वह तुम्हें वस्तुओंके सत्यको देखनेसे रोकता है। यह एक मार्ग है, विषयकी ओर जानेका एक तरीका है। निश्चय ही, अगर मुझे एक तत्त्व-ज्ञानकी पुस्तक और एक सुन्दर कविता पढ़नेमें चुनाव करना हो, तो मैं कविता पढ़ना पसन्द करूंगी; वह कम थकानेवाली होगी। यह निन्दात्मक नहीं है, यह विवरणात्मक है। यह ठीक यह कहना है: "यह ऐसा है।" यह एक वक्तव्य है, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

अश्चर्यकी बात यह है कि लोगोंने इसके बारेमें कभी नहीं सोचा। अगर वे पूर्ण चेतनाकी स्वाधीनताके साथ आत्मामें विचरण करते, तो उन्हें इससे जरा भी आश्चर्य न होता, क्योंकि वे इसे भली-भांति जानते कि बात ऐसी है, कि यह सत्यके पास पहुंचनेकी इन्द्रियनिष्ठ तरकीब है। केवल, इस क्षेत्रमें वे अभीतक पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हैं, है न, अतः साधारणतः वे शास्त्रीय या परंपरागत या अभ्यासगत तरीकेसे, या उन्होंने जो सीखा-पढ़ा है उसके अनुसार सोचते हैं, अपने ही ढंगसे, स्वतंत्रताके साथ नहीं सोचते।

यह केवल बात कहनेका एक जरा-सा विरोधाभासी ढंग है, ताकि

इसका असर पड़े, विचार आकर्षक बने — बस, इतना ही। लेकिन तुम्हें यह न समझना चाहिये कि यह कविताकी निन्दा है। यह और ही बात है।

मधुर मां, हम यह कब कह सकते हैं कि कवि प्रेरणा पाता है?

उसे प्रेरणा क्यों न मिले?

तब वह कविता लिखते समय सोचता नहीं?

नहीं सोचता? इसका मतलब...?

वह ऊपरसे आती है।

ऐसा नहीं है। तुम्हारा मतलब है: हम यह कब कहते हैं कि कविको प्रेरणा मिलती है? साधारणतः हम तब कहते हैं कि कवि प्रेरित है जब उसे प्रेरणा प्राप्त होती हो। (हंसी)

तुम्हारा भाव यह है पर तुम कहते नहीं...प्रेरित कवि वे हैं जो विचारके परे जाते हैं, अपने विचारोंको नीरव कर देते हैं, जिनका मन पूरी तरह नीरव और अचंचल होता है, जो आंतरिक क्षेत्रोंकी ओर खुलते हैं और जो कुछ ऊपरसे आता है उसे लगभग यंत्रवत् लिख देते हैं। तुम्हारा मतलब इससे था पर तुमने कहा नहीं। लेकिन यह तो बिलकुल ही अलग चीज है, और यह हजार वर्षमें एक बार होती है। यह बहुधा होनेवाली घटना नहीं है। सबसे पहले, यह सब करनेके लिये तुम्हें योगी होना चाहिये। लेकिन प्रेरणा-प्राप्त कवि, जैसा कि हम उसे कहते हैं...एकदम भिन्न होता है। प्रतिभावाले सभी लोग, यानी, ऐसे लोग जो साधारण मनसे जरा ऊपरकी ओर खुले होते हैं, वे "प्रेरणा-प्राप्त" कहलाते हैं। जो कोई खोज करता है वह भी प्रेरणा-प्राप्त होता है। हर बार तुम साधारण मानव क्षेत्रसे जरा ऊंची किसी चीजके साथ संपर्कमें होते हो, तो तुम प्रेरणा-प्राप्त होते हो। तो जब तुम साधारण चेतनासे पूरी तरह सीमित नहीं होते, तो तुम्हें ऊपरसे प्रेरणा मिलती है; उस कृतिका स्रोत साधारण मानसिक चेतनासे ऊंचा होता है।

बस? और प्रश्न नहीं हैं?

माताजी, कभी-कभी हम नीरवताका अनुभव करते हैं, परंतु

अपने-आपको इस नीरवताके बाहर अनुभव करते हैं। ऐसा क्यों होता है ?

तुम नीरवताका अनुभव करते हो, और फिर ?

चीजोंमें।

नहीं, अगर तुम, अपनी चेतनामें, नीरवताकी स्थितिमें पहुंच जाओ, तो अपनी नीरवताकी स्थितिको हर जगह देखोगे, लेकिन यह जरूरी नहीं कि और लोग भी देखें। तुम इसलिये देखते हो क्योंकि तुम उस स्थितिमें हो। उन लोगोंके बारेमें भी यही बात है जो अपने अंदर भगवान्के बारे-में अवगत होते हैं : वे भगवान्को हर जगह देखते हैं, लेकिन जरूरी नहीं है कि दूसरोंको भी उनका भान हो। यह इसलिये है कि तुम उस अवस्थामें प्रवेश कर गये हो; चूंकि तुम इस स्थितिके बारेमें सचेतन हो, इसलिये वह जहां कहीं हो तुम उसके बारेमें सचेतन होते हो; और वस्तुतः वह हर जगह है, कहीं, ऊपरी तलपर या बाहरकी ओर नहीं, बल्कि अंदरकी ओर।

हमें यह लगता है कि हम नीरवताके बाहर हैं, कि वह हमारे अंदर नहीं है।

कि तुम नीरवताके बाहर हो? तब तो तुम कोलाहलमें हो! मैं ठीक तरह पकड़ नहीं पा रही कि तुम क्या...

मेरा मतलब है कि नीरवता चीजोंमें है, पर मेरे अंदर नहीं।

शायद इसलिये कि तुम उस समय अपने अन्दरकी अपेक्षा चीजोंमें अधिक होते हो। इसका अर्थ है कि तुम अपने अंदरकी अपेक्षा अपने बाहरकी नीरवतासे ज्यादा सचेतन हो गये हो।

मधुर मां, कभी-कभी ऐसा होता है कि हम ध्यान या एकाग्रताके लिये तैयार नहीं होते, और अचानक किसी वस्तुके दबावमें आकर नीरव रहनेको बाधित हो जाते हैं, बाहर निकलना चाहते हुए भी निकल नहीं पाते; कभी-कभी बहुत समयके लिये उसी

तरह बने रहते हैं, इन चीजोंके प्रवाहमें पूरी तरह बह जाते हैं। क्या यह ध्यानकी किसी श्रेणीमें आता है ?

इसका अर्थ केवल यही है कि तुम किसी उच्चतर शक्तिके प्रभावमें आ गये हो जिसके बारेमें तुम सचेतन नहीं हो; तुम केवल उसके कार्यके प्रति सचेतन होते हो, कारणके प्रति नहीं। बस, यही है। इसके सिवाय और कुछ नहीं। अगर तुम सचेतन हो तो जान सकोगे कि कौन-सी चीज तुम्हें नीरव बना रही है, कौन-सी चीज तुमसे ध्यान करवा रही है, किस प्रकारकी शक्तिने तुम्हारे अन्दर प्रवेश किया है या तुम्हारे ऊपर कार्य कर रही है या तुमपर प्रभाव डाल रही है और तुम्हें नीरव बना रही है। चूंकि तुम सचेतन नहीं होते, इसलिये तुम केवल कार्यसे, परिणामसे, यानी, उस नीरवतासे अवगत होते हो जो तुम्हारे अन्दर आती है।

लेकिन, मधुर मां, हम सचेतन हो सकते हैं_ना ?

पूरी तरहसे! लेकिन इसके लिये तुम्हें अपने अन्दर कुछ काम करना होगा। ऊपरी सतहसे अपने-आपको अलग कर लेना होगा।

प्रायः सभी, हर एक व्यक्ति सतहपर रहता है, सारे समय, सारे समय सतहपर रहता है। और उनके लिये सतह ही एकमात्र चीज है जो अस्तित्व रखती है। और जब कोई चीज तुम्हें सतहसे पीछे हटनेको बाधित करती है, तो कुछ लोगोंको ऐसा लगता है कि वे किसी छेदमें गिर रहे हैं। कुछ लोग हैं जिन्हें अगर सतहसे पीछे हटाया जाये, तो अचानक उन्हें ऐसा लगता मानों टुकड़े-टुकड़े होकर किसी खाईमें गिर रहे हैं, वे इस हदतक अचेतन होते हैं!

वे केवल एक छोटी, पतली-सी पपड़ीके बारेमें सचेतन होते हैं, वे अपने बारेमें, चीजोंके बारेमें, जगत्‌के बारेमें बस, इतना ही जानते हैं, यह पपड़ी इतनी पतली होती है! बहुत-से लोग! ऐसे बहुत-से लोग मेरे पास आये, पता नहीं कितनी ही बार . . . ऐसे लोग आये जिन्हें मैंने अन्तर्मुख करनेकी कोशिश की, और तुरन्त उन्हें ऐसा लगा मानों वे किसी खाईमें, और कभी-कभी तो अन्धेरी खाईमें गिर रहे हों। तो यह चरम अचेतना है। लेकिन यह एक पतन है, किसी ऐसी चीजमें पतन जो उनके लिये असत्‌की तरह है, ऐसा बहुधा होता है। लोगोंसे कहा जाता है: "बैठो और नीरव रहनेका, बहुत शांत रहनेका प्रयत्न करो", यह चीज उन्हें बहुत भयभीत कर देती है।

बाहरी चेतनासे निकलनेपर जीवनमें वृद्धिका अनुभव करनेके लिये काफी लम्बी तैयारीकी जरूरत होती है। यह अपने-आपमें बड़ी प्रगति है। और फिर चरम-बिंदु है, जब तुम किसी-न-किसी कारण बाहरी चेतनामें वापिस आनेको बाधित होते हो, तो वहां तुम्हें किसी काले छेद-में गिरनेका भान होता है, कम-से-कम किसी नीरस, निर्जीव धूसरतामें, कम-से-कम रोशनीवाली अव्यवस्थित चीजोंके अस्तव्यस्त मिश्रणमें गिरने-का भान होता है, और यह सब इतना धुंधला, इतना नीरस, इतना मृत-प्राय लगता है कि व्यक्ति आश्चर्य करता है कि ऐसी अवस्थामें रहना कैसे संभव है — लेकिन यह दूसरा छोर है — अवास्तविक, मिथ्या, अस्तव्यस्त, निर्जीव !

(मौन)

तो, हम अन्दर जाकर यह देखनेकी कोशिश करें कि वहां कोई काला छेद है या नहीं ?

केवल . . . मैं बहुत चाहूंगी कि कोई हिले-डुले नहीं, खड़ा न हो या चला न जाय।

जिन्हें विश्वास नहीं है कि वे चुपचाप बैठ सकेंगे — मैं उनसे आग्रह करती हूं कि वे **तुरंत** चले जायें ! क्योंकि, अगर वे ध्यानके बीचमें उठेंगे तो सारी चीजको अस्तव्यस्त करेंगे।

वहां अभीसे कोई हिल रहा है। उसने कुछ सुना नहीं और वह हिल-डुल रहा है।

कुछ हैं जो फ्रेंच नहीं समझते।

वे फ्रेंच नहीं बोलते ? अगर वे फ्रेंच नहीं बोलते तो यहां क्यों हैं ? यहां मैं फ्रेंच छोड़कर और कोई भाषा नहीं बोलती !

(ध्यान)

३१ अगस्त, १९५५

माताजी 'योग-प्रदीप'मेंसे 'काम' पढ़ती हैं।

> **मधुर मां, यहांपर मैं नहीं समझ पाया : "तुम्हें आंतरिक अनुभूति और बाह्य कर्ममें एक ही चेतना रखनी चाहिये और दोनोंको दिव्य मांसे भरना चाहिये।"**

मैं भी नहीं समझी।[1] यहां वाक्यका कोई अंश तो नहीं छूट गया? मैं भी वाक्यकी रचनाको नहीं समझ पायी। (माताजी पवित्रसे) मुझे लगता है कि यहां कम-से-कम एक शब्द तो छूट ही गया है।

> (पवित्र): **मैं घर पहुंचनेपर अंगरेजीके साथ मिलाकर देखूंगा।**

नहीं। अंगरेजीमें यूं होगा। मैं अंगरेजी वाक्यकी कल्पना कर सकती हूं, लेकिन यह फ्रेंचमें स्पष्ट नहीं है। (माताजी पुस्तक उठा लेती हैं।) हां, यह शुरूमें है। (माताजी वाक्य पढ़ती हैं।) हां, हां.... यह स्पष्ट नहीं है।[2]

> (पवित्र): **जी, यही तो; फ्रेंचमें "राम्प्लीर" शब्द बहुत ज्यादा ठोस है।**

तो अब तुम समझे? ... बस?

> **मधुर मां, जब कोई कुछ काम करना चाहता है, तो ज्यादा अच्छा क्या है, आप उसके लिये काम चुन दें या वह अपने-आप चुने?**

यह इसपर निर्भर है कि तुम कौन-सा दृष्टिकोण अपनाते हो।

---

[1]माताजी, निश्चय ही, श्रीअरविन्दकी अंगरेजी पुस्तकके फ्रेंच अनुवादकी बात कर रही हैं।

[2]इसके बाद फ्रेंच अनुवादके बारेमें बहस है जिसका अनुवाद अनावश्यक है।

अगर यह योगकी दृष्टिसे है और उसकी दृष्टिसे है जो काम करना चाहता है, तो ज्यादा अच्छा यह है कि उसे चुनने दिया जाय, क्योंकि, उदाहरणके लिये, तब वह इस भ्रममें रह सकता है कि वह अमुक काम करने योग्य है और वह योग्य नहीं होता; या उसमें महत्त्वाकांक्षा होती है, वह अपने आत्म-प्रेमको, मिथ्या अभिमानको संतुष्ट करनेके लिये कुछ करना चाहता है। तो, अगर उसे यह करने दिया जाय तो, चूंकि यहां जो काम किया जाता है वह 'सत्य-चेतना'के प्रभावमें किया जाता है, इसलिये उसकी कामके लिये अक्षमता शीघ्र ही प्रकट हो जायगी, और वह प्रगति कर सकेगा; जब कि अगर मैं देखती हूं कि कोई व्यक्ति-विशेष कोई विशेष कार्य करनेके योग्य है — कोई और कार्य, समझे — और मैं उससे कहती हूं : "नहीं, वह कार्य तुम्हारे अनुकूल नहीं है, ज्यादा अच्छा यह है कि तुम यह काम करो," तो उसे कभी विश्वास न होगा (वह पुरुष हो या स्त्री, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता), उसे हमेशा यही ख्याल रहेगा कि यह एक मनमाना निर्णय है, यह सिर्फ इसलिये है कि हमें यह पसंद था कि वह यह या वह करे। तो उसके व्यक्तिगत दृष्टिकोणसे ज्यादा अच्छा है कि उसे वही करने दो जो वह करना चाहता है, ताकि वह ऐसी प्रगति कर सके जो उसे करनी चाहिये, अगर ऐसा हो कि वह जो काम कर सकता है उसके बारेमें बहुत सचेतन है और यथार्थ रूपमें वही काम मांगता है जो उसे करना चाहिये, तो बहुत अच्छी बात है, फिर कोई बहस नहीं, यह बहुत अच्छा है।

लेकिन कुछ मामलोंमें, शायद यह बहुत अच्छा नहीं होता कि किसी व्यक्तिको अपना अनुभव प्राप्त करनेके लिये काममें खलल डालने और गड़-बड़ पैदा करने दी जाय। तो अगर जो काम किया जाना है वह उस व्यक्तिके योगसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, तो उससे कहा जाता है : "नहीं, खेद है, तुम उस कामके योग्य नहीं हो। तुम्हें यह करना चाहिये।" केवल, जैसा कि मैंने कहा, इससे उसकी कठिनाई बढ़ जाती है; उसे यह विश्वास रहेगा कि किसी औरके चुनावकी अपेक्षा स्वयं उसका चुनाव ज्यादा अच्छा था; जब कि अनुभवसे, जब वह अपने चुने हुए काममें सचमुच असफल हो जायगा, तो वह समझ जायगा कि उसने भूल की थी।

अब, मैं इसे दोहराती हूं : अगर वह इस बारेमें सचेतन हो कि उसे सचमुच क्या करना चाहिये, तो तुम्हें उसे वह करने देना चाहिये जो वह करना चाहता है, यह बहुत अच्छा है। इसमें कोई समस्या नहीं। उसे जो करना चाहिये उसके बोधमें तथा वह जो करनेका चुनाव करता है, कोई भेद नहीं है; इस मामलेमें कोई समस्या नहीं है। तो यह पूरी तरह व्यक्तिपर और जो काम किया जाना है उसकी प्रकृतिपर निर्भर है।

यह ठीक बच्चोंकी शिक्षाकी समस्या जैसी बात है। इस बारेमें नाना प्रकारके और परस्पर-विरोधी वाद हैं। कुछ लोग कहते हैं: "बच्चोंको स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये क्योंकि वे अनुभवद्वारा ही सबसे अच्छी तरह सीख सकते हैं।" यूं, विचारके रूपमें, यह बहुत बढ़िया है; व्यवहारमें स्पष्ट है कि इसमें कुछ प्रतिबंधोंकी जरूरत होती है, क्योंकि अगर तुम एक बच्चेको किसी दीवारके किनारेपर चलने दो और वह गिरकर पांव या अपना सिर तोड़ ले, तो यह अनुभव जरा भारी पड़ेगा; या अगर तुम उसे दियासलाई-से खेलने दो और वह अपनी आंखें जला ले, समझे, तो यह जरा-से ज्ञानके लिये बहुत दाम देना होगा। मैंने इस विषयपर एक शिक्षाविद्से . . . अब मुझे याद नहीं वह कौन था. . . बातचीत की है, एक ऐसे व्यक्तिसे जो शिक्षा-से संबद्ध था, इंगलेंडसे आया था और पूर्ण स्वाधीनताके बारेमें उसके अपने विचार थे। मैंने उससे यह कहा तो उसने जवाब दिया : "लेकिन स्वा-धीनताके प्रेमके लिये हम बहुत-से लोगोंकी जानकी बलि दे सकते हैं।" यह एक मत है। (माताजी हंसती हैं।)

साथ ही, इसके विपरीत, अति करना, सारे समय बच्चेके साथ रहना और उसे परीक्षण करनेसे रोकना, उससे कहना: "यह मत करो, यह हो जायगा," "वह मत करो, वह हो जायगा"— तो अंतमें वह बिलकुल अपने अंदर ही सिमट जायगा, और उसके जीवनमें न साहस होगा, न निर्भीकता, और यह भी बहुत बुरा है।

वस्तुतः निष्कर्ष यह निकलता है :

कभी नियम न बनाने चाहियें।

हर क्षण तुम जिस ऊंचे-से-ऊंचे सत्यका बोध प्राप्त कर सकते हो उसीका उपयोग करनेकी कोशिश करो। यह बहुत अधिक कठिन है, लेकिन यही एकमात्र उपाय है।

तुम जो कुछ भी करो, पहलेसे नियम न बना लो, क्योंकि एक बार नियम बना लेनेपर तुम लगभग अंधे होकर उसका पालन करते हो, और तब तुम निश्चित रूपसे, सौमेंसे साढ़े निन्यानबे बार, भूल करोगे।

सच्चे ढंगसे काम करनेका, बस, एक ही तरीका है, हर क्षण, हर सेकेंड, हर गतिमें, तुम जिस उच्चतम सत्यका बोध पा सकते हो उसीको प्रकट करो, और यह जानो कि इस बोधको क्रमशः प्रगतिशील होना चाहिये, कि तुम्हें अभी जो सबसे अधिक सच्चा मालूम होता है वह कल ऐसा न रहेगा, और तुम्हें अपनेद्वारा उच्चतर सत्यको अधिकाधिक प्रकट करना होगा। यह तुम्हें आरामदेह तमस्में पड़कर सोनेके लिये अवकाश नहीं देता; तुम्हें हमेशा जाग्रत रहना चाहिये — मैं भौतिक नींदकी बात नहीं कर रही —

हमेशा जाग्रत, हमेशा सचेतन और हमेशा प्रदीप्त ग्रहणशीलता और सद्भावना से भरा रहना चाहिये। हमेशा सर्वोत्तम चाहना, हमेशा अच्छे-से-अच्छा, और अपने-आपसे यह कभी न कहना : "ओह! वह थकानेवाला है! चलो, आराम कर लूं, चलो, सुस्ता लूं! आह, मैं प्रयास करना बंद कर दूंगा"; तब यह निश्चित है कि तुम तुरंत किसी छेदमें जा गिरोगे और कोई बड़ी मूर्खताभरी भूल कर बैठोगे।

विश्राम ऐसा न होना चाहिये जो नीचे निश्चेतना और तमस्‌में चला जाय। विश्रामको एक आरोहण होना चाहिये, 'प्रकाश'में, पूर्ण 'शांति'में, पूर्ण 'नीरवता'में आरोहण, ऐसा विश्राम जो अंधकारमेंसे ऊपर उठता है। तब वह सच्चा विश्राम होता है, ऐसा विश्राम जो आरोहण है।

मधुर मां, "दारत्वार" (एक छात्रावास)के बच्चोंने आपसे पूछनेके लिये कहा है कि क्या सचित्र "क्लासिक्स"[1] पढ़ना अच्छा है।

क्या पढ़ना?

"सचित्र क्लासिक्स"।

वह क्या बला है? (हंसी)

(बालक माताजी को "क्लासिक्स"की एक प्रति देता है।) **आजकल सभी बच्चे यह पढ़ते हैं, और उन्होंने मुझसे कहा है कि जब अध्यापक कुछ और कह रहा हो, तब वे इन्हें कक्षाओंमें भी पढ़ते हैं।**

तो, यह चीज क्या है? (माताजी पन्ने पलटती हैं।) इश, यह चीज कहांसे आती है?

अमरीकासे।

अमरीकासे? (माताजी और कुछ पन्ने पलटती हैं।) तो, मेरे बच्चो, यह

---

[1]प्राचीन गौरव ग्रंथोंकी कहानियोंवाली रंगीन छोटी-छोटी पुस्तकें। —अनु०

शोचनीय रूपसे गंवारू है। तो बस, मैं इसके बारेमें यही कह सकती हूं।

मधुर मां, आजकल यहां इस तरहकी सैंकड़ों किताबें हैं।

सैंकड़ों प्रतियां हैं?

जी हां, माताजी, इनका संग्रह किया जाता है।

(एक और बालक): **अलग-अलग किताबोंकी, एक ही किताबकी नहीं।**
(पवित्र): **सौसे भी अधिक।**
(दूसरा बालक): **भिन्न-भिन्न किताबें, यही नहीं।**
(पहला बालक): **सभी किताबें; सबसे अच्छी किताबोंमेंसे यह बनायी जाती है, और फिर बच्चे यह पढ़ते हैं और पुस्तकें नहीं पढ़ते।**
(दूसरा बालक): **सभी भाषाओंमें।**

हां, यह जमानेकी निशानी है। यह सभी चीजोंका गंवारू रूप है: विचारोंका गंवार रूप, ग्रंथ-रत्नोंका गंवारू रूप, इतिहासका गंवारू रूप, सभी चीजों का; हर चीज यथासंभव नीची-से-नीची रख दी जाती है, ताकि तुम्हें अपने-आपको उठानेकी जरूरत न हो, तुम जमीनपर रेंगते हुए उसे पा सकते हो। यह चेतनाका यथासंभव नीचे-से-नीचे उतरना है, और उसके बाद तुम वहां लोटते हो।

आह! नहीं। यह घिनौना है!

जो हो, यह तुम्हारा मामला है। अगर तुम उन पशुओंकी तरह रहना पसंद करते हो जिन्हें कीचड़में लोटना प्रिय है, तो वैसा ही करो, यह तुम्हारी बात है। बस। यह शोचनीय है।

अच्छा तो, बात बिना कुछ घटाये-बढ़ाये यहीं समाप्त होती है।

अब मैं आदेश नहीं देती; हर एक अपनी चेतनाका अनुसरण करता है। अगर तुम नीचे जाना चाहते हो, तो यह एक बहुत अच्छा तरीका है। (हंसी)

अगर तुम ऊपर उठना चाहते हो, तो, मैं तुम्हें उसे सड़कपर फेंक देनेकी सलाह देती हूं। ओह! इसका कोई महत्त्व नहीं कि तुम कहां फेंकते हो।

यह रखने लायक नहीं है — कहीं भी रखने लायक नहीं है।

माताजी, सबसे बड़े बच्चे इन्हें छोटोंमें फैलाते हैं।

हां।

और आपसे पूछे बिना।

उन्होंने मुझसे पूछा है। अभी पूछा है।

आपसे पूछनेसे पहले वे कर चुके थे।

अच्छा! क्या ये चीजें तुम्हें पुस्तकालयसे मिलती हैं?

जी नहीं, माताजी।

ओह! (हंसी)

मेधानन्द घबरा रहे हैं।

जरा सोचो, जब ये चीजें तुम्हें रेकार्डमें दी जाती हैं (हमारे पास ऐसे कुछ रेकार्ड थे) हां तो, ये भी... मैं यह कहनेवाली थी: "हां, यह जरा गंवारु है।" रेकार्ड बिक सकें और उन्हें सभी सुन सकें, इसलिये वे उसके कलात्मक मूल्यको जरा नीचा कर देते हैं, ताकि वह जनताकी पहुंचमें आ जाय...और उसमें कुछ शब्दाडम्बर और कृत्रिमता थी, उसमें मूलकी पूरी विशुद्धता न थी। जानते हो, हमें एक दिन "जूलियस सीजर" का रेकार्ड सुनाया गया था। हां तो, वहां भी मुझे संकोच हो रहा था; मैंने अपने-आपसे कहा: "यह चीज लोगोंकी रुचिको दूषित करती है।" नाटककी शुद्ध उदात्तताको रखनेकी जगह, अधिक-से-अधिक लोगोंको खुश करनेके लिये यह उसे कुछ बढ़ा-चढ़ा देती है।

तो तुम समझ रहे हो, इनकी तुलनामें वह अपने-आपमें एक शिखर था। कम-से-कम, इसमें कलात्मक उपलब्धिके लिये कुछ अभीप्साएं थीं। उसे बहुत अच्छी तरहसे चरितार्थ नहीं किया गया लेकिन उसमें प्रयास तो था ही।

यह, यह चीज एकदम उल्टी है। फिर भी...!

अब, हिम्मत करो! तुममेंसे कितनोंने ये किताबें पढ़ी हैं?

(बहुत-से बच्चे हाथ उठाते हैं।)

हे भगवान्! और तुम्हारे अन्दर इतना साहस है कि तुम ध्यानकी मांग करो! हां, यह ध्यानके लिये अच्छी तैयारी है!

मैंने सिर्फ देखनेके लिये कुछ किताबें पढ़ी थीं, मधुर मां।

अच्छा।

हां तो, इस समय मैं ध्यान नहीं करवाऊंगी। अगर तुम चाहो तो वह अगले हफ्तेके लिये रहेगा, लेकिन आज तो नहीं।

तो फिर! फिर मिलेंगे।

७ सितंबर, १९५५

माताजी "योग-प्रदीप" मेंसे "काम" पढ़ती हैं।

"समस्त कार्य" "अनुभवका विद्यालय है।"

हां, निश्चय ही। तुम नहीं समझे?

जी नहीं, माताजी।

अगर तुम कुछ न करो, तो तुम्हें कोई भी अनुभव नहीं हो सकता। सारा जीवन अनुभवका क्षेत्र है। तुम्हारी हर एक गति, तुम्हारा हर एक विचार, तुम्हारा हर काम एक अनुभूति हो सकता है, और उसे अनुभूति **होना ही चाहिये**; और स्वभावतः काम विशेष रूपसे अनुभूतिका क्षेत्र है जहां तुम आंतरिक प्रयाससे की गयी सारी प्रगतिको प्रयोगमें ला सकते हो।

अगर तुम काम किये बिना ध्यान और निदिध्यासनमें लगे रहो, तो, तुम यह नहीं जान पाते कि तुमने प्रगति की है या नहीं। तुम एक भ्रममें, अपनी प्रगतिके भ्रममें रह सकते हो; जब कि अगर तुम अपने-

आपको काममें लगाओ, तो तुम्हारे कामकी सभी परिस्थितियां, औरोंके साथ संपर्क, भौतिक व्यस्तता, यह सारा अनुभूतिका क्षेत्र है ताकि तुम्हें केवल अपनी प्रगतिका ही भान न हो बल्कि तुम्हें यह भी मालूम हो कि अभी कितनी सारी प्रगति करनी बाकी है। अगर तुम अपने-आपमें ही बंद रहो, कोई काम न करो, तो तुम पूरी तरह आत्म-निष्ठ भ्रांतिमें रह सकते हो; जिस क्षण तुम अपने कार्यको बहिर्मुख करो और दूसरोंके साथ परिस्थितियों और जीवनकी चीजोंके संपर्कमें आओ, तो बिलकुल तटस्थ-भावसे तुम्हें पता लगता है कि तुमने प्रगति की है या नहीं, क्या तुम अधिक शांत, अधिक सचेतन, अधिक प्रबल, अधिक निस्स्वार्थ हो या नहीं, क्या तुम्हारे अन्दर अब कोई कामना, कोई पसंद, कोई कमजोरी, कोई बेईमानी है या नहीं — तुम काम करके इन सबका भान पा सकते हो। लेकिन अगर तुम ध्यानमें ही बन्द रहो, तो यह बिलकुल व्यक्तिगत चीज है, तुम पूर्ण भ्रांतिमें प्रवेश कर सकते हो और हो सकता है कि उसमेंसे कभी बाहर न निकलो, और यह मान लो कि तुमने असाधारण चीजें प्राप्त कर ली हैं, जब कि वास्तवमें तुम्हें बस, यह लगता ही है, यह भ्रांति है कि तुमने यह पा लिया।

श्रीअरविंदका यही मतलब है।

तो फिर, माताजी, भारतके सभी आध्यात्मिक संप्रदाय सिद्धांत रूपमें कर्मसे क्यों कतराते हैं?

हां, क्योंकि यह सब इस शिक्षापर आधारित है कि जीवन एक भ्रांति है। इसका आरंभ बुद्धसे हुआ जिन्होंने कहा कि समस्त अस्तित्व कामनाका फल है, तथा दुःख, पीड़ा और कामनामेंसे बाहर निकलनेका एक ही उपाय है: वह है अस्तित्वमेंसे बाहर निकल जाना। और शंकरने इसे जारी रखा, उन्होंने यह और जोड़ दिया कि केवल इतना ही नहीं कि यह कामनाका फल है बल्कि यह पूर्ण रूपसे माया है, और जबतक तुम इस मायामें निवास करते हो तबतक भगवान्‌को नहीं पा सकते। उनके लिये मेरा ख्याल है, कोई भगवान् भी न था; कम-से-कम, बुद्धके लिये तो न था।

तो क्या सचमुच उन्हें अनुभूतियां होती थीं?

यह इसपर निर्भर है कि तुम "अनुभूति" कहते किसे हो। उनका किसी चीजके साथ आंतरिक संपर्क जरूर था।

बुद्धका किसी ऐसी चीजके साथ आंतरिक संबन्ध जरूर था जो बाह्य जीवनकी तुलनामें असत् थी; और स्वभावतः, इस असत्में सत्के सभी परिणाम गायब हो जाते हैं। एक ऐसी अवस्था है; यहांतक कहा जाता है कि अगर कोई इस अवस्थाको बीस दिनतक रख सके, तो निश्चय ही वह अपने शरीरको खो देगा; अगर यह ऐकांतिक है, तो मैं इसके साथ पूरी तरह सहमत हूं।

लेकिन यह एक ऐसी अनुभूति हो सकती है जो पीछेकी ओर रहती है, है न, और ऐकांतिक न होते हुए भी सचेतन रहती है, जो बाहरी जगत् और बाहरी चेतनाके साथ संपर्क जोड़ती है और जिसे कुछ ऐसी चीज सहारा देती है जो मुक्त और स्वाधीन है। वास्तवमें यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें तुम बाह्य रूपसे बहुत बड़ी प्रगति कर सकते हो क्योंकि तुम हर चीजमें अनासक्त रह सकते हो और बिना आसक्ति, बिना पसंद, उस आंतरिक स्वतंत्रताके साथ कार्य कर सकते हो जो बाहरी रूपमें व्यक्त होती है।

फिर भी यह वास्तविक आवश्यकता है : एक बार यह आंतरिक स्वाधीनता प्राप्त हो जाय और उसके साथ सचेतन संपर्क स्थापित हो जाय जो शाश्वत और अनन्त है, तो, इस चेतनाको खोये बिना तुम्हें कर्मकी ओर लौटना चाहिये और उसे कर्मकी ओर मुड़ी हुई समस्त चेतनाको प्रभावित करने देना चाहिये।

श्रीअरविंद इसीको ऊपरसे शक्तिको उतार लाना कहते हैं। इस तरह जगत्को बदलनेकी संभावना रहती है, क्योंकि तुम एक नयी 'शक्ति', एक नये क्षेत्र, एक नयी चेतनाकी खोजमें होते हो और बाह्य जगत्के साथ उसका नाता जोड़ते हो। इसलिये उसकी उपस्थिति और उसका कार्य अनिवार्य परिवर्तन, मैं आशा करती हूं, इस बाह्य जगत्में पूर्ण रूपांतर लायेंगे।

तो हम कह सकते हैं कि बुद्धको निश्चय ही अनुभूतिका पहला भाग तो मिला था; परंतु उन्होंने दूसरे भागका स्वप्नतक नहीं देखा क्योंकि वह उनके सिद्धांतके विरुद्ध था। उनका सिद्धांत यह था कि हमें भाग जाना चाहिये; लेकिन यह स्पष्ट है कि बच निकलनेका बस एक ही उपाय है, मृत्यु, लेकिन फिर भी, जैसा कि स्वयं उन्होंने इतनी अच्छी तरह कहा है, हो सकता है कि तुम मर जाओ और फिर भी जीवनसे पूरी तरह आसक्त होओ, फिर भी जन्मोंके चक्रमें लगे रहो, मुक्ति न पाओ। और वस्तुतः उन्होंने यह विचार स्वीकार किया है कि धरतीपर उत्तरोत्तर जन्मोंके द्वारा ही तुम अपने-आपको इतना विकसित कर सकते हो कि इस

मुक्तितक पहुंच सको। लेकिन उनके लिये आदर्श यही था कि संसार-का अस्तित्व ही न रहे। यह ऐसा था मानों वे ईश्वरपर किसी गलतीका आरोप लगा रहे हों और गलती कर चुकनेपर, बस, एक चीज ही की जा सकती है, वह यह कि उस गलतीको ठीक करनेके लिये उसे मिटा दिया जाय। लेकिन स्वभावतः, युक्तियुक्त और विचारसंगत होनेके लिये, उन्होंने ईश्वरको स्वीकार नहीं किया। यह गलती किसने की, कैसे की, किस तरीकेसे की ? — यह उन्होंने कभी न समझाया। वे सिर्फ इतना कहते थे कि गलती हुई है और यह कि जगत् कामनासे शुरू हुआ और कामनासे उसका अंत होगा। वे यह कहने-कहनेको थे कि यह संसार पूरी तरहसे आत्मनिष्ठ है, अर्थात्, एक सामूहिक भ्रांति है, और अगर इस भ्रांतिका अंत हो जाय तो जगत्का भी अंत हो जायगा। लेकिन वह इतनी दूरतक न पहुंचे। उसे शंकरने आगे बढ़ाया और अपनी शिक्षामें उसे बिलकुल पूर्ण बना दिया।

उदाहरणके लिये, अगर हम ऋषियोंकी शिक्षाकी ओर लौटें, तो वहां जगत्से पलायन करनेका कोई विचार न था; उनके लिये सिद्धि पार्थिव ही होनी थी। उन्होंने भली-भांति एक 'सुनहरे युग' की कल्पना की थी जहां सिद्धि पार्थिव होती। लेकिन शायद यह देशके आध्यात्मिक जीवन-की प्राण-शक्तिके ह्रासमें आरंभ हुआ, शायद एक और ही दिशा-विन्यास-के कारण ... निश्चत रूपसे पलायनका यह विचार बुद्धकी शिक्षासे शुरू हुआ, जिसने देशकी प्राण-शक्तिको दुर्बल बना दिया, क्योंकि व्यक्तिको जीवनसे नाता तोड़नेके लिये प्रयास करना पड़ता था। बाहरी वास्त-विकता मायामय मिथ्यात्व बन गयी और व्यक्तिका उससे कोई संबन्ध न रहा। तो स्वभावतः व्यक्तिका वैश्व ऊर्जासे नाता टूट गया, और प्राण-शक्तिका ह्रास होता चला गया, और इस प्राण-शक्तिके साथ-साथ सिद्धिकी सभी संभावनाएं भी कम होती गयीं।

लेकिन यह बहुत विलक्षण है ... मैंने ऐसे बहुत-से व्यक्ति देखे जो जीवनसे इस भांति अनासक्ति और अलगाव पाने, और पूरी तरहसे आंत-रिक सत्यमें रहनेकी कोशिश कर रहे थे। इन व्यक्तियोंमें, प्रायः सभीके, बाहरी जीवनमें बिलकुल भद्दे दोष थे। जब वे साधारण चेतनामें लौटते तो वे किसी भी कुलीन पुरुषसे कहीं अधिक पिछड़े होते, उदाहरणके लिये ऐसे व्यक्तिसे जो बहुत सुसंस्कृत हो, जो बौद्धिक और नैतिक दृष्टिसे बहुत विकसित हो। जब वे ध्यानसे, अपनी ऐकांतिक एकाग्रतासे बाहर आ जाते, तो ये व्यक्ति अपने साधारण व्यवहारमें बहुत गंवारू ढंगसे रहते थे। उनमें बहुत, बहुत ही साधारण दोष होते थे। मैं इस तरहके

बहुत-से लोगोंको जानती थी। या शायद वे ऐसी अवस्थामें पहुंच गये थे जहां उनका बाहरी जीवन, जिसमें वे रहते थे, एक तरहका स्वप्न था, यूं कह सकते हैं, उसका अस्तित्व न था। इन्हें देखकर ऐसा लगता था मानों वे ऐसी सत्ताएं थीं जो पूर्णतया अपूर्ण, बिलकुल अधूरी थीं, यानी, बाहरी तौरपर कुछ था ही नहीं।

लेकिन अगर बाहरी चेतनामें व्यक्ति बहुत पिछड़ा हुआ हो, तो वह ध्यान कैसे कर सकता है? यह बहुत कठिन हो जाता है, हो जाता है न?

हां, बहुत कठिन!

फिर ऐसे व्यक्ति सफल कैसे होते हैं?

लेकिन वे इसमेंसे पूरी तरह बाहर निकल आते थे, वे उसे इस तरह छोड़ जाते थे जैसे कोई लबादेको उतारकर रख देता है, फिर वे उसे एक ओर रखकर अपनी सत्ताके किसी दूसरे भागमें प्रवेश कर जाते थे। और ठीक यही चीज होती थी, वे मानों अपनी इस चेतनाको उतारकर एक तरफ रख देते, और अपनी सत्ताके किसी और भागमें प्रवेश कर जाते थे। और जबतक वे वहां, अपने ध्यानमें, रहते थे, तबतक सब कुछ बहुत अच्छा रहता था। लेकिन, उनमेंसे अधिकतर, इस अवस्थामें, एक तरहकी समाधिमें होते थे, और वे बोल भी नहीं पाते थे; अतः जब वे वापिस आते और साधारण चेतनामें लौटते, तो वह (चेतना) ठीक वहीं होती जहां पहले थी, वह पूरी तरहसे अपरिवर्तित रहती; कोई संपर्क ही न होता।

देखो, जो चीज तुम्हारे समझनेमें कठिन हो रही है वह यह कि तुम ठोस रूपसे, व्यावहारिक रूपसे, यह **नहीं जानते**, कि . . . सभी सत्ताओंकी तरह, तुम्हारी सत्ताके भी विभिन्न भाग हैं, हो सकता है कि उनका आपसमें कोई सपक न हो, और तुम एक स्तरसे दूसरे स्तरपर बड़ी आसानीसे आ-जा सको, किसी विशेष चेतनामें रहो और दूसरीको पूरी तरहसे सोता छोड़ दो। इसके अतिरिक्त, क्रियाशीलतामें भी, अलग-अलग समयमें सत्ताके विभिन्न स्तर कार्यरत हो जाते हैं, और जबतक तुम उन्हें एक करनेके लिये अधिक-से-अधिक सावधानी न बरतो, उन सबको सामंजस्यमें न रखो, उनमेंसे एक एक तरफसे खींच सकता है, दूसरा दूसरी तरफसे और तीसरा

तीसरी तरफसे, और वे सब-के-सब परस्पर बिलकुल विरोधी हो सकते हैं।

उदाहरणके लिये, ऐसे लोग हैं जो सत्ताकी अवस्था-विशेषमें रचनात्मक होते हैं, और अपने जीवनको व्यवस्थित करके बहुत उपयोगी कार्य करनेकी क्षमता रखते हैं, और वे ही अपनी सत्ताके किसी दूसरे भागमें पूरी तरह विनाशशील होते हैं और निरंतर दूसरे भागके द्वारा की गयी रचनाको नष्ट करनेमें लगे रहते हैं। मैंने इस तरहके बहुत-से लोग देखे हैं जिनका जीवन ऊपरसे बहुत असंगत था, लेकिन कारण यह था कि सत्ताके दोनों भाग, एक-दूसरेके पूरक बनने, एक समन्वयमें सामंजस्ययुक्त होनेकी जगह, अलग और एक-दूसरेके विरोधी थे, और एकके कियेको दूसरा बिगाड़ देता था, और वे सारे समय एकसे दूसरेमें इस तरह जाते रहते थे। उनका जीवन अव्यवस्थित था। और ऐसे लोग जितने तुम सोच सकते हो उससे कहीं अधिक हैं!

कई बड़े विशिष्ट और आंखोंमें खुबनेवाले उदाहरण मिलते हैं, वे बड़े स्पष्ट और सुनिश्चित होते हैं; लेकिन अवस्थाएं कम पूर्ण रूपसे विरोधी होती हैं, लेकिन फिर भी होती हैं परस्पर-विरोधी, ऐसा बहुत, बहुधा होता है। इसके अतिरिक्त, स्वयं व्यक्तिको भी इसका अनुभव होता है, जब वह प्रगति करनेकी कोशिश करता है; सत्ताका एक भाग प्रयासमें भाग लेता है और प्रगति करता है, और अचानक, बिना किसी तर्क या तुकके, व्यक्तिका किया हुआ सारा प्रयास, वह सारी चेतना जो उसने प्राप्त की, वह सब किसी ऐसी चीजमें उलट जाती है जो बिलकुल भिन्न और विरोधी होती है, जिसपर उसका कोई वश नहीं होता।

कुछ लोग पूरे दिन प्रयास कर सकते हैं और अपने अन्दर कुछ निर्माण करनेमें सफल होते हैं; वे रातको सोते हैं और अगली सुबह पिछले दिनका सारा किया-कराया खो बैठते हैं, वह सब कुछ अचेतनताकी अवस्थामें खो बैठते हैं। ऐसा बहुधा होता है, ये उदाहरण अपवादिक नहीं, बल्कि उससे उल्टे होते हैं। और इससे यह बात समझमें आती है, है न, कि कुछ लोग — जब वे उदाहरणके लिये, उच्चतर मनमें उठ जाते हैं — तो गहरे ध्यानमें चले जा सकते हैं और इस संसारकी चीजोंसे छुटकारा पा सकते हैं, और फिर जब वे अपनी साधारण भौतिक चेतनामें वापिस लौटते हैं, तो चाहे गंवारू न हों, पर एकदम साधारण आदमी होते हैं, क्योंकि उन्होंने उच्चतरके साथ संपर्क स्थापित करनेकी और यह देखनेकी सावधानी नहीं बरती कि जो कुछ ऊपर है वह क्रिया करे, जो नीचे है उसे बदल दे।

बस, इतना ही।

माताजी, बुद्धके बारेमें मेरा एक प्रश्न है। आपने कहा था कि अवतार पृथ्वीपर यह दिखाने आता है कि भगवान् पृथ्वीपर रह सकते हैं। फिर उन्होंने ठीक इससे विपरीत प्रचार क्यों किया? वह अवतार हैं या नहीं?

यह! . . . कुछ लोग कहते हैं कि वे अवतार थे, कुछ और कहते हैं कि नहीं थे, लेकिन यह, सच बात तो यह है कि . . .

मेरा ख्याल है कि यह पहली चीज, कि अवतार पृथ्वीपर यह सिद्ध करने आता है कि ईश्वर . . . इसे इतना शब्दोंके द्वारा नहीं जितना कि अमुक सिद्धिसे प्रमाणित करना होता है; और मेरा ख्याल है, ईश्वरका यह पहलू परिवर्तनकारी और विनाशक न होकर रचनात्मक और रक्षणकारी होता है। भारतीय नामोंका उपयोग करें, जिन्हें भारतमें सब जानते हैं, तो मेरा ख्याल है कि अधिकतर विष्णुके अवतार यह सिद्ध करने आते हैं कि ईश्वर पृथ्वीपर आ सकते हैं; जब कि जब-जब शिवका आविर्भाव हुआ वे हमेशा उन सत्ताओंमें प्रकट हुए जिन्होंने किसी भ्रमके विरुद्ध लड़ने और उसे नष्ट करनेकी कोशिश की।

मेरे पास यह सोचनेके लिये कारण हैं कि बुद्ध इनमेंसे एक थे। ज्यादा ठीक कहें, तो उन्होंने शिवकी शक्तिके किसी तत्त्वको प्रकट किया: यह वही अनुकम्पा थी, वही समस्त दुःखोंकी सहानुभूतिपूर्ण समझ थी, और वही शक्ति थी जो नष्ट करती है — स्पष्ट है कि वह रूपांतर करनेके अभिप्रायसे, लेकिन निर्माण करनेकी जगह नाश करती है। उनका कार्य अधिक निर्माणशील प्रतीत नहीं होता। व्यावहारिक रूपसे मनुष्योंको यह सिखाना बहुत आवश्यक था कि वे स्वार्थी न हों; उस दृष्टिकोणसे यह बहुत आवश्यक था। लेकिन उसके गभीर तत्त्वमें उस (कार्य) ने पृथ्वीके रूपांतरणमें बहुत सहायता नहीं की है।

जैसा कि मैंने कहा, पार्थिव जीवनमें उच्चतर चेतनाके अवतरणमें सहायता देनेके बदले उनकी शिक्षाने गभीर चेतनाको बाहरी अभिव्यक्तिसे अलग करनेको बहुत जोरसे प्रोत्साहित किया। उनका कहना था कि यह चेतना ही एकमात्र सत्य है।

अब लो पृथ्वीपर भगवान्के होनेका प्रश्न: हां तो, स्वभावतः जो लोग उनपर विश्वास करते थे उन्होंने उन्हें ही ईश्वर बना लिया। सभी मंदिरों और बौद्ध देवी-देवताओंको देखनेसे पता लग जाता है कि मानव स्वभावकी हमेशा यह प्रवृत्ति रही है कि वह जिसकी सराहना करता है उसे देवता बना देता है।

लो !

हम एक और बात पूछना चाहेंगे। इस विषयपर बहुत बहस होती है, क्या हमें उन गानोंमें रस लेना चाहिये जिनका कोई अर्थ नहीं होता, साधारणतः सिनेमाके गानोंमें ?

रस लेना ? तुम्हारा क्या मतलब है ?

बहुत-से लोग इन गानोंको सुनते हैं और उन्हें गाते भी हैं।

हां, लेकिन मैं "रस लेने" का मतलब नहीं समझ पायी। व्यक्तिको ये चीजें अच्छी लग सकती हैं क्योंकि उसमें सुरुचि नहीं है, लेकिन मैं यह नहीं समझ पा रही कि "रस लेने" का अर्थ क्या होगा। तुम किसी अध्ययनमें रस लेते हो, तुम किसी कार्यमें रस लेते हो, तुम ऐसी प्रगतिमें रस लेते हो जो तुम्हें करनी है, लेकिन... व्यक्ति आलस्यकी क्रियामें मग्न हो सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह उसमें कोई रस ले सकता है।

अगर हमें इन गानोंको गाना पड़े ?

पड़े ! क्यों रोजी कमानेके लिये ? (हंसी)

क्या यह हमारी प्रगतिमें बाधक नहीं है ?

लेकिन हर एक चीज जो चेतनाको नीचे उतार देती है व्यक्तिकी प्रगति-में बाधक होती है। अगर तुम्हारे अन्दर कोई कामना हो तो वह तुम्हारी प्रगतिमें एक बाधा बन जाती है; अगर तुम्हारे अन्दर कोई बुरा विचार या कोई बुरी इच्छा हो, तो वह तुम्हारी प्रगतिमें बाधा बन जाती है; अगर तुम किसी तरहके मिथ्यात्वका स्वागत करो, तो वह तुम्हारी प्रगति-में बाधा बन जाता है; और अगर तुम अपने अन्दर ओछेपनको पोसो, तो वह तुम्हारी प्रगतिमें बाधा बन जाता है; वे सभी चीजें जो सत्यके साथ सामंजस्य नहीं रखतीं प्रगतिमें बाधा बनती हैं; और ऐसी चीजें दिनमें सैंकड़ों होती हैं।

उदाहरणके लिये, अधीरताकी हर एक गति, क्रोधकी हर गति, उग्रता-

की हर गति, कपटकी हर प्रवृत्ति, सत्यकी हर विकृति, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, हर दुर्भावना, हर अपूर्ण न्याय, हर पसन्द, कुरुचिको हर प्रोत्साहन और . . . हां, ओछेपनको प्रोत्साहन, यह सब निरंतर पथमें आती हैं। ये सब, इन गतियोंमेंसे हर एक, बड़ी या छोटी, क्षणिक या स्थायी ये सब तुम्हारी प्रगतिमें बाधा डालनेके लिये खड़ी की जानेवाली दीवार-को चिननेके लिये पत्थर हैं। यह केवल एक चीज नहीं है, ऐसी चीजें सैंकड़ों होती हैं, हजारों होती हैं, तुम्हारा पसंद करना काफी है, अधीर होना काफी है, किसी चीजको छिपानेकी छोटी-सी इच्छाका होना काफी है, किसी घृणाका होना, प्रयासके लिये अरुचिका होना काफी है, इतना होना काफी है . . . तुम्हारी प्रगतिमें बाधा डालनेके लिये किसी भी ऐसी वस्तु-का होना काफी है जिसका लालसा, घृणा और इसी तरहकी चीजोंके साथ संबन्ध हो। और फिर, बौद्धिक सत्ता, कलात्मक सत्ताकी दृष्टिसे, बाहरी और भीतरी भागकी संस्कृतिकी ओरसे, सुरुचिका हर अभाव, चाहे वह कैसा भी क्यों न हो, बहुत भयंकर बाधा होता है।

मुझे कहना चाहिये कि रुचिकी, कलात्मक और साहित्यिक संस्कृतिकी दृष्टिसे यह जगत् पराकाष्ठाओंका जगत् है; एक छोरपर तो वह किसी बहुत ऊंची, बहुत पवित्र, बहुत उदात्त वस्तुकी खोज के लिये प्रयास करता है, और दूसरे छोरपर, वह एक ऐसे गंवारूपनमें डूब जाता है जो निश्चित रूपसे पिछली दो-तीन शताब्दियोंके गंवारूपनसे अनंतगुना बढ़कर है। विचित्र बात यह है कि, पिछली दो-तीन शताब्दियोंपर नजर डालें तो, जो लोग असंस्कृत थे वे ग्राम्य भले रहे हों, लेकिन उनकी ग्राम्यता पशुओंकी-सी थी, और उसमें बहुत विकृति न थी; कुछ तो थी ही, क्योंकि जैसे ही मन आता है, विकृति आ जाती है, लेकिन उसमें बहुत विकृति न थी। लेकिन अब, वह जो पर्वत-शिखरतक नहीं पहुंचता, जो पृथ्वीकी सतहपर रहता है, वह अपने गंवारूपनमें **पूरी तरहसे** विकृत है, यानी, वह केवल अबोध और मूढ़ नहीं होता, वह कुरूप, गंदा और घिनौना होता है, वह बेडौल होता है, वह दुष्ट होता है, **बहुत** ही नीच होता है। और वास्तव-में यह मनके दुरुपयोगसे पैदा होता है। मनके बिना इस विकारका अस्तित्व नहीं था, लेकिन मनका दुरुपयोग इस विकृतिको पैदा करता है। हां, तो वह एक ऐसी चीज बन गया जो सभी दृष्टिकोणोंसे कुरूप है, जो अब, ओछी और कुरूप है।

कुछ चीजें हैं, जिन्हें आजकल बहुत सुन्दर माना जाता है . . . मैंने इस तरहके फोटो या इस तरहकी प्रतिकृतियां देखीं हैं जिन्हें बहुत सुन्दर माना जाता है, लेकिन वे अपने विकारमें **भ-यं-क-र** रूपसे गंवारू हैं, और फिर

भी लोग उन्हें देखकर खुशीसे पागल हो जाते हैं और उन्हें सुन्दर कहते हैं! ऐसा इसलिये होता है क्योंकि उनमें कोई चीज ऐसी है जो विकृत है, जो केवल संस्कृतिहीन, केवल अविकसित ही नहीं है, बल्कि जो विकृत है, यह ऐसी है जो ज्यादा खराब है, क्योंकि किसी अबोध और अशिक्षित वस्तुको प्रबुद्ध करनेकी अपेक्षा कहीं ज्यादा कठिन है किसी विकृत और कुरूप वस्तुको सुधारना। हां, तो मेरा ख्याल है कि कुछ चीजें विकृति-का बहुत बड़ा साधन रही हैं, और हम सिनेमाको भी इनमें गिन सकते हैं। वह शिक्षा और प्रगतिका साधन बन सकता था, और मुझे आशा है कि वह यही बनेगा; लेकिन फिलहाल वह विकारका ही साधन बना हुआ है, एक ऐसे विकारका जो सचमुच भयंकर है: रुचिका विकार, चेतनाका विकार, वह हर चीजमें भयावह नैतिक और भौतिक कुरूपताका साधन बना हुआ है। फिर भी यह ऐसी चीज है जिसका उपयोग शिक्षा, प्रगति, संस्कृति, और कलात्मक विकासके लिये हो सकता है; और इस दृष्टिसे यह पहलेके उपायोंकी अपेक्षा, ज्यादा व्यापक रूपमें सौंदर्य और संस्कृति-का प्रसार कर सकता है और उन्हें सर्वसुलभ बना सकता है। लेकिन हमेशा ऐसा ही होता है — अगर कोई चीज ज्यादा अच्छी हो सकती हो, मगर न हो, तो वह अधिक खराब हो जाती है, और जैसा कि मैंने शुरू में कहा था, हम लोग अतिके युगमें है — सब दिशाओंमें अति — कोई वस्तु अपने-आपको पूर्ण बनानेका अत्यधिक प्रयास करती है और विकृति-की अतिमें जा गिरती है जो, अपेक्षाकृत, पूर्णतासे बड़ी नहीं तो उसके जितनी तो होती ही है। और अगर तुम अपने-आपको ध्यानसे देखो, तो तुम्हें पता चलेगा कि, चूंकि तुम वर्तमान जगत्‌में, उसकी आजकलकी अवस्थामें रहते हो, अतः स्वभावतः तुम उसके ओछेपनमें भाग लेते हो, और अगर तुम अपने-आपका बारीकीसे अवलोकन नहीं करते और अपने ऊपर निरंतर उच्चतम चेतनाका प्रकाश नहीं डालते तो तुम, आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे, बहुधा, रुचिमें गलती करनेका खतरा मोल लेते हो।

लो बस!

अब आजकी सांझ मैं तुम्हें ध्यान करवाऊंगी और मैं देखूंगी तुम मस्तिष्क-स्नानके योग्य हो या नहीं। सफाई!

माताजी, जब हम यहां ध्यान करते हैं, तो वह कौन-सा केंद्र है जिसपर हमें एकाग्र होना चाहिये?

सच कहा जाय, तो हर बार वह अलग-अलग होना चाहिये।

पहली बार हमने जो कुछ पढ़ा था मैंने उसीपर ध्यान करनेको कहा था, है न? हां, तो अगर तुम चाहो, तो आज हम कोशिश कर सकते हैं कि एक पावन चेतना हमारे अन्दर प्रवेश करे, जैसा कि मैंने अभी-अभी मजाकमें कहा, वह मस्तिष्क-स्नान, यानी, एक छोटी-सी सफाई करायेगी — यह एक ऐसा प्रकाश होगा जो स्वच्छ और पवित्र करता है।

१४ सितंबर १९५५

माताजी "महान् रहस्य"[१] : "राजनीतिज्ञ"
पढ़ती हैं।

मधुर मां, एक सच्चे राजनीतिज्ञकी सच्ची मनोवृत्ति क्या होनी चाहिये?

लेकिन यहां मैंने एक सच्चे राजनीतिज्ञकी वृत्ति ही तो बतलायी है। मेरे वत्स, यह एक आदर्श राजनीतिज्ञ है। इससे अच्छा नहीं बनाया जा सकता। ये परिस्थितियां हैं, वह स्वयं कहता है: "मेरी अपेक्षा ज्यादा बड़ी शक्ति . . ." जगत् इसी तरहसे संगठित किया गया है; उसने अच्छे-से-अच्छे इरादेसे आरंभ किया, उसने भरसक कोशिश की, वह कुछ भी न कर सका, क्योंकि आजकी परिस्थितियोंमें और जैसी राजनीतिका चलन है उसमें तुम कुछ भी नहीं कर सकते। साधारणतः लोग इतने खुले और निष्कपट नहीं होते कि यह सब कह सकें जो मैंने इससे कहलवाया है। मैंने इससे सत्य कहलवाया है, और यह प्रमाणित करता है कि वह

---

[१]माताजीका लिखा हुआ एक नाटक: जिसमें छः एकालाप हैं, और एक सिंहावलोकन है; एक अज्ञात व्यक्तिके साथ संसारके छः जाने-माने व्यक्तिः वैज्ञानिक, कलाकार, व्यायामी, लेखक, राजनीतिज्ञ, उद्योगपति किसी विश्व-परिषद्में भाग लेनेके लिये जा रहे थे। जहाजकी दुर्घटनाके कारण उन्हें एक नौका (लाइफ-बोट) में शरण लेनी पड़ी। हर एक अपनी जीवन-गाथा और समस्या सुनाता है और अज्ञात व्यक्ति समाधानकी ओर संकेत करता है। — अनुवादक

मधुर मां, आजकी दुनियामें जो राजनीतिज्ञ इस नाटकके स्तर पर है, जो अपना अच्छे-से-अच्छा कर रहा है, क्या उसका पथ-प्रदर्शन भगवान् नहीं कर रहे? क्या वह उपाय पा लेगा?

उसने यह बिलकुल नहीं कहा कि वह धार्मिक है। उसने हमसे यह नहीं कहा। उसने यह नहीं कहा कि वह आध्यात्मिक या धार्मिक कारणोंसे यह करनेका प्रयास कर रहा है।

ध्यान दो कि वे सब मानव प्रगतिकी एक सभामें जा रहे हैं। धार्मिक सभामें हर्गिज नहीं जा रहे। वस्तुतः तुम्हारे प्रश्नका कोई मतलब नहीं निकलता, क्योंकि सारे विश्वमें ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे भगवान्‌ने न बनाया हो, तो उस दृष्टिकोणसे प्रश्नका कोई अर्थ नहीं निकलता। धार्मिक कारणोंसे कोई काम करनेके लिये यह जरूरी है कि वह अपने-आप, सचेतन रूपसे धार्मिक हो। यहां ऐसा नहीं कहा गया, और जान-बूझकर नहीं कहा गया, ताकि समस्यामें एक और तत्त्व न बढ़ जाय। वह यह सब भगवान्‌की सेवाके रूपमें बिलकुल नहीं कर रहा। वह कर रहा है क्योंकि उसमें लोकोपकारके भाव हैं और वह धरतीपर मानव स्थितिको सुधारनेकी कोशिश कर रहा है, बस। प्रसंगवश, ये, सब-के-सब, इसी अवस्थामें हैं।

माताजी, जैसा कि पिछले युद्धमें, महायुद्धमें, कुछ महान् राजनेता थे जो . . .

लेकिन यह उनमेंसे एक, एक प्रसिद्ध व्यक्तिकी अनुकृतिके रूपमें है।

लेकिन वे युद्धके दिनोंमें भगवान्‌के यंत्र बन गये।

अगर तुम इसे एक विशेष दृष्टिसे देखना चाहो तो सभी, सब-के-सब भगवान् के यंत्र हैं। नहीं, वे सचेतन रूपसे भगवान्‌के यंत्र बिलकुल नहीं थे; वे जरा भी सचेतन नहीं थे, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं। वे बड़े-बड़े धार्मिक शब्द बोला करते थे। मैंने उन शब्दोंको हटा दिया क्योंकि वे कपटपूर्ण थे और मैं अपने पात्रोंको जितना हो सके उतना निष्कपट बनाना चाहती थी, और उनके बड़े-बड़े धार्मिक शब्द एकदम कपटपूर्ण थे, यह धोखेबाजी (भयादोहन—ब्लैकमेल) थी; इसका प्रमाण यह है कि विजय पाते ही वे इन सब बातोंको भूल गये।

माताजी, अगर वह खुला हुआ नहीं था तो अंतमें उसने यह कैसे जाना कि उसने सत्यको नहीं पाया है ?

क्या ! उसने कैसे . . . ?

(पवित्र) : **उसने यह कैसे जाना कि उसने सत्यको नहीं पाया है . . . अगर वह किसी उच्चतर चीजकी ओर खुला हुआ नहीं था ?**

लेकिन किसने जाना ? मेरे पात्रने या दूसरे . . .

(पवित्र) : **जिस क्षण उसे यह पता चलता है कि कोई ऐसी चीज है जिसे उसने नहीं पाया, उसका मतलब होता है कि वह किसी और चीजके प्रति खुला हुआ था।**

हां, स्वभावतः, समस्त सद्भावना किसी गहरी चेतनाकी ओर खुली रहती है। यह तो जानी हुई बात है। मै कहती हूं, मैंने बहुत ही अपवाद रूप पुरुष लिये हैं जो समझनेके लिये तैयार हैं, अन्यथा यह न हो सकता। मैंने उन्हें जैसे वे सचमुच हैं उससे अधिक अच्छा बना दिया, क्योंकि उन सबकी अभीप्साके पीछे कुछ और चीज थी; उन्हें इस बातका पता नहीं है, लेकिन ये लोग समझनेके बिन्दुतक पहुंच चुके है और इसी तरह, है न, मैं चीजोंको व्यवस्थित कर सकी; यह प्रकृतिकी नकल नहीं है, यह कुछ प्रमाणित करनेके लिये व्यवस्थित की गयी चीज है — बस, इतना ही — जैसा कि साहित्यमें हमेशा होता है।

माताजी, इससे हमें आशा बंधती है कि आजके जगत्में और विशेष रूपसे भारतमें, ऐसे है . . .

आशा देती है ! मेरा ख्याल है कि आशा देनेवाली चीज यह नहीं है; अगर तुम्हारे सामने सिर्फ उन्हीं लोगोंके नमूने हों जो दुनियामें मौजूद हैं, तो बहुत आशा नहीं होती।

माताजी, आजके जगत्में राजनीति दो बड़े दलोंमें बंटी हुई है, एक अमरीकाका दल और दूसरा रूसका। इन दोनोंमें समाधान कैसे होगा ?

ओह! यह बहुत आसान है। चूंकि वे यह बात बिलकुल नहीं समझ पाते कि यह बहुत आसान है, इसीलिये मैं कहती हूं कि यह चीज अंत-में होगी। ये चीजें केवल रंग-रूप और ऊपरी धारणाएं और हित हैं — हित! सच्चे हित भी नहीं: अपने हितके बारेमें उनकी धारणाएं। लेकिन अगर सच्चा समाधान मिल जाय . . . अगर वह मिल जाय, नहीं — शायद वह मिल चुका है — अगर सच्चे आर्थिक समाधानका प्रयोग किया जाय, तो उनकी समस्याओंकी नींव ही ढह जायगी, बच रहेगी केवल राजनीतिक मनोवृत्ति जो बहुत, बहुत सतही है। वह बहुत छिछली है, उसमें कोई गहराई नहीं, सबसे बढ़कर, वे केवल शब्द हैं, बहुत ही खोखले शब्द; उसकी आवाज बहुत जोरकी होती है, क्योंकि वह खोखली है, वे बड़े-बड़े शब्द हैं। लेकिन, देखो, उनकी वृत्तिको काफी हदतक सच्चा सहारा उन दो चीजोंसे मिलता है जिनके बारेमें मैंने अभी कहा: वित्तीय सहारा और आर्थिक सहारा। हां तो, अगर आर्थिक समस्याएं हल हो जायें, यानी, अगर समाधानका प्रयोग किया जाय, तो राजनीतिक भेदोंके एक बड़े भागका सहारा गायब हो जायगा। यह लगभग ऐकांतिक रूपसे जीवनकी समस्याओं और उन समस्याओंके समाधानको उल्टे ढंगसे देखने-पर आधारित है: ये लोग सोचते हैं कि वह इस तरह है, दूसरे सोचते हैं कि वह उस तरह है। मैं सबसे अधिक सच्चे लोगोंकी बात कर रही हूं, जैसा कि मैंने कहा, उन लोगोंकी नहीं जिन्होंने ठीक शून्यमेंसे चीजें बना ली हैं, ताकि बहुत-सा शोर मचा लें और बहुत-सा प्रभाव पा लें। लेकिन अगर हम प्रश्नके मर्मतक जायें, तो वहां इतना भेद नहीं है।

ऐसे बहुत-से लोग हैं — मैं लोगोंकी बात कर रही हूं, व्यक्तियोंकी नहीं, बल्कि सरकारोंकी — जो यह दिखावा करते हैं कि वे कम्यूनिस्ट नहीं हैं पर उनके काम का तरीका एकदम कम्यूनिस्टों जैसा, उनसे भी ज्यादा कठोर होता है। अतः यह सब शब्दाडंबर है। आदमी शब्दों-का उपयोग ऐसे करता है मानों जिन चीजोंको वह कर रहा है उनके ऊपर लिहाफ रख रहा हो, इससे केवल रंग-रूप बदल जाता है, पर अंदर कोई खास फर्क नहीं होता। इसके अतिरिक्त, एक बात बिलकुल सरल है, वह यह कि सारी मानवजाति एक विकासका, एक विकास-चक्रका अनुसरण कर रही है, और ऐसे युग आते हैं, कुछ ऐसे युग-विशेष होते हैं जिनमें कोई अनुभूति-विशेष लगभग सार्वभौम बन जाती है, यानी, पार्थिव, समस्त पृथ्वीकी अनुभूति बन जाती है, लेकिन यह अवश्य है कि पृथक् नामों, लेबलों और शब्दोंके होते हुए वह लगभग एक ही अनुभूति होती है जो जारी रहती है। तो पुरानी चीजें विलीन होनेके मार्गपर

होती हैं, फिर भी चिपकी रहती हैं, ये फिर भी अमुक नयी चीजोंके रंग-रूप और पदार्थको बदल देती हैं। लेकिन यह केवल किसी चीजकी पूंछ की तरह है। समस्त नूतन गतिविधि एक अनुभूतिकी ओर जा रही है जो यथासंभव अधिक-से-अधिक व्यापक होती जाती है, क्योंकि वह उपयोगी तभी होती है जब वह व्यापक हो। अगर वह स्थानीय बन जाय, तो वह कुकुरमुत्तेकी तरह होती है, वह सामान्य मानव चेतनाको कोई फल नहीं देती। समस्त मानवजातिको इन महान् अनुभूतियोंमेंसे न्यूनाधिक पूर्ण रूपसे गुजरना होता है, और यह विकास इसी तरह होता है। केवल मनुष्यके विचार ही अपने कियेपर भिन्न शब्द, भिन्न रूप, भिन्न कारण, भिन्न औचित्य, भिन्न वैधीकरण चिपका देते हैं; लेकिन जब तुम तथ्यतक पहुंचो तो वह बहुत अधिक समान होता है। केवल, इसे विशेष रूपसे करनेके लिये सामान्य रंग-रूपके परे जाना जरूरी है।

जर्मनी और इंगलैंडके युद्धके समय यह भली-भांति ज्ञात था कि भगवान् किस ओर थे, भागवत 'शक्ति' किस ओर थी जो आसुरी शक्तियोंके विरुद्ध लड़ रही थी...

किसे ज्ञात था?

यहां।

हां, निश्चय ही।

तो क्या वर्तमान राजनीतिमें हम कह सकते हैं कि किस दलमें...

दुर्भाग्यवश, चीजें इस तरह पूरी-पूरी सुस्पष्ट तब होती हैं जब युद्ध भयानक रूपसे पार्थिव रूप ले ले — इतनी स्पष्ट कि यह कहा जा सके कि ये अनुकूल और ये प्रतिकूल हैं, क्योंकि उस समय यह स्पष्ट होता है कि एक पक्षकी अपेक्षा दूसरेकी विजय अधिक वांछनीय है, इसलिये नहीं कि एक दूसरेसे ज्यादा अच्छा है — यह जानी हुई बात है कि भागवत दृष्टिकोणसे सबका मूल्य समान है, यह वही बात है, — लेकिन क्योंकि विजयके परिणाम ऐसे होते हैं कि एक पक्षकी अपेक्षा दूसरेकी विजय अधिक वांछनीय होती है। लेकिन यह तभी होता है जब चीज एकदमसे बर्बरतातक,

पारस्परिक उन्मूलन तक पहुंच जाती है। अन्यथा, यदि वास्तविक सत्य कहा जाय, तो भागवत 'शक्ति' अपने कार्यके लिये हर जगह काम करती है जिस तरह मनुष्योंकी गलतियोंमें उसी तरह उनकी सद्भावनाओंमें, जिस तरह अनुकूल वस्तुओंद्वारा उसी तरह दुर्भावनाद्वारा काम करती है। ऐसी कोई चीज नहीं है जो मिश्रित न हो: कहीं कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे भगवान्‌का पूरी तरहसे शुद्ध यंत्र कहा जा सके, और न ही कहीं कोई पूर्ण असंभाव्यता है कि भगवान् पथपर आगे बढ़नेके लिये किसी मनुष्य या क्रियाका उपयोग न कर सकें। अत: जबतक चीजें अनिश्चित हैं, भगवान् हर जगह करीब-करीब समान रूपसे कार्य करते हैं। अगर मनुष्य ऐसे पागलपन में जा पड़े, तो बात और है। लेकिन यह सचमुच एक "बड़ा भारी पागलपन" है, इस अर्थमें कि यह व्यक्तियों और इच्छा-शक्तियोंके पूरे समूहको ऐसे क्रिया-कलापकी ओर धकेलता है जो उन्हें सीधा विनाशकी ओर — उनके अपने विनाशकी ओर ले जाता है। मैं बमोंकी और किसी शहर या जातिके विध्वंसकी बात नहीं कह रही, मैं उस विध्वंसकी बात कह रही हूं जिसके बारेमें गीतामें यह कहा गया है, है न, कि असुर स्वयं अपने विध्वंसकी ओर जाता है। यही होता है, और यह एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य है, क्योंकि पाशविक रूपसे विध्वंस करने-की जगह बचा सकना, प्रकाशित करना, बदल देना हमेशा ज्यादा अच्छा होता है। और युद्धका यह भयंकर चुनाव जो उसकी सच्ची वीभत्सता है; वह संघर्षको इतने पाशविक रूपसे और इतनी पूरी तरहसे साकार कर देता है कि कुछ तत्त्व जो शांतिके समय बचाये जा सकते थे, वे युद्धके कारण, अनिवार्य रूपसे नष्ट हो गये — और केवल मनुष्य और वस्तुएं ही नहीं, बल्कि शक्तियां, सत्ताओंकी चेतना भी।

वर्तमान राजनीतिमें भारतको क्या कोई विशेष भूमिका निभानी है?

राजनीति! मैंने तुमसे शुरू-शुरूमें ही कह दिया था कि राजनीति पूरी तरहसे . . . अपरिवर्तित है। फिर सच्ची राजनीतिक भूमिका कैसे हो सकती है?

भारतको जगत्‌में एक भूमिका निभानी है। लेकिन यह आदर्शकी बात है और ऐसे परिवर्तनकी मांग करती है जो . . . बहरहाल, जहांतक मैं जानती हूं, परिवर्तन अभीतक नहीं हुआ। अगर वह सच्चा और निष्कपट होता तो ऊपरी, बाहरी दृष्टिकोणसे भारत अपनी भूमिका निभा सकता।

बस, मैं इतना ही कह सकती हूं। लेकिन यथार्थ ज्ञान होना भी आवश्यक है।

(लंबा मौन)

ऐसी चीजोंके बारेमें कहा नहीं जा सकता।

जब यह राजनेता सत्यको ढूंढ लेगा, तो समस्याएं वह-की-वही नहीं रह जायेंगी, है न?

क्या? मेरा राजनेता! सबको सत्य पाना होगा। तब स्वभावतः जब वे सब सत्यको पा लेंगे, तो चीजें और तरहकी होंगी। तो! ...हम इस समस्यापर मनन करें।

२१ सितंबर, १९५५

माताजी 'महान् रहस्य': 'लेखक' पढ़ती हैं।

मधुर मां, यहां लिखा है: "शब्द काफी अभौतिक चीज है, जिसका सूक्ष्म वस्तुओं, शक्तियोंके साथ स्पन्दनों, तत्त्वों और विचारोंके साथ संपर्क हो सकता है।"

मेरे बच्चो, मुझे शुरूमें ही कह देना चाहिये कि यह "साहित्य" है। इसलिये तुम्हें व्याख्याओंकी मांग नहीं करनी चाहिये। यह कहनेका एक साहित्यिक ढंग है और तुम्हें इसे साहित्यिक ढंगसे समझना चाहिये; यह शब्दका साहित्यिक वर्णन है; यह बहुत यथार्थ है, लेकिन है साहित्यिक। अतः मैं इस साहित्यपर और एक साहित्यकी रचना नहीं कर सकती। तुम्हारे अंदर रूपोंके लिये, कहनेके सुन्दर ढंगके लिये, जरा असाधारणके लिये रुचि होनी चाहिये, बहुत घिसे-पिटेके लिये नहीं; यह कहनेका, बस, एक तरीका है, यह कहनेका ऐसा तरीका है जो मोहक है। साहित्यका पूरा अस्तित्व ही बात कहनेके ढंगपर है। उसके पीछे जो है उसमेंसे तुम जो पकड़ सकते हो पकड़ते हो। अगर तुम वस्तुतः साहित्यिक अर्थ-

की ओर खुल जाओ, तो वह तुम्हारे लिये चीजोंका आह्वान करता है; लेकिन उसे समझाया नहीं जा सकता। यह आह्वानका एक तरीका है जो संगीतके साथ भी मेल खाता है। स्वभावतः, तुम साहित्यका विश्लेषण कर सकते हो और देख सकते हो कि वाक्य-रचना कैसी है, लेकिन यह मनुष्यको अस्थिपंजरमें बदलनेकी तरह है। अस्थिपंजर सुन्दर नहीं होता। यह वही बात है। अगर तुम संगीतमें सुरसंगतिका अध्ययन करो, और कहो कि इस स्वरके बाद अनिवार्य रूपसे यह स्वर आना चाहिये, और इस स्वर-गुच्छके बाद आवश्यक रूपसे वह स्वर-गुच्छ आना चाहिये, तो तुम संगीतको भी खराब कर देते हो, तुम संगीतका हाड़-पिंजर कर देते हो; यह रोचक नहीं होता। इन चीजोंको उनके अनुरूप भावसे अनुभव करना होता है, वाक्यकी मोहकताको साहित्यिक समझसे अनुभव किया जाता है — शब्दोंके सामंजस्य और जिसे वे ध्वनित करते हैं उसे पकड़ना होता है।

इनमेंसे प्रत्येक व्यक्तिमें वही बात है : तुम्हें ऐसे लोगोंका वर्णन दिया गया है जो मानव संभावनाके शिखरतक पहुंच चुके हैं। यह स्पष्ट है कि यह एक बहुत बड़ा लेखक है, कल्पनाकी पहुंचमें सर्वश्रेष्ठ। हां तो, वह यहांतक पहुंच चुका है। और फिर अन्तमें उसने अनुभव किया कि यह खोखला है, कि जो तात्विक चीज है वह तो उसे मिली ही नहीं। और सबके लिये भी यही अनुभव होगा।

पिछली बार हमने कहा था कि वह राजनेता अपवाद-स्वरूप था। हां तो, इस बार हम कह सकते हैं कि यह एक अपवादिक लेखक है जो उस मनोवैज्ञानिक बिन्दुतक पहुंच चुका है जहां वह किसी और चेतनाके प्रति, एक उच्चतर चेतनाके प्रति जाग सकता है। फिर भी वह जो वर्णन करता है वह उच्चतम मानव संभावनाओंका है। उसने चीजोंको जैसी कि वे हैं उस निर्जीव रूपमें नहीं देखा, उसने पीछेके भावको देखा, उसके साथ संपर्क जोड़ा, उसे अभिव्यक्त करनेकी कोशिश की और उसने उसे रूप दिया... वह वहांतक गया जहांतक मानव चेतना जा सकती है। और तब उसने अपने-आपको एक खड़ी चट्टानके आगे पाया। इसे पार करके दूसरी ओर कैसे जाया जाय? हर चीज ऐसी ही है, है न। हमें हर बार यही बात दोहरानी पड़ेगी।

तो फिर, यह रहा।

कोई प्रश्न नहीं है?

मधुर मां, साहित्य प्रगति करनेमें कैसे सहायता दे सकता है?

यह तुम्हें ज्यादा समझदार होनेमें, चीजोंको ज्यादा अच्छी तरह समझनेमें, साहित्यिक रूपका बोध पानेमें, सुरुचिको प्रशिक्षित करनेमें, चीजें कहनेके अच्छे और बुरे ढंगमें चुनाव करनेमें, अपने भावको समृद्ध करनेमें सहायता दे सकता है। यह सैंकड़ों विभिन्न तरीकोंसे तुम्हें मदद दे सकता है।

प्रगतिके बहुत-से भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। और अगर तुम सर्वांगीण रूपसे प्रगति करना चाहो, तो तुम्हें इन सभी दिशाओंमें प्रगति करनी होगी। हां तो, यह एक साथ बौद्धिक और कलात्मक प्रगति है, इसमें दोनों मिली रहती हैं। तुम भावोंके साथ खेलते हो, उन्हें समझने-योग्य, उनका वर्गीकरण करने और उन्हें व्यवस्थित करने-योग्य बनते हो, और साथ ही तुम इन भावोंके रूपके साथ, उन्हें अभिव्यक्त करनेके तरीकोंके साथ, कहनेके ढंगके साथ, उन्हें प्रस्तुत करने और समझने लायक बनानेके तरीकोंके साथ खेलते हो।

मधुर मां, हम साहित्यमें जो कुछ पढ़ते हैं — कहानियां, उपन्यास, आदि — उसमें बहुधा ऐसी चीजें होती हैं जो हमारी चेतनाको नीचा करती है। साहित्यकी वस्तुको छोड़कर केवल साहित्यिक मूल्यकी दृष्टिसे पढ़ना पूरी तरह संभव नहीं होता।

देखो, किसी भी उपन्यासको पढ़नेका इसके सिवा और कोई बहाना नहीं हो सकता कि वे असाधारण रूपसे अच्छी तरह लिखा गया है और तुम भाषा सीखना चाहते हो — अगर वे तुम्हारी अपनी भाषामें लिखे गये हैं या किसी और भाषामें और तुम उस भाषाको सीखना चाहते हो, तो तुम कोई भी चीज पढ़ सकते हो, बशर्ते कि वह अच्छी तरह लिखी गयी हो। जो चीज कही गयी है वह रोचक नहीं है, उसे कहनेका ढंग रोचक है। तो पढ़नेका ढंग यह है कि तुम अपना संबन्ध इसके साथ रखो कि चीज कैसे कही गयी है, इसके साथ नहीं कि क्या कहा गया है, वह रोचक नहीं है। हां, उदाहरणके लिये, किताबमें हमेशा वर्णन होते हैं; हां तो, तुम यह देखो कि यह वर्णन कैसे किये गये हैं और लेखकने चीजें व्यक्त करनेके लिये शब्द कैसे चुने हैं। और विचारोंके बारेमें भी यही बात है: उसने अपने पात्रोंसे किस तरह बात करवायी है; वे जो कहते हैं उसमें तुम कोई रस नहीं लेते, तुम इसमें रस लेते हो कि उसे कहा कैसे गया है। अगर तुम कुछ पुस्तकें, पाठ्य पुस्ककें लो, यह सीखनेके लिये कि अच्छे वाक्य कैसे लिखे जाते हैं और चीजोंको कैसे अभिव्यक्त करना

चाहिये, क्योंकि यह पुस्तकें बहुत अच्छी तरह लिखी होती हैं, तो उनमें क्या कहानी है इसका कोई महत्त्व नहीं। लेकिन अगर तुम पुस्तकोंको इस उद्देश्यसे पढ़ना शुरू करो कि वे क्या कहती हैं, तो उस हालतमें तुम्हें ज्यादा सख्त होना चाहिये और ऐसी चीजें नहीं पढ़नी चाहिये जो तुम्हारी चेतनाको अंधेरा बना दें, क्योंकि यह समयका अपव्यय है; यह समय-के अपव्ययसे भी खराब है। तो, अशिष्ट कहानियोंके जैसी चीजें, जो अशिष्ट भाषामें लिखी गयी हों, उनके बारेमें तो अब कोई प्रश्न हो नहीं उठता। इन चीजोंको तुम्हें छूना भी नहीं चाहिये। फिर भी इसी टक-सालका सब जगह चलन है, और ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे बढ़कर हमारे समयमें, चूंकि हमने सस्ती छपाई और सस्ती चित्र-सज्जाके तरीके खोज लिये हैं। इसलिये लोग अपने देशमें तथा अन्य देशोंमें ऐसे व्यर्थ साहित्यकी बाढ़ ला देते हैं जो बुरी तरह लिखा होता है, जिसकी बुरी तरहसे कल्पना की जाती है, और जो अशिष्ट चीजोंको अभिव्यक्त करता है और तुम्हें अशिष्ट विचारों द्वारा गंवारू बना देता है और अशिष्ट चित्रोंद्वारा तुम्हारी रुचिको एकदम खराब कर देता है। यह सब इसलिये होता है कि उत्पादनकी दृष्टिसे वे लोग चीजोंको बहुत सस्ता करनेमें सफल हो जाते हैं, ऐसी चीजें तैयार करते हैं जिन्हें सस्ता संस्करण कहा जाता है, जो "सर्व-सुलभ" होती है। चूंकि इन लोगोंका लक्ष्य लोगोंको शिक्षित करना या उनकी प्रगतिमें सहायता करना नहीं होता, यह तो वे बिलकुल नहीं चाहते — इसके विपरीत, वे आशा करते हैं कि लोग प्रगति न करें, क्योंकि अगर वे प्रगति कर लें तो फिर उनके माल-की बिक्री नहीं होगी — इसलिये उनका इरादा यही होता है कि अपनी किताबें पढ़नेवालोंकी जेबसे सबसे ज्यादा रुपया ऐंठ सकें, तो वह जितनी अधिक बिकें उतना ही अच्छा। चीज भयंकर क्यों न हो, अगर वह अच्छी तरह बिकती है तो बहुत अच्छी है। कलाके साथ भी यही बात है, संगीतके साथ भी यही बात है, नाटकके साथ भी यही बात है।

दैनिक जीवनमें, अद्यतन वैज्ञानिक खोजोंके प्रयोगने उन सब चीजोंको सर्व-सुलभ बना दिया है जो पहले केवल बुद्धि और कलाकी दृष्टिसे अभि-जात वर्गके लिये आरक्षित थीं; और अपने प्रयासको उचित ठहराने और अपने कामसे लाभ उठानेके लिये उन्होंने ऐसी चीजें बनायी हैं जो अधिक-से-अधिक बिक सकें, यानी, जो अधिक-से-अधिक घटिया, अधिक-से-अधिक साधारण, अधिक-से-अधिक गंवारू हो, जिन्हें समझना सबसे आसान हो क्योंकि उसके लिये न तो किसी प्रयासकी जरूरत होती है और न शिक्षा-की। और सारा संसार इन सब चीजोंमें इस हदतक डूबा हुआ है कि

अगर किसीने कोई अच्छी किताब या बढ़िया नाटक लिखा हो, तो उसके लिये कहीं कोई जगह नहीं होती, क्योंकि सारी जगह तो इन चीजोंसे भरी रहती है।

स्वभावतः, कुछ समझदार लोग हैं जो प्रतिक्रिया करना चाहते हैं; लेकिन यह बहुत कठिन है। सबसे पहले तो संसारसे व्यापारिक बुद्धि-को निकाल बाहर करना होगा। इसमें कुछ समय लगेगा। कुछ ऐसे चिह्न हैं, कि अब पहलेकी अपेक्षा उसका (व्यापारिक बुद्धिका) मान कम है। एक ऐसा समय था, है न, जब व्यापार न जानना एक अपराध माना जाता था, और जिसमें अपने मूल धनको, चाहे बहुत अच्छी चीजोंके लिये ही क्यों न हो, खर्च कर देनेकी धृष्टता होती थी, वह पागलखानेके योग्य माना जाता था। अब स्थिति जरा अच्छी है, लेकिन फिर भी हम वास्तविक स्थितिसे बहुत दूर हैं; अभीतक सोनेका बछड़ा[1] बना हुआ है; वही संसारपर राज्य कर रहा है; मुझे भय है कि उसे गिरानेमें अभी कुछ समय लगेगा। इसने मनुष्यके मनको इतना विकृत कर दिया है कि उनके लिये वही कसौटी है। देखो, अमरीकामें अगर किसीके बारेमें बात करनी हो, तो कहा जाता है: "ओह, वह तो दस लाख डालरका आदमी है!" यह किसीके लिये बड़े-से-बड़ा सम्मान है। और वह यूं है: कोई पूछता है: "क्या तुम इस आदमीको जानते हो? वह कितने पानीमें है?" "ओह, वह एक लाख डालरका आदमी है", "वह पांच सौ डालरका आदमी है।)" तो इसका मतलब है कि उसकी ऐसी स्थिति है जिससे उसे इतना मिलता है। क्या वह समझदार है, क्या वह मूर्ख है? क्या वह... इसका जरा भी महत्त्व नहीं है। वह भला आदमी है या बुरा? इससे कोई फर्क नहीं पड़ता! वह अमीर है या गरीब? "अगर वह अमीर है, तो हां, मैं उसके साथ परिचय करना बहुत चाहूंगा। अगर वह गरीब है, तो मुझे उससे कुछ मतलब नहीं!" तो यह है बात। स्व-भावतः अमरीका अभी एक किशोर देश है, अतः उसके तौर-तरीके बच-काने हैं, लेकिन हैं अशिष्ट बच्चे जैसे। लेकिन पुराने देश बहुत अधिक बूढ़े हो चुके हैं और अब कोई प्रतिक्रिया नहीं कर सकते, वे केवल सिर हिलाते हैं और विस्मयके साथ सोचते हैं कि कहीं यह किशोर ही तो ठीक नहीं है। सब कुछ इसी तरह है। संसार बहुत रुग्ण है।

---

[1]ऐसा कहा जाता है कि मूसाके अनुयायियोंने अविद्याके प्रतीक रूप एक सोनेका बछड़ा बनाया था और मूसाकी अनुपस्थितिमें उसकी पूजा किया करते थे। यहां उसकी ओर संकेत है। — अनु०

बस अब।

मधुर मां, हम अपनी पुस्तकें कैसे चुनें?

किसी जाननेवालेसे पूछना अधिक अच्छा होगा। अगर तुम किसी ऐसे व्यक्तिसे पूछो जिसमें, कम-से-कम, साहित्यके लिये सुरुचि और कुछ ज्ञान भी है, तो वह तुमसे बुरी तरह लिखी पुस्तकें न पढ़वायेगा। अब, अगर तुम कुछ ऐसी चीज पढ़ना चाहो जो आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे तुम्हारी सहायता करे, तो यह और ही बात है, तुम्हें किसी ऐसेसे सहायता मांगनी चाहिये जिसे कुछ आध्यात्मिक उपलब्धि हो।

देखो, दो एकदम भिन्न दिशाएं हैं; वे मिल सकती हैं क्योंकि हर एक चीजको मिलाया जा सकता है; लेकिन जैसा कि मैंने कहा, दो दिशाएं सचमुच एक-दूसरेसे बहुत भिन्न हैं। एकमें सतत चुनाव होता है, केवल उसीका चुनाव नहीं जो तुम पढ़ते हो, बल्कि उसका भी जो तुम करते हो, जो तुम सोचते हो, तुम्हारे समस्त क्रिया-कलापका चुनाव। इसमें तुम्हें सख्तीके साथ वही करना होता है जो तुम्हें आध्यात्मिक पथपर सहायता दे; यह जरूरी नहीं है कि वह बहुत संकीर्ण और सीमित हो, लेकिन उसे सामान्य जीवनकी अपेक्षा जरा ज्यादा ऊंचे स्तरपर होना चाहिये, और उसमें इच्छा-शक्ति और अभीप्साकी ऐसी एकाग्रता होनी चाहिये जो पथसे इधर-उधर भटकने न दे, व्यर्थमें इधर-उधर जाने न दे। यह कठोर है; बहुत छोटी अवस्थामें इसे अपनाना कठिन है, क्योंकि आदमीको ऐसा लगता है कि वह स्वयं जो यंत्र है, वह अभी काफी गढ़ा नहीं गया है या इतना समृद्ध नहीं है कि उसे वृद्धि और प्रगति किये बिना, जैसे-का-वैसा रहने दिया जाय। अतः, साधारण तौरपर, एक बहुत छोटी संख्याके अपवादको छोड़कर, यह चीज बादमें, अमुक विकास और जीवनके कुछ अनुभवके बाद आती है। दूसरा मार्ग है सभी मानव क्षमताओंका यथासंभव अधिक-से-अधिक पूर्ण और समग्र विकासका, तुम्हारे अन्दर जो कुछ है उस सबके, तुम्हारी समस्त संभावनाओंके विकासका मार्ग, फिर, सभी दिशाओंमें जितना संभव हो उतने विस्तारमें फैल जाना, अपनी चेतनाको समस्त मानव संभावनाओंसे भर लेनेके लिये, सारे जगत् एवं जीवनको तथा मनुष्य और इन सबके कार्यको उनके वर्तमान रूपमें जानना और भावी आरोहणके लिये, एक विशाल और समृद्ध आधार तैयार करना।

साधारणतः बच्चोंसे यही आशा की जाती है; जैसा कि मैंने कहा, ऐसे बच्चे बहुत ही विरल अपवाद रूप होते हैं जिनका चैत्य पुरुष

इस बार जन्म लेनेसे पहले ही अनुभूतियां प्राप्त कर चुकता है, और जिसे और अधिक अनुभवकी आवश्यकता भी नहीं होती, जो केवल भगवान्को पाना और उन्हींको जीना चाहता है। लेकिन, ऐसे लाखों करोड़ोंमें एक आध ही होते हैं। अन्यथा, एक अवस्थातक, जबतक तुम बहुत छोटे हो, अपने-आपको विकसित करना, सब दिशाओंमें जितना हो सके अपने-आपको फैलाना, अपने अन्दरकी सभी संभाव्यताओंको बाहर निकालना, और उन्हें अभिव्यक्त सचेतन, सक्रिय चीजोंमें बदलना अच्छा है, ताकि आरोहणके लिये ठोस नींव बन जाय। अन्यथा वह जरा निकृष्ट ही रहती है।

इसीलिये तुम्हें सीखना चाहिये, सीखनेसे प्यार करना चाहिये, हमेशा सीखना चाहिये, अपना समय नष्ट न करना चाहिये, ऐसी चीजों . . . हां तो, फालतू चीजोंसे अपने-आपको भरने या फालतू चीजें करनेमें समय नष्ट न करना चाहिये। तुम्हें हर चीज इस उद्देश्यसे करनी चाहिये: अपनी संभावनाओंको बढ़ाओ, तुम्हारे अन्दर जो संभावनाएं हैं उन्हें विकसित करो, नयी प्राप्त करो, और तुम जितने पूर्ण, जितने श्रेष्ठ मानव बन सकते हो बनो। यानी, इस दिशामें भी तुम्हें चीजोंको गंभीरतासे लेना चाहिये, यह नहीं कि चूंकि तुम यहां हो अपना समय जैसे-तैसे बिता दो, जितना संभव हो नष्ट करो क्योंकि तुम्हें उसे किसी-न-किसी तरह बिताना तो है ही।

साधारणतः मनुष्योंकी यही वृत्ति है: वे जीवनमें आते हैं, उन्हें पता नहीं होता कि क्यों; वे जानते हैं कि उन्हें अमुक वर्षोंतक जीना है, उन्हें पता नहीं होता कि क्यों; उन्हें लगता है कि उन्हें भी चले जाना होगा क्योंकि हर एक चला जाता है, और उन्हें यह भी पता नहीं होता कि क्यों; और फिर, अधिकतर समय वे ऊबे रहते हैं क्योंकि उनके अपने अन्दर कुछ नहीं होता, वे खोखली सत्ताएं होती हैं और खालीपनसे ज्यादा उबाऊ और कुछ नहीं होता; अतः वे इसे मन-बहलावसे भरनेकी कोशिश करते हैं, वे बिलकुल बेकार हो जाते हैं, और जब वे अन्ततक पहुंचते हैं तो वे अपना समस्त जीवन, सारी संभावनाएं नष्ट कर चुकते हैं— और सब कुछ गंवा बैठते हैं। तुम यह देखोगे : एक हजार आदमी लो, इनमेंसे कम-से-कम नौ सौ नब्बे इसी अवस्थामें हैं। ऐसा होता है कि वे अमुक या तमुक परिस्थितियोंमें पैदा हुए हैं, और वे अपने समयको जहांतक बन पड़े अच्छे-से-अच्छी तरह बितानेकी, जितना हो सके कम ऊबनेकी, जितना संभव हो कम कष्ट पानेकी, जहांतक संभव हो मौज करनेकी कोशिश करते हैं; लेकिन परिणाम बिलकुल कुछ नहीं होता,

हर चीज उबाऊ, निर्जीव, व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण होती है। तो यह है स्थिति। मनुष्योंमें बहुसंख्या ऐसोंकी है, और वे सोचतेतक नहीं . . . वे अपने-आपसे यह भी नहीं पूछते : "लेकिन वास्तवमें, मैं यहां हूं किसलिये ? यह धरती क्यों है ? मनुष्य क्यों हैं ? मैं क्यों जीता हूं", नहीं, यह सब बातें बिलकुल अरुचिकर हैं। एकमात्र रुचिकर चीज है अच्छी तरहसे खाना, खूब मजा करना, खूब मन-बहलाव करना, अच्छी तरह शादी रचाना, बच्चे पैदा करना, धन कमाना और कामनाओंकी दृष्टिसे जितने भी लाभ हो सकते हैं, सब प्राप्त करना, और सबसे बढ़कर, सबसे बढ़-कर न तो सोचना, न विचारना और न कोई प्रश्न पूछना, और सब तरह-की तकलीफसे बचे रहना। हां, और फिर बिना बहुत अधिक अनर्थोंके, इसमेंसे यों ही निकल जाना। यह साधारण स्थिति है; इसीको लोग समझ-दार होना कहते हैं। इस तरहसे दुनियां अनन्तकालतक गोल-गोल घूम सकती है, और वह कभी प्रगति न करेगी। इसीलिये ये सब चींटियों-की तरह हैं; वे आते हैं, रेंगते हैं, मरते हैं, चले जाते हैं, फिर लौट आते हैं, फिरसे रेंगते हैं, फिर मरते हैं, और यही चलता रहता है। और इस तरह शाश्वत कालतक चलता रहता है। सौभाग्यवश कुछ हैं जो और सबका भी काम करते हैं, लेकिन यही लोग हैं जो एक दिन सब कुछ बदल देंगे।

तो पहली समस्या है यह जाननेकी कि तुम किस तरफ होना चाहते हो : उन लोगोंकी ओर जो कुछ कर रहे हैं या उनकी ओर जो कुछ भी नहीं कर रहे; उन लोगोंकी ओर जो, शायद, यह समझ सकेंगे कि जीवन क्या है, और जो इसके लिये प्रयास करेंगे कि जीवनकी किसी चीजमें परिणति हो, या उनके साथ जो कुछ भी समझनेकी परवाह नहीं करते और अपना समय कम-से-कम कठिनाइयोंके साथ बितानेकी कोशिश करते हैं। और सबसे बढ़कर यह चाहते हैं कि कोई दिक्कत न हो !

हां तो, यह है स्थिति। यह पहला चुनाव है। इसके बाद और बहुत-से हैं।

तो यह लो, मेरे बच्चो।

अब, अगर तुम ध्यान करना चाहो, तो कह दो। हां या ना ? हां ? अच्छा ! अपनी चेतनासे उस सबको निकालनेकी कोशिश करो जो अंधेरे रूपमें व्यर्थ जीवनके साथ चिपका हुआ है।

५ अक्तूबर, १९५५

माताजी "महान् रहस्य": "वैज्ञानिक" पढ़ती हैं।

मेरा इरादा था कि अंतिम वक्तृताओंको छोड़कर सीधे अज्ञात व्यक्ति-के उत्तरको लूंगी। परंतु... मैं तुम्हें बताती हूं, चूंकि उसमें... मुझे ऐसा लगा कि उसमें इतने काफी प्रश्न नहीं उठते कि यह सारा पाठ पढ़ना उचित ठहराया जा सके... लेकिन हुआ ऐसा कि इस "वैज्ञानिक" के बारेमें किसीने, जो यहां नहीं है, मुझसे दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे हैं जो मुझे बहुत रुचिकर लगे। अतः आज मैं "वैज्ञानिक" पढ़ूंगी, और अगले सप्ताह हम सीधे "अज्ञात पुरुष" को ले लेंगे।

(माताजीने "वैज्ञानिक" पढ़ दिया, पवित्र प्रश्न पढ़नेके लिये तैयार हो रहे हैं।)

हां, तो पवित्र तुम प्रश्न पढ़ दोगे? तुम अच्छी तरह नहीं देख सकते? फिरसे बत्ती जला सकते हैं।

> **(पवित्र): जी नहीं, ठीक है, माताजी।**
> **"वैज्ञानिक दो मान्यताओंकी बात करता है जिन्हें लेकर वह प्रकृतिके रहस्योंको खोजने चला है जो धीरे-धीरे समाप्त हो जायेंगे।**
> **वह कहता है: 'मेरे लिये अज्ञान ही अगर एकमात्र नहीं, तो कम-से-कम आद्य अशुभ...'**
> **क्या सचमुच ऐसा नहीं है?"**

यानी, अगर सीधी तरह रखें तो प्रश्न यह है: क्या अज्ञान ही मानवजाति का आद्य और शायद एकमात्र अशुभ नहीं है?

विज्ञान जो जगत्को अत्यंत जड़ भौतिक दृष्टिसे देखता है, उसने यही दावा किया है; और एकदम विपरीत स्तरसे जिन लोगोंने मानव दुःखोंका उपाय खोजा है उनमेंसे सबसे बड़े आध्यात्मिक गुरुओंमेंसे एकने, सबसे महान् प्रबोध कर्ताओं और मनीषियोंमेंसे एकने, यही बात कही है — मेरा मतलब बुद्धसे है। और दोनों एक ही साथ इस अर्थमें ठीक और गलत हैं कि उन दोनोंने प्रश्नका

केवल एक ही पहलू देखा है। यह सच है कि तुम किसी रूपमें कठिनाईको कम कर सकते हो, और इससे समस्याको हल करना अधिक आसन हो जाता है, यद्यपि यह निश्चित नहीं है कि समाधान पूरी तरह सफल होगा। वहरहाल, अगर हम अज्ञानकी बात करें, अगर हम समस्याको अज्ञानके कोणसे देखें और कहें — कि चूंकि मनुष्यमें ज्ञान नहीं है इसलिये उसे बचाया नहीं जा सकता — तो बात स्पष्ट मालूम होती है। लेकिन हम किस ज्ञानकी बात कर रहे हैं?

वैज्ञानिक तुमसे कहेगा : प्रकृतिके नियमोंका अध्ययन करो, वह जो कुछ सिखा सकती है वह सब सीख लो, इससे तुम्हें वह ज्ञान प्राप्त होगा जो तुम्हें अधिकृत होनेकी जगह जीवनका स्वामी और भोक्ता बना देगा। लेकिन, जैसा कि हमने पढ़ा है, हम देखते हैं कि जैसे-जैसे मनुष्य सचाईके साथ अधिक गहराईमें अध्ययन करता और खोजता जाता है, उसे पता लगता है कि कोई चीज है जो उससे बच निकलती है, क्योंकि, बिलकुल स्वाभाविक रूपमें वह जड़-भौतिक जगत्‌की सीमातक आ पहुंचता है और, वहां, उसे एक बड़ी चट्टानका सामना करना पड़ता है; और जो परे है उसमें वह अपनी खोजको आगे नहीं बढ़ा सकता, क्योंकि अब वही तरीके काफी नहीं होते।

लेकिन अगर हम प्रश्नको दूसरे छोरसे देखें, तो हमें पता लगेगा कि बुद्ध जिस अज्ञानकी बात कह रहे थे वह यह न जानना नहीं है कि विष खानेसे आदमी मर जाता है, या अगर कोई अपना सिर बिना सांस लिये पानीमें रखे, तो वह निश्चित रूपसे डूबकर मर जाता है; उस दृष्टिसे प्रकृतिने किस तरह अणु बनाये हैं यह न जानना भी अज्ञान नहीं है; उनकी दृष्टिसे यह मानना अज्ञान है कि संसार वास्तविक है, कि अगर सौभाग्यवश अनुकूल परिस्थितियोंमें रहना मिले तो जीवन अच्छा हो सकता है। संसारमें आना ही अज्ञानमें जन्म लेना है; उनके अनुसार, यह जिजीविषाका परिणाम है; और चूंकि स्वयं जिजीविषा अपने-आपमें परम अज्ञान है, अतः अगर तुम जीनेकी कामनाको हटा सको, तो बिलकुल स्वाभाविक रूपसे कुछ समय बाद तुम जीवनका अंत कर सकोगे, क्योंकि जीवन, जगत् और यह दूषित और विषाक्त आभास उसीका परिणाम है।

तो उनके लिये, अज्ञानमेंसे बाहर निकलनेका अर्थ था इस मिथ्या विश्वाससे बाहर निकलना कि यह जगत् कोई वास्तविक चीज है, और सबसे बढ़कर, जिजीविषासे बाहर निकलना जो पहले दर्जेकी मूर्खता है। लेकिन उन्होंने अपने-आपको एक और समस्याके आगे पाया जो वैज्ञानिककी समस्यासे बढ़कर नहीं, तो कम-से-कम उतनी ही गंभीर तो थी ही।

वह यह कि यह इलाज केवल व्यष्टिके लिये अच्छा है; यह बहुत ही सीमित संख्याके लोगोंके काम आ सकता है जिन्हें पहले ही अनगिनत जीवनोंमें अनगिनत अनुभूतियां हो चुकी हों, वे ही उस समयकी प्रतीक्षा कर सकते हैं जब वे इस सत्यको समझने और अपने-आपको कामनासे मुक्त करके जगत्से मुक्त करने और निर्वाणमें लुप्त होनेको तैयार हों।

लेकिन इन अंतिम परिवर्तनोंको इस तरह कैसे बढ़ाया जा सकता है कि जगत्को लुप्त करनेमें सफलता मिले? यह असंभव मालूम होता है, क्योंकि यह प्रक्रिया क्रमशः होती है और निर्वाणतक उड़ान भरनेकी अवस्थातक पहुंचनेसे पहले तुम्हें सचेतन जीवनकी समस्त स्थितियोंमेंसे गुजरना होगा। अतः, इस सारे अरसेमें, इन बेचारे मनुष्योंका क्या होगा, सिर्फ मनुष्योंका ही नहीं पशुओं और वनस्पतियों, इस समस्त जीवनका क्या होगा जो कष्ट पाता, संघर्ष करता और तनावमें रहता है? तो, वह समस्त आशासे वंचित... क्योंकि वैज्ञानिक कम-से-कम यह तो कहता है: "हम तुम्हारे लिये जीवनको ज्यादा सुखद बनानेके उपाय पानेवाले हैं।" उन्होंने अभीतक इसे अच्छी तरह पाया तो नहीं है, क्योंकि इस प्रकारका सुख जीवनको अधिक जटिल बना देता है, ज्यादा सुखकर नहीं बनाता। फिर भी वे कम-से-कम आशाकी एक किरण तो देते हैं, जब कि दूसरा पक्ष तुमसे कहता है: "ठहरो, ठहरो। जब तुम्हारी बारी आयेगी तो तुम दूसरी ओर निकल जाओगे।" लेकिन प्रतीक्षा करते हुए आदमी सुखी नहीं होता। तो शायद यह कहा जा सकता है कि समस्याको सुलझानेका यह तरीका बिलकुल संतोषजनक नहीं है, क्योंकि यह शुद्ध और ऐकांतिक रूपसे मानसिक तरीका है, और केवल उन्हीं लोगोंको संतुष्ट कर सकता है जो मानसिक जीवन जीते हैं, और उनकी कोई बड़ी संख्या नहीं है। इसके अलावा, इसी चीजने सभी धर्मोंको ओछा बना दिया है। इनमें वे भी आ जाते हैं जिनके पास आरंभमें देनेके लिये कोई बहुत ऊंची और सच्ची चीज थी: वे उसे मानव चेतनाके अनुपातमें छोटा करनेके लिये बाधित हुए हैं। क्योंकि मानवजाति कष्ट सहती है और उसका इलाज सुन्दर विचारोंसे नहीं किया जा सकता।

किसी और चीजकी जरूरत है। शायद इसे हम अंततक पहुंचनेपर देखेंगे। अभीके लिये...

(पवित्र): **" 'और दूसरी मान्यता यह है: यह संभव है कि विश्व और उसके नियमोंको वस्तुनिष्ठ दृष्टिसे उसके सच्चे रूपमें जाना जा सके।' इस संसारमें जिस प्रकारकी नियमितता**

पायी जाती है, जिसे हम प्रकृतिके नियम कहते है — क्या उनका हमसे स्वतंत्र भी कोई अस्तित्व है? या प्रकृतिके ये तथाकथित नियम केवल हमारे मनमें रहते है?

क्या देखनेवाले या विचारको अलग करके विश्वको उसकी वास्तविकतामें देखना संभव नहीं है?"

हा, इसका एक उपाय है वह है तादात्म्यद्वारा। लेकिन स्पष्ट है कि यह एक ऐसा उपाय है जो पूरी तरहसे सभी भौतिक साधनोसे बच निकलता है। मेरा ख्याल है कि न जान पानेकी यह दुर्बलता मुख्य रूप-से उस साधनसे आती है जिसका उपयोग किया जाता है, क्योकि मनुष्य बिलकुल ही छिछली चेतनामें रहता आया है, और जो घटना पहली बार हुई थी वही दूसरी बार भी होती है। अगर तुम अपनी खोजको काफी दूरतक ले जाओ, तो तुम एक ऐसे बिन्दुतक आ पहुचते हो जहा तुम्हारी भौतिक पद्धतियोका मूल्य नही रहता। और वस्तुत तुम वही जान सकते हो जो तुम हो। इसलिये अगर तुम विश्वको जानना चाहो, तो तुम्हे विश्व बनना होगा। तुम भौतिक रूपसे विश्व नही बन सकते, यह तो तुम जानते ही हो, परतु शायद विश्व बननेका एक तरीका है वह है चेतनामें।

अगर तुम अपनी चेतनाका विश्व चेतनाके साथ तादात्म्य कर लो, तो तुम जान सकते हो कि क्या हो रहा है।

लेकिन यही एकमात्र उपाय है, इसके सिवाय और कोई नही। यह निरपेक्ष तथ्य है कि तुम उसी चीजको जानते हो जो तुम हो, और अगर तुम कुछ जानना चाहते हो, तो तुम्हें वही बनना होगा। तो, तुम जानते ही हो, बहुत-से लोग ऐसे है जो कह देते है "यह असभव है", लेकिन यह इसलिये क्योकि वे एक स्तर-विशेषपर रहते है। यह तो स्पष्ट ही है कि अगर तुम केवल जड-भौतिक स्तरपर ही नहीं, मानसिक स्तरपर भी रहो, तो तुम विश्वको नही जान सकते, क्योकि मन वैश्व नही है, वह विश्वको अभिव्यक्त करनेका एक साधनमात्र है, और तुम चीजोको तात्त्विक तादात्म्यके द्वारा ही जान सकते हो, बाहरसे अन्दरकी ओर नही बल्कि अंदरसे बाहरकी ओर। यह असभव नही है। यह बिलकुल संभव है। यह किया जा चुका है। लेकिन यह यंत्रोसे नही किया जा सकता, वे यत्र चाहे कितने भी पूर्ण क्यो न बनाये गये हो। यहापर तुम्हे फिर एक बार किसी और चीजका हस्तक्षेप करवाना होगा, शुद्ध भौतिक चीजोंके अतिरिक्त, इनमें मनकी भी गिनती हो जाती है,

जो भौतिक जीवनका, पार्थिव जीवनका अंग है, तो इनके अतिरिक्त अन्य लोकों, अन्य सद्वस्तुओंका हस्तक्षेप करवाना होगा।

तुम सब कुछ जान सकते हो, लेकिन उसका तरीका जानना चाहिये। और तरीका किताबोंद्वारा नहीं सीखा जाता, उसे अंकोंमें नहीं लिखा जाता, वह केवल साधनाद्वारा...। और यहां फिर, तपस्याकी, समर्पणकी, अध्यवसायकी और आग्रहकी मांग की जाती है — और यह उससे बहुत अधिक होनी चाहिये जितनी अधिक-से-अधिक सच्चे, अधिक-से-अधिक ईमानदार, अधिक-से-अधिक निःस्वार्थ वैज्ञानिकने अभीतक दिखलायी है। लेकिन मुझे कहना चाहिये कि काम करनेका वैज्ञानिक तरीका एक अद्भुत अनुशासन है; और यह बात मजेदार है कि बुद्धने कामनाओंसे और संसारकी भ्रांतिसे पीछा छुड़ानेके लिये जो उपाय बतलाया है वह धरतीपर प्रचलित सबसे अद्भुत साधनाओंमेंसे एक है। वे दो छोरोंपर हैं, दोनों श्रेष्ठ हैं; जो ईमानदारीके साथ दोनोंमेंसे किसी एकका अनुसरण करते हैं वे अपने-आपको सचमुच योगके लिये तैयार करते हैं। कहींपर, जरा-सी 'खट' इसके लिये काफी है कि उन्हें अपने काफी संकुचित दृष्टिकोणसे एक या दूसरी ओर हटाकर एक ऐसी संपूर्णतामें प्रवेश करा दे जो उन्हें परम 'सत्य' और प्रभुत्वकी ओर ले जाय।

पता नहीं कि अज्ञान मनुष्यजातिके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा है या नहीं...। हमने कहा है कि यह लगभग ऐकांतिक रूपसे मानसिक बाधा है और मनुष्य केवल मानसिक सत्तासे बहुत अधिक जटिल है, यद्यपि वह प्रधान रूपसे मानसिक है, क्योंकि वह संसारमें उसकी (मानसिक चेतनाकी) नयी सृष्टि है। वह प्रकृतिकी अंतिम संभावनाका प्रतीक है, और स्वभावतः, उसके मानसिक जीवनने बहुत बड़ा भाग लिया है क्योंकि उसे यह गर्व है कि धरतीपर यह उसीको प्राप्त है। उसने हमेशा उसका सदुपयोग नहीं किया, फिर भी बात ऐसी है। लेकिन उसे समाधान यहांपर नहीं मिलेगा। उसे परे जाना होगा। तो यह बात है।

हां, अब किसी औरको कुछ पूछना है? नहीं? कोई नहीं? (एक बालकसे) तुम्हें पूछना है कुछ?

माताजी, प्रस्तर-युगसे लेकर हमारे समयतक, मनुष्यने केवल मनमें, यानी, वैज्ञानिक क्षेत्रमें ही प्रगति की है, तो फिर अन्य क्षेत्रमें प्रगति क्यों नहीं...?

तुम्हारा यह ख्याल है? किसने कहा तुमसे?

यहां लिखा है (पाठमें), यहां कहा गया है कि हम लगभग प्रस्तर-युगमें हैं...

ओह, ओह! यह इसने (पवित्रकी ओर इशारा करते हुए) कहा है। (हंसी)

शायद मनुष्यको पहले अपने मनको तैयार करना था। प्रस्तर-युगमें उसका मन जरा कच्चा और अनगढ़ था, है न! उसमें बहुत माल न था। मनके पार जानेके पहले उसे विकसित करना था। इसमें समय तो बहुत लगा पर वह अब कुछ बन गया है।

यह तो स्पष्ट है कि केवल भौतिक मनकी दृष्टिसे, शुद्ध मानसिक दृष्टिसे, हां, हम प्रस्तर-युगसे बहुत आगे निकल आये हैं। कहा जाता है कि हमने बहुत प्रगति नहीं की क्योंकि कोई और चीज है जो अभीतक बहुत विकसित नहीं हुई, और वह इसी कारण कि हम नये यंत्रके साथ खेलनेमें बहुत अधिक मग्न थे; हां! नया खेल बहुत मजेदार होता है! लोग उसके साथ खेले, उन्होंने उसके उपयोग करनेके सभी तरीकोंके परीक्षण किये। व्यावहारिक दृष्टिसे उनके खेल मुख्यतः इसीके प्रयोग थे, हां! अणु बम भी खेलनेका एक तरीका ही है; यह है तो जरा बीभत्स लेकिन फिर भी है खेल ही। यह स्पष्ट निश्चित दृष्टिके साथ एक योजनाबद्ध संगठन नहीं है जो लक्ष्यकी ओर, सच्चे लक्ष्यकी ओर सारी चीजको आगे बढ़ाये। यह वह नहीं है। यह बिलकुल... अब भी... जैसे बच्चे खेल-कूदके आंगनमें हों: वे खोज करते, ढूंढते, खेलते, पता लगाते, एक-दूसरेको धक्के देते, लड़ते, समझौता कर लेते, झगड़ते, आविष्कार करते, नष्ट करते, रचना करते हैं। लेकिन इसके पीछे एक योजना है; योजना थी; अब भी योजना है; अधिकाधिक योजना है। और शायद यह सब जो ऊपरी सतहपर खेल हा है, हर बातके बावजूद, किसी चीजकी ओर लिये जा रहा है जो एक दिन सामने आ जायगी; शायद अगर हम अभी उसके बारेमें बोलें, उसके बारेमें इतना अधिक सोचें, वह शायद... अभी वह शायद है लेकिन... किसी निश्चित समयपर वह जरूर प्रकट होगी, हो सकता है वह धीरे-धीरे, एक-एक चरण करके हो, लेकिन फिर भी एक क्षण है जब वह प्रकट होना शुरू करती है। शायद हम उस क्षणतक पहुंच गये हैं।

फिर भी, हमें पहलेसे अनुमान नहीं लगाना चाहिये, इसके बारेमें हम अगली बार बातचीत करेंगे।

हां, तो बस, खतम?

और प्रश्न नहीं हैं? कुछ नहीं? (एक बालकसे) आज तुम्हें कुछ नहीं कहना?

नहीं? अच्छा। तो, फिर मिलेंगे, मेरे बच्चो।

१२ अक्तूबर, १९५५

माताजी 'महान् रहस्य': 'अज्ञात पुरुष' पढ़ती हैं।

यह कब होनेवाला है? लो। मैं इसी प्रश्नकी प्रतीक्षा कर रही थी। (एक बालकसे) तुम क्या पूछना चाहते थे?

वही, जो आपने अभी कहा।

तो देखो, मैं विचार पढ़ना जानती हूं।

तो, अगर मैं यह कहूं कि यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है? यह बिलकुल सच तो नहीं है, फिर भी इसमें कुछ सत्य है।

मेरा ख्याल है कि यह उस क्षण होगा जब ऐसी चेतनाएं काफी बड़ी संख्यामें होंगी जो पूरी तरह यह अनुभव करेंगी कि यह और तरहसे हो ही नहीं सकता। अब, अधिकतर लोगोंको, तुममेंसे एक बहुत बड़ी संख्याको यह कल्पना करनेके लिये प्रयास करना पड़ता है कि वह क्या होगा — और अधिक-से-अधिक, यह अनुमान लगानेके लिये और शायद यह आशा करनेके लिये कि यह रूपांतर चीजोंको ज्यादा सुखद, ज्यादा मनोहर बना देगा — कुछ इसी तरह। लेकिन तुम्हारी चेतना, जो है, उसके साथ इतनी आसक्त है कि उसके लिये यह कल्पना करना भी कठिन है कि चीजें और तरहकी हो सकती हैं। और जिस चीजको होना है जबतक वह चेतनाओंकी काफी बड़ी संख्याके लिये अनिवार्य आवश्यकता नहीं बन जाती और जबतक जो कुछ था और अभीतक है वह एक बेतुकेपनकी तरह नहीं लगता जिसका टिकना संभव नहीं . . . यह चीज ठीक उस समय हो सकती है, उससे पहले नहीं।

अब एक समस्या उठती है: क्या यह ऐसी चीज है जो सामुदायिक

रूपमें होनेसे पहले व्यक्तिगत रूपमें हो सकती है और होगी? यह संभव है। लेकिन कोई व्यक्तिगत सिद्धि तबतक पूर्ण नहीं हो सकती, पूर्णताके पासतक नहीं फटक सकती जबतक वह नव जगत्के कम-से-कम प्रतिनिधि स्वरूप चेतनाओंके एक दलके साथ सामंजस्यमें न हो। शायद यह कहा जा सकता है कि सभी चीजोंके बावजूद व्यष्टि और समष्टि इतने अधिक एक-दूसरेपर आश्रित हैं कि सब कुछ होते हुए भी कोई प्रतिक्रिया करनेवाले वातावरणके कारण — जो उसे घेरे रहता है — व्यक्तिगत सिद्धि सीमित और निर्बल रहती है। और यह निश्चित है कि समस्त पार्थिव जीवनको प्रगतिके अमुक चक्रका अनुसरण करना होगा, ताकि एक नया जगत् और नयी चेतना अभिव्यक्त हो सकें। इसीलिये मैंने शुरूमें कहा था कि यह कम-से-कम अंशतः तुम्हारे ऊपर निर्भर है।

क्या तुमने कभी अपनी आंखोंके आगे यह चित्र बनानेकी कोशिश की है कि वह नयी चेतना क्या हो सकती है और यह नयी जाति कैसी हो सकती है, और अंतमें नया जगत् कैसा हो सकता है?

सादृश्यसे, यह बिलकुल स्पष्ट है कि मनुष्यके धरतीपर आगमनने धरतीकी अवस्थाको बदल दिया है। मैं यह नहीं कह सकती कि अमुक दृष्टिकोणसे यह सबके लिये अधिकाधिक हितकी बात थी, क्योंकि ऐसे बहुत-से हैं जिन्हें इसके कारण भयंकर रूपसे यातना सहनी पड़ी है, और यहां यह भी स्पष्ट है कि मनुष्य जीवनमें जो जटिलताएं लाया है, वे हमेशा स्वयं उसके या औरोंके लिये हितकर नहीं हुई हैं। लेकिन अमुक दृष्टिकोणसे इसकी वजहसे काफी प्रगति हुई है, निम्नतर जातियोंमें भी: मनुष्यने पशुओंके जीवनमें हस्तक्षेप किया, उसने वनस्पतियोंके जीवनमें हस्तक्षेप किया, उसने धातुओं, खनिजोंके जीवनमें हस्तक्षेप किया; और जैसा कि मैंने पहले कहा, वह जिनके साथ व्यवहार कर रहा था यह हमेशा उनके अधिकतम आनन्दके लिये नहीं हुआ, लेकिन फिर भी उसने उनके जीवनकी परिस्थितियोंको काफी बदल दिया। हां, तो उसी तरह, यह संभव है कि अतिमानसिक सत्ता, वह चाहे कुछ भी क्यों न हो, धरतीके जीवनमें काफी बड़ा परिवर्तन लायेगी। हम अपने हृदयमें और अपने विचारोंमें आशा करते हैं कि धरती जितने भी अनिष्ट अशुभ तत्त्वोंसे कष्ट पा रही है वे पूरी तरहसे अच्छे न भी हुए तो कम-से-कम सुधर तो जायेंगे, और साधारण अवस्था अधिक सामंजस्यपूर्ण, और हर हालतमें अधिक सह्य होगी। यह हो सकता है, क्योंकि यह मनुष्यमें अवतरित होनेवाली मानसिक चेतनाका स्वभाव था कि मनुष्यने अपने ही विकासको नजरमें रखते हुए, अपने संतोषके लिये कार्य किया, और अपने कर्मोंके परिणामकी पर-

वाह न की। शायद अतिमानव अधिक सामंजस्यके साथ काम करेगा। हम, बहरहाल, यह आशा तो करते ही हैं। हम उसके बारेमें ऐसी ही कल्पना करते हैं।

अब मैं तुमसे, बारी-बारीसे, एक प्रश्न पूछती हूं: क्या तुमने इसके बारेमें सोचा है? क्या तुमने सोचा है कि वह क्या हो सकता है?

(एक बालकसे) तुम, क्या तुमने इसके बारेमें सोचा है? (और एक-से) तुम? नहीं? तुमने उसके बारेमें सोचा है? तो बतलाओ तुमने क्या सोचा है। स्वभावतः मैं तुमसे वह दोहरानेके लिये नहीं कह रही जो तुमने श्रीअरविंदकी पुस्तकोंमें पढ़ा है, क्योंकि उसका प्रश्न नहीं है: तुम्हें अपने-आप कुछ सोचने और जीनेका प्रयास करना चाहिये।

तुम नहीं कह सकते? तुम भी नहीं? क्या तुम नहीं बतला सकते?

माताजी, हमें अपनी अपूर्णताके कारण कुछ करना पड़ता है। लेकिन जब अतिमानसिक जातिका अवतरण होगा, तो वह पूर्ण होगी; तब करनेके लिये क्या रहेगा?

पूर्ण! हमारी तुलनामें पूर्ण, उसकी तुलनामें नहीं जो बादमें आयेगा। संसार निरंतर गति और निरंतर प्रगतिमें है, और यह बहुत स्पष्ट है कि जब कभी कोई नयी चेतना धरतीपर अभिव्यक्त हुई है, तो यही समझा गया है कि... शायद एक निर्णायक उपलब्धि नहीं पर एक काफी बड़ी प्रगति होगी। और यह भी बहुत स्पष्ट है कि... मान लो, हाथीकी चेतनाके लिये या कुत्तेकी चेतनाके लिये... मानव क्षमताएं एकदम अद्-भुत हैं। जहांतक वे समझ सकते हैं, कल्पना कर सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं — कुत्ते अनुभव कर सकते हैं — उनके लिये मानव क्षमताएं दिव्य वस्तु होती हैं। और, वस्तुतः, चूंकि हम ऐसी स्थितिमें आ गये हैं जहांसे हम परेकी कुछ चीज देख सकते हैं (मैंने यहां यही कहा है, है न?), इसी कारण हम जो कुछ करते हैं उससे संतुष्ट नहीं होते; इसी कारण ऐसा लगता है कि हम चाहे कुछ भी करें, कोई चीज है जो हमसे बच निकलती है — कि वास्तविक चीज हमसे छटक जाती है, कि हम उसके चारों ओर घूम तो रहे हैं पर उसे छू नहीं पाते। यह इसलिये क्योंकि हम इस चीजके लिये तैयार हैं। अन्यथा, अगर हम उसे न समझते, तो हम अपने कियेसे पूरी तरह संतुष्ट रहते और रह जाता केवल, हम जो कर सकते हैं उसे और अच्छा, और भी अच्छा करनेका प्रयास। यह एक नयी अभिव्यक्तिका आरंभ है। उदाहरणके लिये, किसी ऐसी चीज-

की आवश्यकता जो तत्त्वतः अधिक सत्य हो; कोई चीज हो . . .जिसपर तुम निर्भर कर सको, जो सहारा लेते ही ढह न जाय, कोई चीज जो स्थायी, पक्का सहारा दे; हमारे अन्दर शाश्वतताकी जो आवश्यकता है, निरपेक्षकी, निरपेक्ष सत्यकी, निरपेक्ष शुभकी, निरपेक्ष सौंदर्यकी आवश्यकता है — यह वस्तुतः तभी जागती है जब तुम नयी चेतनाको ग्रहण करनेके लिये तैयार होते हो।

यह निश्चित है कि बहुत लंबे समयसे, शायद बिलकुल शुरूसे (विकास-की दृष्टिसे एकदम शुरूसे नहीं, क्योंकि मध्यवर्ती सत्ताओंके भी युग रहे हैं जो सच्चे मनुष्यकी अपेक्षा पशुके अधिक निकट थीं), जब यह मानव शरीर काफी विकसित हो गया और ऊपरसे किसी चीजको ग्रहण करनेके लिये तैयार था, जब उच्चतर जगत्‌की पहली सत्ताएं मानव शरीरमें अव-तरित हुईं, उस समयसे ऐसे व्यक्ति हमेशा रहे हैं जो अपने अंदर शाश्वत और निरपेक्षकी आवश्यकताको लिये थे। लेकिन यह व्यष्टिगत चीज थी। और धीरे-धीरे और बहुत क्रमशः, प्रकाश और अंधकारकी क्रमिक अवधियोंके बाद, समस्त मानवजातिमें उच्चतर शुभके प्रति कोई चीज जागी है।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि अब, समस्त चक्करों और समस्त मूर्खताओं-के बाद, एक आवश्यकता जाग रही है, प्रायः एक प्रकारका संवेदन कि यह चीज क्या हो सकती है और क्या होनी चाहिये — जिसका अर्थ है कि समय निकट है। बहुत लंबे अरसेसे कहा जा रहा है: "यह होगा, यह होगा," और यह वचन दिया गया था . . . हजारों, हजारों वर्ष पहले यह प्रतिज्ञा शुरू हो गयी थी कि नयी चेतना होगी, एक नया जगत् होगा, कोई दिव्य वस्तु पृथ्वीपर प्रकट होगी, लेकिन कहा यह गया था: "यह होगा, यह होगा," इस तरह ; युगोंकी, जमानोंकी, हजारों और लाखों वर्षों-की बात थी।

उन्हें यह संवेदन प्राप्त न था जो हमें प्राप्त है, कि उसे आना चाहिये, कि वह बहुत निकट है। यह जरूर है कि मानव जीवन बहुत छोटा है और यह चाहनेकी प्रवृत्ति होती है कि दूरियोंको छोटा कर दिया जाय ताकि वे आयामोंके अनुपातमें हों; लेकिन फिर भी एक ऐसा क्षण आयेगा जब यह होगा . . . एक समय आयेगा जब यह होगा, समय आयेगा जब गति पेंग बढ़ाकर नयी सद्वस्तुमें चली जायगी . . .। एक समय था जब मानसिक सत्ता धरतीपर अभिव्यक्त हो सकती थी। आरंभ-बिन्दु शायद तुच्छ, बहुत अपूर्ण, बहुत एकांगी रहा हो, लेकिन फिर भी एक आरंभ-बिन्दु था। वही अब क्यों नहीं हो सकता? . . . बस।

शायद जो लोग सृष्टिके आरंभसे यह घोषणा करते आये हैं कि यह होगा, वही लोग कहें: "यह होनेवाला है...", तो आखिर, शायद उन्हें सबसे ज्यादा खबर है। मैं सोच रही हूं कि कैसे धरतीके इतिहासके आरंभसे (हम उससे भी पहलेकी बातोंकी ओर नहीं जा रहे, समझे, हमें धरतीके साथ ही काफी काम है), धरतीके इतिहासके आरंभसे, एक-न-एक रूपमें, किसी-न-किसी नामसे, श्रीअरविंद हमेशा महान् पार्थिव रूपांतरोंके अधिष्ठाता रहे हैं; तो जब वे तुमसे कहते हैं: "हां तो, यह ठीक समय है," तो शायद वे जानते हैं। बस, मैं इतना ही कह सकती हूं।

तो, अगर यही ठीक समय है, समस्या इस तरह प्रस्तुत की जाती है: कुछ लोग हैं जो तैयार हो जायेंगे, और यथार्थ रूपमें यही पहले व्यक्ति होंगे जो नये मार्गपर चलेंगे। दूसरे ऐसे हैं जिन्हें, शायद, इसका भान बहुत देरमें होगा, जो अवसर खो बैठेंगे; मेरा ख्याल है कि ऐसे बहुत-से होंगे। लेकिन बहरहाल, मेरा दृष्टिकोण यह है: भले आधा ही अवसर क्यों न हो, उसके लिये प्रयास करना सार्थक होगा। क्योंकि आखिर... पता नहीं... मैंने तुमसे अभी कहा था, एक क्षण होता है जब जीवन, जैसा कि वह इस समय है, मानव चेतना, जैसी कि वह इस समय है, असह्य हो जाती है, वह एक प्रकारकी जुगुप्सा, घृणा पैदा करती है; आदमी कह उठता है: "नहीं, यह वह नहीं है, यह वह नहीं है; यह वह नहीं हो सकता, यह जारी नहीं रह सकता।" हां तो, जब तुम यहांतक पहुंच जाओ, तो बस अपने **सब कुछ**की आहुति देनी बाकी रहती है — अपना सारा प्रयास, अपना सारा बल, अपना सारा जीवन, अपनी सारी सत्ता — इस अपवादिक अवसरमें झोंक दो जो तुम्हें उस पार जानेके लिये दिया गया है। नये पथपर पग रखनेमें कितनी राहत है, उस पथपर जो तुम्हें कहीं और ले जायगा! आगे छलांग लगानेके लिये बहुत सारे असबाब पीछे फेंकनेका, बहुत सारी चीजोंसे पिंड छुड़ानेका यह कष्ट उठाना सार्थक होगा। मैं समस्याको इसी रूपमें देखती हूं।

वस्तुतः यह सबसे अधिक उच्च और उदात्त साहस-यात्रा है, और अगर तुम्हारे अन्दर जरा भी सच्ची साहस-यात्राकी भावना है, तो यह सर्वस्व-के लिये सर्वस्वकी बाजी लगाने लायक है। लेकिन जो लोग डरते हैं, जो अत्यंत साधारण कहावतके अनुसार सोचते हैं: "कहीं मैं छायाके लिये ठोस चीजको भी तो नहीं गंवा दूंगा", जो लोग अपने-आपसे कहते हैं: "हुं! सब कुछ खो बैठनेका खतरा लेनेकी जगह अपने पास जो है उसी-से लाभ उठाना ज्यादा अच्छा है, पता नहीं कल क्या हो, पहलेसे उपाय

करना ज्यादा अच्छा है"...दुर्भाग्यवश यह बात बहुत फैली हुई, बहुत ज्यादा फैली हुई है...हां तो, जो मनकी इस प्रकारकी स्थितिमें है, उनके बारेमें मैं तुम्हें एक बातका आश्वासन दे सकती हूं: जब चीज ठीक उनकी नाकके आगे होगी, तब भी वे उसे न देखेंगे। वे कहेंगे: "यह अच्छा है, इससे मुझे कोई खेद नहीं होगा।" संभव है। लेकिन शायद बादमें उन्हें खेद हो; हमें पता नहीं।

बहरहाल मैं जिसे सच्चा होना कहती हूं वह यह है: अगर तुम्हें यह लगता है कि यह नयी उपलब्धि सचमुच एकमात्र ऐसी चीज है जो जीवनमें लायी जा सकती है, अगर जो है वह असह्य है — केवल तुम्हारे अपने लिये नहीं, शायद इतना अपने लिये नहीं...फिर भी...अगर तुम एकदम स्वार्थी और कमीने नहीं हो, तो तुम अनुभव करते हो कि सचमुच, वह काफी लंबे समयतक रह चुका, कि तुम उससे भर पाये, कि उसे बदलना चाहिये — हां, तो जब तुम्हें ऐसा लगता है, तो तुम सब कुछ लेकर, तुम जो कुछ हो, तुम जो कुछ कर सकते हो, तुम्हारे पास जो कुछ है, इस सबको लेकर तुम अपने-आपको उसमें पूरी तरह झोंक देते हो, और पीछे देखतेतक नहीं, फिर चाहे जो हो! वस्तुतः मैं अनुभव करती हूं कि तटपर खड़े कांपते रहने और यह सोचनेकी अपेक्षा कि: "अगर मैं यह अंधाधुंध कदम उठा लूं तो कल क्या होगा?" यह सोचनेकी अपेक्षा खाईमें कूद पड़ना भला। तो यह बात है।

ज्यादा अच्छा है कि जोखिम उठाकर दांव लगाया जाय, जैसा कि लोग कहा करते हैं! मेरी यही राय है।

अब अगर तुम्हें कुछ और कहना है, तो कह लो। (एक बालकसे) और तुम, क्या तुम उनमेंसे हो जो संतुष्ट हैं या उनमें जो इसे बदलना चाहते हैं? मैं कोई अविवेकी प्रश्न नहीं पूछूंगी!

(मौन)

माताजी, आपने अभी जो कहा उसका मतलब होता है कि चेतना और जीवनका रूपांतर साथ-साथ होता है, है न?

क्योंकि मूल पाठमें कहा है: तुम्हें पहले अपनी चेतनाका रूपांतर करना चाहिये, बादमें जीवन...

सच बात तो यह है कि अभी जीवनके लिये बहुत मांग नहीं की जा रही:

बस, जरा-सी — जिसे मैं छोटी-मोटी चीजें कहती हूं। यह स्पष्ट है, हां ... देखो, अगर तुमसे यह कहा जाय कि पूरी तरह जानवरों जैसा जीवन मत बिताओ ... पूरी तरह नहीं, क्योंकि अभी यह अंशतः मुश्किल है ... फिर भी, पूरी तरह जानवरोंकी तरह न जियो, तो यह जीवनमें परिवर्तन है। लेकिन यह इससे आगे नहीं जाता। तुमसे यह नहीं कहा जाता कि तुम वायवीय आत्माओंकी तरह रहो; अभीके लिये हम धीरे-धीरे, क्रमशः आगे बढ़ते हैं।

लेकिन यह पशुता ...

नहीं, क्षमा करना! तुम्हारा मतलब है कि इस नयी चेतनामें अपनी पशुताको भी ला सकते हो?

जी नहीं, लेकिन जबतक वह तैयार हो ...

लेकिन चीजें इतनी स्पष्टताके साथ कटी-छंटी नहीं हैं। पशुताके पूरी तरह गायब होनेके लिये, शरीरको पूरी तरह रूपांतरित होना चाहिये। उदाहरणके लिये, जबतक शरीर-क्रिया जैसी है वैसी बनी रहेगी, हां तो, तबतक हम काफीसे ज्यादा पशुतामें भाग लेते रहेंगे, समझे; और वस्तुतः यह तभी गायब होगी जब हमारे अन्दर हृदय, फुफ्फुस, आमाशय आदि, न रहें। हम कहते हैं कि यह बहुत बादमें होगा।

वस्तुतः, अभीके लिये चेतनाका रूपांतर ही एकमात्र चीज है जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह न समझो कि यह इतना आसान है। अगर तुम अपने-आपको ध्यानसे देखो, तो तुम्हें पता लगेगा कि लगभग सारे दिन तुम एक मानव-पशुकी तरह सोचते, प्रतीत करते, अनुभव करते और गढ़ते हो, यानी, अवबौद्धिक सत्ताकी तरह जिसका तीन-चौथाई भाग अवचेतन है। संभव है कि किन्हीं क्षणोंमें तुम इससे छुटकारा पा जाते हो; लेकिन फिर भी उससे निकलनेके लिये तुम्हें प्रयासकी जरूरत होती है। यह सहज रूपमें, किन्हीं क्षणोंमें, भागवत कृपाकी तरह आ सकता है; लेकिन अधिकतर तुम्हें किसी ऐसी चीजको पकड़नेके लिये प्रयास करना पड़ता है जो शुद्ध रूपसे यह न हो। दिनके किसी भी समय, अगर तुम जरा कदम पीछे हटाओ और अपना अवलोकन करो, तो तुम अपने-आपको पकड़ लोगे, तुम यह देख पाओगे। जब ऐसा हो ... अचानक, है न, अगर मैं अब अचानक तुमसे कहूं: "अपने-आपको देखो!" यूं ही, तुम्हें

पहलेसे चेतावनी दिये बिना, तुम्हारी चेतनाके क्षेत्रमें क्या था? अगर तुम उसे पकड़ सको, तो तुम देखोगे; सौमेंसे निन्नानवे बार वहां पशु ही है; एक ऐसा पशु जो कुछ सुधर गया है, समझे, बिलकुल ही कुत्ता नहीं, एकदम बंदर नहीं, लेकिन उससे बहुत दूर भी नहीं।

बहुत-सी चीजें हैं जिन्हें लोगोंने अद्‌भुत गुणोंमें बदल दिया है, और मैंने ये चीजें पशुओंमें सहज गतियोंके रूपसे पायी हैं — और पशुओंको कम-से-कम यह लाभ है कि वे घमंडी नहीं होते और उनमें दम्भ नहीं होता। वे ऐसी चीजें सहज-भावसे करते थे, जो वास्तवमें, बहुत विलक्षण थीं। वे चीजें निष्ठा, आत्मत्याग, पूर्वदृष्टि, शैक्षिक बोधमें बहुत विलक्षण थीं। वे उन्हें सहज-भावसे, उनके बारेमें पोथे लिखे बिना और उनके विलक्षण होनेके बारेमें घमंड छांटे बिना करते थे। अतः पशुमेंसे निकलनेके लिये अभी बहुत कुछ करना बाकी है, जितना तुम समझते हो उससे बहुत ज्यादा।

माताजी, आप अभी कह रही थीं कि वह बहुत निकट है...

क्या, बहुत निकट? वह घटना?

हां। अन्यथा हम उसके बारेमें बातचीत न कर रहे होते। अगर वह हजारों वर्षमें होनेवाली होती, तो स्पष्ट है कि हमारा उसके साथ एक सुदूर स्वप्नसे बढ़कर कोई संबन्ध न होता।

तो इसका मतलब है कि कम-से-कम अल्प संख्यामें ही सही, कुछ लोग तो बदले ही हैं?

आहा, यह! ...संभव है; लेकिन शायद बहुत नहीं — मेरा मतलब है शायद बहुत लोग नहीं।

ऐसी सत्ताएं हैं जो किसी भी क्षण अपने-आपको देख सकती हैं, और वे अपने अंदर पशुको न पायेंगी। ऐसी ज्यादा नहीं हैं। हम चीजोंके बारेमें बात तभी करते हैं जब हम उन्हें जानते हैं — बहरहाल, बात करनी तो तभी चाहिये।

(एक बालकसे) तुम्हें कुछ कहना है?

माताजी, विश्वकी सच्ची वास्तविकता क्या है?

(लंबा मौन)

अगर तुम चाहो, तो मैं विरोधाभासी ढंगसे कह सकती हूं : विश्व भविष्य-में जो बनेगा।

मैं यह भी कह सकती हूं : उसका आरंभ-बिन्दु और उसकी पराकाष्ठा।

और यह भी : जो समस्त शाश्वततासे है।

तो अब, इस सबसे कुछ बना लो।

माताजी, आपने मूल पाठमें कहा है: "एक हस्तक्षेप आयेगा और हमारे जीवनको लंबा करेगा...।" तो इस दशामें हमारी आयु इतनी लंबी होगी कि हम घटनाको देख सकें?

मैंने वह तुम्हारे आगे नहीं पढ़ा, और मैंने जान-बूझकर तुम्हारे आगे नहीं पढ़ा। जब तुम जनताके लिये कोई नाटक लिखते हो, तो तुम कुछ ऐसी बातें कहनेके लिये बाधित होते हो जिनसे वह उनकी पहुंचमें आ जाये।

लेकिन यह सच है, है न?

क्या यह सच है? हां... बस।

माताजी, मानसिक मनुष्यका आविर्भाव धीरे-धीरे हुआ था ना, पशुसे मनुष्यतक?

वह...। फिर भी एक समय था जब वह मनुष्य बन गया, ऐसा है न? मैंने तुमसे कहा था कि, विकासकी दृष्टिसे ऐसा मालूम होता है। वस्तुतः मैं इस सबमें पारंगत नहीं हूं, समझे, मैं तुम्हें नहीं बतला सकती कि यह कैसे हुआ, कम-से-कम वह तो नहीं जिसके होनेके बारेमें विज्ञान जाननेका दावा करता है। मैं तुम्हें बस वही बतला सकती हूं, जो मैं जानती हूं।

हां तो, एक समय था जब जिसे हम मानव शरीर कहते हैं, यानी, मानव क्षमताओंवाला शरीर, इतना तैयार था कि उसमें पूरी तरह सचेतन मानसिक चेतना अवतरित हो सके—और यह, यही सचमुच पहला मनुष्य था। तो अब, मैं तुम्हें यह नहीं बता सकती कि ऐतिहासिक दृष्टि-से यह कब हुआ; लेकिन यह हुआ था बहुत दीर्घकाल पहले। कुछ समय पहले मैंने कुछ आंकड़े देखे थे जो मुझे बिलकुल तर्कसंगत और ठीक मालूम होते थे—लेकिन यह बहुत अधिक पुरानी बात है। और बहुत लंबे

कालतक ऐसा रहा ... एक प्रकारकी विशाल, शांत-स्थिर अवस्था, जैसे ज्वारकी ऊंचाईपर पहुंचकर सागर फैल जाता और शांत रहता है। बहुत, बहुत, बहुत, बहुत, अधिक लंबे समय तक वह इसी तरह शांत बना रहा; और बहुत लंबे अरसेके बाद ही उस चीजका आरंभ हुआ जिसे हम मानव क्रिया-कलाप और मानव संस्कृति कहते हैं, और इसके लिये, इसके आरंभसे ही आजतक ... हमारे पास आंकड़े हैं, है न ? लगभग ... (पवित्रकी ओर मुड़कर) पवित्र, तुम जानते हो ?

(पवित्र) : मुझे इस समय याद नहीं।

कुछ आंकड़े हैं, पर वे बहुत बड़े हैं। और केवल यही काल है जिसे ऐतिहासिक कहा जा सकता है — यद्यपि वह साधारण गिनतीसे नहीं है — लेकिन फिर भी, लोगोंने चिह्न, लिखित प्रमाण, संकेत, जुटाये हैं जो तुम्हें समयका ख्याल दे सकते हैं। हां तो, यह सब मानव शरीरमें प्रथम मानसिक चेतनाके अवतरणके बहुत बाद हुआ था — ऐसे मानव रूपमें हुआ था जो काफी हदतक मनुष्य बन चुका था, और संभवतः इस शरीरके बननेसे पहले प्रकृतिने बहुत सारे परीक्षण किये होंगे जिनमें शायद हजारों, नहीं लाखों-करोड़ों वर्ष लग गये होंगे। मुझे पता नहीं। लेकिन, जैसा मैंने कहा, एक समय था जब वह मानसिक चेतना आकर एक शरीरपर कब्जा कर सकी। इसके बाद, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, बहुत, बहुत लंबे अरसेतक ... बहुत, बहुत बहुत लंबे अरसेकी जरूरत थी ताकि यह शरीर अपने-आपको उसके अनुकूल बना सके और इस चेतनाको पूरी तरह अभिव्यक्त करने लायक काफी पूर्ण बना ले — यह बात समझमें आती है। हां तो, यह संभवसे अधिक है (संभवसे अधिक ही नहीं, निश्चित है), कि अब फिरसे उसी तरह होगा।

एक समय आयगा जब मानव चेतना उस आवश्यक स्थितिमें होगी जिससे अतिमानसिक चेतना इस मानव चेतनामें प्रवेश कर स्वयंको अभिव्यक्त कर सके।

लेकिन यह संभव है कि मानवजातिकी तरह, इस नयी जातिके आनेमें बहुत, बहुत, बहुत अधिक समय लग जाय। और यह क्रमशः होगा। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, एक बात है : जब वह होगा, तब होगा। वह रबरकी तरहसे नहीं होता, है न, उसकी तरह खींचा नहीं जाता; यह किसी समय-विशेषपर ही होता है, जब अवतरण होता है, संयोजन होता है, तादात्म्य होता है। यह निमिषमात्रमें हो सकता है। एक

क्षण होता है जब यह घटता है। बादमें उसे बहुत, बहुत, बहुत लंबा समय लग सकता है; तुम्हें यह आशा न करनी चाहिये कि रातों-रात तुम इधर-उधर अतिमानवोंको उगते देखोगे। नहीं, यह इस तरह नहीं होगा केवल, वही लोग जानेंगे जिन्होंने वह किया होगा जो मैंने बतलाया, जिन्होंने अपने-आपको पूरी तरहसे झोंक दिया होगा, सब कुछके लिये सब संकट सहे होंगे। केवल वे ही जानेंगे; वे तब जानेंगे जब यह होगा।

तो क्या दूसरे देख भी न पायेंगे?

दूसरे? उन्हें इसका पता भी न होगा! वे क्या हुआ है यह जाने बिना अपना मूर्खता-भरा जीवन जारी रखेंगे।

फिर भी वे अपनी आंखोंके आगे इस अतिमानवको देख तो सकेंगे। (हंसी)

मधुर मां, अतिमानवका मनुष्योंके प्रति कैसा रुख होगा?

मनुष्योंका पशुओंके प्रति कैसा रुख है? नहीं, हम आशा करते हैं वह जरा ज्यादा दयालु होगा! (हंसी)

लेकिन तुम्हें अपने-आपको धोखा नहीं देना चाहिये। अतिमानसिक चेतनाके लिये मनुष्य सचमुच मूढ़ है। हां, अपनी समस्त पूर्णताओं, अपनी समस्त सिद्धियों, वह सब, यहांतक कि अपनी समस्त दक्षताओंके बावजूद हां, वह **भयंकर रूपसे** मूढ़ दीखता है। केवल, यह उसके साथ बुरा व्यवहार करनेके लिये कोई कारण नहीं है। लेकिन मुझे नहीं लगता कि अतिमानव किसीके साथ दुर्व्यवहार करेगा, सिर्फ इसलिये क्योंकि उसकी चेतना ऐसी होगी जो बाहरी रंगरूपके पीछे जा सकेगी। हम आशा करते हैं कि वह बहुत दयालु होगा।

हां, तो यह रहा। बस?

मेरा ख्याल है कि अब खतम, जबतक कि किसीको कोई **बहुत** आवश्यक प्रश्न न पूछना हो। पवित्र?

(पवित्र): अतिमानवके प्रति मनुष्यका क्या रुख होगा?

आहा! (हंसी) हम आशा करते हैं वैसा ही रुख होगा जैसा मनुष्यका अपने सब देवताओंके प्रति होता है, क्योंकि उसने उनके साथ काफी

दुर्व्यवहार किया है। आदमीने अपने पैगम्बर और अपने देवताको सूली पर चढ़ाया, उनपर पथराव किया, उन्हें जिंदा जलाया — वस्तुतः, आदमी ने उन सबके साथ काफी बुरा व्यवहार किया है जो उसे नये जीवनका उपदेश देने आये थे। चलो, हम आशा करते हैं कि आदमी जरा ज्यादा समझदार बनेगा...। अब वह उन्हें कारागारमें डाल देगा।

लेकिन मनुष्यने उन्हें मंदिरोंमें प्रतिष्ठित भी तो किया है।

नहीं, स्वयं उन सत्ताको नहीं: घटनाके बाद उसने जो प्रतिमा निर्माण की उसे, जिसे आदमीने...एक राजनीतिक क्रिया बना दिया। क्षमा करना, मनुष्यकी प्रतिमा-स्वरूप बनाये गये देवताको मंदिरमें प्रतिष्ठित किया और पूजा गया है, और वह शुद्ध राजनीतिक कारणोंसे। लेकिन जिनका उनके साथ संबन्ध था...जिन्होंने अपने अंदर 'दिव्य सद्वस्तु' को प्रकट किया, उनके साथ बुरा व्यवहार हुआ है — हमेशा। इतिहास इसे प्रमाणित करता है। अब, देखो, लोग पथराव नहीं करते, अपवाद हैं अमरीकाके बेचारे हबशी, वह भी कभी-कभी; अब लोगोंको जिंदा जलाया नहीं जाता — अब इसका फैशन नहीं है — लेकिन वे जेलमें डालते हैं, यह तो होता है। और वस्तुतः, (मैं पहले भी कई बार यह कह चुकी हूं), जो लोग एकदम "आदमी" नहीं हैं, उन्हें जो चीज बचाती है वह यह कि आज संसार इतने अज्ञानकी अवस्थामें है कि लोग अब उनकी शक्तिकी वास्तविकतापर विश्वास भी नहीं करते। लेकिन निश्चय ही अगर सरकारें उनकी शक्तिकी वास्तविकतापर विश्वास करतीं, तो उन्हें बुरा समय देखना पड़ता...

लेकिन हम आशा करें...तो मुझे कहना चाहिये, जैसा कि मैंने मनुष्योंके लिये कहा...कि अतिमानव काफी दयालु होगा। हां तो, हम अतिमानवके लिये आशा करें कि वह आत्म-रक्षा करना जानेगा, कि उसके पास सुरक्षाके कुछ साधन होंगे, बहुत ज्यादा आंखोंमें चुभनेवाले नहीं पर काफी।

लेकिन, माताजी, अगर मनुष्य उसे देख नहीं सकता, तो उसे आत्म-रक्षाकी जरूरत नहीं है, है क्या?

नहीं। शायद यह, अदृश्य होनेका गुण ही उसका सबसे बड़ा साधन है। (माताजी हंसती हैं।)

तो देखो, तुम हमेशा पूछते हो: "वह अतिमानसिक शक्तियोंको अभि-

व्यक्त करनेवाली सत्ता क्यों नहीं बन जाता? वह अचानक भौतिक रूप-से प्रकाशमान क्यों नहीं बन जाता? तब हम पहचान सकेंगे कि यह वही है। हां तो, तुम देखोगे कि उस गरीबका क्या होता है! और वह तो एक छोटी-सी चीज होगी; जरा-सा प्रकाशमान होना तो बहुत छोटी चीज है!

आजके लिये काफी है।

१९ अक्तूबर, १९५५

माताजी श्रीअरविंदकी पुस्तक 'योग-समन्वय' मेंसे
'चार सहायताएं' पढ़ती हैं।

मधुर मां, यहां लिखा है: "अंतमें आता है काल — समय, क्योंकि सभी चीजोंमें उनका क्रिया-चक्र और दिव्य गतिकी अवधि होती है...।" यह दिव्य गतिकी अवधि क्या है?

यह हर चीजके लिये अलग-अलग है।

हर क्रियाके लिये, हर सिद्धिके लिये, हर गतिके लिये समयकी एक निश्चित अवधि होती है, वह अलग-अलग होती है। समयकी अनगिनत अवधियां हैं जो उलझी हुई हैं; लेकिन हर चीज एक प्रकारकी लयसे नियंत्रित रहती है जो उस चीजकी अपनी लय होती है।

देखो, अपने बाहरी जीवनकी सुविधाके लिये मनुष्योंने समयको लगभग मनमाने रूपसे वर्षों, महीनों, सप्ताहों, दिनों, घंटों, मिनटों, सेकंडों, आदि में बांट दिया है... यह एक ऐसी लय है जो न्यूनाधिक रूपसे मनमानी है, क्योंकि इसे मनुष्यने बनाया है, लेकिन इसके अन्दर अमुक वास्तविकता है क्योंकि वह वैश्व गतिविधिके साथ... जहांतक हो सके, मेल खाती है। और, प्रसंगवश, उदाहरणके लिये, हम जन्मदिन इसीलिये मनाते हैं: क्योंकि हर एकके जीवनमें एक लय होती है जो उसकी परिस्थितियोंके जन्मके नियमित चक्रोंके साथ मेल खाती है।

और सभी गतिविधियोंका अवलोकन करनेपर पता चलता है कि उनकी एक खास लय होती है, उदाहरणके लिये, केवल समझनेकी दृष्टिसे ही

नहीं, बल्कि व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओंकी दृष्टिसे, आंतरिक चेतनाकी गति-विधियोंके, प्रगतिमें उतार-चढ़ावके; आगे बढ़ने और पीछे हटनेके, कठिनाइयों और सहायताओंके काफी नियमित अवधियोंके चक्र होते हैं। लेकिन हर व्यक्ति ध्यान दे तो वह अनुभव करेगा कि उसकी लय बिलकुल उसकी अपनी है; उसके पड़ोसीकी लय वही नहीं है। लेकिन जिस तरह ऋतुओंकी एक खास लय होती है, जो सब मिलाकर काफी नियमित होती है, उसी तरह व्यक्तिगत जीवनकी अपनी ऋतुएं होती हैं। और जब आदमी ध्यानसे अपना अध्ययन करता है, तो उसे पता चलता है कि नियमित अन्तरालपर एक-सी परिस्थितियां भी दोहराई जाती हैं। यहांतक कि बहुत संवेदनशील व्यक्ति यह भी जान पाते हैं कि सप्ताहके अमुक दिन या दिनके अमुक घंटोंमें वे ज्यादा काम कर सकते हैं। कुछ लोगोंको विशेष दिनोंपर और विशेष घंटोंमें अधिक कठिनाई होती है; इसके विपरीत कुछ लोगोंको विशेष क्षणोंमें ज्यादा अच्छी प्रेरणा प्राप्त होती है — लेकिन हर एकको अवलोकन द्वारा अपने अन्दर इसका पता लगाना होता है। स्वभावतः यह निरपेक्ष होनेसे बहुत दूर है, यह कोई कठोर नियम नहीं है, और अगर यह कष्टप्रद हो तो सिर्फ दृढ़ इच्छाके जरा-से प्रयाससे हटाया जा सकता है। लेकिन अगर वह सहायक हो, तो उसका उपयोग किया जा सकता है।

और यह सब, कि हर चीजकी अपनी-अपनी लय है, है न। यह बहुत ज्यादा पेचीदा लयोंका ताना-बाना बनाती है जिसका परिणाम वह है जिसे हम देखते हैं: जिसमें कोई लय नहीं मालूम होती — क्योंकि वह बहुत ज्यादा पेचीदा, बहुत अधिक जटिल है।

मधुर मां, हम इसका उपयोग कैसे कर सकते हैं?

हां, अगर... मान लो, तुम जानते हो... हम योगके बारेमें बातचीत कर रहे हैं... अगर तुम अपने अन्दर किन्हीं अवस्थाओंकी एक तरहकी पुनरावृत्ति देखो, उदाहरणके लिये, किसी विशेष मुहूर्तपर, दिनके किसी विशेष समय परिस्थितियोंमें तुम ज्यादा अच्छी तरह एकाग्र हो सकते हो या ध्यान कर सकते हो, तो, तुम उसी समय ध्यान या एकाग्रता करके उसका उपयोग कर सकते हो।

स्वभावतः, तुम्हें उसका दास नहीं बन जाना चाहिये; तुम उसका उपयोग कर सकते हो लेकिन उसे एक आवश्यकता न बन जाना चाहिये ताकि उस समयके बीत जानेपर तुम ध्यान कर ही न सको। लेकिन अगर

वह काफी सहायता है, तो तुम सहायताका उपयोग कर सकते हो; यह सिर्फ अवलोकनकी बात है।

अगर तुम अपना अध्ययन करो तो तुम्हें पता लग सकता है कि वर्षमें कुछ काल ऐसे आते हैं, केवल व्यक्तिगत अवस्थाओंके कारण ही नहीं, अधिक सामान्य अवस्थाओंके सामान्य प्रकृतिकी अवस्थाके कारण। ऐसे काल आते हैं जब तुम्हें साधनामें ज्यादा कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है; इसके विपरीत, ऐसे समय आते हैं जब तुम अपने अन्दर ज्ञान और चेतनाकी वृद्धिके लिये अधिक उत्साह पाते हो। इससे तुम्हें इस अर्थमें सहायता मिलती है कि, अगर किसी समय तुम अपने-आपको विशेष कठिनाइयोंके बीच पाओ या ऐसा लगे कि गति रुक गयी है, तो रोने-धोनेकी जगह तुम अपने-आपसे कहो : "क्यों, यह तो वही काल है; क्योंकि हम हर वर्षके इस समय-विशेषमें हैं।" और तुम धैर्यके साथ समय बीत जानेकी प्रतीक्षा करो; या तुम जितना कर सकते हो करो, लेकिन हतोत्साह होकर यह न कहो : "हाय, देखो तो, मैं आगे नहीं बढ़ रहा, मैं कोई प्रगति नहीं कर रहा।" इससे तुम्हें समझदार होनेमें सहायता मिलती है।

और स्वभावतः तुम एक और कदम उठा सकते हो, और इस तरह सावधानी बरत सकते हो कि ... इन बाहरी प्रभावोंसे मुक्त होनेके लिये आंतरिक सावधानी। लेकिन यह बहुत बादमें आती है, जब तुम अपनी साधनाके सचेतन स्वामी बनने लगे हो। यह बादमें आती है।

तो बस ?

उधर, और कुछ नहीं ?

माताजी, ज्ञान और पूर्णताका कमल क्या है ?

तुम क्या जानना चाहते हो ? वह क्या है ?

तुमने विभिन्न चक्रोंके बारेमें सुना है, सुना है न ? इन चक्रोंको प्रायः कमलके रूपमें चित्रित किया जाता है जो पहले बन्द होते हैं और फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम आध्यात्मिक प्रगति करते हो, ये खुलते जाते हैं।

ज्ञानका कमल सहस्रदल कमल है। (नलिनीसे) है न ? ... हां, तो यह सिरमें है; यह मानव शरीरसे परेके कमलोंसे पहले, क्रममें अंतिम है।

... पूर्णताका ?

यह ज्ञानका कमल है, सहस्रदल कमल जो खिलता है; चूंकि यह सबसे ऊंचा है... पूर्णता... यह इसपर निर्भर है कि कौन-सी पूर्णता! ...

> **"शाश्वत ज्ञान और शाश्वत पूर्णताका कमल एक बंद कली है जो हमारे अन्दर बंद पड़ी है।"**

हां यही। एक ऊपर — सिरके ऊपर है, लेकिन साधारणतः उसका उल्लेख नहीं होता।

और सामान्य क्रममें यह अन्तमें खिलता है। मैंने कहा "सामान्य क्रम-में" क्योंकि ऐसे उदाहरण हैं जहां और तरह होता है: नीचेके कमल ऊपर-वालोंके बाद खिलते हैं। फिर भी सामान्य क्रम यही है। जब हम ऊर्जाके केंद्रसे कुण्डलिनीके उठनेकी बात करते हैं, तो जैसे-जैसे वह उठती है अनुरूप चक्रोंको जगाती जाती है; और वह इस चक्रतक अंतमें पहुंचती है। और वस्तुतः, जब यह होता है, जब वह वहांतक पहुंच जाती है, तो यह ऊर्जाके उठनेकी पूर्णताका चिह्न है।

(मौन)

मेरा ख्याल है कि मैं पहले तुम्हें इन चक्रोंके बारेमें बतला चुकी हूं, और यह बता चुकी हूं कि उनमेंसे हर एक किस चीजके सदृश है।

बस?

> **मधुर मां, यहां लिखा है: "मनको ऐसी कोई चीज नहीं सिखायी जा सकती जो पहलेसे ही संभाव्य ज्ञानके रूपमें उसके अंदर छिपी न हो..." तो, क्या इसका यह मतलब है कि जिसमें छिपा हुआ ज्ञान नहीं है वह कुछ नहीं...**

नहीं। ठीक ऐसी बात नहीं है।

इसका मतलब यह है कि मनुष्य जिस द्रव्यसे बना है उसमें सभी चीजें प्रच्छन्न रूपसे उपस्थित हैं। केवल, हर व्यक्तिमें उनकी व्यवस्था अलग-अलग है; और जाग्रतिकी मात्रा और प्रत्युत्तर देनेकी क्षमता भी अलग है।

और यही चीज व्यक्तियोंकी संभावनामें फर्क पैदा करती है। लेकिन वस्तुतः, हर एक सत्तामें सारी वैश्व संभावनाएं मौजूद होती हैं। वह उन्हें किस हदतक विकसित करने योग्य है.. यह मनुष्यों और उनके

विकासकी अवस्थामें स्थित एक प्रकारकी क्रम-परंपरा है। परंतु तत्त्वतः, हर एकमें 'भागवत उपस्थिति' है, अतः परम 'चेतना' है। केवल कुछ लोगोंको इसके बारेमें सचेतन होनेमें हजारों-लाखों वर्ष लगेंगे, जब कि दूसरे आंतरिक और बाह्य परिस्थितियोंके कारण ऐसे मुहूर्ततक पहुंच चुके हैं जब वे उसके बारेमें सचेतन होनेके लिये तैयार हैं। यह संभाव्यताओंकी नहीं बल्कि उपलब्धियोंकी क्रम-परंपरा है।

इसके उपरांत कुछ सत्ताएं शुद्ध मानव चेतनाके अतिरिक्त कुछ और भी अभिव्यक्त करती है — लेकिन यह कुछ अतिरिक्त चीज है; ये अपवादिक लोग होते हैं। लेकिन सामान्यतः ऐसा होता है : स्वयं पदार्थके अन्दर ही सब संभावनाएं समायी रहती हैं।

यह ऐसा ही है जैसे श्रीअरविंद आगे चलकर कहते हैं : अगर भगवान् तुम्हारे अन्दर न होते, तो तुम कभी भगवान्‌को न जान पाते।

इसका यही मतलब है।

मधुर मां, यहां उन्होंने कहा है "अंतरात्माके आवरण"। अंतरात्माके आवरण क्या हैं?

ओह! यह तो तुलना की गयी है... अब भी उसकी तुलना पौधेके साथ की जाती है; और यह कोई ऐसी चीज है जो मानों फूलकी कलीको बंद रखती है, कह सकते हैं, उसे बांधती है, फूल या कलीको बांध देती है, बंद करती है; ये चीजें ऐसी हैं जिन्हें तोड़ना पड़ता है ताकि फूल खिल सके। तो यह कमलके साथ तुलनाका ही अनुगमन है, है न, जो अंतरात्माको बंद करता है, उसे सक्रिय होने और अपने-आपको अभिव्यक्त करनेसे रोकता है; उसीको तोड़ना पड़ेगा, कड़ियोंकी तरह, बंधनोंकी तरह, ऐसी चीजें जो उसे पकड़ रखती हैं; उसे तोड़ना पड़ेगा, कुछ धीरे-धीरे, ताकि अंतरात्मा फूलकी तरह खिल सके। ये आसक्तियां... वे समझाते हैं कि ये क्या हैं, मेरा ख्याल है कि वे यहांपर कहते हैं कि वे... (माताजी पढ़ती हैं) "अनिवार्य प्रस्फुटनमें बाधक है।"

और वे यह भी कहते हैं : "... आसक्तियोंद्वारा सीमित रंग-रूपमें बंद।" तो यह वही बात है, है न; वे सब चीजें जो तुम्हें सामान्य बाह्य चेतनाके साथ बांधती हैं, वह सब जो तुम्हें साधारण जीवनके साथ बांधता है — वही है जो अंतरात्माको बंद कर देता है, यहां, इस तरह, निचुड़ा हुआ, बंद।

इसे तोड़ना चाहिये। तो बस।

उधर, वहां कोई बात है?

माताजी, यहां कहा कहा गया है : "पहले सत्योंका ज्ञान है, सिद्धांत ..." पहले शास्त्रको जानना चाहिये; लेकिन यहां कहा गया है कि शास्त्रको जाननेके लिये : "पूर्ण योगका सर्वोच्च शास्त्र है वह शाश्वत वेद जो हृदयमें निहित है...।" तो शास्त्रको जाननेके लिये पहले योगकी एक लंबी प्रणालीकी जरूरत है। (हंसी)

हां। सामान्य नियमके अनुसार, ऐसा ही है। इसे रातोंरात नहीं सीखा जा सकता, नहीं, मेरा ख्याल है कि इस बातको कोई नहीं मानता! श्री अरविंदने ही ... पता नहीं, आज हमने अभीतक तो नहीं पढ़ा ... उन्होंने एक भेद किया है; वे कहते हैं ... नहीं, जरा आगे चलकर वे कहते हैं — हम इसे अगली बार पढ़ेंगे — वे गुरुके बारेमें कहते हैं ... नहीं ... "जीवित गुरुका अधिक शक्तिशाली वचन", यह बादमें आता है।

यानी, अगर पुस्तकोंका अध्ययन करके तैयारी करनी हो, तो इस तैयारीमें अधिक समय लग जाता है। लेकिन अगर ऐसा हो कि तुम सीधी शिक्षा पा सको, और वह भी सभी परिस्थितियोंमें, तो चीज बहुत ज्यादा तेजीसे चलती है। जब तुम्हें रास्ता दिखानेवाला कोई न हो, और तुम्हें किताबोंकी मददसे अपना रास्ता खोजना हो, जब तुमसे इतना कहनेवाला भी कोई न हो: "वह नहीं, यह पुस्तक पढ़ो", जब तुम्हें अपने-आप ही हर चीजका पता लगाना हो, तो समय लगता है। बहुत वर्ष लग जाते हैं।

देखो, इसमें फर्क पड़ता है — लोग इसे नहीं जानते — अगर तुम किसी ऐसेसे पूछ सको जिसने उस चीजको चरितार्थ किया है, यानी, जिसने सब अनुभूतियां प्राप्त कर ली हैं और छोरतक पहुंच गया है और उसे वस्तुका ज्ञान प्राप्त है, तो ऐसे व्यक्तिसे पूछनेसे बहुत फर्क पड़ता है। तुम उससे पूछ सकते हो: "क्या यह अच्छा है? क्या यह उपयोगी है, क्या यह हानिकर है?" तो एक मिनटमें तुम्हें उत्तर मिल जाता है: "हां, नहीं, यह करो, यह पढ़ो, वह मत करो।" और यह इतना सुविधाजनक है।

लेकिन जब तुम बिलकुल अकेले हो — सामान्यतः बहुत अनुकूल परिवेशमें न हो, या बहरहाल जहां लोग विरोधी भले न हों, पर इस बारेमें कुछ भी न समझते हों, और न इस बारेमें सोचते हों — तो तुम्हें अपने-

आप हर चीजका पता लगाना पड़ता है; ऐसा कोई नहीं है जो तुमसे कहे: "हां, तुम यह पुस्तक पढ़ो, यह ज्यादा अच्छी है, यह उससे ज्यादा सच्ची है।" तुम्हें बहुत सारी चीजें पढ़नी पड़ती हैं, अपने विचारमें उनकी तुलना करनी होती है, अपने ऊपर उनके प्रभावकी तुलना करनी होती है, यह देखना होता है कि वे किस हदतक तुम्हारी मदद करती हैं या नहीं करतीं।

स्वभावतः, जिनकी नियतिमें होता है उन्हें आंतरिक 'पथ-प्रदर्शक' रास्ता दिखाते हैं। उन्हें जो पुस्तक पढ़नी चाहिये वही उनके हाथ लग जाती है या कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाता है जो उन्हें उपयोगी निर्देश दे सकता है; लेकिन यह...। कुछ समयके बाद उन्हें पता चलता है कि एक चेतना काम कर रही थी; उन्हें भली-भांति पता न था वह क्या थी और कहांसे आयी थी, या किसने उनके जीवनकी व्यवस्था की, किसने उनके जीवनकी परिस्थितियोंकी व्यवस्था की — और किसने पग-पगपर ठीक यह चीज पानेमें मदद की जो उन्हें आगे ले जायगी। लेकिन यह... यह बहुधा होनेवाली चीज नहीं है; बल्कि, यह विरल है। इन लोगोंकी नियतिमें होता है।

अन्यथा यह कठिन है; इसमें समय लगता है, बहुत समय लगता है। फिर भी यह बिलकुल ही आरंभ है, है न; यह उन सत्योंको पाना है जिनपर तुम्हारा योग आधारित होगा। यह योग नहीं है; ये सामान्य सिद्धांत हैं जिनपर तुम्हारे योगकी इमारत खड़ी की जायगी।

स्पष्ट है कि जिन्हें विशेष रुचि हो वे कुछ पा सकते हैं। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि जो हिन्दुस्तानमें है, उनके लिये यह बहुत सरल है, बहुत ही सरल; यहां जीवित परंपरा है, जो भी योग करना चाहे उसे हमेशा कोई-न-कोई सूचना देनेवाला मिल जायगा। और अधिक-से-अधिक अज्ञानी और अनपढ़ लोगोंको भी एक धुंधला-सा ख्याल है कि क्या करना चाहिये या उन्हें किस चीजसे मदद मिल सकती है।

लेकिन अगर तुम उठाकर पश्चिममें रोप दिये जाओ, तो, तुम्हें पता चलेगा कि यह कितना कठिन है। वहां सारी दुनिया ही इस तरह व्यवस्थित है कि वह इसके "पक्षमें नहीं है", वह केवल इसके बारेमें तटस्थ ही नहीं, बल्कि पूरी तरह विरोधी है, वह जान-बूझकर इस 'सद्वस्तु' को जाननेसे इंकार करती है, क्योंकि यह कष्टकर है; तो अगर वहां तुम्हारे अंदर यह चीज जागे, जब यह आवश्यकता प्रकट हो, तो सचमुच तुम्हें पता नहीं चलता कि बाहर निकलनेका रास्ता किधर है।

अब हालत जरा अच्छी है। लेकिन पचास वर्ष पहले हालत बहुत

अच्छी न थी — पचास-साठ वर्ष पहले यह चीज कठिन थी। अब लोगों-ने कुछ प्रगति कर ली है; अब वहां, सभी जगह ज्यादा प्रकाश है।

तो बस ?

माताजी, यहां कहा गया है : "जो 'अनंत' को चुनता है वह 'अनंत' का चुना हुआ होता है।"

यह एक बड़ा ही सुन्दर वाक्य है!

और यह बिलकुल सच है। "थाट्स ऐंड ग्लिम्प्सेज" (विचार और झांकियां) में भी एक ऐसा ही वाक्य है जिसमें मेरा ख्याल है उन्होंने 'अनंत' की जगह "भगवान्" शब्दका उपयोग किया है। लेकिन विचार एक ही है, यानी, भगवान्ने तुम्हें चुन लिया है, ईश्वरने तुम्हें चुन लिया है। इसी कारण तुम उनके पीछे दौड़ते हो।

और श्रीअरविंद कहते हैं, है न, कि यही चीज उस तरहका विश्वास, वह यथार्थ निश्चिति देती है कि यह तुम्हारे लिये पूर्वनिश्चिति है; और अगर तुम पूर्वनिश्चित हो तो भले कठिनाइयोंके पहाड़ टूट पड़ें, उससे क्या होता है क्योंकि तुम्हारी सफलता निश्चित है! यह बात कि तुम्हारी सफलता निश्चित है, यह बात तुम्हें कठिनाइयोंका सामना करनेके लिये अदम्य साहस और सभी परीक्षाओंका सामना करनेके लिये धैर्य प्रदान करती है: तुम्हारी सफलता निश्चित है।

और यह तथ्य है — वस्तुतः, बात ऐसी है: जिस क्षण तुमने उसके बारेमें सोचा, तो तुमने इसलिये सोचा क्योंकि किसीने तुम्हारे बारेमें सोचा था; तुमने चुना क्योंकि तुम चुने गये थे। और एक बार तुम चुन लिये जाओ, तो तुम उस चीजके बारेमें, निश्चित रह सकते हो। अतः, संदेह, हिचकिचाहट, अवसाद, अनिश्चितताएं, ये सब समय और शक्तिकी बरबादी हैं; इनका कोई भी उपयोग नहीं।

जिस क्षण तुमने अपने अंदर यह अनुभव किया: "ओह! मेरे लिये यही सत्य है", तो बस खतम; बात वहींपर खतम, चीज तय हो गयी। तुम भले बरसों अछूते घने जंगलोंको काटते रहो, उसका कोई महत्त्व नहीं, बात खतम हो चुकी, तय हो चुकी।

इसीलिये मैंने एक दिन तुमसे कहा था: "आखिर, तुम सब यहां इस-लिये हो क्योंकि कहींपर तुमने इसे चाहा था; और अगर कहींपर तुमने चाहा था, तो इसका मतलब है कि भगवान्ने तुम्हारे अंदर ऐसा चाहा था।

तो कुछ लोग ऐसे हैं जो बहुत सीधे रास्तेका अनुसरण करते हैं और बहुत जल्दी पहुंच जाते हैं; दूसरे ऐसे हैं जिन्हें भूल-भुलैया प्रिय है, उसमें ज्यादा समय लगता है। लेकिन छोर तो है ही, लक्ष्य तो वही है। मैं अनुभवसे जानती हूं कि ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जिसके अन्दर, भले जीवनमें एक ही बार क्यों न हो, भगवान्‌के लिये बहुत जबर्दस्त मांग पैदा न हुई हो और उसका वहांतक पहुंचना निश्चित न हो... वह चाहे उसे कोई नाम दे ले, हम भाषाकी सुविधाके लिये भगवान् कह रहे हैं; वह भले किसी समय उनसे मुंह मोड़ ले, इसका कोई महत्व नहीं है — वह पहुंच अवश्य जायगा। उसे कम या ज्यादा संघर्ष करना होगा, उसे कम या ज्यादा कठिनाई होगी, परंतु एक दिन वह सफलता अवश्य पायेगा। उसकी अंतरात्माको चुना गया है, उसका मुहूर्त्त आ गया है इसलिये वह सचेतन हो गयी है और एक बार समय आ जाये, तो, परिणाम कम या ज्यादा तेजीसे आ जायगा। तुम इसे कुछ महीनोंमें कर सकते हो; तुम इसे कुछ वर्षोंमें कर सकते हो; तुम इसे कुछ जन्मोंमें कर सकते हो — लेकिन तुम करोगे अवश्य।

और विलक्षण बात यह है कि चुनावकी यह स्वाधीनता तुम्हारे ऊपर छोड़ी गयी है, अगर तुम अपने अंदर यह निश्चय कर लो कि तुम इसी जन्ममें करोगे, तो तुम कर लोगे। और मैं यहां स्थायी और निरंतर निश्चयकी बात नहीं कर रही क्योंकि वह तो बारह महीनोंमें ही परिणाम ला सकता है। नहीं, मेरा मतलब है: अगर अचानक यह चीज तुम्हें पकड़ ले: "मैं यह चाहता हूं", चाहे एक बार ही बिजलीकी कौंधकी तरह क्यों न हो, तो मुहर लग जाती है, यूं, इस तरह।

यह लो।

लेकिन रास्तेमें समय गंवानेका यह कोई कारण नहीं है; यह भूल-भुलैयामें भटकते फिरनेके लिये कोई कारण नहीं है, जहांसे तुम... छोरतक पहुंचतेपहुंचते काफी सारा कूड़ा-कबाड़ अपने साथ ले आओ। नहीं। लेकिन, बहरहाल इस कारण तुम्हें कभी निराश न होना चाहिये, चाहे कैसी भी कठिनाइयां क्यों न हों।

मेरी तो यह राय है कि जब कुछ करना है, तो जितनी जल्दी हो कर डालो। फिर भी, ऐसे लोग हैं जो अपना समय नष्ट करना पसंद करते हैं। शायद जिस जगह पहुंचना है वहांतक पहुंचनेके लिये उन्हें चक्कर खाने, चक्कर खाने, चक्कर खाने, फिरसे लौट आने और बहुत सारे चक्कर लगानेकी जरूरत होती है। लेकिन यह पसंदका सवाल है। दुर्भाग्यवश जिन्हें इस तरह घूमने और लौटने और चक्कर लगानेकी और सब प्रकारके

व्यर्थ चक्कर लगानेकी आदत है, वही सबसे ज्यादा शिकायत करते हैं; वे विलाप करते हैं, और वे ही अपनी दुर्दशाके निर्माता होते हैं!

अगर तुम निश्चय कर लो कि मार्गपर एकदम सीधे जाओगे, चाहे कुछ क्यों न हो जाय — अगर तुम कुछ कठिनाइयोंको सहना जानो, बिना दुर्बलताके असुविधाओंका सामना कर सको — तो, बहुत सारी मुश्किलसे बच जाओगे। लेकिन कुछ लोग तभी चलते हैं जब उन्हें गरदन पकड़कर चलाया जाय और जबर्दस्त शक्तिके साथ घसीटा जाय। तब वे चिल्लाते हैं कि उन्हें जोरसे बाधित किया जा रहा है।

फिर भी, वे स्वयं यही चाहते थे।

तो, बस।

२६ अक्तूबर, १९५५

माताजी 'योग समन्वय'मेंसे 'चार सहायताएं' पढ़ती हैं।

कोई प्रश्न है?

यहां कोई प्रश्न नहीं है, यह तो स्फटिककी तरह स्पष्ट है।

यहां लिखा है: "आंतरिक शब्द अंतरतम आत्माका कथन हो सकता है जो सदा भगवान्‌की ओर खुली रहती है या यह गुप्त, वैश्व 'गुरु' का शब्द हो सकता है...।" ये भगवान् और वैश्व 'गुरु' भिन्न क्यों हैं?

वैश्व 'गुरु' भगवान्‌का एक पक्षमात्र है, समझे। भगवान्‌के अंदर सभी संभव क्रिया-कलाप आ जाते हैं; 'गुरु' केवल एक क्रिया है जो शिक्षा देती है। श्रीअरविन्दका मतलब यह है कि यह या तो सीधा भगवान्‌के साथ या उनके एक पक्षके साथ संपर्क है, दिव्य 'गुरु' के साथ। लेकिन भगवान् केवल 'गुरु' ही नहीं हैं।

बस?

मधुर मां, यहां: "किन्हीं उदाहरणोंमें यह प्रतिनिधि शब्द आंतरिक शक्तिके जागने और अभिव्यक्त होनेके लिये एक प्रकारका

बहाना बना लिया जाता है...।" तो इस मामलेमें यह व्यक्तिकी अभीप्सा है या 'शब्द' की शक्ति?

यह बहुत हदतक साधकके विकासकी अवस्थापर निर्भर है, समझे। अगर वह इतना काफी विकसित और सचेतन है कि उस आध्यात्मिक 'शक्ति'के साथ सीधा संपर्क कर सके जो शब्दके पीछे काम कर रही है, तो शब्द केवल एक बहाना होता है। लेकिन अगर उसके लिये यह जरूरी हो कि उसे प्रभावशाली होनेके लिये मानसिक समझसे होकर गुजरना पड़े, तो शब्दका महत्त्व बहुत अधिक हो जाता है। यह विकासकी मात्रापर निर्भर है।

अगर आदमी सीधा ग्रहण कर सकने योग्य हो, तो उदाहरणके लिये, वह कोई किताब खोलता है, उसे कोई वाक्य मिलता है और उससे वह प्रकाश पा जाता है; क्योंकि यह ठीक वही शब्द था जिसकी वह प्रतीक्षा कर रहा था जो उसका उस 'शक्ति'के साथ संपर्क साध दे जिसकी उसे अगला कदम उठानेके लिये जरूरत थी।

अन्यथा तुम्हें एक पुस्तक लेनी होगी, उसका अध्ययन करना होगा, एक-एक वाक्य करके शब्दशः पढ़ना होगा, और फिर उसपर चिंतन करना होगा और फिर समझना होगा और फिर आत्मसात् करना होगा और फिर बादमें बहुत धीरे-धीरे, आत्मसात् करने और समझनेके बाद, उसका स्वभावपर असर होने लगता है, और आदमी कुछ प्रगति करता है।

एक अवस्थामें यह सीधा संपर्क है, समझे, और बस एक वाक्य, एक शब्द...तुम एक शब्द पढ़ते हो, एक वाक्य पढ़ते हो और उससे प्रकाश पा लेते हो। और तब तुम्हें जितनी 'शक्ति' की जरूरत है वह सब पा जाते हो। दूसरा मार्ग विद्वानका है, पंडितका है जो बुद्धिप्रधान प्राणी है, जिसे सीखने, चिंतन करने, आत्मसात् करने और जो कुछ सीखा है उसके बारेमें तर्क-वितर्क करनेकी जरूरत होती है, ताकि वह प्रगति कर सके। यह लंबा, श्रमसाध्य मार्ग है।

बस?

मधुर मां, एक फूल है जिसे आपने नाम दिया है "सर्जनात्मक शब्द"।

हां।

उसका क्या अर्थ है?

यह ऐसा शब्द है जो सृजन करता है।

सब प्रकारकी परंपराएं हैं, प्राचीन हिन्दू मान्यता, प्राचीन कैल्डियन मान्यता जिनमें भगवान् अपने 'स्रष्टा'के रूपमें, यानी, अपने 'स्रष्टा' रूपमें एक शब्दका उच्चारण करते हैं जिसमें सृजन करनेकी शक्ति होती है। तो यह वही है...। और यही मंत्रका मूल है। मंत्र एक उच्चारित शब्द है जिसमें सृजन-शक्ति होती है। एक आवाहन किया जाता है और आवाहन-का उत्तर मिलता है; या कोई प्रार्थना की जाती है और प्रार्थना स्वीकृत होती है। यही 'शब्द' है, वह 'शब्द' जो अपनी ध्वनिमें... यह केवल भाव नहीं होता, ध्वनिमें सर्जक-शक्ति होती है। यह मंत्रका मूल है, समझे।

भारतीय पुराणकथाके अनुसार ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं, और मेरा ख्याल है कि यह फूल, "सर्जनात्मक शब्द" ठीक उनकी शक्तिका ही प्रतीक है। और जब तुम्हारा उसके साथ संपर्क हो, तो बोले गये शब्दोंमें आवाहनकी, सृजन-की, रचनाकी या रूपांतरकी शक्ति होती है; ये शब्द... ध्वनिमें हमेशा शक्ति होती है; मनुष्य जितना सोचते हैं उससे बहुत ज्यादा शक्ति। वह अच्छी शक्ति हो सकती है, वह बुरी शक्ति हो सकती है। वह ध्वनि ऐसे स्पंदन पैदा करती है जिनमें ऐसा प्रभाव होता है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। इसमें इतनी विचारकी बात नहीं है जितनी ध्वनिकी; विचार-की अपनी शक्ति होती है, लेकिन वह उसके अपने क्षेत्रमें होती है, जब कि ध्वनिकी शक्ति भौतिक जगत्में है।

मेरा ख्याल है कि मैं एक बार तुम्हें यह समझा चुकी हूं; उदाहरणके लिये, मैंने तुमसे कहा था कि बिलकुल यूं ही सरसरी तौरपर बोले गये शब्द, सामान्यतः बिना सोचे-विचारे, बिना कोई महत्त्व दिये बोले गये शब्दों-का भी बहुत भलाई करनेके लिये उपयोग किया जा सकता है। मेरा ख्याल है कि मैंने तुमसे "बौंजूर", "सुप्रभात" की बात की थी, कही थी न? जब लोग मिलते और "बौंजूर" कहते हैं, तो यह यांत्रिक रूपसे और बिना सोचे होता है। लेकिन अगर तुम उसमें इस इच्छाको रखो, किसीके लिये शुभ दिनकी कामना करते हुए अभीप्सा रखो, तो "सुप्रभात" कहनेका एक तरीका होता है जो बहुत प्रभावशाली होता है, उस अवस्थासे बहुत ज्यादा प्रभावशाली जिसमें तुम किसीसे मिलकर कुछ कहे बिना मनमें यह सोचो: "आह, मैं चाहता हूं कि इसके लिये अच्छा दिन हो।" अगर अपने विचार-में इस आशाके साथ एक विशेष ढंगसे "सुदिन" कहो, तो तुम उसे अधिक ठोस और प्रभावशाली बना सकते हो।

हां तो, शापके साथ, या गुस्सेमें कही गयी बुरी बातोंके साथ भी ऐसा ही है। इससे तुम उन्हें थप्पड़ लगानेके जितना ही — शायद उससे भी

ज्यादा — नुकसान पहुंचा सकते हो। बहुत संवेदनशील लोगोंमें इसके कारण पेट खराब हो जाता है या उनके दिलमें धुकधुकी हो जाती है, क्योंकि तुम अपने शब्दमें कोई अशुभ शक्ति डाल देते हो जिसमें विनाशकी क्षमता होती है।

बोलना बिलकुल प्रभावहीन नहीं होता। स्वभावतः यह बहुत कुछ हर एक की आंतरिक शक्तिपर निर्भर होता है। जिन लोगोंमें बल नहीं है और चेतना नहीं है वे तबतक कुछ नहीं कर सकते जबतक कि भौतिक साधनोंका उपयोग न करें। लेकिन जिस हदतक तुम मजबूत हो, विशेषकर जब तुम्हारा प्राण सबल हो, तो तुम जो कुछ कहो उसपर बहुत संयम रखना चाहिये, अन्यथा तुम बिना चाहे, बिना जाने, अज्ञानद्वारा बहुत नुकसान पहुंचा सकते हो।

और कुछ? नहीं? कुछ नहीं?

और कोई प्रश्न? . . . सब खतम?

माताजी, ध्वनिके बारेमें, भिन्न-भिन्न भाषाओंमें ध्वनियोंकी भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियां हैं; तो फिर भाषाकी शक्ति किसपर निर्भर होती है?

लेकिन जब तुम अनुभव पा सकते हो, अगर काफी संवेदनशील हो, तो अगर कोई ऐसी भाषा बोले जिसे तुम बिलकुल नहीं जानते, लेकिन उसमें बहुत यथार्थ आशय हो, तो उसका प्रभाव तुरंत अनुभव किया जाता है।

अगर कोई तुम्हारे लिये शुभ दिन या अच्छे स्वास्थ्यकी कामना किसी ऐसी भाषामें करे जिसे तुम बिलकुल नहीं जानते, जिसका तुम्हारी भाषासे कोई संबन्ध नहीं है, तो तुम शब्दोंको समझे बिना भी तुरंत उसके प्रभावको अनुभव कर सकते हो। या अगर कोई तुमसे किसी ऐसी भाषामें कुछ बुरा-भला कहे या गालियां दे जिसे तुम बिलकुल नहीं जानते, तो तुम उसके स्पंदनोंका भली प्रकार अनुभव कर सकते हो। यह समझे हुए शब्दोंपर निर्भर नहीं करता। हर भाषामें ऐसी ध्वनियां होती हैं जो अभिव्यंजक होती हैं; केवल कोई एक भाषा ही अभिव्यंजक नहीं होती। और एक ही चीजको अभिव्यक्त करनेके कई तरीके होते हैं। एक ही चीजको अभिव्यक्त करनेके असंख्य तरीके होते हैं।

मुझे याद है मैंने विद्वानोंको वाद-विवाद करते सुना है, और वे अपनेआपको बहुत बुद्धिमान समझते थे — और यह जाननेके लिये कि भगवान्‌ने किस भाषामें "प्रकाश हो" कहा होगा वे धीर गंभीरताके साथ वाद-विवाद किया करते थे।

कुछका कहना था कि वह संस्कृतमें कहा गया होगा, दूसरे कहते थे कि उससे भी पुरानी किसी भाषामें कहा गया होगा, कुछ और कहते थे कि वह सीरिआईमें होगा, इत्यादि; किसीने यह नहीं सोचा कि शायद वह किसी भी भाषामें नहीं कहा गया था!

वह 'शब्द' भी क्रमविकासका अनुसरण करता है?

अर्थात्? . . .

अर्थात्, जो कुछ पहले पढ़ा जाता था अब वह सामान्य हो गया।

कौन-सा 'शब्द'?

लिखित शास्त्रोंमें पंडितोंके द्वारा जो देखा गया था; यानी, जो यहां लिखा है . . .

पुरानी परंपराका? . . .हां। लेकिन श्रीअरविंद यह भी कहते हैं कि उसके न बदलनेका, चीजोंको न जोड़ने या न बदलनेका कोई कारण नहीं है। वे कहते हैं . . . वे स्वयं ही तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देते हैं।

अतीतकी याद रखना बहुत अच्छा है अगर वह तुम्हारी सहायता करे, लेकिन तुम्हारे आगे बढ़नेमें उसे बाधक नहीं बनना चाहिये। और जो शिक्षा एक समय अच्छी थी वह अन्य समय अच्छी नहीं रहती, यह तो एकदम निश्चित है।

मैं जो पूछ रहा हूं वह है: क्या वह भी क्रमविकासका अनुसरण करता है?

कौन-सा क्रमविकास?

अर्थात्, जो कुछ पहले अनिवार्य था वह अब पर्याप्त नहीं है।

न्यायसंगत दृष्टिसे, व्यक्तिको हमेशा बढ़ते रहना चाहिये।

लेकिन, साधारणतः, वे लोग जो अतीतसे आसक्त होते हैं वे उस अतीत

को वैसे-का-वैसा रखना चाहते हैं, और दूसरे जो आगे बढ़ना चाहते हैं वे सब कुछ छोड़कर केवल वही रखना चाहते हैं जो उन्होंने पाया है। इस तरह दोनों ही एक जैसी भूल करते हैं... अर्थात्, अपनी चेतनाको विस्तृत बनानेकी जगह वे उसे संकीर्ण और अपने-आपको सीमित बना लेते हैं।

क्या ध्वनि विशेष रूपसे भौतिक जगत्की है या दूसरे स्तरों-पर भी ध्वनि होती है?

वहां भी ध्वनि होती है।

यहांकी ही तरह?

सभी अभिव्यक्त जगतोंमें निश्चित रूपसे ध्वनि होती है, और जब व्यक्ति-के पास उपयुक्त इंद्रिय हों तो वह उसे सुन सकता है।

कुछ ध्वनियां हैं जो उच्चतम प्रदेशोंकी होती हैं, और वस्तुत: जो ध्वनि यहां है वह उस ध्वनिकी तुलनामें शोरका भान कराती है।

उदाहरणके लिये, सामंजस्यपूर्ण और संगीतमय प्रदेश हैं जहां व्यक्ति जो कुछ सुनता है वह हमारे यहांके संगीतका मूल होती है — लेकिन जड़, भौतिक संगीतकी ध्वनियां उस संगीतकी तुलनामें एकदमसे गंवारू मालूम होती हैं! जब व्यक्ति वह सुन लेता है, तो पूर्णतम वाद्य भी अक्षम मालूम होता है। बनाये हुए सभी वाद्य, जिनमें निश्चित रूपसे वायलिन-की शुद्धतम ध्वनि है, वे सब सामंजस्यके इस जगत्के संगीतके सामने अपनी अभिव्यक्तिमें बहुत अधिक घटिया होते हैं।

अपने शुद्धतम रूपमें मनुष्यकी आवाज सभी वाद्योंमें उसे सबसे अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त करती है; लेकिन वह फिर भी...उसकी एक ध्वनि है जो दूसरेकी तुलनामें बहुत कर्कश, बहुत स्थूल लगती है। जब मनुष्य उस प्रदेशमें चला जाय, तो वह सचमुच जान लेता है कि संगीत क्या है। और उसमें इतनी पूर्ण स्पष्टता होती है कि ध्वनिके साथ-साथ जो कहा जाता है उसे वह पूरी तरह समझ लेता है। यानी, व्यक्ति बिना शब्दोंके उस विचारके सारको जान लेता है, केवल ध्वनिसे और उसके सभी उतार-चढ़ावसे... हम इसे संवेदन या अनुभव नहीं कह सकते ...जो सबसे ज्यादा नजदीक लगता है वह है अमुक प्रकारकी आत्माकी स्थितियां या चेतनाकी स्थितियां। ये सभी स्वर-सामंजस्य ध्वनिके सूक्ष्म

भेदसे स्पष्ट अनुभव किये जा सकते हैं। और निश्चित रूपसे, बड़े-बड़े संगीतकार, संगीतकी दृष्टिसे प्रतिभाशाली व्यक्ति न्यूनाधिक सचेतन रूपसे उसके संपर्कमें रहे होंगे। भौतिक वर्तमान जगत्, जैसा कि आज है, एकदम-से भद्दा और गंवारू जगत् है; यह व्यंगचित्र-सा लगता है।

चित्रकलाकी भी यही बात है: आज जिन चित्रोंको हम जानते हैं, अगर व्यक्ति रूप और रंगके प्रदेश, चित्रकलाके द्वारा अभिव्यक्त वस्तुओंका मूल देख ले तो वे भद्दे, पुताईकी तरह लगते हैं।

और मौलिक रूपसे विचारोंकी दृष्टिसे यही बात है। अगर व्यक्ति शब्दातीतके परे शुद्ध विचारोंके जगत्के साथ संपर्क बना ले, सभी शब्द इतने सीमित, संकुचित लगते हैं... यह एक तरहका व्यंगचित्र बन जाता है। विचारके अन्दर जीवनकी जो तीव्रता होती है उसे अनूदित नहीं किया जा सकता। व्यक्ति अगर समर्थ हो तो सचेतन रूपसे उस जगत्में जाकर उसे पा सकता है। अगर वह उसके स्पंदनोंका स्वामी हो तो एक हदतक उसे संचारित कर सकता है और उन्हें जाने दे सकता है और अपने अन्दरसे निकाल सकता है। लेकिन वह सब जो व्यक्ति कहता है या वह सब जो वह लिखता है सचमुच व्यंगचित्र होता है।

काफी है यह?

या अभी और भी प्रश्न हैं?

माताजी, आज 'विजय दिवस' (दुर्गा पूजा) है। कहा जाता है कि हर साल इस दिन आप कोई विजय प्राप्त करती हैं।

लेकिन उसे जाननेका अधिकार पानेके लिये तुम्हें कम-से-कम उसका एक हल्का-सा अनुभव होना चाहिये।

आज कौन-सी विजय प्राप्त हुई है?

क्या तुम जानते हो, तुम?

नहीं? तुम्हें इस तरहका कोई अनुभव नहीं हुआ?

क्या किसीको कोई अनुभव हुआ है?

कामनाओंपर विजय।

क्या? अब तुम्हारे अन्दर कामनाएं नहीं रहीं, तुम्हारे अन्दर? बस खत्म? मैं तुम्हें बाधाई देती हूं! (हंसी)

(मौन)

परंपराका अनुसरण करते हुए भी — जो केवल स्थानीय परंपरा है, जानते हो, यह वैश्व परंपरा तो क्या, पार्थिव परंपरा भी नहीं है — कितने हजारों वर्षोंसे वह हर साल एक विजय प्राप्त करती आयी है? और हमेशा उन्हें फिरसे शुरू करना होता है।

इसे नष्ट करना बहुत कठिन होगा।

बस हो गया?

ओह! चलो, हम एक परीक्षण करें। हम दस मिनटके लिये ध्यान करेंगे, और इन दस मिनटोंमें मैं तुम्हारा उसके साथ संपर्क बना दूंगी जो हुआ है; लेकिन मैं तुमसे एक शब्द भी न कहूंगी। अगर कोई किसी चीजके बारेमें सचेतन हो जाय, तो वह बादमें उसे एक कागजपर लिख ले, और मैं कल देखूंगी।

तो बस।

२ नवंबर, १९५५

माताजी 'योग समन्वय' मेंसे 'चार सहायताएं' पढ़ती हैं।

हां, तो अब तुम्हारा प्रश्न?

> **"योगकी प्रक्रिया है बाहरी रूप-रंगमें तल्लीन चेतनाकी अहंकारमय स्थितिसे मानव अंतरात्माको मोड़ना . . .।" मैं भली-भांति "बाहरी रूप-रंगमें तल्लीन चेतनाकी अहंकारमय स्थिति" का मतलब नहीं समझा।**

लोग बाहरी चीजोंमें व्यस्त रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि चेतना बाहरी चीजोंकी ओर, यानी, गहरे सत्य और भागवत 'उपस्थिति' को पानेके लिये अन्दरकी ओर मुड़नेकी जगह, जीवनकी उन सब चीजोंकी ओर मुड़ी रहती है जिन्हें तुम देखते, जानते और करते हो। यह पहली गति है। तुम जो कुछ करते हो, तुम्हारे चारों ओर जो लोग हैं, तुम जिन चीजोंका उपयोग करते हो, उन सबमें व्यस्त रहते हो; और फिर जीवनमें: खाने-

पीनेमें, सोने, बातचीत करने, थोड़ा काम करने, थोड़े-से मनोरंजनमें भी व्यस्त रहते हो; और फिर शुरूसे वही चक्र चल पड़ता है : सोना, खाना, आदि, आदि, और फिरसे वह शुरू होता है। और फिर इसने क्या कहा, उसने क्या दिया, तुम्हें क्या करना चाहिये, तुम्हें कौन-सा पाठ सीखना चाहिये, तुम्हें कौन-सी तैयारी करनी चाहिये; और फिर यह भी कि तुम्हारी तबीयत कैसी है, तुम ठीक-ठाक तो हो आदि। साधारणतः आदमी इन्हींके बारेमें सोचता है।

तो पहली गति है — और यह इतनी आसान नहीं है — इन सबको पीछे, पृष्ठभूमिमें कर देना और केवल एक ही चीजको **एकमात्र** आवश्यक चीजके रूपमें अन्दर और चेतनाके सामने लाना : वह चीज है अपने अस्तित्व और जीवनके सच्चे उद्देश्यको खोजना, यह सीखना कि हम क्या हैं, हम क्यों जीवित हैं, और इस सबके पीछे क्या है। यह पहला चरण है : अभिव्यक्तिकी अपेक्षा कारण और लक्ष्यमें अधिक रस लेना। यानी, पहली गति है बाहरी और प्रत्यक्ष वस्तुओंके साथ पूर्ण तादात्म्यसे अपनी चेतनाको खींच लेना, और तुम जो खोजना चाहते हो, जिस 'सत्य' का अन्वेषण करना चाहते हो उसपर एक प्रकारकी एकाग्रता। यह पहली गति है।

जो लोग यहां हैं उनमेंसे बहुत-से एक बात भूल जाते हैं। वे अन्तसे आरंभ करना चाहते हैं। उनका ख्याल है कि वे अपने जीवनमें उस चीजको प्रकट करनेके लिये तैयार हैं जिसे वे अतिमानसिक 'शक्ति' या 'चेतना' कहते हैं, और वे उसे अपनी क्रियाओंमें, अपनी गतिविधियोंमें, अपने दैनिक जीवनमें ऊंडेलना चाहते हैं। लेकिन मुश्किल यह है कि वे यह बिलकुल नहीं जानते कि अतिमानसिक 'शक्ति' या 'चेतना' क्या है। वे नहीं जानते कि जिस 'सत्य' को प्रकट करना है, उसे अपने अंदर पानेसे पहले, सबसे पहली जरूरत है उल्टे पथपर चलने, यानी, अन्तर्मुख होनेकी, जीवनसे अपने-आपको खींच लेनेकी।

क्योंकि जबतक तुमने उसे नहीं पाया है, तबतक अभिव्यक्त करनेके लिये कुछ है ही नहीं। और यह कल्पना कर लेनेसे कि तुम एक अनोखा अपवादिक जीवन जी रहे हो, तुम केवल अपनी अपवादिक स्थितिके भ्रममें रहते हो। अतः, पहले तुम्हें केवल अपनी अन्तरात्मा और उसपर अधिकार रखनेवाले भगवान्‌को ही नहीं पाना होगा, बल्कि उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना होगा। और फिर बादमें, तुम अपने बाह्य क्रिया-कलापकी ओर लौट सकते हो, और फिर उन्हें रूपांतरित कर सकते हो; क्योंकि तब तुम जानते हो कि उन्हें किस दिशामें मोड़ना है, उन्हें किस चीजमें रूपांतरित करना है।

तुम कूदकर इस अवस्थाको लांघ नहीं सकते। पहले तुम्हें अपनी अंतरात्माको पाना होगा, यह एकदम अनिवार्य है, और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना होगा। उसके बाद तुम रूपांतरकी ओर जा सकते हो। श्रीअरविंदने कहीं लिखा है: "जहां अन्य योग समाप्त होते हैं, हमारा योग वहांसे शुरू होता है।" सामान्यतः योग यथार्थ रूपमें इस तादात्म्यकी ओर, भगवान्‌के साथ ऐक्यकी ओर ले जाता है — इसीलिये इसे "योग" कहते हैं। और जब लोग यहांतक जा पहुंचते हैं, तो, वे अपने मार्गके अंततक आ जाते हैं और संतुष्ट होते हैं। लेकिन श्रीअरविंदने लिखा है: जहां वे समाप्त करते हैं वहांसे हम शुरू करते हैं; तुमने भगवान्‌को पा लिया लेकिन अब ध्यानमें न बैठे रहो और इसकी प्रतीक्षा न करो कि भगवान् तुम्हें शरीरसे बाहर निकाल लें क्योंकि अब वह बेकार हो गया है, इसके विपरीत, (तादात्म्यकी) इस चेतनाके साथ तुम्हें शरीर और जीवनकी ओर मुड़ना और रूपांतरका काम शुरू करना चाहिये — और यह बहुत कठिन परिश्रम है। इसी स्थलपर वे घने जंगलोंमेंसे रास्ता बनानेकी उपमा देते हैं; चूंकि और किसीने यह काम नहीं किया है, इसलिये जहां कोई रास्ता नहीं है वहां तुम्हें रास्ता बनाना होगा। लेकिन अन्तःस्थित, अपनी अंतरात्मामें स्थित भगवान्‌के साथ ऐक्यका अनिवार्य निदेश पाये बिना यह करनेका प्रयास करना बचकानापन है। ऐसी बात है।

मैं योगकी बात कर रही हूं। मैं तुम्हारे जीवनकी, तुम सबके, यहांके बच्चोंके जीवनकी बात नहीं कर रही। वह और बात है। तुम यहां अपने-आपको विकसित करनेके लिये हो। और जब तुम बड़े हो जाओ और तुम्हारा अपना स्पष्ट विचार हो, तुम्हारी अपनी अंतर्दृष्टि हो, जब तुम्हें इतना काफी ज्ञान हो कि तुम आजादीसे यह चुनाव कर सको कि तुम कैसा जीवन अपनाना चाहते हो, तब, उस समय तुम निर्णय करोगे।

लेकिन जो अबतक निर्णय कर चुके हैं, हां, उनके लिये सबसे पहले यह अनिवार्य है कि अपनी अंतरात्माको पायें और अपने चैत्य पुरुषके साथ एक हों, और भगवान्‌के साथ एक हों जो उनके अन्दर हैं। यह बिलकुल ही अनिवार्य प्रारंभ है। तुम इस पुलके ऊपरसे छलांग नहीं मार सकते, यह संभव नहीं है। तुम्हें जो सहायता दी जाती है, उसका उपयोग करना जानो, तो यह बहुत तेजीसे किया जा सकता है; लेकिन इसे करना जरूर होगा।

बस अब?

किसीको कुछ पूछना है?

पवित्र अपनी अंतरात्माको खोज रहा है!

माताजी, यहां श्रीअरविंद कहते हैं: "...समस्या वह-की-वही बनी रहती है, आरंभ नया होना चाहिये।"

हां। मैंने अभी ठीक यही बात तो कही है। समस्या वह-की-वही बनी रहती है...

समस्या...

समस्या है अपनी अन्तरात्माको पाने और भगवान्‌के साथ एक होनेकी।

लेकिन, माताजी, वैदिक कालमें भी क्या यही समस्या थी?

अपनी अन्तरात्मा और भगवान्‌को पानेकी? निश्चय ही।

लेकिन, माताजी, क्या वे सफल नहीं हुए?

नहीं, श्रीअरविंदने कहा है कि वैदिक कालमें लोगोंने आध्यात्मिक जीवन-को भौतिक जीवनमें लानेकी कोशिश की थी, लेकिन उनका कहना है कि उन्होंने जिन साधनोंका उपयोग किया, जिन मार्गोंका उन दिनों अनु-सरण किया वे अब उपयोगी नहीं हैं। जरा कल्पना करो, पहलेकी तरह वेदी बनाकर पूजा करना! ...उससे अब काम न चलेगा, वह उपयुक्त नहीं है।

क्या उनका और हमारा लक्ष्य एक ही है?

मेरा ख्याल है।

बहरहाल, धरतीके इतिहासमें ऐसे कई युग आये हैं जब उदाहरण स्व-रूप, प्रतिज्ञा स्वरूप, यह बताया गया था कि एक दिन क्या होगा। इन्हें स्वर्णिम युग कहा जाता है। लेकिन निश्चय ही ऐसे काल थे जिनमें जो होनेवाला है उसकी अनुकृति न्यूनाधिक रूपमें जीवनसे उतारी गयी थी। वह केवल एक प्रदर्शन था, एक उदाहरण था, जिसे उपलब्धिके रूपमें ग्रहण करनेके लिये संसार पूरी तरहसे अयोग्य था।

वह केवल यह कहनेके लिये था: 'देखो, इस तरह होगा, लेकिन ब्योरे-में पूरी तरह ऐसा नहीं, तत्त्वतः ऐसा होगा। और मेरा ख्याल है कि वह लंबे अरसेतक नहीं रहा। बहरहाल उस चीजकी स्मृति बहुत सीमित बहुत स्थानीय और बहुत संक्षिप्त है। उसमें एक तीव्रता थी, उसमें अभि-व्यक्तिका महान् सौंदर्य था, लेकिन वह मानों समस्त पार्थिव जीवनसे एक-दम स्वतंत्र एक नमूना था... प्रायः एक ऐसा नमूना जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, जिसका अनुसरण नहीं किया जा सकता, जिसके साथ हमेशा यह वचन दिया गया: "ऐसा होगा"... यह वचन 'नयी धरती', 'दिव्य संसार' या 'नवीन सृष्टि', आदि, भिन्न-भिन्न शब्दोंमें बहुधा दोहराया गया है।

और मेरा ख्याल है कि शायद यह प्रारंभमें था... ठीक मानवजातिके आरंभमें नहीं बल्कि उपलब्धिकी ओर मानवजातिके सचेतन विकासके प्रारंभमें। हमने पिछली बार कहा था कि एक लंबे अरसेतक मानव-जाति बहुत गतिहीन रही, मानों बहुत धीमी, बहुत मंथर गतिसे तैयारी कर रही हो, इतने अदृश्य रूपमें कि शायद इसमें लाखों वर्ष लग गये हों। लेकिन ये वचन और ये उदाहरण मानों आरंभ-बिंदु थे, उच्चतर उपलब्धिकी ओर चेतनाके विकासको शुरू करनेके लिये पहले धक्केकी तरह।

मेरा ख्याल है कि वैदिक युग सबके पीछेका है। उससे पहले अन्य थे, पर बहुत कम अवधिके लिये।

वहां कुछ है?

एक प्रश्न?... बस?

माताजी!

अब भी वही आदमी प्रश्न कर रहा है!

तुम क्या जानना चाहते हो?

जब विवेकानन्दने कहा था: "वह तात्त्विक ऐक्य जो अपनी पूर्ण स्थितिको पा लेगा," तो वे उसके बारेमें अस्पष्ट रूपसे सोच रहे थे या...

जहांतक मुझे मालूम है, विवेकानन्द भौतिक सिद्धिकी बहुत परवाह न करते थे। बल्कि वे तो उस श्रेणीके लोगोंमेंसे थे जो जीवनसे छुटकारा चाहते हैं, अपने-आपको इस रोगसे मुक्त करना चाहते हैं।

लेकिन अपने जीवनके अन्तमें उन्हें दुःख था कि वे सफल नहीं हुए।

एक बार मैंने कुछ पढ़ा था, अब मुझे पता नहीं कहां, क्योंकि यह फ्रांस-की बात है, वह किसी पुस्तकमें अनूदित था, शायद वह कोई थियोसोफी-की पुस्तक रही हो जिनमें भारतीय चीजोंका अनुवाद होता है। वहां मैंने विवेकानन्दके बारेमें लिखी गयी एक घटना पढ़ी थी। जिसमें लिखा था कि विवेकानन्दके किसी शिष्यने उनसे कहा था : "ओह, सूर्यास्त कितना सुन्दर है!' इससे उन्हें बहुत जोरका धक्का लगा और उन्होंने उसे डांट दिया। शिष्यकी बातने उन्हें कुछ जोरका धक्का दिया था। मुझे याद है मैंने यह बात फ्रांसमें पढ़ी थी और यह मुझे चुभ गयी थी। यह मुझे अभीतक याद है क्योंकि यह मुझे . . . मुझे उनका उत्तर निन्दात्मक लगा! उन्होंने कहा : "क्या! यह सुन्दर है? अगर तुम प्रकृतिके सौंदर्यकी सराहना करोगे तो तुम कभी भगवान्‌को न पा सकोगे।" प्रसंगवश, मुझे पता नहीं कि यह बात सच्ची है या सुननेवालेने गढ़ ली थी, मुझे इस बारेमें कुछ भी नहीं मालूम। मैं सिर्फ इतना ही कहती हूं कि मैंने यह बात पढ़ी थी और इसका मेरे ऊपर इतना असर हुआ कि कई बार जब मैं सूर्यास्त या सूर्योदय या प्रकाशके मोहक प्रभावको देखती हूं तो अब भी इसे याद कर लेती हूं और अपने-आपसे कहती हूं : "अरे! ऐसी पृथकता . . . कैसी अजीब बात है कि अगर कोई प्रकृतिकी सराहना करे तो आध्यात्मिक जीवन नहीं बिता सकता!"

तो अगर यह बात सच्ची है कि वे ऐसे थे, तो निश्चय ही वे हमारे कार्यक्रमके दूसरे छोरपर थे। मैं कह रही हूं मुझे पता नहीं कि यह सच है या नहीं, लेकिन फिर भी, बात मैंने सुना दी। और मैंने उनके बारे-में जो कुछ पढ़ा है वह ऐसा ही था : कि उन्हें भौतिक अभिव्यक्तियोंके लिये बहुत तिरस्कार था, कि वे अधिक-से-अधिक उन्हें आत्म-विकास और मुक्तिके साधनके रूपमें स्वीकार कर सकते थे — इससे बढ़कर नहीं।

माताजी, आपने कहा कि वैदिक युग एक वचनकी तरह था। वचन किसे दिया गया था?

धरतीको और मनुष्योंको।

वे अपनी अनुभूतिका एक मौखिक दस्तावेज छोड़ गये। उसे संचारित किया गया — यही वचन था।

उन्होंने प्रतीकात्मक भाषाका उपयोग किया। कुछ लोगोंका कहना है कि यह इसलिये था कि वे चाहते थे कि इसकी दीक्षा दी जाय और इसे केवल दीक्षित लोग ही समझ पायें। लेकिन यह एकदम सहज-स्वाभाविक अभिव्यक्ति भी हो सकती थी जिसमें चीजोंको छिपानेका कोई यथार्थ उद्देश्य न था, लेकिन उसे ऐसे लोग न समझ सकते थे जिन्हें वह अनुभूति न हुई हो। क्योंकि बिलकुल स्पष्ट रूपसे यह ऐसी चीज है जो मानसिक नहीं है, जो सहज-रूपसे आयी थी — मानों वह हृदयसे और अभीप्सासे फूट पड़ी हो — जो किसी अनुभूति या ज्ञानकी पूर्णतया सहज अभिव्यक्ति थी, और स्वभावत: एक काव्यात्मक अभिव्यंजना, जिसकी अपनी लय थी, अपना सौंदर्य था, और वह उन्हीं लोगोंकी पहुंचमें हो सकती थी जिन्हें समान अनुभूतियां हुई हों। इस तरह वह अपने-आप ही पर्देमें आ गयी, उसपर एक और पर्दा डालनेकी जरूरत न थी। यह संभवसे भी अधिक लगता है कि ऐसा ही हुआ होगा।

जब तुम्हें कोई सच्ची अनुभूति होती है जो विशेष प्रयासद्वारा अनुभूतिकी रचना करने और उसे पा लेनेके लिये प्राथमिक विचारका परिणाम न हो, जब वह प्रत्यक्ष सहज अनुभूति हो, एक ऐसी अनुभूति जो अभीप्साकी तीव्रतासे आती है, तो वह सहज रूपसे शब्दोंका रूप धारण कर लेती है। जब वह पर्याप्त रूपसे संपूर्ण और समग्र हो, तो वह ऐसे शब्दोंका रूप लेती है . . . जिन्हें पहलेसे सोचा नहीं जाता, जो सहज होते हैं, चेतनासे सहज रूपमें प्रकट होते हैं। हां, तो यह संभवसे भी अधिक है कि वेद इस तरह प्रकट हुए होंगे। लेकिन उनका ठीक अर्थ वही समझ सकते हैं जिन्हें चेतनाकी वही स्थिति प्राप्त हो, जिन्हें वही अनुभूति हुई हो।

ऐसे वाक्य हैं जो बिलकुल ही तुच्छ और मामूली मालूम होते हैं, लगता है कि उनमें चीजें लगभग बचकाने ढंगसे कही गयी हैं, जिन्हें लिखा गया या सुना गया और यूं ही लिख लिया गया। हां तो, अगर उन्हें सामान्य चेतनासे पढ़ा जाय, तो वे कभी-कभी एकदम तुच्छ मालूम होते हैं। लेकिन अगर किसीको अनुभूति प्राप्त हो, तो उसे उनमें उपलब्धिकी शक्ति और अभिव्यक्तिका सत्य दिखायी देते हैं जो उसे स्वयं अनुभूतिकी चाबी देते हैं।

लेकिन यह स्पष्ट मालूम होता है कि, वर्तमान युगमें, प्राचीन कालके ऋषियोंके समान आधुनिक व्यक्तिकी . . . सहज वैदिक अभिव्यक्ति भी अपने रूपमें बहुत भिन्न होगी। क्योंकि पार्थिव विकास और मानव विकास अभिव्यक्तिकी परिस्थितियोंको बदल देते हैं। उन दिनोंका कहने-

का तरीका और आजका कहनेका करीका एक नहीं हो सकता; और फिर भी हो सकता है कि वह अनुभूति किसी ऐसी चीजकी अनुभूति हो जिसके बारेमें सोचा नहीं जा सकता लेकिन जो अनुभूतिकी जीवित जाग्रत अभिव्यक्तिके रूपमें आती है।

माताजी, क्या वैदिक ऋषि ऐसे लोग थे जो विकसित होकर उस स्थितितक पहुंचे थे या वे विशेष अभिव्यक्तियां थे?

तुम्हारा मतलब क्या है? क्या वे विकसनशील सत्ताएं थीं या निवर्तनशील[1]?

वे संभवतः . . . नहीं . . . वे निश्चय ही निर्वातित सत्ताएं थीं। लेकिन उनका शरीर विकासका परिणाम था।

लेकिन यह एकदम निश्चित है कि वे निवर्तनशील सत्ताएं थीं, यानी, ऐसी सत्ताएं जो उच्चतर लोकोंसे उतरी थीं और जिन्होंने इन शरीरोंका उपयोग किया, जिन्होंने इन शरीरोंके साथ तादात्म्य स्थापित किया।

यही बात है जो मैंने उस दिन कही थी कि जिन चीजोंने पार्थिव विकासकी धाराको और मानव विकासको बदल दिया है वे हैं ऐसे शरीर जो इस हदतक पूर्ण हो चुके हों कि उच्चतर लोकोंकी उन सत्ताओंके यंत्रका काम दे सकें जो उनका उपयोग करनेके लिये उनमें अवतरित हुई हों और यह स्पष्ट मालूम होता है कि ऋषि ऐसे लोगोंमेंसे थे — अगर सब नहीं तो कम-से-कम उनके अग्रणी, जो उनमें शीर्षस्थ थे। लेकिन बहुत संभव है कि उन्होंने अपना एक दल बना लिया हो जिसकी अपनी उपलब्धियां हों, जो अपने पास-पड़ोससे बिलकुल आजाद हों। इसके अतिरिक्त, अगर जो कहा जाता है वह ठीक है, तो वे बिलकुल अलग-थलग रहते थे।

(मौन)

बस फिर? . . . और कुछ नहीं? नहीं?

माताजी, क्या क्रम-विकास जारी रहेगा या निवर्तन इसका स्थान ले लेगा? यानी . . .

---

[1]नीचेसे ऊपर उठनेवाली सत्ताएं विकसनशील और ऊपरसे नीचे उतरने वाली दिव्य सत्ताएं निवर्तनशील कहलाती हैं। — अनु०

हां, मैं समझ गयी...। लेकिन मैं तुम्हारे प्रश्नके अभिप्रायको नहीं समझ पायी — क्या पार्थिव विकासकी प्रक्रिया क्रम-विकासके द्वारा चलती रहेगी या...

...जी, या उसका स्थान निवर्तन ले लेगा?

हां...लेकिन तुम एक बात भूल जाते हो। श्रीअरविंदने कहा है कि धरती-पर प्रकट होनेवाली हर नयी जाति निवर्तनका परिणाम थी। तो हमेशा इन दोनोंका मेल रहा है। दोहरा काम रहा है: एक काम जो नीचेसे ऊपरकी ओर जाता है, और एक उत्तर जो ऊपरसे नीचेकी ओर आता है।

माताजी, क्या क्रम-विकास अन्तर्लीन भगवान्‌का अपने-आप-को अभिव्यक्त करना नहीं है? तब फिर यह जरूरी क्यों है?

क्रम-विकास या निवर्तन?

क्रम-विकास। यानी, उदाहरणके लिये, पहले पाशविक मन-का विकास हुआ। तो कहा गया कि मन पहले ही...

तत्त्वतः...

तत्त्वतः, छिपा हुआ था।

तत्त्वतः, हां। और उसे जो तैयार करता है वह यह है: इसे सब प्रकारके नाम दिये गये हैं, समझे: दिव्य स्फुलिंग, 'उपस्थिति', आदि, जिसे जड़-पदार्थके अधंकारमें प्रविष्ट किया जाता है ताकि वह विकास शुरू करे। लेकिन एक और चीज भी है: सत्ताका, सचेतन सत्ताओंका, व्यक्तित्वोंका, विकासद्वारा रचित रूपोंमें अवतरण और तादात्म्य — और इस तरह उच्च-तर लोकोंकी सत्ताओं और दिव्य 'उपस्थिति' द्वारा विकसित रूपोंमें ऐक्य स्थापित होता है। और अन्तस्थ देव और नीचे उतरनेवाली इस सत्तामें तादात्म्य स्थापित होता है। उदाहरणके लिये, है न, जब चैत्य सत्ता उच्चतर श्रेणीके व्यक्तित्वके साथ, किसी दिव्य अंशके साथ, किसी चैत्यके साथ तादात्म्य प्राप्त करनेके लिये आनेवाली विभूतिके साथ ऐक्य स्थापित करती है — तो बस यही, उसमें यही चीज होती है।

लेकिन यह न तो यह है, न वह। एक सत्ता इस प्रकारका काम करती है, जैसा कि मैं कहती हूं, एक सत्ता अंदरसे बाहरकी ओर विकासका काम करती है; और दूसरी कोई ऐसी चीज है जो ऊपरसे आकर पहलीके द्वारा निर्मित चीजपर कब्जा कर लेती है।

साधारणतः ये वैयक्तिक घटनाएं होती हैं। ये तादात्म्य वैयक्तिक घटनाएं हैं। साधारणतः। मैं यह नहीं कहती कि इसके लिये सामुदायिक घटना होना असंभव है; लेकिन फिर भी, साधारणतः यह वैयक्तिक घटनाएं हैं।

फिर भी, अनुभूति होना काफी है और तब तुम समझ लेते हो। बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।

इसलिये, बोलना नहीं चाहिये, कार्य करना चाहिये।

तो यह बात है। बस?

शुभ रात्रि, मेरे बच्चो।

९ नवंबर, १९५५

माताजी 'योग-समन्वय' मेंसे 'चार सहायताएं' पढ़ती हैं।

माताजी, मैं यह नहीं समझ पाया: "हमारा वैयक्तिक प्रयास और अभीप्साका भाव अहंकारमय मनसे आता है जो गलत और अधूरे ढंगसे भागवत शक्तिके कार्योंके साथ तादात्म्य साधनेकी कोशिश करता है।"

तुम क्या नहीं समझ पाये? शब्द या भाव?

जी, भाव, माताजी।

इसे बहुत परिचित शब्दोंमें रखा जा सकता है।

व्यक्तिगत सत्ता, और उसमें भी विशेषकर मनको, सहज रूपमें यह माननेमें अरुचि होती है कि उसकी छोटी-सी व्यक्तिगत शक्तिके अतिरिक्त

कोई और शक्ति भी है जो काम करती है। एक प्रकारकी सहज-वृत्ति होती है जो तुम्हें पूरी तरह निश्चय करा देती है कि अभीप्साके लिये प्रयास, प्रगतिके लिये इच्छा यथार्थ रूपमें तुम्हारी अपनी चीज है, उनपर तुम्हारा अधिकार है, इसलिये, सारा श्रेय तुम्हें ही है।

कलाकार या साहित्यिक या वैज्ञानिक जो कुछ चीज तैयार करता है, किसी चीजका अध्ययन करता है, उसे पूरा विश्वास होता है कि वह स्वयं इस चीजको कर रहा है, वहांसे लेकर अभीप्सा करनेवाले योगीतकको यह विश्वास होता है कि उसकी अभीप्साका उत्साह, सिद्धिके लिये उसकी निजी आवश्यकता उसे आगे बढ़ाती है — अगर कोई इन लोगोंसे कह दे (मुझे इसका अनुभव हो चुका है), अगर कोई इनसे समयसे पहले कह दे: "नहीं, स्वयं भगवान् तुम्हारे अन्दर अभीप्सा करते हैं, भागवत 'शक्ति' तुम्हारे अंदर निर्माण करती है...", तो फिर वे कुछ भी नहीं करते, वे लंबे पड़ जाते हैं, उन्हें फिर उसमें कोई रस नहीं रह जाता; वे कहते हैं: "अच्छा, तो अब मुझे कुछ भी नहीं करना, भगवान्को ही करने दो।"

श्रीअरविंदका मतलब यही है — मन इतनी अहंकारमय और इतनी घमंडी वस्तु है कि अगर तुम उससे वह तुष्टि ले लो जिसकी उसे खोज है, तो फिर वह सहयोग नहीं देता; न प्राण ही सहयोग देता है। और चूंकि तुम्हारा शरीर प्राण और मनका बहुत आज्ञाकारी होता है, इसलिये वह भी आगेसे सहयोग नहीं देता। तब तुम एक जड़ राशिके सामने होते हो जो कहती है: "अच्छा, अगर मैं नहीं, तो ठीक है, कर लेने दो भगवान्को जो वे चाहें; बस, अब मैं कुछ भी नहीं करनेवाला।"

मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिन्होंने सचमुच बहुत-सी प्रगति कर ली थी, जो उस क्षणके बहुत निकट थे जब व्यक्ति वस्तुओंके सत्यमें प्रकट होता है, और वे केवल इसी चीजके कारण अटक गये। क्योंकि क्रियाका स्रोत होनेकी यह आवश्यकता, प्रयासका श्रेय लेनेकी आवश्यकताकी जड़ें इतनी गहरी होती हैं कि वे अंतिम कदम नहीं उठा सकते। कभी-कभी इसमें वर्षों लग जाते हैं। अगर उनसे कहा जाय: "नहीं, यह तुम नहीं हो, यह शक्ति जो तुम्हारे अंदर है, यह संकल्प जो तुम्हारे अन्दर है, यह ज्ञान जो तुम्हारे अन्दर है, यह सब भगवान् है; यह वह नहीं जिसे तुम अपना स्व कहते हो", तो इससे वे इतने दुःखी हो जाते हैं कि फिर वे और कुछ नहीं कर पाते। श्रीअरविंद इस वाक्यमें यही कहना चाहते हैं।

ऐसे लोग हैं जिनमें अपने अलग व्यक्तित्वका भाव बनाये रखनेकी इतनी चाह होती है कि अगर वे उन्हें यह माननेके लिये बाधित किया जाय कि जो कुछ ऊपरकी ओर उठता है वह भगवान्की प्रेरणासे होता

हैं या उन्हींके द्वारा किया जाता है, तो वे अपने छोटे-से व्यक्तित्वके लिये त्रुटियों, दोषों, भूलों, भ्रांतियोंका सारा भाग रख लेते हैं, और अपनी त्रुटियों-को पोसते हैं, ताकि कुछ तो उनका अपना बना रहे, जो वस्तुतः उनका अपना हो, उनकी निजी संपत्ति हो : "हां, वह सब जो सुन्दर है, प्रकाश-मान है, वह भगवान् है; सभी भयानक चीजें — मैं हूं।" लेकिन अपना-पन . . . एक बड़ा-सा अपनापन; उसे तुम्हें न छूना चाहिये !

माताजी, कभी-कभी हम सहज रूपसे अभीप्साका अनुभव करते हैं : और अन्य समय जब हम अभीप्सा करना चाहते हैं तो वह सहज नहीं होती। तो फर्क क्या है, क्या भगवान् अभीप्सा करते हैं . . .

श्रीअरविंद इसका उत्तर देते हैं। वे इसका बड़ा सुन्दर वर्णन करते हैं।

क्योंकि यह समस्त अंधकार, यह समस्त निश्चेतना, यह समस्त अज्ञान बिलकुल व्यक्तिगत चीजें नहीं हैं। यह संसारकी हालत है, जड़-द्रव्यकी स्थिति है, भौतिक जीवनकी स्थिति है। और वह तुम्हारे अन्दर प्रवेश करती है, तुमसे काम करवाती है; यह ऐसा है मानों कोई चीज कठपुतलीके धागे खींच रही हो। ये सब कामनाएं, ये सभी आवेग, शक्तिकी ये लहरें जो तुम्हारे अन्दरसे गुजरती हैं, जिनका तुम जाने बिना ही आज्ञा-पालन करते हो, इसीको तुम अपना स्व मान बैठते हो। और इस मामलेमें तुम्हारा स्व होता ही नहीं। यह सब जगह-से आता और सब जगह जाता है। तुम एक सार्वजनिक चौक हो : चीजें अंदर आती हैं, बाहर जाती हैं, तुम्हें हिलाती हैं।

माताजी, आदमीके अन्दर अमुक दोष-विशेष क्यों होता है, दूसरे दोष क्यों नहीं होते !

यह प्रकृतिका काम है।

कुछ पौधे एक प्रकारके और दूसरे अन्य प्रकारके क्यों होते हैं, कुछ जानवर एक तरहके और दूसरे और तरहके क्यों होते हैं ? विश्वमें कोई दो संयोग एक-से नहीं होते। सभी संयोजन अलग-अलग होते हैं। विश्व-में कोई दो गतियां ठीक एक जैसी नहीं होतीं। कोई भी चीज ऐसी नहीं है जिसकी पूरी-पूरी अनुकृति की जाती हो। सादृश्य होते हैं, समानताएं होती हैं, परिवार होते हैं — गतिविधियोंके परिवार होते हैं जिन्हें

स्पंदनोंके परिवार कहा जा सकता है — लेकिन कोई दो एकदम एक-सी चीजें नहीं होतीं; न कालमें, न देशमें। किसी चीजको दोहराया नहीं जाता। अन्यथा अभिव्यक्ति न होगी, केवल एक और अनन्य चीज रहेगी।

अभिव्यक्तिका मतलब ही है विभिन्नता। इसमें एकमेव अपने-आपको अनन्त रूपमें, अनगिनतमें फैलाता है।

और कुछ नहीं? कहीं भी नहीं?

मधुर मां, अहंकार कब यंत्र बन जाता है?

जब वह बननेके लिये तैयार हो।

यह कैसे होता है?

यह कैसे होता है? . . . मेरा ख्याल है कि यह हर एकमें अलग होता है। यह अचानक हो सकता है, एक क्षणके अवकाशमें, एक प्रकारके आंतरिक उलटावद्वारा हो सकता है; इसमें बरसों लग सकते हैं; शतियां लग सकती हैं; इसमें कई जन्म लग सकते हैं। हर-एकके लिये एक क्षण आता है जब यह होता है: जब वह तैयार हो।

और मेरा ख्याल है कि वह तैयार तब होता है जब वह पूरी तरह निर्मित हो चुका हो। अहंकारके अस्तित्वका उद्देश्य है व्यक्तिका निर्माण। जब व्यक्ति तैयार हो तो अहंकार गायब हो सकता है। लेकिन वह उससे पहले गायब नहीं होता क्योंकि उसे कुछ काम करना होता है।

जब संसार नयी सृष्टिको ग्रहण करनेके लिये तैयार होगा, तो विरोधी शक्तियां गायब हो जायेंगी। लेकिन जबतक संसारको तैयार करनेके लिये प्रलोभन देनेकी, गूंधनेकी, मथनेकी जरूरत है, तबतक विरोधी शक्तियां वह चीज बननेके लिये रहेंगी जो तुम्हें प्रलोभन देती हैं और तुमपर प्रहार करती हैं, तुम्हें धक्का देती हैं, तुम्हें सोनेसे रोकती हैं, तुम्हें बिलकुल सच्चा होनेके लिये बाधित करती हैं।

जो व्यक्ति पूरी तरह सच्चा हो वह विरोधी शक्तियोंका स्वामी बन जाता है। लेकिन जबतक किसी सत्तामें अहंकार या घमंड या दुर्भावना हो, वह हमेशा प्रलोभन और आक्रमणका पात्र बनी रहेगी; और वह हमेशा पूरी तरहसे इस सतत संघर्षके अधीन रहेगी जो विरोधी शक्तियोंके मुखौटेके नीचे, न चाहते हुए भी 'भागवत 'कर्म' के लिये श्रम करती है।

समय पूरी तरह निश्चित नही है। मै पहले भी कई बार यह बात तुम्हे समझा चुकी हूं। चेतनाके बहुत-से क्षेत्र, बहुत-से प्रदेश है जो एक-के ऊपर एक आध्यारोपित होते है, और चेतनाके या कार्यके इन सभी क्षेत्रोमें एक नियति होती है जो निरपेक्ष मालूम होती है। परतु हर क्षेत्रमे उससे उपरले क्षेत्रका हस्तक्षेप, जैसे भौतिकमे प्राणका हस्तक्षेप, भौतिकके अन्दर प्राणकी नियतिको ले आता है, और अनिवार्य रूपसे भौतिक नियतिको बदल देता है। और अगर अभीप्साद्वारा, आतरिक सकल्प, आत्म-दान और सच्चे समर्पणके द्वारा तुम उच्चतर क्षेत्रोसे या परम क्षेत्र-से भी नाता जोड सकते हो, तो वहासे उच्चतम नियति नीचे उतरकर सभी मध्यवर्ती नियतियोको बदल देगी और वह, कह सकते है, चुटकियो-में, बिना समय लगाये वह काम कर देगी जिसके सिद्ध होनेमें बरसो लग जाते या कई जीवन बीत जाते। लेकिन यही एकमात्र उपाय है।

यदि किसी घटना या परिस्थितिके समय — बातको आसान करनेके लिये, उदाहरणस्वरूप, सकटके समय — तुम जिस स्तरपर हो उसीपर रहकर सघर्ष करनेकी जगह, तुम एकदम एक बडी उडानमे बीचके सभी क्षेत्रोको, जो चेतनाकी सीढीके डडे है, लाघकर, अगर तुम सर्वोच्च क्षेत्रमें चले जाओ, जिसे श्रीअरविंद 'परात्पर' कहते है, अगर तुम उसके साथ, पूर्ण समर्पणकी स्थितिमे 'परात्पर' के साथ नाता जोड लो, तो फिर वे (भगवान्) सभी परिस्थितियोमे काम करेगे और सब कुछ बदल देंगे — यहातक कि यह ऐसी चीज होगी जिसे लोग चमत्कार कहते है, क्योंकि उनकी समझमें नही आता कि सब कुछ हो कैसे गया।

सीधे शिखरतक चढ़ना जानना ही एकमात्र रहस्य है।

तो बस अब?

तुम ध्यान चाहते थे...

१६ नवंबर, १९५५

माताजी 'योग-समन्वय' मेंसे "चार सहायताए" पढती है।

(एक बालकसे) तुमने अपने जन्मदिनके लिये कोई प्रश्न तैयार किया है?

जी, १८ का अर्थ क्या है?

१८ की संख्याका ?

यह इसपर निर्भर है कि उसे कैसे पढ़ा जाता है।

उसे १०+८ पढ़ा जाता है; उसे ९+९ पढ़ा जा सकता है; उसे १२+६ पढ़ा जा सकता है। और इनमेंसे हर तरह पढ़नेका एक अलग अर्थ है।

अगर हम १०+८ को लें, तो वह किसी एकदम अचल चीजका सूचक होता है: क्योंकि १० निष्क्रिय पूर्णताका सूचक है, किसी ऐसी चीजका जो पूर्णताको प्राप्त करके वहां रुक गयी है; और ८ है दोहरा घेरा, यानी कोई ऐसी चीज जो चौखटेमें बंद, घिरी हुई और सीमान्वित है, जो स्व-भावतः वहां रुक जाती है। तो अगर हम १० और ८ को एक साथ रखें तो सचमुच कोई ऐसी चीज बनती है जो उपलब्धि तो है लेकिन ऐसी जो समाप्त हो चुकी है।

दूसरी ओर, अगर हम ९+९ को लें, तो ९ सृजनकी प्रक्रिया है— स्वयं सृजन नहीं, बल्कि उसकी प्रक्रिया — और ९+९ सृजनकी एक ऐसी प्रक्रिया है जो जारी रहती है और एक अन्य सृजन प्रक्रियाके पीछे-पीछे आता है, यानी, एक ऐसा सृजन जो दोहरा है, इसमें विचार यह है कि वह अनिश्चित कालतक चलता रहता है। इससे हमें दो अर्थ मिलते हैं जो लगभग विरोधी हैं।

और अगर हम १२+६ लें, तो कोई बहुत अच्छी चीज बन जाती है। तुम जानते ही हो कि १२ क्या है, जानते हो न? यह धारणा और सृजन-में पूर्णता की संख्या है; और ६ नव सृजनकी संख्या है। तो अगर तुम १२ और ६ को साथ रखो, तो सचमुच तुम कोई बहुत ही विलक्षण चीज पा जाते हो।

हम अन्य संयोजन भी पा सकते हैं। लेकिन यह जरा ज्यादा पेचीदा हो जाता है।

अपने-आपमें १८ — यानी, १८ की संख्या — भौतिक उपलब्धिके लिये प्रयत्नरत चेतनाकी संख्या थी, ऐसी चेतना जो अपने-आपको भौतिक रूप-में चरितार्थ करना चाहती है, भौतिक रूपमें व्यक्त करना चाहती है।

तो अब तुम्हें कुछ मिल गया...

सामाजिक दृष्टिकोणसे १८ वयस्कता प्राप्त करनेके लिये पहली संख्या है, प्रथम वयस्कता; यानी, १८ के बाद तुम्हारी अपनी इच्छा होती है, तुम्हें सामाजिक दृष्टिकोणसे अपनी इच्छा रखनेका अधिकार होता है। स्पष्ट है कि यह बहुत मजेदार आरंभ-बिंदु है।

तो यह लो।

मधुर मां, क्या हर व्यक्तिकी संख्याका अर्थ उसके लिये अलग होता है ?

हां, तुम देना चाहो तो।

अगर तुम उसके बारेमें सोचो भी नहीं, तो उसका कोई भी अर्थ नहीं होता। महत्त्व इसका है कि तुम उसे कितना महत्त्व देते हो।

संख्याएं बोलनेका एक ढंग है। यह एक भाषा है, मनुष्यकी बनायी हुई सभी चीजों, सभी विज्ञानों, सभी कलाओंकी तरह, यह भी बोलनेका एक ढंग है, यह एक भाषा है। अगर तुम्हें इस भाषाको अपना लो तो यह जीवित, अभिव्यंजक, उपयोगी बन जाती है। जैसे सामान्यतः हमें अपनी बात समझानेके लिये शब्दोंकी जरूरत होती है — दुर्भाग्यवश इसमें सब प्रकारकी गड़बड़ें हो सकती हैं, फिर भी अभीतक हम उस स्थितिमें नहीं पहुंचे हैं जहां मौनमें बातचीत हो सके, जो, स्पष्टतः, बहुत ज्यादा ऊंची स्थिति होगी — हां, तो अगर तुम्हें संख्याओंको अपने जीवनमें अर्थ देना हो, तो वे तुम्हारे आगे बहुत-सी चीजें प्रकट कर सकती हैं। लेकिन चीज ऐसी है। यह ज्योतिषकी तरह है : अगर तुम अपने जीवनके साथ तारोंकी गतिविधिके संबन्धका अध्ययन करना चाहो तो तुम सब प्रकारकी जानकारी पा सकते हो।

मूलतः यह जाननेका एक तरीका है, एक पद्धति है, और कुछ नहीं। सत्य ज्ञान शब्दोंके परे, पद्धतियोंके परे, भाषाओंके परे, मौन तादात्म्यमें है। वस्तुतः वही एक ज्ञान है जो भूल नहीं करता।

और कुछ ?

इस बार काली पूजाके समय आपने हमें जो प्रार्थना दी थी, उसमें आपने कुछ संस्कृतमें लिखा है।

यह श्रीअरविंदका लिखा हुआ मंत्र है।

तो उन्होंने इस तरह क्यों लिखा है ?

उन्होंने यह क्यों लिखा है ?

तुम उन्हींसे क्यों नहीं पूछते ? शायद वे तुम्हें बतला दें।

यह एक आह्वान है। तुम इसका मतलब जानते हो? क्या तुम्हें ऐसा कोई मिला जो तुम्हें यह समझा देता? नहीं? ओह, सबसे पहले तुम्हें यही करना चाहिये था, यह पूछते कि इन चार शब्दोंका अर्थ क्या है।

नीचेका लिप्यन्तर: इसमें केवल दो ही है। उन्होंने अपने कागजपर लिप्यन्तर शुरू किया था और फिर उनका कागज... वह कागजका एक छोटा-सा पुरजा था, और उसपर सब कुछ लिखनेकी जगह न थी: इसलिये उन्होंने बंद कर दिया।

तुमने वह पढ़ा है? तुम्हें संस्कृत पढ़ना नहीं आता? तो अब तुम्हें ऐसा आदमी खोजना चाहिये जो तुम्हें बतला दे कि उसे कैसे पढ़ा जाता है; और फिर तुम्हें उसका अर्थ समझाये। उसके बाद तुम मुझसे पूछना कि उन्होंने यह क्यों लिखा। अभी नही!

मधुर मां, आपने जो कैल्डियन कहानी[1] लिखी है, क्या उसका काली पूजाके साथ कोई संबन्ध है?

हा, मेरे वत्स, क्योंकि काली पूजाके दिन मैं **हमेशा** "भागवत प्रेम"[2] के फूल बांटा करती हूं; क्योंकि महाशक्तिके सभी रूपोंमें काली सबसे अधिक प्रेम-भरी है; उन्हींका प्रेम सबसे अधिक सक्रिय और सबसे अधिक शक्तिशाली प्रेम है। इसीलिये मैं हर वर्ष काली पूजाके दिन "दिव्य प्रेम" की पंखुड़ियां बांटती हूं। तो स्वभावः वह व्याख्या कि 'भागवत प्रेम' को प्रकट करनेके लिये ये फूल क्यों चुने गये — यह व्याख्या काफी है।

माताजी, यह कौन-सा पुरुष था जिसके बारेमें आपने कहा है?

तुमसे किसने कहा कि वह पुरुष था?

मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा कि वह पुरुष था या स्त्री। मैंने "भागवत सत्ता" कहनेकी सावधानी बरती थी।

कौन था?

यह प्रागैतिहासिक कहानी है, अतः तुम्हें उसके बारेमें कोई जानकारी नहीं

---

[1]कहानी इस वार्ताके अन्तमें दी गयी है।

[2]गुलनार।

मिल सकती। यह कहीं लिखी हुई नहीं है। इसके लिये कोई लिखित दस्तावेज नहीं है।

हमने आज जो पढ़ा है उसके बारेमें तुम्हें कुछ नहीं पूछना?

मधुर मां, क्या व्यक्तिगत प्रयास हमेशा अहंकार-भरा होता है?

हां, तो देखो। फ्रेंच भाषा इतनी समृद्ध नहीं है जितनी कि हम आशा करते हैं। अंगरेजीमें दो शब्द हैं "सेलफिश" (स्वार्थपूर्ण) और "इगोइस्टिक" (अहंकारमय)। दोनोंका अर्थ एक ही नहीं है। तुम अंगरेजीमें इनका भेद जानते हो न? हां तो, यहांपर, फ्रेंच शब्द "इगोइज्म" अंगरेजीके "ईगोइज्म" (अहंकारमय) के अर्थमें है, "सेलफिशनेस" (स्वार्थपरता) के अर्थमें नहीं।

ऐसा प्रयास हो सकता है जो जरा भी स्वार्थपूर्ण न हो और फिर भी अहंकारमय हो, क्योंकि जैसे ही वह व्यक्तिगत होता है वह अहंकारमय हो जाता है — उसका मतलब यह कि वह अहंकारपर आधारित होता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह उदारतापूर्ण, सदय या निःस्वार्थ नहीं है अथवा वह संकीर्ण निजी उद्देश्यके लिये है। ऐसी बात नहीं है। वह बहुत निःस्वार्थ कामके लिये हो सकता है। लेकिन जबतक अहंकार है तबतक वह अहंकारपूर्ण रहेगा। और जबतक अपने निजी व्यक्तित्वका भाव है, तबतक वह स्वभावतः अहंकारपूर्ण होगा; वह अहंकारकी उपस्थिति पर आधारित होगा।

और इसे काफी लंबे समयतक चलना चाहिये, क्योंकि इसे तबतक बने रहना चाहिये जबतक व्यक्तित्व पूरी तरह रूप न ले ले, जबतक वह व्यक्तिगत पूर्णताकी एक स्थिति-विशेषतक न पहुंच जाय; तब अहंकारकी जरूरत नहीं रहती — लेकिन यह अधिकतम व्यक्तिगत विकास सिद्ध होनेसे पहले नहीं होना चाहिये।

यह बस, एक छोटा-सा काम नहीं है। यह बहुत समय और बहुत प्रयासकी मांग करता है। और जब तुम अपने विकासकी पूर्णता प्राप्त कर लो, जब तुम ऐसी व्यक्तिगत सत्ता बन जाओ जो सचमुच वैयक्तिक है, यानी, जिसमें और सबसे भिन्न होनेकी सभी विशेषताएं हैं — क्योंकि तत्त्वतः सारमें कोई दो व्यक्तित्व ठीक एक-से नहीं हैं — तब, तुम जो व्यक्तित्व हो, ऐकांतिक रूपसे जो व्यक्तित्व हो उसे अभिव्यक्त करनेमें जब सफल हो जाओ, जब तुम वैश्व सृष्टिमें ऐकांतिक रूपसे उसे चित्रित करनेमें सफल हो

जाओ, तो तुम अहंकारके गायब होनेके लिये तैयार होगे — उससे पहले नहीं।

इसके लिये कुछ लंबी अवधिकी जरूरत होती है, और प्रयास भी कम नहीं, एक काफी संपूर्ण शिक्षणकी जरूरत होती है। लेकिन इतना तैयार होनेसे पहले कि फिर अहंकारकी जरूरत ही न रहे, उससे बहुत पहले आदमी निःस्वार्थ हो सकता है। यह और बात है।

बरसोंसे, मैं अंगरेजीसे फ्रेंचमें अनुवाद करती आयी हूं — यानी, बहुत लंबे समयसे, शायद तीस-पैंतीस वर्षसे — मैंने यह कहनेके लिये दो शब्द खोजनेकी कोशिश की है जिनमें यह भेद स्पष्ट हो। मुझे अभीतक तो नहीं मिले, क्योंकि फ्रेंचमें तुम शब्द बना नहीं सकते, इसकी इजाजत नहीं है, यह एक दुर्भाग्य है! अंगरेजीमें तुम जितने शब्द गढ़ना चाहो गढ़ सकते हो, और अगर वे अच्छे और सुगढ़ हों तो वे स्वीकार कर लिये जाते हैं। लेकिन फ्रेंचमें, जबतक 'फ्रेंच अकादमी' किसी शब्दको अपने कोशमें मान्यता न दे, तबतक तुमसे कहा जायगा: "यह शुद्ध नहीं है।" इसलिये अभीतक मुझे ये शब्द नहीं मिले।

(एक बालकको देखते हुए) यह किसी शरारतपर उतारू है! (हंसी)

मधुर मां, अमीर आदमी कभी संतुष्ट नहीं होता, वह अधिक धन चाहता है; विद्वान अधिक ज्ञान चाहता है। क्या इससे यह पता लगता है कि वे भगवान्‌की खोजमें हैं?

वह जीवनमें चरमकी खोजमें है, यह तो स्पष्ट ही है। शायद वह समीपस्थ हो, मुझे पता नहीं।

यहां लिखा है: "निष्क्रियता और क्रियाशीलताके सभी अनुभवों, शांति और शक्ति, एकता और विभिन्नता, सभीमें उनका रस लेना, यही वह सुख है जिसे जीव, संसारमें अभिव्यक्त व्यष्टिगत अन्तरात्मा अस्पष्ट रूपसे खोज रही है।"

हां। लेकिन तुमसे धनके प्रेम, शक्तिके प्रेम या ज्ञानके प्रेमके बारेमें कुछ नहीं कहा गया। तुमसे भागवत 'प्रेम'के बारेमें कहा गया है; यह बिलकुल वही बात नहीं है। महत्त्वाकांक्षा या कामना, यहांतक कि अभीप्साका रस लेनेके बारेमें भी कुछ नहीं कहा गया; जिसके बारेमें कहा गया है वह है भागवत 'उपस्थिति'में रस लेना। यह एकदम भिन्न है; इनमें कोई समानता नहीं।

मैं स्वीकार करती हूं कि मैं भली-भांति तुम्हारे प्रश्नका मतलब नहीं समझ पायी। मेरा ख्याल है कि तुम भगवान्‌को वृद्धि, बढ़ती और विकासके साथ मिला रहे हो, है न? ज्यादा-से-ज्यादा अच्छे रूपमें लें तो प्रगतिके साथ। लेकिन यह एक ही बात नहीं है। शायद प्रगति वह नींव है जिसपर वर्तमान जगत्‌की रचना हुई थी, तुम इस तरह ले सकते हो; परंतु वह भगवान् नहीं है।

तुम क्या कहनेकी कोशिश कर रहे थे?

हर सत्ताके लिये किसी चीजकी प्यास होती है।

तो क्या किसी चीजके लिये प्यास भगवान् है? नहीं, मेरे वत्स। यह शुद्ध रूपसे कामना हो सकती है। किसी चीजके लिये प्यास भगवान् कैसे हो सकती है?

मैं भली-भांति देख सकती हूं कि तुम क्या कहना चाहते हो, लेकिन सचमुच तुम वह कहते नहीं: यानी, तुम अभीप्साकी आंतरिक ज्वालाको भगवान् कहते हो; अभीप्साकी यह आंतरिक ज्वाला जो कभी नहीं बुझती, जो हमेशा जलती रहती है, अधिकाधिक जलती है; जिसे भारतमें अग्नि कहते हैं, है न, तुम प्रगतिकी इच्छाको, अभीप्साकी शक्तिको भगवान् कहते हो। यह सच है कि यह भगवान्‌का एक पक्ष है, लेकिन यह भगवान् नहीं हैं। यह केवल एक पक्ष है, यानी, सत्ताका एक दिव्य तरीका।

मधुर मां, क्या व्यष्टिमें भूतकालीन विकास और वर्तमान स्वभाव मिलकर परिवर्तन लानेवाले उच्चतर स्तरके अंतिम हस्तक्षेपके बारेमें निर्णय करते हैं?

यह कैसा प्रश्न है? मैं उसे भली-भांति नहीं समझी।

विगत विकास? . . .

और वर्तमान स्वभाव . . .

. . . और वर्तमान स्वभाव? ये एक ही चीज नहीं है, ये दो अलग-अलग चीजें हैं।

जी नहीं, माताजी, चूंकि यहां लिखा है: "मनका द्वार, जिससे

हम उनकी (भगवान्की) परिकल्पनाकी ओर अग्रसर होते हैं अनिवार्य रूपसे प्रत्येक व्यक्तिके विगत विकास और वर्तमान स्वभावके अनुसार भिन्न होना चाहिये।"

हां, ये दो चीजें बिलकुल अलग हैं। यानी, पिछले जन्मोंका विकास और वर्तमान स्वभाव, यानी, वर्तमान शरीरकी प्रकृति, यही दोनों तुम्हारे भगवान्की ओर जानेके मार्गका निश्चय करते हैं।

हम एक बहुत . . . अति-सरल उदाहरण ले सकते हैं। अगर किसीका जन्म एक विशेष धर्ममें हुआ है, तो बिलकुल स्वभावतः भगवान्की ओर जानेका पहला प्रयास उस धर्मके अंदर ही होगा ; या फिर अगर पिछले जन्मोंमें व्यक्ति किन्हीं विशेष अनुभूतियोंमेंसे गुजरा है जिन्होंने उसके लिये कुछ अन्य प्रकारकी अनुभूतियोंको आवश्यक निश्चित कर दिया है, तो बिलकुल स्वाभाविक रूपमें वह उस मार्गका अनुसरण करेगा जो उन अनुभूतियोंकी ओर ले जाय।

चैत्य सत्ताका जीवन उत्तरोत्तर भौतिक जीवनोंमें हुई क्रमिक अनुभूतियोंसे बनता है। तो, इस बातको जरा बचकाने या रूमानी ढंगसे यूं कहा जा सकता है : तुम्हारे अन्दर ऐसा चैत्य है जिसने किसी-न-किसी कारणसे राजाओंको प्राप्त होनेवाले सभी अनुभव पानेके लिये जन्म लिया है— उदाहरणके लिये, उच्चतम शक्ति। जब उसे अनुभव हो जाते हैं, वह जो पाना चाहता था वह मिल जाता है, तो वह अपना शरीर त्यागनेसे पहले यह फैसला कर सकता है कि अगले जन्ममें वह एकदम मामूली और अजानी परिस्थितियोंमें जन्म लेगा, क्योंकि वह ऐसे अनुभव चाहता है जो साधारण परिस्थितिमें हो सकते हैं, ऐसी परिस्थितिमें, है न, जहां उसपर जिम्मेदारियोंका, उदाहरणके लिये, राज्योंके प्रमुखकी-सी जिम्मेदारियोंका भार न हो। तो बिलकुल स्वाभाविक रूपसे अगले जन्ममें वह ऐसी परिस्थितियोंमें पैदा होगा जो उसकी आवश्यकताओंको पूरा करें। और वह इस अनुभूतिके अनुसार भगवान्की ओर बढ़ेगा।

और इसपर, तुम जानते हो, वह दो भौतिक स्वभावोंके, और कभी-कभी दो प्राणिक स्वभावोंके मेलकी उपज होता है। इसका परिणाम न्यूनाधिक रूपमें इन स्वभावोंका मिश्रण होता है; लेकिन यही चीज वह वृत्ति लाती है जिसे चरित्र कहते हैं। हां तो, यह चरित्र उसे किसी क्षेत्र-विशेषके, किन्हीं अनुभूतियोंके श्रेणी-विशेषके योग्य बनायेगा।

तो जो पूर्व जन्मों या पूर्व जन्ममें नियत और निश्चित हो चुका है, और फिर जिस वातावरणमें वह पैदा हुआ है— यानी, उसका वर्तमान

शरीर जिन अवस्थाओंमें बना है — उसी वातावरणके अनुसार निश्चित मार्गमें, जो उसका अपना है, वह भगवान्‌की खोज करेगा और उनके पास जायगा। और स्वाभाविक रूपसे यह उसके पड़ोसीका या किसी भी और व्यक्तिका मार्ग बिलकुल नहीं है।

मैंने पहले कहा था कि हर व्यक्ति विश्वमें एक विशेष अभिव्यक्ति है, इसलिये, उसका सच्चा मार्ग एकदम अनूठा मार्ग होना चाहिये। सादृश्य होते हैं, साम्य होते हैं, श्रेणियां, परिवार, संप्रदाय और आदर्श भी, यानी, भगवान्‌की ओर जानेका एक विशेष सामुदायिक मार्ग होता है। इनसे एक प्रकारका संप्रदाय बन जाता है, मूर्त रूपमें नहीं बल्कि अधिक सूक्ष्म जगत्‌में — ये सब चीजें होती हैं — लेकिन मार्गका व्यौरा, योगका व्यौरा हर व्यक्तिके अनुसार, आवश्यक रूपसे, अलग-अलग होगा, और भौतिक रूप उसके वर्तमान ढांचेसे प्रभावित होगा, और प्राण, मन और चैत्यपर पिछले जन्मोंका असर होगा।

माताजी, क्या वर्तमान ढांचा उच्चतर लोकोंके हस्तक्षेपके बारेमें निश्चय करता है, ताकि वह चमत्कार दिखा सके?

यानी, क्या यह पूर्व-निश्चित होता है कि उच्चतर लोक...

उस दिन आपने कहा था कि वह पूरी तरह बदल सकता है।

हां।

तो अगर वर्तमान इसी तरह बना रहे...

लेकिन देखो! चलो, हम एक बिलकुल ही मामूली-सा उदाहरण लें जो बहुत ही एकांगी और उथला है। तुम भारतमें पैदा हुए हो। भारत-में पैदा होनेके कारण तुम एक विशेष प्रकारकी धार्मिक और दार्शनिक वृत्तिके साथ पैदा हुए हो। लेकिन अगर किसी-न-किसी कारणसे तुम अपने-आपको इस पुराण पंथसे और इस प्रभावसे मुक्त करना चाहो, अगर तुम किसी और देशके धर्म और दर्शनका अनुसरण, अध्ययन, अभ्यास शुरू करो, तो तुम अपने आंतरिक विकासकी परिस्थितियोंको बदल सकते हो। यह जरा ज्यादा मुश्किल है, यानी, इस मुक्तिके लिये अधिक परिश्रम-की जरूरत होती है, लेकिन यह असंभव बिलकुल नहीं है। वस्तुतः,

ऐसे बहुतसे लोग हैं जो ऐसा करते हैं, जो उस चीजसे छुटकारा पाना बहुत पसंद करते हैं जो उन्हें वर्तमान जन्मसे मिली है; किसी विशेष रुचिके कारण वे ऐसी चीज कहीं और खोजना चाहते हैं जिसके बारेमें उनका ख्याल होता है कि वह उन्हें अपने घरपर नहीं मिल सकती। और इस तरह तुम अपने जन्मके परिणामोंको पूरी तरह बदल सकते हो।

अब तुम मुझसे कह सकते हो कि नये और अज्ञातके लिये यह रुचि भी किसी पिछले जन्मसे आ सकती है; यह संभव है। लेकिन यह इस पर निर्भर है कि तुम्हारी सत्तामें प्रधान चीज कौन-सी है: वह पिछले चैत्य जन्मों और चैत्य निश्चयोंका परिणाम है या तुम्हारे वर्तमान गठन-का तात्कालिक परिणाम है।

लेकिन कभी-कभी ये वर्तमान गठन पहले जो था उसके प्रति-कूल . . .

प्रतिकूल? किस तरह प्रतिकूल? पिछले प्रभावोंसे प्रतिकूल? वह कभी प्रतिकूल नहीं होता। वह केवल पूरक होता है।

जब तुम्हें चीजें प्रतिकूल-सी मालूम हों, तो यह हमेशा इसलिये होता है क्योंकि तुम बहुत निचले स्तरपर रह गये हो। अगर तुम सीढ़ीके कुछ डंडे चढ़ना जानो, तो सभी प्रतिकूलताएं गुम हो जाती हैं, सब कुछ पूरक हो जाता है।

लेकिन मुझे जो चीज बढ़नेसे रोकती है वह प्रकृति है न?

जो तुम्हें रोकती है? . . .

वह बहुत लोगोंको रोकती है। यह बहुत सरल नहीं है।

यह मुक्तिका एक भाग है। मुक्ति तपस्याओंके द्वारा पायी जाती है, यह हमें मालूम है। लेकिन कुछ तपस्याएं ऐसी हैं जिन्हें करनेसे मनुष्य इंकार करते हैं, उदाहरणके लिये, यह (माताजी ओठोंपर उंगली रखती हैं)। वे बोलते, बोलते, बोलते — बहुत अधिक, बहुत ही अधिक बोलते हैं।

(माइकमें हवाकी आवाजें)

हम तूफानका दृश्य दिखानेवाले हैं! मंचपर बिजलीकी कड़क इसी तरह सुनायी जाती है।

तो लो, बच्चो। बस?

कौन **बहुत** मजेदार प्रश्न पूछना चाहता है?

मजेदार प्रश्न पूछनेके लिये तुम्हें मजेदार ढंगसे सोचना शुरू करना चाहिये।

माताजी, आप मजेदार प्रश्न किसे कहती हैं?

आहा! यह तो उत्तर देने लायक प्रश्न है। (हंसी) कोई ऐसी चीज जो नये उत्तरकी संभावना पैदा करती है और ज्ञानके किसी नये क्षेत्रकी ओर खुलती है।

उदाहरणके लिये, जब तुम मुझे कोई शब्द समझानेके लिये कहो, तो मुझे लगता है कि यह मजेदार प्रश्न नहीं है, क्योंकि तुम्हें केवल शब्द-कोश खोलना-भर होता है। जब तुम कोई ऐसा प्रश्न पूछते हो जिस-का उत्तर श्रीअरविंद दे चुके हैं या कोई और दे चुका है और वह किताबों-में छपा है, तो मुझे यह प्रश्न मजेदार नहीं लगता, क्योंकि तुम्हें बस, किताब खोलकर पढ़ना-भर होता है।

लेकिन, उदाहरणके लिये, जब तुम्हें कोई निजी अनुभूति हुई हो जिसे तुम भली-भांति नहीं समझ पा रहे, और तुम्हें उसके स्पष्टीकरणकी जरू-रत है, तब, तुम्हारा प्रश्न मजेदार हो सकता है।

(मौन)

कोई मजेदार प्रश्न नहीं है?

तो अभी दी गयी परिभाषाके अनुसार किसीके पास कोई मजेदार प्रश्न नहीं है...?

एक पुरानी कैल्डियन कथा

बहुत, बहुत समय पहले, उस रेगिस्तानमें, जो अब अरब है, पृथ्वीमें परम 'प्रेम' को जगानेके लिये एक भागवत सत्ताने अवतार लिया। जैसी कि आशा थी, मनुष्योंने उसे सताया, उसे गलत समझा, उसपर शंका की,

उसका पीछा किया। अपने आक्रमणकारियोंके द्वारा घातक रूपसे घायल हो, अपने कामको पूरा कर सकनेके लिये वह एकान्तमें शांतिके साथ मरना चाहती थी, और चूंकि उसका पीछा किया जा रहा था, वह भाग गयी। अचानक, उस विशाल रेगिस्तानने अनारकी छोटी-सी झाड़ी प्रकट हुई। उद्धारक उसकी निचली शाखाओंमें दुबक गया, ताकि वह अपना शरीर शांतिसे छोड़ सके; और तुरंत वह झाड़ी आश्चर्यजनक रूपसे फैल गयी, वह ऊंची हो गयी, चौड़ी हो गयी, गहरी और घनी हो गयी, जिससे कि जब पीछा करनेवाले वहांसे गुजरे, तो उन्हें यह शंकातक न हुई कि जिसका वे पीछा कर रहे है वह यहां छिपा है, और वे अपने रास्ते हो लिये।

बूंद-बूंद करके, धरतीको उर्वर बनाता हुआ जब वह पुण्य रक्त गिरा, तो झाड़ी अलौकिक, लाल, बड़े-बड़े पंखुड़ियोंसे भरपूर फूलोंसे ढक गयी.. मानों वे रक्तकी असंख्य बूंदें हों।

यही वे फूल हैं जो हमारे लिये 'भागवत प्रेम' को अभिव्यक्त करते और धारण करते हैं।

२३ नवंबर, १९५५

माताजी 'योग-समन्वय' मेंसे 'चार सहायताएं'
पढ़ती हैं।

मैं अंतिम भाग भली-भांति नहीं समझा।

कौन-सा अंतिम भाग, वत्स?

> **"...पूर्ण योगका साधक तबतक संतुष्ट न होगा जबतक वह अपनी धारणामें भगवान्‌के अन्य सभी नाम-रूपोंको न मिला ले..."**

हां।

क्यों? इसका अर्थ वही है जो इसमें कहा गया है। तुम इसमें क्या

नहीं समझे ? क्या नहीं समझते तुम ?

मैं अर्थ नहीं समझता।

(मौन)

लेकिन, मेरे वत्स . . . । तुमसे कहा गया है कि केवल एक ही सद्वस्तु है, और जो कुछ भी है वह केवल उसी एक सद्वस्तुकी बहुविध अभिव्यक्ति है। अतः, सभी भागवत अभिव्यक्तियां काल-चक्रमें उसने जितने भी रूप धारण किये हैं, उसे मनुष्योंके द्वारा जितने भी नाम दिये गये हैं, वे सब केवल अभिव्यक्तियां हैं, एकमात्र एकमेव भागवतके नाम-रूप हैं।

चूंकि मनुष्य बहुत सीमित होते हैं, इसलिये साधारणतः उनके लिये किसी और मार्गकी जगह एकका अनुसरण करना ज्यादा आसान होता है। लेकिन यह केवल छोटा-सा आरंभ है; अगर कोई ऊंचाइयोंपर पहुंचना चाहे, तो उसे सभी पथोंके द्वारा भगवान्‌को समान रूपसे पा सकना चाहिये, और यह समझ लेना चाहिये कि रंग-रूप चाहे जितने भिन्न हों, वह एक और वही भगवान् हैं।

श्रीअरविंद तुमसे यही कहते हैं : तुम तबतक रुक नहीं सकते, संतुष्ट नहीं हो सकते जबतक तुम **बिलकुल ठोस रूपसे** यह न अनुभव कर लो कि भगवान् केवल **एक** हैं, कि 'सद्वस्तु' केवल **एक** ही है, और यह कि तुम चाहे जिस कोणसे देखो, उसे पानेके लिये चाहे जो पथ अपनाओ, तुम हमेशा उसी, एकमात्र चीजको पाओगे। तो जो काफी विकसित है, जो, हम जिसे पूर्ण योग कहते हैं, उसका अनुसरण करनेके लिये काफी विशाल है, उसमें यह क्षमता होनी चाहिये कि सभी संभव पथोंसे भगवान्‌की ओर जा सके। अगर वह अपने-आप उनका अनुसरण न करना चाहे क्योंकि इसमें समय लगता है . . . यद्यपि विकासकी एक स्थिति तुम्हें इस योग्य बना देती है कि जो मार्ग सारा जीवन ले ले, वह कुछ ही दिनोंमें या कुछ घंटोंमें तय कर सको . . . फिर भी अगर तुम्हारे अन्दर इस प्रकारकी कसरतके लिये रुचि नहीं है, तो कम-से-कम तुम्हारी समझ इतनी खुली तो होनी ही चाहिये कि तुम्हें यह भान हो कि यह सब मौलिक रूपसे एक और अभिन्न वस्तु हैं। तुम उसे भले यह या वह नाम दे लो या कोई नाम न दो, समझे, या बहुत-से नाम दे लो, तुम हमेशा उसी चीजके बारेमें बोलोगे जो एकमेव भगवान् है, जो सब कुछ है।

नहीं पकड़ पा रहे ?

केवल मन और सीमित मानव चेतना भेद-भाव करते हैं। और इन भेद भावोंके द्वारा तुम गड़बड़में पड़ जाते हो। तुम केवल भेदोंके द्वारा ही पहचानते हो, और भेदोंका मतलब है भ्रामक बाह्य चेतना। जैसे ही तुम सचमुच अन्दर प्रवेश करते हो, तो तुरंत तुम्हें समग्र तादात्म्यका संवेदन होता और तुम्हें ये सब भेद बिलकुल बेतुके मालूम होते हैं।

मधुर मां, परम मानव और दिव्य मानवमें क्या फर्क है?

एक मानवताका शिखर है। "परम" का अर्थ है ऐसा मनुष्य जो मानवताके शिखरपर हो, यानी, पूर्ण मनुष्य।

दूसरा है मानव शरीरमें प्रविष्ट भगवान्। उसमें केवल शरीर, बाह्य रूप मानव होता है, चेतना नहीं। पहलेमें मानव चेतना ही पूर्णताको प्राप्त करती है।

बस?

उस तरफसे कुछ?

> **श्रीअरविंद यहां कहते हैं: "भागवत कार्य वह कार्य नहीं है जिसे अहंकारमय मन चाहता या जिसकी अनुमति देता है; क्योंकि वह (भगवान्) सत्यपर पहुंचनेके लिये भ्रांतिका, आनन्दतक पहुंचनेके लिये दुःखका, पूर्णतातक पहुंचनेके लिये अपूर्णताका उपयोग करते हैं।"**
>
> **कैसे?**

वैसे ही। जैसा आज संसार है।

उन्होंने आगे चलकर यह विस्तारसे समझाया है। वे कहते हैं कि मानव मन श्रद्धा रखना तभी स्वीकार करेगा जब भगवान् उसकी धारणाके अनुसार कार्य करें; और मनुष्यकी, भगवान् क्यों हैं इस बारेमें साधारण धारणा, निरंतर चमत्कारोंकी होती है—जिसे वह चमत्कार कहता है, यानी, ऐसी चीज जो बिना किसी कारण, बिना किसी तुकके होती रहे। तो, चूंकि वह ऐसी चीजकी उपस्थितिमें नहीं होता...। लेकिन यह उससे बहुत अधिक सूक्ष्म है...। अगर हम एक और ही जगत्से आते जहां चीजें बिलकुल ही अलग ढंगसे होती हों, जिसकी कल्पना करना भी हमारे लिये मुश्किल हो...जो इस तरहसे हो जिसका तर्क ही एकदम निराला हो—घटनाओंका, कारणोंका, कार्योंका और परिणामोंका

तर्क ही एकदम भिन्न हो—अगर हम अचानक एक ऐसे जगत्से इस जगत्में आ पहुंचें, तो हम जो कुछ देखेंगे, हमें बिलकुल चमत्कार मालूम होगा, क्योंकि हम घटनाओंके तर्कको न समझ पायेंगे।

जो कुछ होता है और जैसे होता है हम उसके अभ्यस्त हैं; यह बस, आदतकी बात है, क्योंकि पृथ्वीपर पहली सांस लेनेके समयसे हम चीजों-को इस तरह देखनेके अभ्यस्त हैं, और इसलिये हमें वे बिलकुल साधारण मालूम होती हैं, क्योंकि वे इसी तरहसे होती हैं। लेकिन अगर हम इस आदतसे बाहर निकल पायें, अगर हम चीजोंको किसी और दृष्टि-बिंदुसे देख सकें, तो हमें तुरंत उस प्रकारके चमत्कारिक प्रभावका अनुभव होगा, क्योंकि तब हम अभ्यासके अनुसार घटनाओंके तर्कको न देखेंगे।

हमें कार्य-कारणके एक विशेष तर्ककी, सभी चीजोंके परिणामोंकी, सभी गतिविधियोंके संबन्धके बारेमें अमुक आदत है। हमारे लिये वह यह तथ्य है जिसे हम, बिना सोचे-विचारे ही, स्वीकार करते हैं, क्योंकि हम हमेशा उसीके अन्दर रहते आये हैं। लेकिन अगर हम सदा उसके अंदर न रहे होते, तो हम उसे और ही ढंगसे देखते। और हम यह परीक्षण कर सकते हैं. अगर हम अभी जैसा जगत् है उसकी नियतिसे बाहर आ जायं—यह जगत् जो भौतिक, प्राणिक, मानसिक और थोड़े-से छिपे हुए आध्यात्मिक प्रभाव या संयोजनका मेल है, जो भी घटित होता है वह इन सबका मिश्रण है—अगर हम उस सबसे बाहर आ जायें (हम ऐसा कर सकते हैं), अगर हम भौतिक, जड़ जगत्से, जैसा कि वह है, ऊपर उठ जायें, और किसी और चेतनामें प्रवेश करें, तो हम चीजोंको **एकदम** अलग तरहसे देखेंगे।

और तब हम देखते हैं कि इन रंग-रूपोंके पीछे, जो हमें एकदम तर्क-संगत और बहुत स्वाभाविक, और लगभग अनिवार्य मालूम होते हैं, एक ऐसी क्रिया है जिसे अगर मनुष्यकी साधारण चेतनासे देखा जाय, तो वह **सारे समय** चमत्कारपूर्ण दिखायी देगी।

शक्तियों, चेतनाओं, गतिविधियों, प्रभावोंका हस्तक्षेप होता है जो हमारी सामान्य चेतनाके लिये अदृश्य और अगोचर होता है और वह परिस्थितियों-के सारे मार्गमें निरंतर परिवर्तन लाता रहता है।

हमें बहुत दूर जानेकी जरूरत नहीं है; इसे अनुभव करनेके लिये सामान्य चेतनासे, बस, एक कदम बाहर जाना ही काफी है। मैं पहले भी कई बार कह चुकी हूं कि अगर तुम अपने अन्दर चैत्य चेतनाको पा लो और उसके साथ एक हो जाओ, तो, तुम्हें तुरंत परिस्थितियोंके पूरे उलटावका अनुभव होता है और तुम सामान्यतः चीजोंको जिस रूपमें

देखते हो उससे एकदम भिन्न रूपमें देखोगे। क्योंकि तुम क्रियाके परिणामको न देखकर उस शक्तिको देखते हो जो काम कर रही है।

अभी तुम केवल शक्तियोंकी क्रियाके परिणामको देखते हो, और वही तुम्हें स्वाभाविक और तर्क-संगत मालूम होता है। केवल जब कोई असाधारण बात होती है — या जो तुम्हारे लिये असाधारण हो — तो तुम आश्चर्य करना शुरू करते हो। लेकिन अगर तुम चेतनाकी एक और ही अवस्थामें हो, तो अभी जो स्वाभाविक मालूम हो रहा है वह स्वाभाविक न रह जायगा। तुम देखोगे कि यह किसी और चीजका, तुम जिस क्रियाको देखते हो उससे भिन्न किसी क्रियाका प्रभाव है।

लेकिन शुद्ध जड़-भौतिक दृष्टिसे भी तुम कुछ चीजोंके लिये अभ्यस्त हो, वे तुम्हें समझायी गयी हैं: उदाहरणके लिये, बिजलीकी रोशनी, या यह कि एक बटन दबानेसे ही मोटरकार चल पड़ती है। तुम इसे समझा सकते हो, तुम्हें बतलाया गया है कि ऐसा क्यों होता है, इसलिये वह तुम्हें बिलकुल स्वाभाविक मालूम होता है। लेकिन मैंने ऐसे लोगोंके उदाहरण देखे हैं जो न जानते थे, जो बिलकुल अनजान थे। वे ऐसे स्थानसे आये थे जहां इन चीजोंका प्रवेश नहीं हुआ था। उन्हें अचानक एक मूर्ति दिखलायी गयी जो प्रकाशकी किरणोंसे चमक रही थी; वे पूजा भावसे एकदम घुटने टेककर बैठ गये: यह दिव्य अभिव्यक्ति थी।

और मैंने किसी औरको देखा है जो इसी हालतमें था। वह एक बालक था जो कुछ न जानता था। उसके सामने एक बटन दबाया गया और मोटर चल पड़ी; उसके लिये यह **बहुत बड़ा** चमत्कार था। हां तो, ऐसी बात है। तुम किन्हीं चीजोंके अभ्यस्त हो, वे तुम्हें बिलकुल स्वाभाविक मालूम होती हैं। अगर तुम्हें उनका अभ्यास न होता और तुम उन्हें देखते, तो उन्हें चमत्कार मान लेते।

अब जरा समस्याको बदलो। ढेर सारी चीजें हैं जिन्हें तुम अपने-आपको नहीं समझा सकते, बहुत सारे हस्तक्षेप हैं जो परिस्थितियोंकी गतिको बदल देते हैं, जिनकी ओर तुम्हारा ध्यान भी नहीं जाता। इसलिये तुम्हें हर चीज सामान्य, एकरस और बिना किसी विशेष महत्त्वकी मालूम होती है। लेकिन अगर तुम्हारे अन्दर ज्ञान होता और तुम यह देख पाते कि ये सब चीजें जो तुम्हें बिलकुल सामान्य मालूम होती हैं क्योंकि तुम उनके अभ्यस्त हो, जिनके बारेमें तुमने अपने-आपसे कभी यह भी नहीं पूछा: "यह इस तरह कैसे होती है?" — अगर तुम्हारे अन्दर ज्ञान होता, अगर तुम देख सकते कि वह कैसे होता है, कौन-सी चीज कार्य करती है और क्यों, उदाहरणके लिये, कोई ऐसी लापरवाहीसे काम करता,

है कि उसका सिर फट जाना चाहिये था, लेकिन वह फटा नहीं, जब कि भयंकर दुर्घटनाकी पूरी तैयारी मालूम होती है और वह नहीं होती, और ऐसी ही हजारों, लाखों चीजें जो हर रोज, हर जगह होती रहती हैं– उनके बारेमें अगर तुम्हारे अन्दर इतना पर्याप्त ज्ञान होता कि तुम देख सकते कि ऐसा क्यों होता है, तो उसी समय तुम कह सकते: "देखो, शक्तिके जैसी कोई चीज है, एक चेतना है, एक सामर्थ्य है जो कार्य करती है। वह भौतिक क्षेत्रकी नहीं है। भौतिक दृष्टिसे, तर्ककी दृष्टिसे, ऐसा होना चाहिये था, और ऐसा हुआ नहीं।" तुम कहते हो: "ओह! यह उसका सौभाग्य था", कहते हो न? और तुम संतुष्ट हो जाते हो, तुम्हारे लिये वही ठीक होता है।

(मौन)

वह अज्ञानी, सीमित, अहंकारी चेतना है जो चमत्कारोंकी मांग करती है। जिस क्षण मनुष्य प्रबुद्ध हो उठता है, वह जानता है कि सब जगह और हमेशा चमत्कार ही हो रहा है।

और मनुष्यको इस चमत्कार और इस 'कृपा' पर जितनी अधिक श्रद्धा हो, वह उसे सब जगह, जहां वह निरंतर उपस्थित है, देखने या अनुभव करनेमें उतना ही अधिक समर्थ होता है। अज्ञान और कृपामें श्रद्धाकी कमी, अन्धा अहंकार ही मनुष्यको देखनेसे रोकता है।

३० नवंबर, १९५५

माताजी 'योग-समन्वय' मेंसे 'चार सहायताएं' पढ़ती हैं।

'समय' मित्र कैसे होता है?

यह इसपर निर्भर है कि तुम उसे कैसे देखते हो। सब कुछ इसपर निर्भर है कि तुम्हारे साथ उसका संबन्ध कैसा है। अगर तुम उसे दोस्त मानो, तो वह दोस्त बन जाता है। अगर तुम उसे दुश्मन मानो, तो वह तुम्हारा दुश्मन बन जाता है।

लेकिन तुम यह नहीं पूछ रहे। तुम यह पूछ रहे हो कि जब वह मित्र हो तो आदमीको कैसा लगता है और जब शत्रु हो तब कैसा। हां तो, जब तुम अधीर हो उठो और अपने-आपसे कहो: "आह, मुझे यह करनेमें सफल होना चाहिये। लेकिन मै यह करनेमें सफल क्यों नहीं होता?" और जब तुम उसे करनेमें तुरंत सफल नहीं होते और निराश हो जाते हो, तो वह तुम्हारा दुश्मन होता है। लेकिन जब तुम अपने-आपसे कहो : "ठीक है, इस बार मैं सफल नहीं हुआ, मैं अगली बार सफल होऊंगा, मुझे विश्वास है एक-न-एक दिन मैं इसे कर लूंगा", तब वह तुम्हारा मित्र हो जाता है।

क्या समय केवल स्वानुभूतिमूलक है या वह व्यक्तित्वकी तरह कोई ठोस चीज है?

शायद यह भी इसपर निर्भर है कि तुम उसपर किस तरह विचार करते हो। सभी शक्तियां वैयक्तिक हैं; प्रकृतिमें सभी चीजें वैयक्तिक हैं। लेकिन अगर हम उन्हें अवैयक्तिक मान लें, तो उनके साथ हमारा अवैयक्तिक संबन्ध होता है।

उदाहरणके लिये अभी जो हुआ है उसीको लो। अगर तुम मौसम-विज्ञानी हो और अगर तुमने सभी वायु-प्रवाहों, आदि, को नाप रखा है, और कहते हो: "जब यह हुआ है, तो वह होगा, और इतने दिन वर्षा होगी, आदि।" तो यह तुम्हारे लिये एक शक्ति है जिसे हम प्रकृतिकी शक्ति कहनेके लिये बाधित हैं, और उसके लिये तुम कुछ भी नहीं कर सकते, सिर्फ चुपचाप देखते रहो और दिनोंकी अमुक संख्याके बीतनेकी प्रतीक्षा करो। लेकिन अगर तुम्हारा वैयक्तिक संबन्ध उन छोटी-मोटी सचेतन सत्ताओंके साथ हो जो आंधीके पीछे, तूफानके पीछे, वर्षा, बिजली-के पीछे, सभी तथाकथित प्रकृतिकी शक्तियोंके पीछे होती है, जो शक्तियां और वैयक्तिक शक्तियां हैं, अगर उनके साथ तुम्हारा वैयक्तिक संबन्ध हो और इस संबन्धके द्वारा तुम उनसे दोस्ती कर सको, तो उन्हें शत्रु और निर्दय यंत्र माननेकी जगह जिसके लिये तुम कुछ भी नहीं कर सकते, जिसे सह लेना ही एकमात्र उपाय है, शायद तुम उनके साथ जरा ज्यादा मैत्री-पूर्ण संबन्ध बना सकते हो और उनपर कुछ प्रभाव पा सकते हो और उनसे पूछ सकते हो: "तुम यह तूफान और मेह क्यों लाना चाहती हो, तुम यह सब कहीं और क्यों नहीं करतीं?"

और मैंने अपनी आंखोंसे देखा है... मैंने यहां देखा है, फ्रांसमें देखा है,

अलजीरियामें देखा है . . . वर्षा किसी विशेष और बिलकुल निश्चित स्थान-पर होती थी, और वह ठीक ऐसा स्थान होता था जहां वर्षाकी नितांत आवश्यकता थी, क्योंकि वह सूखा था और वहां एक खेत था जिसे पानी-की जरूरत थी, और एक और जगहपर . . . बस, इतनी ही दूरीपर जैसे यहांसे इस कमरेके उस छोरतक, उस जगह थोड़ा-सा स्थान था जहां धूप खिली थी, सब कुछ सूखा था, क्योंकि वहां धूपका होना जरूरी था। स्व-भावतः, अगर तुम वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी खोज करो, तो वे यह बात बहुत वैज्ञानिक ढंगसे समझा देंगे। लेकिन मैंने वस्तुतः इसे हस्तक्षेपके परि-णामस्वरूप देखा है . . . किसी ऐसे व्यक्तिके कारण जो यह करना जानता था और जिसने परिणाम पाया।

अलजीरियामें मैंने ऐसी कम चीजें नहीं देखीं, बड़ी ही मजेदार। और कहा जा सकता है कि चूंकि वहां जरा अधिक वास्तविक ज्ञानका एक विशेष वातावरण था, इसलिये वहां छोटी-मोटी सत्ताएं थीं, उदाहरणके लिये एक ऐसी सत्ता जो हिमपातका संचालन करती थी, जो हिम पैदा करती थी, जो आकर कमरेमें प्रवेश करके किसीसे यह सकती थी : "अब यहां बरफ गिरनी चाहिये !" (उस देशमें पहले कभी बरफ नहीं गिरी थी, कभी नहीं।) "बरफ ! तुम मजाक कर रहे हो। सहाराके इतने नजदीक बरफ पड़ेगी ?" "बरफ गिरनी ही चाहिये, क्योंकि लोगोंने यहां, पहाड़ोंपर देवदारूके पेड़ लगाये हैं, और जब हम देवदारू देखते हैं, तो आ जाते हैं। देवदारू हमें बुलानेके लिये हैं, इसलिये हम आ रहे हैं।" तो, देखो, इस तरह बहस हुई, और वह छोटी-सी सत्ता बरफ लानेकी स्वी-कृति पाकर चली गयी, और उसके जानेपर फर्शपर बरफके पानीकी डबरी बनी थी, बरफ पिघलकर पानी बन गयी थी। यह भौतिक चीज थी . . . पहाड़ बरफसे ढका हुआ था। अलजीरियामें ! वह सहारा रेगिस्तानके **बहुत नजदीक** है, तुम कुछ किलोमीटर उतरो तो सहारामें जा पहुंचोगे। किसीने खिलवाड़के लिये पहाड़ियोंको देवदारूके वृक्षोंसे ढक दिया था। "देवदारू ठण्डे देशोंके पेड़ हैं, तुमने हमें बुलाया क्यों ? हम आ रहे हैं।" यह सारी सच्ची कहानी है, यह मन-गढ़न्त नहीं है।

सब कुछ तुम्हारे संबंधपर निर्भर है। बहुत संभव है कि मौसमशास्त्री इसे भी समझा देते। मैं उसके बारेमें कुछ नहीं जानती। तुम जो चाहो उसे वे समझा देंगे।

(माताजीसे ऋतुओंके नियमित होनेके बारेमें प्रश्न किया गया, परंतु वह अच्छी तरह ध्वन्यांकित नहीं हो पाया।)

वस्तुतः, नियमितता क्या है ? मैं जानती हूं कि जबसे मैं यहां आयी हूं, मैंने सभी संभव चीजें देखी हैं, और कुछ ही दिन ऐसे थे — ऐसे दिन बहुत ही कम थे — जब मैं कह सकती थी : "लो ! गरमीकी पराकाष्ठा है, अब गरमियोंकी ऋतु है," और यह था नवंबरके शुरूमें। वह इस वर्षकी मईकी अपेक्षा बहुत अधिक गरम था। बस, हम इस तरह सोचते हैं : "अब गरमियां हैं ; उसके बाद पतझड़, फिर आयेगी ठण्ड।" और हम अपने-आपको उसके अनुकूल बना लेते हैं, लेकिन यह सच नहीं होता ! तो, देखा ! ऐसी चीजें होती हैं। यहांके लोगोंने मुझसे कहा था . . . मैं दूसरी बार अप्रैलके महीनेमें आयी थी . . पहली बार, पहली बार जैसा कि हम जानते हैं, मैं २९ मार्चको आयी थी, यानी अप्रैल उसके बाद आता है। उन दिनों यह माना जाता था : यहां कम-से-कम तीन महीने वर्षा **कभी नहीं** हुआ करती थी — पानीकी एक बूंद नहीं, सब कुछ सूख जाता था। छप्परपर जो पत्ते डाले जाते हैं वे इतने सूख जाते थे कि अचानक उनमें आग लग जाती और लपटें उठने लगती थीं। ऐसा ही हुआ करता था। मैं आयी और **जबर्दस्त** वर्षा ! तब लोगोंने मेरी ओर देखा (यहां लोगोंमें इस तरहकी धारणा-सी है कि चीजें पूरी तरह यांत्रिक नहीं होतीं, समझे)। "यह वर्षा कैसे हो रही है ?" तो मैंने उत्तर दिया : "पता नहीं, यह मेरा काम नहीं है, पर वर्षासे मेरी दोस्ती है।"

मैं दक्षिण फ्रांसमें पो नामक स्थानपर ऐसे समय गयी जब वहां कभी वर्षा नहीं हुआ करती — यानी, जिन लोगोंको अपने बचपनकी बातें भी याद थीं उन्होंने इन दिनोंमें पानीकी एक बूंद भी न देखी थी — वहां मूसलाधार वर्षा हुई।

मैं दक्षिण अलजीरिया गयी, स्वभावतः वहां खुश्की और बहुत तीव्र गरमी थी — वहां वर्षा शुरू हो गयी ! (हंसी)

और फिर यहां भी वही बात हुई। लोगोंने कहा कि इससे पहले इस तरह केवल एक बार ही वर्षा हुई थी . . . इससे ज्यादा मैं नहीं जानती . . . . प्रायः दो सौ वर्ष पहले। लोगोंको यह बात याद थी कि कोई आया था और वर्षा हुई थी, और उन्होंने इसे बहुत ही अच्छा शकुन माना। तो देखो, यह अपवादिक नियतिका चिह्न था। यहां लोगोंमें शुभ और अशुभके मुहूर्तका, शुभ घटनाओंका, अशुभ घटनाओंका विचार होता है। हां तो, जब कोई ऐसे समय आये जब वर्षा नहीं हुआ करती और वर्षा हो जाय, तो इसे बहुत शुभ घटना माना जाता है।

अतः चीजें वैसी होती हैं जैसे तुम उन्हें देखते हो। परंतु मैंने और चीजें भी देखी है जो इस तरहकी हैं, लेकिन वे बहुत सुखद नहीं होतीं।

जबसे मनुष्यने आविष्कार किया — आविष्कार नहीं, बल्कि खोज की है — तबसे उसने बच्चोंकी तरह ऐसी चीजोंके साथ खेलना शुरू किया है जिन्हें वह नहीं जानता था, और अणु बम और इससे भी बदतर चीजें बनायी हैं। इसने सचमुच इन सब छोटी सत्ताओंको **भयानक रूपमें** क्षुब्ध कर दिया है जो वस्तुतः एक अपनी निजी लयके अनुसार रहती थीं, और उन्हें कम-से-कम पूर्वदृष्ट घटनाओंको अपनी आज्ञामें रखनेकी आदत थी। इससे वे बहुत बहुत ज्यादा क्षुब्ध हो गयी हैं, उन्हें बहुत भयंकर रूपसे कष्ट हुआ है, और इससे वे अपना दिमाग गंवा बैठी हैं। अब उन्हें पता नहीं होता कि वे क्या कर रही हैं।

युद्धके अन्तमें एक ऐसा समय था जब वहां, ऊपर चीजें सचमुच **भयंकर रूपसे** अस्त-व्यस्त हो गयी थीं। वे एक प्रकारके विसंगतिमें रहती थीं; और चूंकि ये दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव जारी हैं, अतः वे अभीतक अपने आतंकसे निकल नहीं पायीं। वे संत्रस्त हैं। सचमुच लोग ऐसी चीजोंके साथ खेलते हैं जिन्हें वे केवल बाहरसे ही जानते हैं, यानी, वे बिलकुल नहीं जानते। वे बस इतना-भर जानते हैं कि उनका गलत उपयोग कर सकें। कुछ भी हो सकता है जिनमें दुर्भाग्यवश, उन महासंकटोंकी भी गिनती हो जाती है जिनके बारेमें बहुत पहले भविष्यवाणी की गयी थी। यह हो सकता है . . . यह निर्भर है . . . कि किसका हस्तक्षेप होगा।

कुछ करना चाहिये। मैंने तुमसे यह कहा था, मैंने कहा था : "अगर तुम नहीं चाहते कि वर्षा हो, तो प्रार्थना करो।" तुमने इसे मजाकमें लिया।

इस वर्षाका कारण क्या है?

ओह! ऐसा लगता है . . . कहीं कोई दोष हुआ होगा। किसीको नाराज किया गया है . . .। कौन नाराज हुआ है?

क्या हम पहली तारीखको जो करते हैं,[1] वह किसीको नाराज कर सकता है?

---

[1]पहली दिसंबरको आश्रम विद्यालयका जन्मोत्सव मनाया जाता है। उन दिनों यह क्रीड़ांगणमें ही होता था। दर्शक खुलेमें बैठा करते थे।

जो हम करते हैं उससे नहीं। निश्चय ही उससे नहीं। शायद हम जिस तरह करते हैं उसमें कोई ऐसी चीज हो। तुम चाहते हो कि मैं कुछ कहूं ...चीजोंके बारेमें अपने अनुभव...क्योंकि मुझे इस सबमें रस है, और मैं इसका अवलोकन करती हूं। दुर्भाग्यवश मैं दर्शकोंकी ओर हूं, मैं हस्तक्षेप नहीं करती। इन चीजोंमें मेरा हस्तक्षेप करवाना बहुत कठिन है। फिर भी, मैं जानना चाहती थी और मैंने अवलोकन किया...और यह...आज मैंने देखा, यह देखा...कैसे कहूं ?...तो, यह न देखा, न सुना, यह एक ही साथ देखा, सुना, जाना गया और वह सब जो तुम कहना चाहो।

और यह सारा काम जो तुमने किया है, जिसमें लगभग एक वर्ष लग गया, तुमने जो प्रयत्न किये हैं वे सब, तुमने जिन कठिनाइयोंपर विजय पायी है, तुमने यह सब दिव्य 'कर्म'को भेंटके रूपमें दिया है, है न, तुमने यह अपनी पूरी सचाई और सद्भावना, अपनी अधिक-से-अधिक क्षमता और पूर्ण सौहार्दके साथ किया है। हां, तुमने इसमें इतना दिया है जितना दे सकते थे, तुम एक हदतक सफल हुए हो। बहरहाल, तुमने चीजें उतनी अच्छी तरह की हैं जितनी अच्छी तरह कर सकते थे। तब एक मुस्कानके साथ "यह" जुड़ गया, यह वस्तुतः शरारत-भरी मुस्कान थी: "कुछ बेवकूफ बौड़म इसे देखते हैं या नहीं, इससे तुम्हारा क्या आता-जाता है ? अब तुमने काम कर लिया है, तुम उसे पूरा कर चुके, तुमने दिखा दिया कि तुम क्या कर सकते हो। कुछ बेवकूफ दर्शक उसे देख पाते हैं या नहीं इससे तुम्हें क्या ?" बात स्पष्ट थी, है न। मैं उसे व्यक्त कर रही हूं; उसे प्रकट करते हुए मैं उसमेंसे कुछ निकाल लेती हूं। यह चेतनाकी एक अवस्था थी, और तब, वस्तुतः, इसने मुझे थोड़ी-सी तकलीफ दी, क्योंकि...तकलीफ दी ! यह कहनेका तरीका है...मैंने अपने-आपसे कहा: "हे भगवान् ! आखिर अगर वह ऐसा है, तो हम निश्चित नहीं हो सकते कि वर्षा रुकेगी। क्योंकि सचमुच अगर इसका कोई महत्त्व नहीं है कि हजारसे अधिक लोग देखें कि हमने क्या किया है, अगर हमारी भेंट-पूजाको यथासंभव अच्छी-से-अच्छी और पूरे हृदयके साथ की गयी भेंट-पूजाके रूपमें स्वीकार कर लिया गया है, तो वृत्ति यही हो कि परिणामके बारेमें कोई चिंता न करें — हम परिणामकी परवाह नहीं करते। तो, शायद, वर्षा जारी रहे।"

मैं अपनी खोज किये जा रही हूं। मुझे पता नहीं कि क्या होनेवाला है। लेकिन बहरहाल, मुझे तुम्हें यह बतला देना चाहिये कि अभीतक मैंने वर्षाको रोकनेका कोई फैसला नहीं किया है। मैं अभीतक देखते रहनेकी स्थितिमें हूं। देखेंगे। बहरहाल, यह था मजेदार। मैंने कहा: "क्या कोई ऐसा व्यक्ति था जिसने इस चीजमें अहंकार-भरा या स्वार्थ-भरी भावना-

को ला घुसाया, जिसने इस चीजको उस तरह उचित वृत्तिसे नहीं किया जैसे करना चाहिये? दोष कहां है?" आदि। यह सब कुछ न था। हम-ने जो कुछ किया था उससे हम पूरी तरह संतुष्ट थे। काम अच्छी तरह किया गया था, उचित भावनाके साथ किया गया था, उतनी अच्छी तरह किया गया था जितना हमारे लिये संभव था। सभी खुश थे। कहींपर कुछ शरारत-सी थी। क्या वह शरारत थी? यह उससे बहुत ऊंची चीज थी: यह एक अवलोकन था। तो हम देखेंगे। जहांतक मेरा संबंध है, मुझे इन चीजोंमें मजा आता है। दुर्भाग्यवश बात ऐसी है कि मैं पक्ष नहीं ले सकती, मैं देखती हूं, और इसमें मुझे मजा आता है। (हंसी)

मुझे कहना चाहिये कि अगर मैं तुमने जितना परिश्रम किया है और जितनी अच्छी तरह किया है उसका ख्याल करूं, तो मैं अपने-आपसे कहती हूं: "ओह, ये बहुत प्यारे हैं। सचमुच उन्हें प्रदर्शन कर सकना चाहिये।" तो यह ऐसा ही है, समझे, ऐसा ही है। यह संकल्प नहीं है जो उठकर कहे: "हां, बस यही!" जब **वह** जाग उठे, तो सब कुछ ठीक चलता है, सभी, ऊपरकी वे छोटी-छोटी सत्ताएं भी आज्ञापालन करती हैं। इसी-लिये मैंने तुमसे कहा था: "तुम्हें उनसे प्रार्थना करनी चाहिये", क्योंकि अगर तुम प्रार्थना करना शुरू करो — तुम — तो स्वभावतः तुम्हारी प्रार्थना-में मैं तुम्हारे साथ होऊंगी। तो यह बात है, यही तरकीब है। (हंसी)

क्या प्रयास सचमुच संतोषजनक था?

हां, देखो, अगर मैं अपने-आपको मानव क्षमता और क्या किया जा सकता है उसके बाहरी दृष्टिकोणपर रखूं, तो मुझे कहना पड़ेगा: "इससे अच्छा किया जा सकता है।" लेकिन **यह** चीज उसे नहीं देखती। यह वह चीज है जिसके बारेमें मैंने तुमसे कल कहा था, जो, प्रयासको उसके ज्यादा गहरे अर्थमें, की गयी भेंट-पूजाके अर्थमें लेती है।

हम जानते हैं, हमने कई बार कहा है कि समस्त कार्य शरीरद्वारा की गयी प्रार्थना है और काममें भगवान्के प्रति समर्पणकी भावना ही सच्ची वृत्ति है। हां तो, चीज जिस तरह की गयी उससे **यह चीज** संतुष्ट थी। क्योंकि मैं देख रही थी, जैसा कि मैंने कहा, मैं देख रही थी कि क्या ऐसी चीजें हैं जो वैसी नहीं हैं जैसा उन्हें होना चाहिये। लेकिन बहरहाल, उस चेतनाकी आंखोंमें जो देख रही थी, यह संतोषजनक था। भौतिक रूपसे, मैंने कहा, "बाहरी मानव चेतनामें यह बहुत ज्यादा अच्छी तरह किया जा सकता है।" यह तो जानी हुई बात है, हम पूर्णताके शिखरतक नहीं पहुंचे

हैं, उससे बहुत दूर हैं, लेकिन साथ ही यह भी कहना चाहिये कि यह हमारे क्रिया-कलापका केवल एक छोटा-सा भाग है... हम इससे बहुत अधिकके लिये कोशिश कर रहे हैं, यह हमारी साधनाकी गतिविधियोंमेंसे केवल एक है, समझे। हम इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी चीजोंमें व्यस्त हैं... बहुत-सी चीजोंमेंसे एक चीज... और इस तरहकी किसी चीजको मानव पूर्णताके विधानकी मांगके अनुसार पूर्णतातक पहुंचानेके लिये अनन्तगुने अधिक समय, अनंतगुने अधिक काम और अनंतगुने अधिक साधनोंकी जरूरत होती। लेकिन हम किसी एक या दूसरी चीजमें ऐकांतिक पूर्णताकी खोज नहीं कर रहे; हम सभी चीजोंको एक साथ, एक समान, सर्वांगीण पूर्णताकी ओर आगे बढ़ानेकी कोशिश कर रहे हैं। और इन चीजोंका अपना स्थान और महत्त्व होता है, लेकिन उनका ऐकांतिक स्थान या महत्त्व नहीं है। अतः, बाह्य दृष्टिकोणसे, व्यक्ति आलोचना कर सकता है, टीका, आदि कर सकता है; लेकिन यह सच्चा दृष्टि-बिंदु नहीं है। अंदरसे, यह ठीक है।

देखो, उन आगन्तुकों, अजनबियों, दर्शकोंके साथ हमेशा ऐसा होता है जो सामान्य मनुष्यकी मानसिक रचनाओंके साथ आते हैं। वे यहां आते हैं और कहते हैं : "ऊंहूं, ऊंहूं, ऊंहूं, यहां कुछ भी विलक्षण नहीं है, यह इतना असाधारण नहीं है, इन सबकी क्षमताएं औसत दर्जेकी हैं।" लेकिन यह इसलिये क्योंकि वे उनकी तरह सोचते हैं जिन्हें मैं मंद बुद्धि कहती हूं, जिनकी चेतना एकदम साधारण होती है; लेकिन अगर वे बाहरी रूपरंगके पीछे वस्तुओंकी वास्तविकता देख सकें, तो वे देखेंगे कि यह इतना सरल नहीं है, कि कोई और चीज है जो सब मिलाकर एक ऐसी उपलब्धिकी ओर बढ़ रही है जो उनकी छोटी धारणाओंके एकदम परे है; इसे वे देख नहीं पाते। और शायद इसीलिये... यह चीज जो मुझे उत्तर दे रही थी, उसने कहा : "लगभग हजार मूर्ख तुम्हारे किये गये प्रयासको देखें या न देखें इससे तुम्हें क्या?" क्योंकि सचमुच यह... एक बात निश्चित है, अगर तुम वस्तुओंके गहन विधानको देखो, अगर तुम मानव धारणाओंको एकदम पार कर जानेवाली किसी चीजको चरितार्थ करनेके लिये किसी उच्चतर चेतनाके संपर्कमें हो, तो तुम्हारे लिये किसी मनुष्यकी रायका क्या अर्थ हो सकता है? यह तो ऐसा होगा जैसे तुमने किसी विज्ञानकी समस्याको सुलझाया हो और तुम उसका मूल्य किसी कुत्तेसे पूछ रहे हो। इसका तुम्हें ख्याल भी न आयेगा, आयेगा क्या? तुम जानते हो कि कुत्तेमें वे तत्त्व नहीं हैं जो तुम्हारी वैज्ञानिक समस्याका मूल्यांकन करनेके लिये जरूरी हैं। यहां और भी अधिक भेद है... आध्यात्मिक जीवन और भागवत उपलब्धि क्या है इसकी लोगोंको जरा भी धारणा नहीं है, और स्वभावतः

अपने अज्ञानके कारण वे आकर इस सबका मूल्यांकन बड़ी आसानीसे करते हैं। तुम क्या करते हो या नहीं करते, उसके करनेके तरीके के बारेमें, तुम कैसे जीते हो, इन सबके बारेमें वे कुछ नहीं समझते और बिलकुल कुछ नहीं देखते।

इसलिये जो लोग आकर पूछते हैं कि 'श्रीअरविंद अन्तर्राष्ट्रीय विश्व-विद्यालय'[1] में कौन-सी उपलब्धियां मिलती हैं, उनको मैं उत्तर देती हूं: "तो, जाओ, जाकर देख लो, बहुत-से विश्व विद्यालय हमारे विश्व विद्यालयसे कहीं अच्छे हैं। उनके पास ज्यादा अच्छे साधन हैं, उनमें ज्यादा अच्छी व्यवस्था है। हमारे यहां कुछ भी नहीं है, यह बस, समुद्रमें एक बूंद है। तो जाओ, हर जगह बहुत-से हैं, भारतमें भी बहुत-से, सभी बड़े देशोंमें बहुत-से हैं, हमारे विश्वविद्यालयसे अनंतगुना महत्त्वपूर्ण, अधिक अच्छे विश्व विद्यालय हैं। तो वहीं जाओ। तुम्हें जिस चीज़की जरूरत है वह वहां तुम्हें बहुत अधिक मिल जायगी।" इसीलिये हम अन्य संस्थाओंके साथ प्रतियोगितामें नहीं उतरते।

तो, माताजी, इन दर्शकोंके प्रति हमारी क्या मनोवृत्ति होनी चाहिये ?

उनके साथ पूरे हृदयसे प्रेम करना चाहिये, मेरे बच्चो, और यह इच्छा रखनी चाहिये कि वे प्रकाशमें जन्म लें। यही एकमात्र चीज है, समस्याको हल करनेका यही एकमात्र तरीका है। अगर वे अंट-शंट बोलने लगें तो तुम सभ्य-शिष्ट हो सकते हो — उनका विरोध मत करो, उनसे कुछ भी मत कहो। सबसे बढ़कर, तुम्हें बहस करने और उन्हें कायल करनेकी कोशिशसे बचना चाहिये, क्योंकि यह एक असंभव प्रयास है। तुम्हें उनकी प्रशंसाओं और उनकी आलोचनाओंके प्रति बिलकुल उदासीन होना चाहिये। आलोचनाके प्रति उदासीन होना, प्रशंसाके प्रति उदासीन होनेकी अपेक्षा ज्यादा आसान है।

जब मादाम दाविद नील — मैं उनके बारेमें कह चुकी हूं न ? मादाम दाविद नील जो उग्र बौद्ध और बौद्ध धर्मकी प्रकाण्ड पंडिता हैं — तो जब वे भारत आयीं तो कुछ साधुओं और गुरुओंसे मिलने गयीं — मैं तुम्हें नाम नहीं बताऊंगी, लेकिन वे एकके पास गयीं जिन्होंने उनकी ओर देखा और पूछा . . . क्योंकि वे योग और निजी प्रयास आदिके बारेमें बातचीत

---

[1] अब श्रीअरविंद अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केंद्र।

कर रहे थे ... उन्होंने उनकी ओर देखा और पूछा : "क्या तुम आलोचनाके प्रति उदासीन हो ?" तो उन महिलाने शास्त्रीय उदाहरण देते हुए कहा, "क्या हम कुत्तेके भौंकनेकी परवाह करते हैं ?" लेकिन यह घटना सुनाते हुए उन्होंने मुझे विनोदपूर्वक कहा : "सौभाग्यवश उन्होंने मुझसे यह नहीं पूछा कि मैं प्रशंसाके प्रति उदासीन हूं या नहीं, क्योंकि वह बहुत ज्यादा कठिन है !"

फिर भी, बात यह है। स्वभावतः तुम्हें यह सोचनेसे बचना चाहिये कि तुम जरा भी श्रेष्ठ हो, और मैं तुम्हें बतलाती हूं कि क्यों। क्योंकि मैंने अभी तुमसे किसी चीजके बारेमें, एक आंतरिक सिद्धिके बारेमें कहा है, लेकिन मैंने क्या कहा यह बतलानेमें तुम लगभग पूरी तरह असमर्थ होगे, कुछ थोड़े-से अस्पष्ट और अयथार्थ वाक्य ही बोल पाओगे। तुम अस्पष्ट रूपमें, कुछ यूं ही जानते हो कि हम कुछ करनेकी तैयारीमें हैं, लेकिन वह क्या है और हमें किधर लिये जा रही है और वे कौन-से आंतरिक परिवर्तन हैं जो हमें साधारण मानवजातिसे जरा अलग कर सकते हैं, उनके बारेमें तुम सचेतन नहीं हो, और अगर मैं तुमसे उन्हें समझानेके लिये कहूं, तो तुम बहुत ज्यादा बेचैनीका अनुभव करोगे। तो, जैसे सत्तामें होता है, केवल चेतनाकी ही गिनती है, तुम्हें अपने-आपको श्रेष्ठ बिलकुल न समझना चाहिये।

क्योंकि — दोमेंसे एक चीज — तुम अपने-आपको तबतक श्रेष्ठ नहीं समझ सकते जबतक कि तुम असचेतन न होओ। जिस क्षण तुम सचमुच सचेतन हो जाते हो उसी क्षण तुम श्रेष्ठता और हीनताका भाव एकदम खो देते हो। तो, दोनों हालतोंमें, तुम्हें अपने-आपको श्रेष्ठ न समझना चाहिये, — क्योंकि यह क्षुद्रता और ओछापन है — सद्भावना और सहानुभूतिसे भरा हुआ अनुभव करो और लोग क्या कहते हैं और क्या नहीं कहते उसकी जरा भी परवाह न करो, लेकिन सभ्य-शिष्ट होओ, क्योंकि अशिष्ट होनेकी अपेक्षा शिष्ट होना हमेशा अच्छा होता है। इस तरह तुम अपने-आपको अधिक सामंजस्यपूर्ण शक्तियोंके संपर्कमें रखते हो और कुरूपता तथा विनाशकी शक्तियोंके विरुद्ध ज्यादा अच्छी तरह युद्ध कर सकते हो, इनके अतिरिक्त और किन्हीं कारणोंसे नहीं, क्योंकि हम सामंजस्य पसंद करते हैं और उसे बनाये रखना ज्यादा अच्छा है; लेकिन तत्त्वतः तुम्हें इस सबसे बहुत अधिक ऊंचा होना चाहिये और तुम्हें केवल भगवान्‌के साथ अपने संबन्धमें, वे तुमसे क्या चाहते हैं और तुम उनके लिये क्या करना चाहते हो, इसमें रस लेना चाहिये। क्योंकि **यही** एकमात्र चीज है जिसका महत्त्व है। बाकी सबका कोई महत्त्व नहीं।

ऐसे लोग हैं जो अपनी श्रेष्ठता दिखलाना चाहते हैं। यह प्रमाणित करता है कि वे बहुत छोटे हैं। आदमी अपनी श्रेष्ठता जितनी अधिक दिखाना चाहे, उतना ही अधिक प्रमाणित होता है कि वह बिलकुल छोटा है। देखो, एक छोटा बच्चा जो अपनी ओर देखे बिना, यह देखे बिना कि वह कैसे जीता है, सरल-भावसे जीता है, वह तुमसे अधिक महान् है क्योंकि वह सहज है।

तो, यह रहा। अब, तुम्हें मुझसे कुछ पूछना है?

नहीं, कुछ नहीं?

यह कैसे संभव है कि सद्भावनाकी बड़ी राशिके साथ लगभग पूर्णतासे की गयी चीज एक छोटी-सी दुर्भावनासे बिगड़ जाती है?

कि जरा-सी दुर्भावना सद्भावनाके सारे कार्यको बिगाड़ देती है? किसने कहा यह?

यह बहुधा होता है।

(माताजी शिष्यकी बात अच्छी तरह सुन नहीं पायीं।)

यह हमेशा होता है?

'पत्रों' में श्रीअरविंद कहते हैं 'अतिमन' उतर सकता था लेकिन आश्रमके लोगोंकी दुर्भावनाके कारण उसे वापिस जाना पड़ा।

लेकिन निश्चय ही मैंने यह कभी नहीं देखा। मैं स्वीकार करती हूं कि मैं नहीं समझ पाती। बल्कि मैं तो देखती हूं कि बात एकदम उल्टी है, कि ढेर सारी दुर्भावनाएं भी क्यों न हों, अगर कहींपर केवल एक सद्-भावना है (हंसी), तो वह 'कृपा' को सक्रिय बनाती है और सब कुछ ठीक हो जाता है।

आपने जो अभी कहा था...

उसका इसके साथ कोई संबन्ध नहीं है।

अगर एकाग्रता हो...

मैंने क्या कहा था ? अरे, मै भूल रही हू मैं असभव चीजें सुन रही हू। वह क्या था ?

(पवित्र) : **एक अवलोकन।**

किस चीजका अवलोकन ?

(शिष्य कुछ बुदबुदाता है, पर माताजी नही सुन पातीं।)

क्या तुम समझ रहे हो कि वह क्या कह रहा है? मै तो नही समझी।

(एक बालक) : **उसने इसे दुर्भावना समझ लिया।**

वह बिलकुल कुछ भी नही समझा, मैंने जो कहा था उसमेंसे कुछ भी नही समझा। बिलकुल नही, एकदम नही। यह वह हर्गिज नही है। यह वह बिलकुल नही है। वह नीचेसे नही आया। तुम्हारी चेतना जहातक पहुच सकती है, वह उससे बहुत ज्यादा ऊचे स्तरसे आया था। वह दुर्भावना नही है, बिलकुल बिलकुल नही

मै जो कहती हू, लोग उसे इसी तरह समझते हैं! मुझे सचमुच साव-धान रहना चाहिये! है कोई और जिसने इसी तरह समझा हो? (एक बालकसे) तुमने भी इसी तरह समझा था, है न? (हसी)

देखो, मुझे इसका ख्यालतक नही आया। वह जो कहना चाहता था उसमें मै **कुछ भी नहीं** समझी। वह इतना भिन्न था। अगर मैंनें क्षण भरके लिये भी यह सोचा होता कि इसे यू समझा जा सकता है, तो मै कभी कुछ न कहती।

अच्छा!

तो बस, मेरा ख्याल है कि आजके लिये इतना काफी है ..

हम आलोचनाके प्रति उदासीन कैसे हो सकते हैं ?

अपनी चेतनामें सीढीके जरा ऊपर चढकर, चीजोंको जरा ज्यादा विशाल, जरा ज्यादा व्यापक रूपमें देखकर। उदाहरणके लिये, किसी विशेष समय कोई चीज तुम्हे पकड लेती है, तुम्हे यू जकड़ लेती है, तुम्हें सख्ती-से पकडती है, खूब दबाकर, और तुम पूरी तरह चाहते हो कि वह हो, और तुम किसी भयानक बाधाके विरुद्ध लड रहे हो, किसी ऐसी चीजके

विरुद्ध जो उसे होनेसे रोकती है; अगर ठीक उस समय तुम बस यह अनुभव करना शुरू करो, यह अनुभव करो कि इस वर्तमान क्षणसे पहले लाखों-करोड़ों वर्ष बीत चुके हैं, और लाखों-करोड़ों वर्ष आयेंगे, उन सबके साथ मिलाकर देखो कि इस जरा-सी घटनाका क्या महत्त्व है— आध्यात्मिक चेतना या किसी और चीजमें जानेकी जरूरत नहीं है, सिर्फ देश और कालके साथ नाता जोड़ो, वह सब जो पहले हो चुका है, वह सब जो बादमें आयेगा और वह सब जो इस समय हो रहा है—तो अगर तुम मूर्ख नहीं हो, तो अपने-आपसे कहोगे : "ओहो, मैं तो ऐसी चीजको महत्त्व दे रहा हूं जिसका कोई महत्त्व नहीं है।" तुम आवश्यक रूपसे यह देखोगे। वह चीज तुरंत अपना मूल्य खो बैठती है।

अगर तुम केवल सृष्टिकी विशालतापर नजर डाल सको, समझे— मैं अभी आध्यात्मिक ऊंचाइयोंपर उठनेकी बात नहीं कर रही—सिर्फ देश और कालमें सृष्टिकी विशालताको देख सको, और इस छोटी-सी घटनाको देख सको जिसे तुम इतना महत्त्व देकर उसपर एकाग्रचित्त हो रहे हो... मानों वह कोई महत्त्वपूर्ण चीज हो... तो एकदम वह यूं करती है (संकेत) और विलीन हो जाती है, अगर तुम सचाईसे करो। अगर स्वभावतः, तुम्हारा एक भाग तुमसे कहे : "ओह, लेकिन मेरे लिये इसका महत्त्व है", तब तो तुम्हें बस, उस भागको पीछे छोड़ देना चाहिये और अपनी चेतनाको, जैसी वह है वैसा ही रखना चाहिये। लेकिन अगर तुम सचाईके साथ चीजोंका सच्चा मूल्य देखना चाहो तो यह बात आसान है।

जानते हो, दूसरे तरीके भी हैं। एक चीनी संतने सलाह दी है कि तुम घटनाओंके ऊपर उस तरह लेट जाओ जैसे कोई समुद्रमें पीठपर उतराता है, समुद्रकी विशालताकी कल्पना करो और तुम अपने-आपको उसमें उतरानेके लिये छोड़ दो... लहरोंपर, समझे, मानों कोई आकाशका ध्यान करते हुए अपने-आपको बहनेके लिये छोड़ दे। चीनी भाषामें इसे "वू वी" कहते हैं। जब तुम यह कर सको तब तुम्हारी सब कठिनाइयां चली जाती हैं। मैं एक आइरिश आदमीको जानती हूं जो पीठपर लेटकर बाहरकी ओर देखता था, जहांतक हो सके तारों-भरी सांझको वह देखता था, आकाशका ध्यान करता था और कल्पना करता था कि वह अनगिनत ज्योतिर्मय बिन्दुओंकी विशालतामें उतरा रहा है।

और तुरंत सब कठिनाइयां शांत हो जाती हैं।

बहुत-से तरीके हैं। लेकिन सचाईके साथ, तुम्हें केवल... इतना काफी है कि तुम्हारे अंदर अपने क्षुद्र व्यक्तित्व और उसके साथ संबन्ध रखने-

वाली चीजोंको तुम जो महत्त्व देते हो और वैश्व विशालताके बीच सापेक्षताका भान रहे। स्वभावतः, एक और तरीका है, और वह है अपने-आपको पार्थिव चेतनासे मुक्त करके उच्चतर चेतनामें उठना जहां ये पार्थिव चीजें अपना सच्चा स्थान पा लेती हैं — जो बहुत छोटा-सा है, समझे।

लेकिन... वस्तुतः, एक बार, बहुत पहले, जब मैं पैरिसमें ही थी और प्रायः हर रोज मादाम दाविद-नीलसे मिला करती थी जो अपने ही विचारोंसे भरी रहती थीं, उन्होंने मुझसे कहा: "तुम्हें किसी क्रियाके बारे-में नहीं सोचना चाहिये, उसका अर्थ होता है क्रियाके लिये आसक्ति; जब तुम कुछ करना चाहो, तो इसका अर्थ है कि तुम अभीतक इस जगत्की चीजोंसे बंधी हो।" जब मैंने उनसे कहा: "नहीं, इससे आसान और कुछ नहीं है। तुम केवल उन सब चीजोंके बारेमें सोचो जो पहले की जा चुकी हैं और जो बादमें की जायेंगी और वे सब जो अभी हो रही हैं, तब तुम देख पाओगी कि तुम्हारी क्रिया बस एक सांस है, इस तरह, शाश्वततामें एक सेकंड, और तब तुम उससे आसक्त नहीं रह सकतीं। उस समय मैं गीताके मूल पाठको नहीं जानती थी। मैंने तबतक पूरी गीता नहीं पढ़ी थी, फिर भी देखो... (कुछ शब्द सुनायी नहीं दिये)... यह श्लोक नहीं है जिसका अनुवाद मैं अपने ढंगसे यूं करती हूं: "और समस्त कर्म-फलसे अनासक्त होकर कर्म करो।" वह इस तरह नहीं है, लेकिन फिर भी उसका मतलब यही है। मैं यह नहीं जानती थी, लेकिन मैंने ठीक वही बात कही जो गीतामें कही गयी है।

लेकिन तुम कार्य इसलिये नहीं करते क्योंकि तुम उसपर विश्वास करते हो; तुम कार्य करते हो क्योंकि तुम्हें कार्य करना चाहिये, बस यही। केवल, यह एक ऐसी अवस्था है जो बाह्य दृष्टिसे कभी-कभी कुछ खतर-नाक हो सकती है, क्योंकि परम अधिकारके साथ यह संकल्प करनेकी जगह कि वर्षा बन्द होनी चाहिये, तुम जो हो रहा है उसे देखते रहते हो। तो ऐसी बात है। लेकिन मैं तुमसे कहती हूं: "अगर तुम प्रार्थना करना चाहो, तो प्रार्थना करो।"

हम अब प्रार्थना कर सकते हैं। (हंसी)

वह बहुत हाजिर जवाब है!

अच्छा तो, बिजलियां बुझा दो। हम प्रार्थना करेंगे।

७ दिसंबर, १९५५

माताजी 'योग-समन्वय' मेंसे 'आत्म-निवेदन' पढ़ती हैं।

माताजी, मनुष्य अपना समर्पण तभी कर सकता है जब वह काफी ऊंचे स्तरपर पहुंच गया हो, लेकिन जब कोई लगभग निश्चेतन जीवन बिता रहा हो, तो उसका आत्म-निवेदन भी न्यूनाधिक मानसिक होगा, है न? और उसका कोई असर नहीं होता। तब क्या करना चाहिये? क्या हम एकदम शुरूसे आत्म-दान शुरू कर सकते हैं?

यह व्यक्तियोंपर निर्भर है, मेरे बालक।

ऐसे लोग हैं जिनमें चैत्य गतिविधि, भावमय आवेग बौद्धिक समझसे ज्यादा मजबूत होती है। वे बिना जाने भगवान्‌के लिये एक ऐसे आकर्षणका अनुभव करते हैं जिसका प्रतिरोध नहीं किया जा सकता। जरा भी ख्यालतक नहीं होता कि यह है क्या, वह क्या हो सकता है, वह किसका प्रतीक है — कुछ भी नहीं, कोई बौद्धिक धारणा नहीं होती — एक प्रकारका आवेग, आकर्षण, एक आवश्यकता, अनिवार्य आवश्यकता होती है।

और ऐसे लोग जिनमें यह चीज होती है — अगर मैं कह सकूं कि यह 'कृपा' के परिणामस्वरूप होती है — उनका मन ऐसा होता है जो उन्हें कष्ट नहीं देता, जो प्रश्न नहीं करता, बहस नहीं करता, वे बड़ी तेजीसे बढ़ते हैं।

और फिर, जो चीज साधारण विचारोंके अनुसार बिलकुल चमत्कारी है वह यह कि जैसे ही वे आत्म-निवेदनके उस स्तरतक पहुंचते हैं जहां वे अपनी चैत्य सत्ताद्वारा 'भागवत उपस्थिति' के साथ तादात्म्य पा लेते हैं, वैसे ही अचानक उनके अन्दर अभिव्यक्तिकी ऐसी क्षमताएं आ जाती हैं जो उनकी प्रकृतिके लिये बिलकुल अजानी थीं।

बहुत पहले, मैंने फ्रांसमें ऐसा एक उदाहरण देखा था, एक छोटी, बहुत छोटी लड़की थी जिसने, हम कह सकते हैं, कभी कोई शिक्षा नहीं पायी थी, कोई प्रशिक्षण नहीं पाया था; वह एक आपेरा नर्तकी थी और बहुत अच्छी थी। उसे आठ वर्षकी अवस्थामें नाच सीखनेके लिये भेजा

गया था, जैसा कि हमेशा किया जाता है, यानी बचपनमें; और उसने इतिहास, भूगोल, गणित और अन्य विषय सीखनेकी जगह नृत्य सीखा था। वह अपने-आपको व्यक्त करना नहींके बराबर जानती थी। उसकी बुद्धि थी तो स्पष्ट, पर थी अनगढ़। हां तो, वह इस तरह आकर्षित हुई और उसने भगवान्‌को खोजनेकी, अपने-आपको उनके प्रति उत्सर्ग करनेकी अदम्य आवश्यकताका अनुभव किया। और पहले उसने उनके मानमें 'नौत्र दाम' के नट[1]की तरह नाचना शुरू किया; और वह सचमुच विलक्षण रूपसे अच्छा नाचती थी। तब, अचानक, उसकी इच्छा हुई कि वह जो अनुभव करती है उसे अभिव्यक्त करे: उसने पत्र लिखने शुरू किये जो अद्‌भुत रूपसे काव्यमय थे; वह आश्चर्यजनक बातें और भी अधिक आश्चर्यजनक ढंगसे कहती थी; पन्ने-पर-पन्ने उलटते जाते और वह यह सब असाधारण सरलताके साथ लिखती चली जाती थी।

अब ऐसा हुआ कि कुछ परिस्थितियोंके कारण, उसके आगे कुछ कठिनाइयां आयीं, उसकी प्रकृतिमें कुछ ऐसी चीज थी जिसने उसे अपने पुराने स्वभावकी ओर खींचा जिसे वह छोड़ चुकी थी, जिसने उसे व्यावहारिक

---

[1]यह नट पैरिसके 'नौत्र दाम' गिरजाघरमें सेवक था, अनपढ़ लेकिन भक्ति-भावसे भरा हुआ। रोज वह गिरजाघरके पादरियोंको अपनी वेश-भूषामें आते, पूजा करते, बाइबलसे कुछ पढ़ते और गाते देखता। इसका मन भी 'मेरी' की मूर्तिके सामने कुछ करनेको तड़पता था; लेकिन न बेचारेके पास वैसा लिबास था, न वह पढ़ना और गाना ही जानता था।

एक दिन उसने निश्चय किया कि उसे और कुछ तो आता नहीं, इसलिये वह अपनी कला दिखाकर ही देवीको रिझायेगा। अब वह रोज दोपहरको सुनसान गिरजाघरमें निराले ढंगसे पूजा करने लगा। एक दिन उसकी चोरी पकड़ी गयी और बात मुख्य पादरीतक जा पहुंची। उन्होंने उसे कोई दण्ड देनेसे पहले खुद अपनी आंखोंसे देखना चाहा।

अगले दिन दोपहरको उन्होंने छिपकर देखा। नटने अपना प्रदर्शन शुरू किया। तरह-तरहकी कलाबाजियां कीं, गुलाटियां खायीं और अंतमें थककर चूर हो बैठ गया। और यह क्या! पादरीने देखा मूर्ति सजीव हो उठी। अपने स्थानसे निकल हथेलीसे नटके माथेका पसीना प्यारसे पोंछा और यथास्थान चली गयी। पादरीकी आंखें खुल गयीं और उन्होंने सच्चे भक्तको पहचाना। अब वह गिरजाघरका सेवक न रहा, 'मेरी' का अनन्य सेवक हो गया और उसने अपने निराले ढंगसे पूजा जारी रखी। —अनु०

और जड़वादी बना दिया और वह चीजोंको बाहरी रूपमें देखने लगी। और तुरंत वह दो शब्द जोड़नेमें भी असमर्थ हो गयी, वह वर्तनीकी अनगिनत भूलें किये बिना एक पंक्ति भी न लिख पाती थी।

जब वह प्रेरणाकी स्थितिमें होती थी तो वह एक भी भूल किये बिना, किसी बड़े लेखककी तरह लिखती थी; और जैसे ही वह उस स्थितिसे बाहर, सांसारिक चेतनामें आती थी, जीवनकी जरूरतों, हर क्षणकी आवश्यकताओं आदि की चेतनामें आती थी कि सब कुछ गायब हो जाता था। वह भूलें किये बिना एक पंक्ति भी न लिख पाती थी और वह बिलकुल अपरिष्कृत चीज होती थी।

तो देखो, यह प्रमाणित करता है कि अगर तुम सत्य-चेतनाको पा लो, तो फिर समाधान करनेके लिये कोई समस्या ही नहीं रह जाती। तुम्हें जो होना चाहिये, तुम वही हो जाते हो। तुम्हें जो जानना चाहिये, तुम जान लेते हो। और तुम्हें जो करना चाहिये, वह करनेकी सामर्थ्य तुम्हारे अन्दर होती है। और स्वभावतः इसका मतलब यह होता है कि ये सब तथाकथित कठिनाइयां तुरंत गायब हो जाती हैं।

मैं जिस लड़कीकी बात कह रही हूं, उसे नीचे खींचनेवाली चीज उसके अपने अंदर नहीं थी, वह किसी और व्यक्तिमें थी। और दुर्भाग्यवश, यही बहुधा होता है : आदमी जीवनमें कुछ ऐसे उत्तरदायित्वोंका भार ले लेता है जो उसे आगे बढ़नेसे रोकते हैं।

यही है मेरी कहानी।

अन्य लोग पहले समझते हैं, वे बहुत ज्यादा बुद्धि-प्रधान होते हैं, वे पढ़े-लिखे होते हैं, शब्दों और विचारोंके साथ खेल सकते हैं, वे सभी दर्शनों, धर्मों, सभी मानव कल्पनाओंके बारेमें बहुत बढ़िया भाषण दे सकते हैं, लेकिन शायद उन्हें एक कदम आगे बढ़नेमें बरसों लग जायेंगे। क्योंकि ये सब चीजें सिरमें चलती रहती हैं।

सिरमें बहुत-सी चीजें चलती रहती हैं। मैं पहले भी कई बार तुमसे कह चुकी हूं कि सिर एक सार्वजनिक चौककी तरह है। वहां हर तरहकी चीज प्रवेश पा सकती है, आती, इधर-उधर घूमती, बाहर जाती और बहुत-सी अव्यवस्था पैदा कर देती है। और जो लोग विचारोंके साथ खेलनेके अभ्यस्त होते हैं उन्हें आगे बढ़नेमें सबसे अधिक बाधा मालूम होती है। यह एक खेल है जो काफी मोहक और आकर्षक है; इससे तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम साधारण जीवनके स्तरपर बिलकुल मामूली नहीं हो; लेकिन यह पर कैंच देता है।

सिरमें पंख नहीं हुआ करते : हृदयमें होते हैं, यह . . . , हां, यह अनि-

वार्य आवश्यकता है। और किसी चीजकी गिनती नहीं है। यही सब कुछ है, केवल यही।

तो, आखिर, तुम विघ्न-बाधाओं और कठिनाइयोंके लिये तनिक भी परवाह नहीं करते। वे तुम्हारा क्या बिगाड़ सकती हैं? . . . उनकी कोई गिनती नहीं है। कभी-कभी तुम कालपर भी हंसते हो। अगर उसमें लंबा समय लगे, तो हर्ज ही क्या है? बहुत अधिक लंबे समयतक तुम्हें अभीप्साका, समर्पणका, आत्म-निवेदनका आनन्द मिलेगा।

क्योंकि यही एकमात्र सच्चा आनन्द है। और जब कोई अहंकारपूर्ण चीज हो, क्योंकि कोई मांग है जिसे व्यक्ति आवश्यकता कहता है, जो समर्पणमें घुली-मिली हो, तो यह आनन्द मुरझा जाता है। अन्यथा आनन्द कभी गायब नहीं होता।

यह पहली चीज है जिसे तुम प्राप्त करते हो, और यही अन्तिम है जिसे तुम चरितार्थ करते हो, और यह विजयका चिह्न है।

जबतक तुम आनन्दमें, सतत, शांत, निश्चल, प्रकाशमय, अपरिवर्तन-शील आनन्दमें न रह सको, हां, तबतक इसका मतलब है कि अभी अपने आपको शुद्ध करनेके लिये काम करना, और कभी-कभी कठोर परिश्रम करना बाकी है। लेकिन यह चिह्न है।

वियोगके भावके साथ ही कष्ट, दुःख, दुर्गति, अज्ञान, और सभी अक्षम-ताएं आयी हैं। केवल संपूर्ण आत्म-दानमें अपने-आपको भुला देनेसे ही और पूर्ण निवेदनके द्वारा ही दुःख गायब हो सकता है और उसकी जगह एक ऐसा आनन्द ले सकता है जिसे कुछ भी छिपा न सके।

और जब इस जगत्‌में यह आनन्द स्थापित हो जाय तभी जगत्‌का सच्चा रूपांतर हो सकेगा और एक नया जीवन, नयी सृष्टि, नयी उप-लब्धि हो सकेगी। पहले चेतनामें आनन्द स्थापित होना चाहिये, उसके बाद भौतिक रूपांतर होगा; पहले नहीं।

सच्ची बात तो यह है कि दुनियामें 'विरोधी शक्ति' के साथ ही दुःख आया। और केवल आनन्द ही उसे हरा सकता है—और कुछ भी उसे निश्चित रूपसे, सदाके लिये नहीं हरा सकता।

(लंबा मौन)

'आनन्द' ने ही सृजन किया है और 'आनन्द' ही उपलब्धि पायेगा।

(मौन)

ध्यान रखो कि मैं उस चीजकी बात नहीं कर रही जिसे मनुष्य आनंद कहते हैं, जो उसका विद्रूपतक नहीं है। मेरा ख्याल है कि जो आनन्द सुख, विस्मृति और उदासीनतासे आता है, वह लोगोंको रास्तेसे भटका देनेके लिये एक पैशाचिक अन्वेषण है।

(मौन)

मैं एक ऐसे आनन्दकी बात कर रही हूं जो पूर्ण शांति, छायाहीन प्रकाश, सामंजस्य, पूर्ण सौंदर्य, अप्रतिरोध्य शक्ति है, वह आनन्द जो अपने सार-तत्त्व, अपने 'संकल्प' और अपनी 'उपलब्धि' में स्वयं भागवत 'उपस्थिति' है।

माताजी, आप कहती हैं कि केवल आनन्द ही 'विरोधी शक्ति' पर विजय पा सकता है। लेकिन आनन्द पानेके लिये पहले 'विरोधी शक्ति' पर जय पानी होगी!

नहीं तो! तुम्हें उसके परे जाना होगा और उसकी उपेक्षा करनी होगी।

यह सत्य है, तुम्हें एक चीजसे शुरू करना चाहिये, यानी, अपने-आपको उसके प्रभावसे मुक्त करो। लेकिन अपने-आपको 'विरोधी शक्ति'के प्रभावसे मुक्त करने और 'विरोधी शक्ति' पर विजय पानेमें फर्क है। 'विरोधी शक्ति' को जीतना कोई छोटी बात नहीं है। उसे जीतनेके लिये तुम्हारे अन्दर उससे ज्यादा शक्ति होनी चाहिये। लेकिन तुम अपने-आपको उसके असरसे पूरी तरह मुक्त कर सकते हो। और जिस क्षण तुम उसके प्रभावसे पूरी तरह मुक्त हो जाओ, उसी क्षणसे तुम्हारा आत्म-दान पूर्ण हो सकता है। और 'विरोधी शक्ति' के सचमुच हारने और गायब होनेसे बहुत पहले, आत्म-दानके साथ आता है आनन्द।

'विरोधी शक्ति' तभी गायब होगी जब संसारके लिये उसका उपयोग न रहेगा। और हम भली-भांति जानते हैं कि वह जरूरी है — जैसे सोनेकी शुद्धि परखनेके लिये उसकी कसौटी।

लेकिन अगर तुम — चाहे कोई भी — सचमुच सच्चे बन जाओ, जिसे मैं सच्चा कहती हूं, जिसे श्रीअरविंद सच्चा कहते हैं, यानी, जब सत्तामें कोई चीज अभीप्सा और समर्पणकी इच्छाका विरोध नहीं करती, जब अपना स्वतंत्र निजी जीवन जारी रखनेके लिये कोई भी चीज छद्मवेश धारण नहीं करती। छद्मवेश अनगिनत हैं, वे चालाकी और द्वेषभरे

हैं, बड़े ही धोखेबाज। दुर्भाग्यवश मनुष्योंमें अपने-आपको धोखा देनेकी बहुत बड़ी सहजवृत्ति होती है; तुम अपने-आपको जितना अधिक धोखा देते हो, उतना ही कम उस तथ्यको पहचान पाते हो। लेकिन अगर तुम सचमुच सच्चे हो, तो 'विरोधी' तुम्हारे नजदीक फटक भी नहीं सकता; और वह उसकी कोशिश भी नहीं करता, क्योंकि वह अपने ही नाशको निमंत्रण देना होगा।

केवल, कुछ लोगोंमें एक प्रकारकी युद्ध-वृत्ति होती है। वे अपने-आपको मुक्त कर लेने और उसके प्रभावसे बाहर निकल आनेपर ही संतुष्ट नहीं हो जाते; वास्तवमें वे समझते हैं कि उनके अन्दर 'विरोधी' के साथ लड़ने और युद्ध करनेकी क्षमता है। तो कभी-कभी, अगर वे पूरी तरह तैयार नहीं होते, तो वे अपने-आपको बड़ी बुरी स्थितिमें, कठिन दुर्गतिमें फंसा लेते हैं।

ये लोग केवल भागवत 'कृपा' पर श्रद्धाके कारण ही बच पाते हैं। क्योंकि, अगर वे मूर्खतापूर्ण काम करें भी और कठिन परिस्थितियोंमें जा पड़ें, तो हमेशा कोई ऐसी चीज होगी जो आकर अंतिम क्षणमें, उन्हें गढ़ेमेंसे उबार लेगी। कुछ-कुछ मां-बिल्लीकी तरह जो अपने बच्चेको पकड़ कर डूबनेसे बचा लेती है क्योंकि उसने गलती की थी और पानीपर चलना चाहता था — वह उसे पकड़ती है, खींचती है, बाहर निकाल लेती है। कुछ-कुछ इसी तरह।

लेकिन हमेशा कहा जाता है कि भगवान्‌को परखो मत। मधुर भाषामें कहें तो तुम्हें कोई चीज अपक्व वीरताके साथ, इस विचारसे न करनी चाहिये : "आह, परवाह मत करो, भगवान् मुझे हमेशा कठिनाईमेंसे उबार लेंगे।" यह अच्छा नहीं है। क्योंकि सहायता करनेकी जगह यह कामको उलझा देता है।

तो बस। हो गया?

तुम कुछ क्षणोंके लिये नीरव रहनेकी कोशिश करना चाहते हो? मेरा मतलब है अन्दरसे। हां?

(ध्यान)

१४ दिसंबर, १९५५

माताजी 'योग-समन्वय' मेंसे 'आत्म-निवेदन' पढ़ती हैं।

मधुर मां, मैं यह अनुच्छेद अच्छी तरह नहीं समझा।

कौन-सा अनुच्छेद ?

"ऐसा लगता है कि इस जगत्‌की शक्तियां और उनकी वास्तविक गतिविधियां या तो भगवान्‌की बिलकुल नहीं हैं या किसी अंधकारमय और चकरानेवाले कारणसे, वह चाहे माया हो या कुछ और, दिव्य 'सत्य' का अंधकारपूर्ण निषेध हैं।"

एक प्रकारकी वृत्ति इसे पैदा करती है। उन्होंने यह पहले कहा है, कहा है न? वे उसे समझाते हैं। एक ऐसी वृत्ति होती है जिसमें सभी भौतिक चीजोंके बारेमें ऐसा प्रतीत होता है कि वे न सिर्फ भगवान्‌की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि अभिव्यक्ति होनेके अयोग्य हैं और तत्त्वतः आध्यात्मिक जीवनसे उल्टी हैं। इसलिये बस एक ही समाधान है — यह है पुराने योगोंका समाधान, तुम जानते ही हो — जीवनका यह मानकर संपूर्ण त्याग कि वह आध्यात्मिक जीवनमें बिलकुल भाग नहीं ले सकता, भौतिक जीवनका परित्याग। वे यही समझाते हैं। वे कहते हैं कि इस वृत्तिके साथ आदमी जीवनको इसी तरहसे देखता है। वे यह नहीं कहते कि जीवन ऐसा है; वे कहते हैं कि हम उसे ऐसा देखते, ऐसा समझते हैं; यह उन लोगोंकी मनोवृत्ति है जिन्होंने जीवनको आत्मासे बिलकुल अलग कर दिया है, जो कहते हैं कि जीवन माया है, मिथ्यात्व है, जो भगवान्‌को व्यक्त करनेमें असमर्थ है।

बस ?

मधुर मां, "...हम...अपनी उपलब्धिको अपना विरोध करनेवाली शक्तियोंसे छीनी हुई लूटसे समृद्ध कर सकते हैं।"

हां।

यह लूटका माल क्या है?

संसारमें काम करनेवाली समस्त विरोधी शक्तियां।

आजका संसार, जैसा कि वह है, अपने अधिकतर भागमें विरोधी शक्तियोंके प्रभावमें है। हम उन्हें विरोधी इसलिये कहते हैं क्योंकि वे दिव्य जीवन नहीं चाहतीं; वे दिव्य जीवनका विरोध करती हैं। वे चाहती हैं कि चीजें जैसी हैं वैसी ही बनी रहें, क्योंकि संसारमें यह उनका क्षेत्र और उनकी शक्ति है। वे भली-भांति जानती हैं कि जिस क्षण भगवान् अभिव्यक्त होंगे, वे अपनी सारी शक्ति और सारा प्रभाव खो बैठेंगे। इसलिये वे खुलकर और पूरी तरहसे भगवान्‌के विरुद्ध लड़ रही हैं। और उन्होंने बाहरी जीवनमें जो चीजें जीत रखी हैं उन सबको हमें टुकड़ा-टुकड़ा करके, जरा-जरा करके छीनना होगा। और जब उनके हाथसे कुछ छिन जाता है, तो उतना लाभ होता है।

दूसरी ओर, अगर, जैसा कि पहले किया जाता था, हम वह करें जिसे मैदान छोड़ना कहते हैं, यानी, अगर हम उन सब चीजोंको छोड़ते जायं जिन्हें हम रूपांतरित होनेके अयोग्य मानते हैं, तो भागवत उपलब्धिके लिये इतनी हानि होती है।

बाहरी जीवनमें प्रकृतिकी जितनी उपलब्धियां हैं, उसने जो कुछ बनाया है — उदाहरणके लिये, समस्त वनस्पति जगत्, पशु जगत्, है न, और यह सामान्य मानवजाति जिसे उसने बनाया है — अगर हम इसे माया कहकर छोड़ दें और यह मान लें कि यह भगवान्‌को अभिव्यक्त करनेमें असमर्थ है, तो यह सब विरोधी शक्तियोंके हाथमें छूट जायेगा और वे, निःसंदेह, इसे अपने उद्देश्यके लिये अपने हाथोंमें रखनेकी कोशिश करती हैं। जब कि अगर हम यह मानें कि यह सब अभी भले विकृत हो लेकिन अपने सार-तत्त्वमें और अपने मूलमें न केवल भगवान्‌की ही हैं, बल्कि स्वयं भगवान् हैं, तब हम सचेतन रूपसे समझ-बूझकर रूपांतरके लिये काम कर सकते हैं और इन सभी चीजोंको विरोधी प्रभावसे निकाल सकते हैं जो अभीतक उनपर राज कर रहा है।

तो बस? . . . और अब भी . . . ?

मधुर मां, हमारी वैश्व सत्ता क्या है?

हमारी वैश्व सत्ता? . . . वह क्या है? . . . मैं तुम्हारा प्रश्न भली-भांति नहीं समझ पायी।

वह क्या है? "क्योंकि हमारी समस्त प्रकृति और उसका परिवेश, हमारा निजी और वैश्व स्व, ऐसी आदतों और ऐसे प्रभावोंसे भरे हैं जो हमारे आध्यात्मिक पुनर्जन्मके विरुद्ध हैं..?

हमारा वैश्व स्व है सबके साथ और प्रकृतिकी सभी गतिविधियोंके साथ हमारा संबन्ध।

और मैंने तुमसे प्रायः ही कहा है, है न, कि तुम्हारी सत्ताकी पहली अवस्था लगभग पूरे मिश्रणकी अवस्था होती है जिसमें बाहरकी सभी चीजें घुली-मिली रहती हैं, और जिसमें व्यक्तित्व नहींके बराबर होता है, यानी, कोई विशिष्ट चीज नहीं होती जो तुम्हें एक भिन्न सत्ता बनाये। तुम्हें चलाया जाता है — एक प्रकारके रूपको, जो तुम्हारी भौतिक सत्ता है — उसे सभी सामान्य वैश्व शक्तियां चलाती हैं, प्राणिक शक्तियां या मानसिक शक्तियां जो तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करती हैं और उसमें गति पैदा करती हैं।

तो यह है वैश्व सत्ता।

और तुमने व्यापक अर्द्ध-चेतनामें जो कुछ झपट लिया है, और जिसे तुमने स्फटिक बनाकर कुछ-कुछ स्वतंत्र सत्ताका रूप दे दिया है, जो अपने बारेमें सचेतन होता है, जिसमें अपने गुण होते हैं — यह सब तुम्हारी वैयक्तिक सत्ता है। और यह वैयक्तिक सत्ता अंधकार, निश्चेतना, और सामान्य जीवनकी सीमाओंकी गतिविधियोंसे भरी रहती है, और यह... और तुम्हें इसीको धीरे-धीरे भागवत प्रभावकी ओर खोलना चाहिये और उसमें वस्तुओंकी चेतना और समझ लानी चाहिये। श्रीअरविंद यही कहते हैं।

वस्तुतः, पहली विजय है एक व्यक्तित्वकी रचना। और फिर बादमें, दूसरी विजय है इस व्यक्तित्वको भगवान्‌को दे देना। और तीसरी विजय यह है कि भगवान् तुम्हारे व्यक्तित्वको दिव्य सत्तामें बदल दें।

तीन अवस्थाएं हैं — पहली है व्यक्ति बनना; दूसरी है व्यक्तिका निवेदन, ताकि वह भगवान्‌के प्रति पूर्ण समर्पण कर दे और उनके साथ एक हो जाय; और तीसरी है जब भगवान् उसके व्यक्तित्वपर अधिकार कर लेते हैं और उसे एक ऐसी सत्तामें बदल देते हैं जो उनकी अपनी प्रतिमा हो, यानी, वह भी भगवान् बन जाता है।

साधारणतः, सभी योग दूसरी अवस्थामें रुक गये। जब मनुष्य अपने व्यक्तित्वको समर्पित करने और निःशेष भावसे भगवान्‌को देने और उनके साथ तादात्म्य साधनेमें सफल हो जाता था, तो वह मान लेता

था कि उसका काम पूरा हो गया, सिद्धि प्राप्त हो गयी।

लेकिन **हम** वहां से शुरू करते हैं, और हम कहते हैं: "नहीं, यह केवल प्रारंभ है। हम चाहते हैं कि यह भगवान् जिनके साथ हम एक हो गये हैं, वे हमारे व्यक्तित्वमें प्रवेश करें और उसे दिव्य व्यक्तित्वमें बदल दें जो दिव्य जगत्में काम करे।" हम इसे रूपांतर कहते हैं। पर दूसरी इसके पहले आती है, पहले आनी भी चाहिये। अगर वह न की जाय, तो तीसरी अवस्थाकी संभावना ही नहीं रहती। तुम पहलीसे तीसरीमें नहीं जा सकते; तुम्हें दूसरीमेंसे गुजरना होगा।

माताजी, तीसरी अवस्था पूरी तरह भगवान्पर निर्भर है, वे अधिकार करना चाहते हैं या नहीं।

वस्तुत. हर चीज पूरी तरह भगवान्पर निर्भर है। सिर्फ तुम्हें उसकी जो चेतना प्राप्त होती है वह भिन्न है। अतः, स्पष्ट है कि तीसरी अवस्थामें तुम सचेतन हो जाते हो कि भगवान् ही सब कुछ करते हैं; अतः, यह पूरी तरह भगवान्पर निर्भर है।

जब तुम यह कहते हो तो तुम्हारी चेतनाका वह अंश जो अभीतक अपने अलग होनेपर और अपने अलग अस्तित्वपर विश्वास करता है वह दूसरेकी ओर देखता और कहता है: "चलो, यह अच्छा है! अब मुझे कुछ भी न करना होगा।" लेकिन अगर उसका अस्तित्व ही न हो, अगर वह सचेतन हो जाय कि वह भगवान् है, तो उसे ऐसा नहीं लग सकता। वह काम करता है, काम करना जारी रखता है, लेकिन विकृत चेतनाकी जगह, सत्य चेतनाके साथ।

(मौन)

बस?

मधुर मां, हम भागवत 'उपस्थिति' का निरंतर अनुभव कैसे कर सकते हैं?

क्यों नहीं?

लेकिन कैसे कर सकते हैं?

लेकिन मैं पूछ रही हूं कि ऐसा अनुभव क्यों नहीं होना चाहिये। यह प्रश्न पूछनेकी जगह कि उसे कैसे अनुभव किया जाय, मैं पूछती हूं: "तुम ऐसा क्या करते हो जिससे उसे अनुभव नहीं करते" भागवत 'उपस्थिति' को अनुभव न करनेके लिये कोई कारण नहीं है। एक बार तुमने उस-का अनुभव कर लिया, एक बार, तो तुम्हें इस योग्य होना चाहिये कि हमेशा अनुभव कर सको क्योंकि वह हमेशा मौजूद है। यह तथ्य है। केवल हमारा अज्ञान ही हमें उसका भान नहीं होने देता। लेकिन अगर हम सचेतन हो जायें, तो हमेशा सचेतन क्यों न रहें? तुमने एक बार जिसे सीखा है उसे भूलो ही क्यों? जब तुम्हें अनुभूति हो चुकी है, तो उसे क्यों भूलो? यह बस, एक बुरी आदत है, बस, इतना ही।

देखो, एक चीज है जो तथ्य है, यानी, वह **है**। लेकिन हम उससे अनभिज्ञ हैं और उसे नहीं जानते। लेकिन सचेतन हो जानेके बाद, जान लेनेके बाद भी हम उसे भूलें ही क्यों? इसका कोई अर्थ है? यह केवल इसलिये होता है कि हमें पूरी तरह यह विश्वास नहीं होता कि एक बार भगवान्‌से मिलनेपर हम उन्हें भूल नहीं सकते। इसके विपरीत, हम मूर्खतापूर्ण विचारोंसे भरे रहते हैं जो यह कहते हैं: "ओह, हां, एक बार-के लिये यह बहुत अच्छा है, लेकिन बाकी समय वह हमेशाकी तरह ही रहेगा!" इसलिये इसका कोई कारण नहीं कि वह फिरसे शुरू न हो।

लेकिन अगर हम यह जानें . . . कुछ चीज है जिसे हम नहीं जानते थे, हम अज्ञानमें थे, तो जिस क्षण हमें ज्ञान प्राप्त हो . . . मैं सचमुच पूछती हूं तुम उसे भूल कैसे सकते हो। हो सकता है कि तुम किसी चीजको नहीं जानते, यह एक तथ्य है; ऐसी अनगिनत चीजें हैं जिन्हें तुम नहीं जानते। लेकिन जिस क्षण तुम उन्हें जान लेते हो, जिस क्षण तुम्हें अनुभूति होती है, तुम उसे भूल ही कैसे सकते हो? तुम्हारे अपने अन्दर भागवत 'उपस्थिति' है, तुम उसके बारेमें कुछ नहीं जानते — जिस-के सब प्रकारके कारण हैं, फिर भी मुख्य कारण यही है कि तुम अज्ञान-की अवस्थामें हो। लेकिन अचानक, परिस्थितियोंके मेलके कारण, तुम इस भागवत 'उपस्थिति' के बारेमें सचेतन हो जाते हो, यानी, तुम एक तथ्यके सामने होते हो — यह कल्पना नहीं है, यह तथ्य है, यह कोई ऐसी चीज है जिसका अस्तित्व है। तो फिर एक बार उसे जान लेनेके बाद तुम उसे भूल ही कैसे सकते हो?

लेकिन फिर भी अज्ञानकी यह अवस्था हमारे अन्दर है।

ओह! और क्यों? क्योंकि तुम्हें विश्वास है कि यही सामान्य अवस्था है, तुम इससे भिन्न कुछ नहीं कर सकते।

लेकिन जिस क्षण तुम यह जान लो कि यह एकदम अस्वाभाविक अवस्था है, 'सत्य'के विपरीत है, तो यह कैसे होता है कि यह दोहराई जा सकती है? यह केवल इसलिये है क्योंकि तुम्हें विश्वास नहीं होता। क्योंकि जब तुम्हें भागवत 'उपस्थिति'की अनुभूति होती है, तो वह तुम्हें काल्पनिक, चमत्कारी और असाधारण और लगभग अस्वाभाविक मालूम होती है। और इसलिये..."यह उत्कृष्ट अवस्था — इसे मैं रख ही कैसे सकता हूं? यह मेरे अपने अस्तित्वसे एकदम विपरीत है।" लेकिन वास्तवमें यही तो मूर्खता है। क्योंकि यह उत्कृष्ट अवस्था ही स्वाभाविक अवस्था है, और जिसमें तुम हमेशा रहते हो वह स्वाभाविक नहीं, बल्कि मिथ्या, विकृत अवस्था है — समझे, एक ऐसी अवस्था...जो सामान्य नहीं है।

लेकिन ज्ञान प्राप्त करने और 'सत्य' में निवास करनेके लिये — यही सामान्य अवस्था है। तो, यह कैसे होता है कि एक बार वह तुम्हें प्राप्त हो जाय...बस, खतम, अस्वाभाविक अवस्था गायब हो जाती है, तुम स्वाभाविक हो जाते हो और 'सत्य' में निवास करते हो। एक बार तुम 'सत्य' में पहुंच जाओ तो उसमेंसे फिर बाहर आ ही कैसे सकते हो?

सीधी-सी बात यह है कि तुमने पूरी तरह 'सत्य' में प्रवेश किया ही नहीं है, तुम्हारे केवल एक भागको ही यह अनुभूति हुई थी, औरोंको अभी तक नहीं हुई; और तब तुम अपने उस भागमें नहीं रहते जिसे अनुभूति हुई थी और उन भागोंमें रहने लगते हो जिन्हें अभीतक अनुभूति नहीं हुई; इन सब भागोंको एकके बाद एक यह अनुभूति होनी चाहिये।

मेरे प्रश्नका यही उत्तर है, तुम्हें मुझसे यही कहना चाहिये था: क्योंकि हम एक टुकड़ेसे नहीं बने हैं और जिस टुकड़ेको अनुभूति हुई थी वही हमारे अन्दर अकेला नहीं है और वह हमेशा मौजूद नहीं होता। उसके स्थानपर सब प्रकारके ऐसे टुकड़े आ जाते हैं जिन्हें अभीतक अनुभूति हुई नहीं है, लेकिन होनी चाहिये। इसीलिये।

लेकिन सच पूछो तो यह अनिवार्य नहीं है। क्योंकि चाहे वह भाग जिसे अनुभूति हुई थी और जो जानता है, अब ठीक सामने न हो और चेतनाका स्वामी न हो, अगर उसके स्थानपर ऐसा भाग आ गया हो जो अभीतक अज्ञानमें है, तो यह कोई कारण नहीं हो कि तुम दूसरेको भूल जाओ, क्योंकि वह दूसरा भाग भी तुम ही है, और तुम ही बना रहता है, और वहां मौजूद होता है। उसे क्यों भूलते हो? जब धुंधला, निश्चेतन

अज्ञानी भाग ऊपर आता है, तो उसे तुरंत दूसरेके सामने यूं (आमने-सामने) क्यों नहीं खड़ा कर देते ताकि वह उसे दिखा सकें कि वह अज्ञान-में है? यह हर एक कर सकता है। यह केवल चाहनेका प्रश्न है। हम भ्रांतिमें वापिस जा गिरनेके लिये बाधित नहीं हैं; हम अंधकार, अज्ञान और मूर्खतामें जा गिरनेके लिये बाधित नहीं हैं।

यह इसलिये है कि हमारे अन्दर कोई चीज, कायरता या पराजयवाद-के कारण, उसे स्वीकार लेती है। अगर आदमी उसे स्वीकार न करे तो ऐसा न होगा।

' तब भी जब सब कुछ अचानक अंधकारमय मालूम होता है, ज्वाला और ज्योति हमेशा मौजूद रहती हैं। और अगर तुम उन्हें भूल न जाओ, तो बस तुम्हें अंधेरे भागको उनके सामने रखना होगा; शायद युद्ध हो, शायद कुछ कठिनाई हो, लेकिन वह होगी बिलकुल अस्थायी; तुम कभी फिसलोगे नहीं।

इसीलिये कहा जाता है — और यह बिलकुल सच्ची बात है — कि अज्ञानवश पाप करनेके बहुत-से घातक परिणाम होते हैं, क्योंकि जब तुम भूल करते हो, तो, इन भूलोंके परिणाम आते हैं, यह तो स्पष्ट है, और साधारणतः बाह्य और भौतिक परिणाम आते हैं; लेकिन इससे बहुत बड़ी हानि नहीं होती, यह बात मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूं। लेकिन जब तुम्हें पता होता है कि सत्य क्या है, जब तुम 'सत्य' के दर्शन और अनु-भूति प्राप्त कर चुके हो, उसके बाद भी पापको स्वीकार लेना, यानी, फिरसे अज्ञान और अन्धकारमें जा गिरना — यह वस्तुतः अनंतगुनी अधिक गंभीर भूल है। यह दुर्भावनाके क्षेत्रकी चीज होने लगती है। बहर-हाल, यह ढीलेपन और कमजोरीकी निशानी है। इसका मतलब है कि संकल्प कमजोर है।'

तो तुम्हारा प्रश्न उल्टे ढंगसे रखा गया है। अपने-आपसे यह पूछनेकी जगह कि इसे कैसे रखा जाय, यह पूछो: आदमी इसे कैसे नहीं रखता? जाननेके क्षणसे पहले हर एक उसके बिना रहनेकी स्थितिमें होता है; जाननेसे पहले आदमी न जाननेकी स्थितिमें होता है। लेकिन एक बार तुम जान लो तो फिर भूल नहीं सकते। और अगर तुम भूल जाते हो, तो इसका मतलब यह है कि कोई ऐसी चीज है जो भूलनेकी अनुमति देती है, इसका मतलब है कि कहींपर स्वीकृति है; अन्यथा तुम न भूलोगे।

(मौन)

.   .   .

.

तो बस? . . .
बस, और कुछ नहीं?
और कहींसे कोई प्रश्न नहीं?
तुम ध्यान करना चाहते हो? हां?

(ध्यान)

२१ दिसंबर, १९५५

माताजी 'योग-समन्वय' मेंसे 'आत्म निवेदन' पढ़ती हैं।

> **"बहुधा उसे (साधकको) पता लगता है कि अपना निजी युद्ध अध्यवसायके साथ जीत लेनेपर भी, बार-बार जीतना पड़ता है . . ."**

हां। तो?

> **क्या इसका मतलब है कि और लोग उसकी साधनासे लाभ उठाते हैं?**

देखते हो, हर एकके लिये ऐसा ही है।

अगर केवल एक ही होता, तो ऐसा हो सकता था कि वह अकेला ही सबके लिये कर लेता; लेकिन अगर हर एक करे . . . तुम समझते हो . . .

तुम पचास आदमी पूर्ण योग कर रहे हो। अगर पचासमेंसे एक ही कर रहा हो, तो पचासके लिये एक करता है। लेकिन अगर पचासमेंसे हर एक यह कर रहा हो, तो हर एक पूरे पचासके लिये करता है, तो वास्तवमें वह केवल एक व्यक्तिके लिये ही करता है, क्योंकि सभी सबके लिये करते हैं।

> **लेकिन काम बहुत लंबा चलता है?**

तुम्हें अपने-आपको विस्तृत करना चाहिये।

काम ज्यादा जटिल है, ज्यादा पूर्ण है, वह अधिक शक्ति, अधिक विस्तार, अधिक धैर्य, अधिक उदारता, अधिक सहनशीलताकी मांग करता है; ये सभी चीजें जरूरी हैं। लेकिन वस्तुतः, अगर हर एक पूरी तरह-से वह करे जो उसे करना चाहिये, तो फिर एक ही व्यक्ति सारी चीज नहीं करता : एक अकेला आदमी सबके लिये नहीं करता, बल्कि अब सब मिलकर एक व्यक्ति बन जाते हैं और सारे दलके लिये करते हैं।

जो लोग यह कर रहे हैं उनमें एक प्रकारकी काफी एकता आ जानी चाहिये, ताकि उन्हें भेदका अनुभव न हो। वास्तवमें, उसे करनेका यही आदर्श तरीका है कि वे एक अनन्य शरीर बन जायें, एक अनन्य व्यक्ति बन जायें, हर एक, एक साथ ही अपने लिये और बिना भेद-भावके औरों-के लिये भी काम करे।

सच कहा जाय तो जब मैं श्रीअरविंदसे मिली, तो यह पहला प्रश्न उठा था। मेरा ख्याल है कि मैं तुम्हें यह बतला चुकी हूं; अब मुझे याद नहीं है, लेकिन इसके बारेमें मैंने हालमें ही कहा था। क्या हमें अपना योग करते हुए लक्ष्यतक जा पहुंचना चाहिये और बादमें औरोंके साथ कामको हाथमें लेना चाहिये या हमें तुरंत समान अभीप्सावालों-को अपने पास आने देना चाहिये और सबको साथ मिलकर लक्ष्यकी ओर बढ़ना चाहिये ?

अपने पहले कार्यके कारण, और मैंने जो कुछ प्रयत्न किया था उस-के कारण, मैं श्रीअरविंदके पास सुनिश्चित प्रश्न लेकर आयी थी। क्योंकि दो संभावनाएं थीं : एक तो यह कि जगत्‌से अलग होकर तीव्र व्यक्ति-गत साधनाकी जाय, अर्थात्, औरोंके साथ कोई संबन्ध न रखा जाय या फिर स्वाभाविक और सहज रूपसे दल बनने दिया जाय, उसे बननेसे रोका न जाय, उसे बनने दिया जाय, और सब मिलकर पथपर चलें।

हां तो, निर्णय मानसिक चुनाव बिलकुल न था; वह सहज रूपसे आया। परिस्थितियां ऐसी थीं कि चुनाव था ही नहीं; यानी, बिल-कुल स्वाभाविक और सहज रूपसे दल इस तरह बन गया कि वह एक स्वच्छन्द आवश्यकता बन गयी। एक बार इस तरह शुरू हो जाय, तो बस खतम, हमें इसी तरह अन्ततक जाना होगा।

शुरूमें, पांच-दस व्यक्ति थे, ज्यादा नहीं। लंबे समयतक पांच-छः रहे। फिर दस हुए, बारह हुए, लगभग बीस हुए; फिर तीस, पैंतीस। काफी लंबे समयतक यही संख्या रही। और फिर, अचानक, तुम जानते हो, संख्या बढ़ने लगी; और फिर हम यहांतक आ पहुंचे ! अंतिम संख्या

ग्यारह सौसे ऊपर थी। और हम बढ़ रहे हैं।

तो, इनमें बहुत-से हैं जो साधना नहीं करते। तब समस्या नहीं उठती। लेकिन वे सब जो साधना करते हैं, उनके लिये बात यूं है, यह ऐसी है जैसी श्रीअरविंदने यहां बतलायी है। और अगर कोई एकाकी मार्गसे साधना करना चाहे, तो उसे पूरी तरह करना एकदम असंभव है। क्योंकि हर एक भौतिक सत्ता, वह चाहे कितनी भी पूर्ण क्यों न हो, एकांगी और सीमित है; वह जगत्के केवल एक नियमका प्रतिनिधित्व करती है; वह बहुत जटिल नियम हो सकता है, लेकिन वह है एक ही नियम; जिसे भारतमें धर्म कहते हैं, जानते हो, एक 'सत्य', एक 'नियम'।

हर एक व्यष्टिगत सत्ता, चाहे वह पूरी तरह उच्चतर प्रकारकी हो, चाहे वह किसी बहुत ही विशेष कार्यके लिये बनी हो, वह केवल एक व्यष्टिगत सत्ता है; यानी, रूपांतरकी समग्रता एक अकेले शरीरके द्वारा सिद्ध नहीं हो सकती। और इसलिये, सहज रूपसे, विविधता आ गयी।

व्यक्ति अकेला, निःसंग अपनी पूर्णतातक पहुंच सकता है। वह अपनी चेतनामें अनन्त और पूर्ण बन सकता है। लेकिन जब कार्यका प्रश्न आता है, तो वह हमेशा सीमित रहता है।

मैं नहीं जानती कि तुम मेरी बात अच्छी तरह समझ रहे हो या नहीं लेकिन व्यक्तिगत सिद्धिकी कोई सीमा नहीं होती। तुम आंतरिक रूपसे, अपने अन्दर पूर्ण और अनन्त बन सकते हो। लेकिन बाह्य सिद्धि आवश्यक रूपसे सीमित रहती है, और अगर तुम व्यापक क्रिया चाहते हो, तो कम-से-कम भौतिक सत्ताओंकी न्यूनतम संख्या तो जरूरी है ही।

एक बहुत पुरानी परंपराके अनुसार कहा जाता है कि बारह काफी हैं; लेकिन आधुनिक जीवनकी जटिलताओंमें यह संभव नहीं मालूम होता। एक प्रतिनिधि दल होना चाहिये। जिसका मतलब है... तुम उसके बारेमें कुछ नहीं जानते या तुम उसकी अच्छी तरह कल्पना नहीं करते, लेकिन तुममेंसे हर एक उन मुश्किलोंमेंसे एकका प्रतिनिधित्व करता है जिन्हें रूपांतरके लिये जीतना जरूरी है। और यह बहुत मुश्किलें पैदा करता है! (माताजी हंसती हैं), मैंने कहीं लिखा है... मैंने कहा है कि कठिनाईसे बढ़कर हर एक समाधान करनेके लिये किसी असंभवताका प्रतिनिधि है। और इन सब असंभवताओंका पूरा समूह दिव्य 'कर्म', दिव्य 'उपलब्धि'में रूपांतरित हो सकता है। हर व्यक्ति एक ऐसी असंभवता है जिसे सुलझाना है, और जब इन सारी असंभवताओंका समाधान हो जाय तभी दिव्य 'कर्म' चरितार्थ होगा।

लेकिन अब मैं ज्यादा कोमल हूं। मैंने "असंभवता" को हटा दिया

है और उसकी जगह "कठिनाई" रख दिया है। शायद अब वे असंभवताएं नहीं रहीं।

लेकिन, शुरूसे, अब और भी ज्यादा, जब हमारा दल काफी बढ़ चुका है, हर बार जब कोई मुझसे कहने आता है: "मैं **अपने** योगके लिये आया हूं" तो मैं कह देती हूं: "नहीं, नहीं। तब मत आओ। और जगहोंकी अपेक्षा यहां बहुत ज्यादा कठिन है।" और कारण वही है जो श्रीअरविंदने यहां लिखा है।

अगर कोई मुझसे यह कहने आये: "मैं काम करने आया हूं, मैं अपने आपको उपयोगी बनाने आया हूं" तो ठीक है। लेकिन अगर कोई आये और कहे: "बाहर मेरे आगे बहुत कठिनाइयां हैं, मैं इन कठिनाइयोंको पार नहीं कर पाता, मैं यहां आना चाहता हूं क्योंकि इससे मुझे सहायता मिलेगी", तो मैं कहती हूं: "नहीं, नहीं, यहां **बहुत** अधिक कठिन होगा; तुम्हारी कठिनाइयां **बहुत अधिक** बढ़ जायेंगी।" इसका यही अर्थ होता है, क्योंकि तब अलग, इक्की-दुक्की कठिनाइयां नहीं रहतीं; वे सामूहिक कठिनाइयां होती हैं।

तो तुम्हारी अपनी निजी कठिनाइयोंके अतिरिक्त तुम सभी रगड़-झगड़, सभी संपर्क, सभी प्रतिक्रियाएं, वे सब चीजें पाते हो जो बाहरसे आती हैं। कसौटीके रूपमें। ठीक कमजोर बिन्दुपर, जिस चीजको हल करना सबसे कठिन है; वहींपर तुम किसीसे ऐसी बात सुनोगे जिसे तुम हर्गिज न सुनना चाहते थे, कोई तुम्हारी ओर ऐसा संकेत करेगा जो ठीक तुम्हें धक्का पहुंचानेवाला होगा; तुम अपने-आपको ऐसी परिस्थिति, ऐसी गति, ऐसे तथ्य, ऐसी चीजके सामने पाओगे, वह कुछ भी क्यों न हो, ठीक ऐसी चीजके सामने जो... "ओह, मैं कितना अधिक चाहता था कि यह न हो!" और ठीक वही चीज होगी। और अधिकाधिक होगी। क्योंकि तुम अपना योग केवल अपने लिये नहीं करते। तुम सबके लिये योग करते हो — बिना चाहे — यंत्रवत् करते हो।

तो जब लोग आकर मुझसे कहते हैं: "मैं यहां शांति, स्थिरता, आरामके लिये, अपना योग करनेके लिये आया हूं," तो मैं कहती हूं: "नहीं, नहीं, नहीं! तुरंत कहीं और चले जाओ, यहांकी अपेक्षा किसी भी जगह तुम ज्यादा शांत रहोगे।"

अगर कोई आकर कहे: "लीजिए, मैं उपस्थित हूं, मुझे लगता है कि मुझे अपने-आपको भागवत 'कर्म' के लिये अर्पित कर देना चाहिये, आप मुझे जो भी काम दें वही करनेको तैयार हूं", तो मैं कहती हूं: "अच्छा यह ठीक है। अगर तुम्हारे अंदर सद्भावना है, सहनशीलता है, और

कुछ क्षमता है, तो यह ठीक है। लेकिन तुम्हारे आंतरिक विकासके लिये आवश्यक एकांत पानेके लिये कहीं और जाना ज्यादा अच्छा है, चाहे कहीं भी क्यों न हो, लेकिन यहां नहीं।" तो यह बात है।

मैंने ये सब बातें आज ही कही हैं; यह कहनेका अवसर था। और साथ ही मैंने कहा: "इस नियममें एक अपवाद है, और ये हैं बच्चे।" क्योंकि यहां बच्चोंको, जब वे अचेतन होते हैं तभीसे ऐसे वातावरणमें रहनेका लाभ मिलता है जो उन्हें अपने-आपको पानेमें सहायता देता है। और यही चीज बाहर नहीं मिलती। मैं वही बात कह रही हूं जो मैं-ने ऐसे लोगोंसे कही... जरूरी नहीं कि बूढ़े हों पर... जो गढ़े जा चुके हैं, जो केवल बचपनकी अवस्थाको ही नहीं, जवानीकी पहली अव-स्थाको भी पार कर चुके हैं।

लेकिन वे सब जो बहुत छोटे हैं, वे जितने ही छोटे हों, उनके लिये उतना ही अच्छा है—क्योंकि वे अपनी छोटी, कोमल, अवस्थासे ही ऐसे वातावरणमें हैं जो सर्वांगीण विकासके लिये सबसे अधिक अनुकूल है। इसलिये वे उचित वातावरणमें बढ़ सकते हैं, अधिकाधिक विकसित हो सकते हैं। जब व्यक्ति निजी विकासमेंसे निकलकर योग करना शुरू करना चाहता है, तभी समस्या उठ खड़ी होती है। लेकिन जो पूरी तरह यहीं बड़े हुए हैं, उनके लिये समस्या बहुत कम कठिन है, क्योंकि शुरूसे, बचपनसे वे बिना जाने, उसका कोई भान पाये बिना समग्रके सदस्य रहे हैं; और वे समग्रके साथ सिद्धिकी ओर चलते हैं। तो यह उनके लिये कोई एकदम नयी चीज नहीं होती जो उनकी कठिनाइयोंको बढ़ा दे; इसके विपरीत, यह ऐसी चीज होती है जो उनकी सहायता करती है।

अब, देखो, जब समस्या सामने आये, तो उन्हें यह जानना होगा कि वे योग करना चाहते हैं या नहीं। मैं तुमसे यह बात पहले भी कई बार कह चुकी हूं। तो, देखो, एक क्षण आता है जब...। "हां तो, अब मैं अनुभव पानेके लिये जीवनमें बाहर जा रहा हूं।"—"जाओ, मेरे बच्चो, मेरे आशीर्वादके साथ जाओ; और यह कोशिश करो कि अनुभव बहुत अप्रिय न हो।" (माताजी हंसती हैं) लेकिन जो कहते हैं: "नहीं, अब मैंने अपना फैसला कर लिया है, मैं योग करना चाहता हूं" तब हां, मैं उनसे यह बात नहीं छिपाती कि अब कठिनाईका आरंभ होता है। इस क्षणसे, विशेष गुणोंकी आवश्यकता होती है; और उन्हें यह जानना चाहिये कि जो तैयारी करवायी गयी है उससे कैसे लाभ उठाएं। जो बेचारे बाहरसे आते हैं उनकी अपेक्षा इनकी स्थिति ज्यादा अच्छी होती है, बहुत ज्यादा अच्छी! लेकिन फिर भी उन्हें प्रयास करना होगा, क्योंकि प्रयास

के बिना कुछ भी सफल नहीं होता — जब वे बहुत छोटे थे तभीसे यदि उन्होंने यह सीख लिया हो कि अपने-आपको कैसे ले जाने दिया जाय, तो और बात है। लेकिन बहुत ही कम लोग इतने परिपक्व या 'शाश्वतता' की भाषामें इतने वयस्क होते हैं कि इस तरह अपने-आपका वहन होने दें, जो यह जाननेके लिये कि **यही** सच्ची चीज है, बाहरसे नाना प्रकार-की चोटें खाये बिना, एक ही झटकेमें अपना वहन होने दें।

यह बहुत कुछ इसपर निर्भर है कि वे अपने अन्दर क्या हैं। वस्तुतः, यहां इसीके लिये जन्मे, पूर्वनियत लोगोंका प्रश्न उठता है। तब वास्तव-में बात बहुत आसान होती है।

तो यह बात है।

मधुर मां, क्या आपका ख्याल है कि आप हमें जो अवसर देती हैं उसके लिये हम काफी प्रयास करते हैं?

आह! वत्स, यह तुम्हारे और तुम्हारे अन्तःकरणके बीचकी बात है। मैं इसके बारेमें कुछ भी न कहूंगी। मैं इसका उत्तर नहीं दे सकती। इसका तुम्हें ही अवलोकन करना चाहिये।

ओह, यह बिलकुल स्पष्ट है कि अगर तुममेंसे हर एक इसे सच्चे प्रकाशमें देख सके तो...

पता नहीं तुम्हें इस तरहका अनुभव हुआ है या नहीं, जब मानवजाति-की अद्‌भुत कथाएं पढ़ते समय, उन लोगोंकी कथा पढ़ते समय जो मानव-जातिकी सहायता करने आये थे, ऐसी कथाएं जिनमें ऊपरसे हस्तक्षेप हुआ, उनमें एक अवसरकी बात थी, चमत्कारिक भागवत 'कृपा' की बात थी — ऐसी कथाएं अन्य देशोंकी अपेक्षा यहां भारतमें ज्यादा सुनायी देती हैं।

हां तो, जब तुम ऐसी चीज बचपनमें पढ़ते हो, तो कह उठते हो: "काश, मैं उस समय रहा होता!" — पता नहीं तुम्हें इस तरहका अनु-भव हुआ है या नहीं...

मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिन्हें ऐसा अनुभव हुआ था। और तब उन-से कहा जाता है: "अच्छा, यह कल्पना करनेकी कोशिश करो कि तुम्हें यह अवसर मिल गया, तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया होगी?" और कभी-कभी अचानक तुम उसे देख पाते हो; अचानक ऐसा लगता है कि मानों स्वर्ग खुल गया है और कोई ऐसी चीज आ गयी है जो पहले वहां न थी। यह नहीं कहा जा सकता कि कितनी देरके लिये, लेकिन बहर-

हाल, पार्थिव जीवनके, मानव जीवनके उन असाधारण क्षणोंमेंसे एक क्षण होता है जब चीजें वैसी नहीं होतीं जैसी वे साधारणतः होती हैं — मन्द और निर्जीव नहीं होतीं। तो मनुष्यको एक जीते-जागते चमत्कारका अनुभव होता है।

अगर तुम इसे बनाये रख सको, तो सब कुछ ठीक चलता है। दुर्भाग्य-वश, आदमी इसे बहुत जल्दी भूल जाता है।

अगर तुम्हें यह अनुभूति एक बार भी हुई है, तो यह अपने-आपमें बड़ी बात है; द्वार खुल गया है। अचानक तुमने अनुभव किया है . . . हां, अनुभव किया है कि यह कुछ चीज है, यह अनन्त 'कृपा' है, यह कोई अद्भुत चीज है। वे सब जो एक शताब्दी पहले, दो शताब्दियां पहले, तीन शताब्दियां पहले हो गये हैं वे इसकी आशा करते थे, इसके लिये प्रतीक्षा करते थे। उनके लिये बस, एक ही अवसर था, वह था फिरसे एक नये जीवनमें, ज्यादा अच्छी परिस्थितियोंमें जीना।

लेकिन, अब हमें ये परिस्थितियां प्राप्त हैं, वे मौजूद हैं: 'कृपा' मौजूद है।

अगर आदमी केवल इस विचारको नहीं, अनुभूतिको एक बार पा ले, इस चीजका अनुभव पा ले और फिर उसे बनाये रखे, तो सब कुछ आसान हो जाता है। दुर्भाग्यवश, आदमी इसे बहुत जल्दी भूल जाता है।

मधुर मां, यहां श्रीअरविंदने कहा है: "उसे (पूर्ण योगके साधकको) केवल अपने अन्दर अहंकारपूर्ण मिथ्यात्व और अव्यवस्थाकी शक्तियोंपर ही विजय नहीं पानी होती, बल्कि उन्हें . . . के प्रतिनिधिके रूपमें जीतना होता है . . .

सुनो, मेरे बालक, खेद है, लेकिन जब मैं बोलती हूं, तो तुम सुनते नहीं? ताराका प्रश्न ठीक यही था और मैंने उसे सारी चीज समझायी है। तो फिर तुम ठीक वैसा ही प्रश्न कैसे पूछते हो?

तुम समझे नहीं? मैंने सब कुछ समझाया है।

(मौन)

माताजी, आपने कहा है कि हर एक, एक असंभवताका प्रतिनिधि है। इस हालतमें, हर एकको इस असंभवताको हल करनेपर एकाग्र होना चाहिये, है न?

यह आवश्यक नहीं है कि वह उसपर एकाग्र हो। मगर वह जानता हो या न जानता हो, यह समस्याका एक पहलू है।

मैं यह बात पहले भी एक बार कह चुकी हूं। जब तुम किसी विजय-की संभावनाका प्रतिनिधित्व करते हो, तो हमेशा तुम्हारे अन्दर उस विजय-से विपरीत वस्तु भी होती है जो तुम्हारी चिरस्थायी कठिनाई होती है।

हर एककी अपनी कठिनाई होती है। और, मेरा ख्याल है, मैं एक बार उदाहरण दे चुकी हूं। उदाहरणके लिये, जिस सत्ताको निर्भयता, साहसका प्रतिनिधित्व करना है, समझे, यानी, जिसमें यह क्षमता हो कि बिना कदम डिगाये, सभी संकटों और संघर्षोंके आगे डटा रहे, वह सामान्यतः अपनी सत्तामें, कहींपर बहुत **भयानक रूपसे**, भीरू होता है और उसे लगभग हमेशा ही इसके विरुद्ध संघर्ष करते रहना पड़ता है क्योंकि वह उस विजयका प्रतिनिधि है जो उसे संसारमें पानी है।

यह ऐसी सत्ताकी तरह है जिसे अच्छा बनना, करुणा और उदारता-से भरपूर होना है; अपनी सत्ताके किसी भागमें वह तीखा, कटु और कभी-कभी खराब भी होता है; और दूसरी चीज बननेके लिये उसे इन-के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ता है। और इस तरह चलता रहता है। यह बात **सभी** ब्योरोंमें लागू होती है। तो बात ऐसी है।

जब तुम कहीं बहुत काली छाया देखो, बहुत ही काली, कोई ऐसी चीज जो सचमुच कष्टजनक हो, तो तुम इस बातसे निश्चित हो सकते हो कि तुम्हारे अन्दर उसके अनुरूप प्रकाशकी संभावना है।

घटनेकी जगह वह बढ़ती क्यों है?

"वह बढ़ती है", इसका क्या अर्थ है?

(शिष्य उत्तर नहीं दे पाता।)

यहां वह बढ़ती है? हां। क्योंकि यह सिद्धिका स्थान है।

जीवनमें, तुम अचेतन रहते हो, तुम अपना सारा जीवन एकदम अस्पष्ट अर्ध-चेतनामें बिताते हो, तुम अपने बारेमें कुछ नहीं जानते, बस, एक आभास मात्र, और कुछ नहीं। और तुम हमेशा अपने उद्देश्यको पूरा करनेमें असफल रहोगे और इस कारण कठिनाईके हृदयमें जाकर बाधाको नहीं देख पाते, बस एक आभास रहता है; तुम सब आभासोंके बीचमें रहते हो। बस, यही बात है। इसलिये तुम्हारी गलतियां छोटी होती

नहीं — एक ऐसी एकाग्रता जो हर उस चीजके प्रति खुली हुई है जिसका अस्तित्व है; यह ऐसी एकाग्रता है जो किसी चीजका विरोध नहीं करती। यह ऐसी एकाग्रता है जो खुली है। इसका मतलब यह है कि साधकको अपने अन्दरसे अमुक चीजोंका त्याग नहीं करना चाहिये और सबकी उपेक्षा करते हुए किसी बिंदु-विशेषपर ऐकांतिक रूपसे एकाग्र नहीं होना चाहिये। सभी संभावनाओंको आने देना चाहिये और इनको आगे बढ़ाना चाहिये।

यहां लिखा है: "हमारा एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये स्वयं भगवान्, जिनके लिये हमारी गप्त प्रकृतिमें कोई चीज हमेशा, जाने-अजाने, अभीप्सा करती रहती है।"

मधुर मां, यह कुछ चीज क्या है जो अभीप्सा करती है?

यह सत्ताका एक भाग है जो सबके अन्दर सदा एक नहीं होता, जो सहज वृत्तिके साथ चैत्य प्रभावके प्रति खुला रहता है।

हमेशा एक भाग ऐसा रहता है जिसके बारेमें हम सचेतन नहीं होते, जो वस्तुतः कभी-कभी परदेके पीछे पूरी तरह छिपा रहता है, सत्तामें कोई ऐसी चीज होती है जो चैत्यकी ओर खुली रहती है और उसके प्रभावको ग्रहण करती रहती है। यही चैत्य चेतना और बाह्य चेतनाके बीच मध्यस्थ होती है।

सभीके अन्दर एक ही चीज नहीं होती; हर एकके अन्दर अलग-अलग होती है। वह उसकी प्रकृतिमें या चरित्रमें एक बिन्दु होता है जिसके द्वारा वह चैत्यको छू सकता है और जहां चैत्य प्रभाव पा सकता है। यह लोगोंपर निर्भर है। यह हर एकके लिये भिन्न है। हर एकके अन्दर ऐसा बिन्दु होता है।

तुम्हें यह भी अनुभव हो सकता है कि कुछ चीजें ऐसी हैं जो तुम्हें अचानक धक्का देती हैं, तुम्हें अपने-आपसे ऊंचा उठा लेती हैं, किसी अधिक बड़ी चीजके लिये एक तरहका दरवाजा खोल देती हैं। ऐसी बहुत-सी चीजें हो सकती हैं; यह हर एककी प्रकृतिपर निर्भर है। सत्ताका भाग ही किसी चीजके लिये उत्साहमें आ जाता है; उत्साहकी यह क्षमता ही वह चीज है।

दो मुख्य चीजें हैं। उत्साहके लिये यह क्षमता जो मनुष्यको उसकी कम या अधिक जड़तामेंसे बाहर निकाल लाती है ताकि वह अपने-आपको अधिक या कम पूर्णताके साथ उस चीजमें अर्पित कर सके जो उसे

जगाती है। उदाहरणके लिये, कलाकार अपनी कलाके लिये, वैज्ञानिक अपने विज्ञानके लिये। और सामान्यतः, हर ऐसे व्यक्तिमें जो निर्माण करता या सृजन करता है, एक-न-एक उद्घाटन होता है, किसी विशेष क्षमताका, किसी विशेष संभावनाका उद्घाटन जो उसमें उत्साह पैदा करता है। जब यह सक्रिय हो, तो सत्ताके अन्दर कोई चीज जागती है, और की जानेवाली चीजमें लगभग सारी सत्ताका सहयोग मिलता है।

यह बात है। और फिर कुछ ऐसे लोग हैं जिनमें कृतज्ञताकी सहज क्षमता होती है, जिनमें प्रत्युत्तर देनेकी तीव्र आवश्यकता होती है, जो किसी ऐसी चीजके प्रति जिसे वे समस्त जीवनके पीछे, छोटे-से-छोटे तत्त्व-के पीछे, जीवनकी छोटी-से-छोटी घटनाके पीछे छिपी अद्भुत वस्तुके रूपमें अनुभव करते हैं और उसे ऊष्मा, निष्ठा और आनन्दके साथ प्रत्युत्तर देते हैं। वे सभी चीजोंके पीछे परम सौंदर्य या अनन्त 'कृपा' का अनुभव करते है।

मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिन्हें, हम कह सकते हैं, किसी चीजका कोई ज्ञान न था, जो शायद ही कुछ पढ़े-लिखे थे, जिनके मानस बिलकुल सामान्य प्रकारके थे, और जिनमें कृतज्ञताकी, ऊष्माकी यह क्षमता थी जो अपने-आपको दे देती है, समझती है और कृतज्ञ होती है।

हां तो, उनमें उनकी योग्यताके अनुसार, लगभग निरंतर चैत्य संपर्क होता था — बहुत अधिक नहीं, कुछ-कुछ सचेतन संपर्क, यानी, वे अनुभव करते थे कि उन्हें बढ़ाया जा रहा है, सहायता दी जा रही है, स्वयं अपने-आपसे ऊपर उठाया जा रहा है।

ये दो चीजें लोगोंको सबसे अधिक तैयार करती हैं। वे इन दोनों-मेंसे किसी एक या दूसरीको लेकर पैदा होते हैं; और अगर वे इतना कष्ट उठायें, तो वह चीज धीरे-धीरे विकसित होती है, बढ़ती है।

हम कहते हैं कि उत्साहकी क्षमता एक ऐसी चीज है जो तुम्हें अपने दरिद्र, क्षुद्र, नीच अहंकारसे ऊपर उठा देती है; और उदारतापूर्ण, कृतज्ञता, कृतज्ञताकी उदारता जो अपने-आपको धन्यवाद-ज्ञापनमें छोटे-से अहंकारमेंसे बाहर निकालती है। अपनी चैत्य सत्तामें भगवान्‌के साथ संपर्क पानेके लिये ये दो सबसे अधिक शक्तिशाली उत्तोलक हैं। यह चैत्य सत्ताके साथ जोड़नेवाली कड़ीका काम देती है — सबसे अधिक निश्चित कड़ीका।

(मौन)

तो बस?

मधुर मां, क्या बहुत ही दुष्ट लोगोंमें भी कोई चीज अभीप्सा करती है?

सबसे बढ़कर दुष्टोंमें? . . . हां, मेरे बालक, असुरोंमें भी, 'विरोधी शक्तियों' में भी, राक्षसों-पिशाचोंमें भी, ऐसी कोई चीज होती है।

हमेशा एक कोना, एक प्रकारकी दरार, एक संवेदनशील बिन्दु होता है जिसे साधारणतः कमजोरी कहा जाता है। लेकिन वास्तवमें यही सत्ताकी शक्ति होती है, यही ऐसा बिन्दु होता है जिसके द्वारा उन्हें छुआ जा सकता है।

क्योंकि सबसे अधिक अंधकारमय, सबसे अधिक पथभ्रष्ट सत्ताओंमें, उनमें भी जो सचेतन रूपसे भगवान्‌के साथ लड़नेका संकल्प करती हैं, उनका भी, न चाहते हुए भी, सभी चीजोंके बावजूद, स्रोत दिव्य होता है; वे अपने-आपको अपने मूलसे काटनेके लिये व्यर्थ कार्य, व्यर्थ प्रयत्न करते हैं; लेकिन वे ऐसा कर नहीं पाते। वे जान-बूझकर, सचेतन रूपसे, भरसक कोशिश करते हैं; लेकिन वे भली-भांति जानते हैं कि वे ऐसा नहीं कर सकते। हमेशा अधिक-से-अधिक, पैशाचिक सत्ताको भी छूनेका कहीं एक उपाय रहता है।

भगवान् और संसारमें भगवान्‌की क्रिया, दोनों हमेशा अनुभवकी अतिपर एक सीमाका काम करते हैं, और साथ ही शुभको असीम शक्ति प्रदान करते हैं। और शुभकी यह असीम शक्ति ही बाह्य रूपसे, अभिव्यक्तिमें अशुभके फैलनेपर सीमा लगा देती है।

स्वभावतः, मनुष्योंकी बहुत सीमित दृष्टिको कभी-कभी ऐसा लगता है कि अशुभकी कोई सीमा नहीं है और वह पराकाष्ठातक जा पहुंचता है। लेकिन यह पराकाष्ठा अपने-आपमें एक सीमा है। एक जगह हमेशा रुकना पड़ता है, क्योंकि एक बिंदु है जहां भगवान् उठ खड़े होते हैं और कहते हैं: "तुम इससे आगे नहीं बढ़ोगे।" चाहे प्रकृतिके महान् विनाश हों या मनुष्यके पैशाचिक कृत्य, हमेशा एक ऐसा क्षण आता है जब भगवान् हस्तक्षेप करते हैं और चीजोंको और आगे बढ़नेसे रोक देते हैं।

(लंबा मौन)

मधुर मां, जिन लोगोंमें अजाने ही यह अभीप्सा होती है वे बिना जाने प्रगति भी करते हैं क्या?

हां, हां।

तब तो हर एक, हमेशा, प्रगति करता रहा है, है न?

एक तरहसे, हां। लेकिन हो सकता है कि वह एक जीवनकालमें दिखायी न दे, क्योंकि अगर सत्ता सचेतन रूपसे भाग नहीं ले रही, तो मानव जीवन-की अपेक्षया छोटी-सी अवधिके लिये भी, उसकी गति अपेक्षया मंद होती है। तो यह बिलकुल संभव है कि, उदाहरणके लिये, मरते समय किसी सत्ताके बारेमें ऐसा लगता है कि उसने प्रगति नहीं की, बल्कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि वह पीछे ही गयी है, जीवनके आरंभमें उसके पास जो कुछ था उसे भी खो बैठी है। लेकिन अगर हम उसकी चैत्य सत्ताके अनेक जन्मोंमेंसे गुजरते हुए महान् जीवन चक्रको लें, तो हमेशा प्रगति दिखायी देगी। भौतिक जीवनकालमें पायी हुई प्रत्येक अनुभूति उसे कुछ प्रगति करनेमें सहायता देती है। लेकिन हमेशा प्रगति करनेवाली चैत्य सत्ता ही होती है।

भौतिक सत्ता, अभी वह जिस अवस्थामें है — हां, तो आरोहणके एक बिंदुतक पहुंचकर, फिर नीचे आती है। ऐसे तत्त्व होते हैं जो स्थूल रूपमें फिरसे नीचे न आयें; फिर भी वह नीचे आती है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

प्राणिक सत्ताके लिये यह जरूरी नहीं है, न मानसिक सत्ताके लिये ही जरूरी है। अगर प्राणिक सत्ता वैश्व शक्तिके साथ नाता जोड़ना जानती हो, तो यह बहुत आसान हो जाता है कि उसकी अवनति न हो; उसकी उन्नति जारी रह सकती है। और मानसिक सत्ताके बारेमें यह बिलकुल निश्चित है, अगर वह साधारण रीतिसे विकसित होती रहे तो उसकी अव-नति बिलकुल नहीं होती। तो ये सत्ताएं, जबतक वे तालमेलमें रहें और चैत्य प्रभावके अधीन रहें, हमेशा प्रगति करती रहती हैं।

केवल भौतिक सत्ता ही विकसित होती और क्षीण होती है। लेकिन यह लोच और ग्रहणशीलताके अभावसे और स्वयं उसकी प्रकृतिसे होता है; यह अनिवार्य नहीं है। अतः हम यह सोच सकते हैं कि किसी निर्दिष्ट समयपर, जैसे-जैसे स्वयं भौतिक चेतना सचेतन और सुविवेचित रूपसे किसी हदतक प्रगति कर लेगी, स्वयं शरीर बढ़ती हुई मात्रामें, पहले क्षयको रोक सकेगा — स्पष्ट है कि पहली गति यही होनी चाहिये — और फिर धीरे-धीरे एक ऐसी आंतरिक पूर्णतामें विकसित होगा जबतक कि वह क्षयकी शक्तियोंपर विजय न पा ले।

लेकिन सच्ची बात यह है कि अभी यही एक चीज है जो प्रगति नहीं कर रही। बाकी हर चीज प्रगति कर रही है।

लेकिन **स्वयं** यह पदार्थ — यानी, यह जड़-भौतिक पदार्थ जो उसे बनाता है, एक ऐसे शरीरकी रचना करता है जो अमुक आकारमें निर्दिष्ट अवधितक जिंदा रहता है और फिर यह आकार क्षीण होने लगता है और विघटित हो जाता है — इन उत्तरोत्तर रूपोंको बनानेवाला पदार्थ इन सब रूपोंमेंसे होता हुआ प्रगति करता है। यानी, आणविक, कोषाणुगत पदार्थ — शायद कोषाणुगत भी — आणविक और परमाणविक पदार्थ भी भागवत 'शक्ति' और 'चेतना'को अभिव्यक्त करनेकी क्षमतामें प्रगति कर रहे हैं। इन सब शरीरोंके द्वारा यह पदार्थ अधिकाधिक सचेतन, अधिकाधिक ज्योतिर्मय, अधिकाधिक ग्रहणशील बनता है, यहांतक कि वह इतनी पर्याप्त पूर्णतातक पहुंच जाता है कि स्वयं उसके लिये भागवत 'शक्ति'का वाहन होना संभव हो जाय ताकि वह भागवत 'शक्ति' उसका भी उसी तरह उपयोग कर सके जैसे सृष्टिके अन्य तत्वोंका, मन या प्राणका उपयोग करती है।

और उस समय भौतिक पदार्थ जगत्‌में नयी 'चेतना', नये 'प्रकाश', नये 'संकल्प'को अभिव्यक्त करनेके लिये तैयार होगा। इन सब शताब्दियोंमेंसे होकर, अनगिनत जीवनोंमेंसे होकर, अनगिनत शरीरोंमेंसे होकर, अनगिनत अनुभूतियोंका उपयोग करते हुए, हम कह सकते हैं कि वह परिष्कृत हो जाता है; वह तैयार हो जाता है, और भागवत 'शक्तियों'के प्रति अधिकाधिक ग्रहणशील बनता और खुलता है।

तो, क्षणिक वैयक्तिक सत्ताके रूपमें मनुष्य भले प्रगति करता न दिखायी दे, पर समस्त शरीरोंकी तरह उसके द्वारा भी प्रगति जारी रहती है।

(मौन)

(एक बालकसे) ऐसा लगता है कि तुम सोच रहे हो कि यह बहुत आश्वासन देनेवाली बात नहीं है।

फिर भी यह एक आश्वासन है, क्योंकि, वस्तुतः, हर एक व्यक्तिगत सत्ताको प्रगतिकी गति बढ़ानेके लिये सचेतन रूपसे उसमें लगे रहना ही है। यह स्वतंत्रता सबको दी गयी है, अतः बस हर एकको इससे लाभ उठाना-भर होता है।

ऐसा कोई अनिवार्य नियम नहीं है जो किसी भी व्यक्तिको सचेतन रूपसे वैश्व प्रगतिमें हिस्सा लेनेसे रोकता हो। यह स्वतंत्रता उसको दी गयी है।

कुछ नहीं? . . . तो फिर, प्रश्न नहीं? . . .

और प्रश्न नहीं? . . . कुछ नहीं? . . . और कुछ नहीं? . . . (एक बालकसे) या तुम्हें कुछ पूछना है?

मधुर मां, जब कोई स्वप्नमें दो सिरवाले सफेद सांपको देखे, तो इसका क्या अर्थ होता है ?

यह संदर्भपर निर्भर करता है।

कहना मुश्किल है। न्यायसंगत दृष्टिसे इसका अर्थ पवित्रकी गयी ऊर्जा होना चाहिये।

दो सिर, यह संदर्भपर निर्भर करता है, यानी, जिन परिस्थितियोंमें व्यक्ति देखता है, उससे पहले क्या हुआ, उस समय क्या हो रहा है और उसके बाद क्या हुआ। अगर वह केवल यूं ही दो सिरवाला सांप ही...

इसी कमरेमें, मधुर मां। मुझे याद नहीं कौन था, लेकिन, यहां, गौरीकी दराजमें सांप था, और जैसे ही मैंने दराज खोली, वह निकल गया। फिर आपने उसे पूंछसे पकड़ लिया और उसने आपको डसा — लेकिन उससे कुछ हुआ नहीं। तब आपने उसे दूसरी खिड़कीसे जाने दिया।

वह सफेद था ?

जी हां।

और उसके दो सिर थे ?

जी हां।

(मौन)

तुम्हें विश्वास है कि उसने मुझे डसा ?

जी मुझे मालूम नहीं।

फिर भी तुम्हें इस तरह याद है।

जी हां।

किस दराजमें ?

यहां, मधुर मां, जहां आप पुष्प रखती हैं।

डिब्बेमें ?

जी हां।

(मौन)

मैंने उसे बाहर फेंक दिया ?

नहीं, फेंका नहीं, लेकिन आपने उसे वहांसे बाहर जाने दिया। आपने उसे खिड़कीपर रख दिया और वह निकल गया।

बिलकुल सफेद था ?

मुझे लगता है।

आंखें ? तुमने देखी नहीं ?

मुझे मालूम नहीं।

कब देखा स्वप्न ?

दो-तीन दिन हुए। शायद।

ठीक है।
तो फिर, ध्यान ?

(ध्यान)

विषय-अनुक्रमणिका

सूचना :

ऐसे पढ़ें —

कठिनाई	दूसरे	इंद्रियां	धर्म	काम
-यां	-रोंकी	-योंका	-र्मोंका	बाहरी, में
कठिनाइयां	दूसरोंकी	इंद्रियोंका	धर्मोंका	बाहरी काममें

(२) जिन वाक्योंमें केवल शुरूमें (') है, वह अपने-आपमें पूरा वाक्य है, उन्हें मूल शब्दके साथ मिलाकर न पढ़ें। 'उदाहरण' और 'साधक' के नीचेके सभी वाक्य स्वतंत्र वाक्य हैं।

(३) जहां (") का आरंभ नहीं दिखाया गया, वहां मूल शब्दसे पहले (") कल्पना कर लें।

(४) कहीं-कहीं अधिक स्पष्टताके लिये लिखा है:

(दे० 'सत्य' में भी या 'चेतना' एक भी) इसका मतलब है **सत्य** के नीचे वह वाक्य जो में से और **चेतना** के नीचे वह वाक्य जो एक से शुरू होता है।

(५) पृष्ठ संख्याके बाद अ का मतलब है कि वह प्रसंग उस पृष्ठके अंतसे शुरू होकर, बस, अगले पृष्ठके आरंभतक ही गया है।

(६) जहां वाक्य-रचना मूल शब्दके साथ संगत न जान पड़े, वहां मूल शब्दके आगे कोष्ठमें जो शब्द दिया गया है उसके साथ मिलाकर पढ़नेसे वह संगत बन जायगी।

आ

ऋ-ए

क

ख-ग-घ

च

छ-ज

ड-त

द

म

य

ल

व

श

स

ह

नामानुक्रमणिका

सूची

योगके आधार

मानव विकास-चक्र

योग-प्रदीप

महान् रहस्य

योगसमन्वय